सम्पादक
नन्दकिशोर नवल

निराला रचनावली

4

मूल्य
प्रति खण्ड रु० 75 00
सम्पूर्ण सेट रु० 600 00

द्वितीय सस्करण
मार्च, 1983

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्रा लि
8 नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली - 110 002

मुद्रक
रुचिका प्रिन्टर्स
नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110 032

आवरण तथा
प्रारम्भिक पृष्ठ
प्रभात आफसेट प्रेस,
दरियागज, नयी दिल्ली

कला-पक्ष
आवरण के लिए
निराला का रेखाकन :
हरिपाल त्यागी

कला - सयोजना :
चाँद चौधरी

NIRALA
RACHANAVALI
Collected Works of
Suryakant Tripathi 'Nirala'

बाजी कहूँ बैरन, विसभरी सवत बाँसुरी,
अधर-मधुर ध्वनि टेक धुरा सों,
कूक कूक तड़पाय, सखी, वाकी गाँस फाँस,
जिय हूक।

छन आंगन, छन चढ़त अटा पर,
कर मिल मिल पछतात सेज पर,
बैरन सवत सताये, चाँद रह रह के तान नई फूँके।

निराला की हस्तलिपि में 'चोटी की पकड़' में उद्धृत एक गीत

आभार

निराला रचनावली प्रकाशित हो रही है, यह राजकमल के लिए गौरव की बात है। जिस प्रकार महाकवि की जीवन-यात्रा सघर्षपूर्ण रही, उसी प्रकार इस **रचनावली** के प्रकाशन मे तरह-तरह की कठिनाइयाँ और बाधाएँ सामने आयी। किन्तु बडे धैर्य के साथ हमने सभी कठिनाइयो को हल किया और इसके प्रकाशन में सभी निराला-प्रेमियो का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग हमे मिला।

रचनावली में भारती भण्डार इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, आराधना, सुकुल की बीवी, प्रबन्ध-प्रतिमा, निरुपमा और अपरा], निराला प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद, की चार पुस्तकें [प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़ और चतुरी चमार] तथा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [अर्चना, बेला, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, अणिमा, देवी, काले कारनामे और रवीन्द्र-कविता-कानन] सकलित की गयी है और इन संस्थाओं ने अपनी पुस्तकें **रचनावली** मे संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी है। यह स्वस्थ परम्परा हिन्दी-प्रकाशन के लिए स्वागत-योग्य है।

रचनावली मे जिन चित्रों का उपयोग किया गया है वे हमें सर्वश्री अमृतलाल नागर, ओंकार शरद, अजितकुमार, नेमिचन्द्र जैन, रामकृष्ण त्रिपाठी तथा इण्डियन आर्ट स्टूडियो देहरादून के श्री नवीन नौटियाल से प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त श्री बरुआ द्वारा सम्पादित 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से भी कई चित्र लिये गये है।

रचनावली के पत्रोंवाले खण्ड मे आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक 'निराला के पत्र' से महाकवि द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र सकलित हुए है। श्री सोहनलाल भार्गव, लखनऊ, ने स्वर्गीय श्री दुलारेलाल भार्गव के नाम लिखे गये पत्र और श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, इलाहाबाद, ने अपने नाम लिखे गये पत्र, जो 'निराला की साहित्य साधना' के तीसरे खण्ड मे संकलित है, **रचनावली** मे संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी।

उपरोक्त सभी संस्थाओं और महानुभावों तथा परोक्ष रूप से सहायक होनेवाले अन्य व्यक्तियो के हम आभारी है। उनके सहयोग से ही यह स्वप्न साकार हुआ है।

19 जनवरी, '83

शीला सन्धू

चौथा खण्ड

रचनावली के प्रस्तुत खण्ड में निराला के दूसरे चरण के उपन्यास और कहानियाँ संकलित की गयी है। जो उपन्यास संकलित किये गये है, वे हैं : **कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़** और **काले कारनामे**।

कुल्ली भाट के आरम्भिक तीन परिच्छेद 'माधुरी' (मासिक, लखनऊ) के मार्च, 1938 के अंक मे प्रकाशित हुए थे। इसी पत्रिका के अक्तूबर, 1938 के अंक में उसके बाद के भी दो परिच्छेद निकले। उसी वर्ष 'चकल्लस' (साप्ताहिक, लखनऊ) के मई के एक अंक में भी 'मेरी ससुराल-यात्रा' शीर्षक से उसका दूसरा परिच्छेद निकला था। पुस्तक-रूप मे **कुल्ली भाट** का प्रकाशन संवत् 1996 वि. (1939 ई.) में गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से हुआ। भूमिका के नीचे निराला ने 10 मई, 1939 ई. की तिथि दी है। इसके अलावा उन्होने आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को 30 मई, 1939 को एक पत्र में सूचित किया था कि 'मेरा **कुल्ली भाट** छप गया। चार-छ: दिन में निकल जायगा।' (**निराला के पत्र**) इन दोनों बातों से यह अनुमान होता है कि यह उपन्यास 1939 के जून के आरम्भ में छपकर बाहर आया।

बिल्लेसुर बकरिहा के दो आरम्भिक अंश 'रूपाभ' (मासिक, कालाकाँकर) के क्रमश: मार्च और अप्रैल, 1939 के अंकों मे प्रकाशित हुए थे। यह पुस्तकाकार 1942 ई. मे युग-मन्दिर, उन्नाव से निकला। भूमिका के नीचे निराला ने 25 दिसम्बर, 1941 की जो तिथि दी है, उससे ऐसा लगता है कि यह उपन्यास 1942 ई. के आरम्भ में ही निकल गया होगा। 23 जून, 1942 को निराला ने कर्वी से श्री केदारनाथ अग्रवाल को यह सूचना दी कि '**बिल्लेसुर बकरिहा** निकल गया है। मेरे पास 5 प्रतियाँ यहाँ भेजी गयी थी। आपको एक देना चाहता हूँ।' [**निराला की साहित्य-साधना** (3)] इससे उक्त प्रतीति सही मालूम पडती है।

चोटी की पकड़ नामक उपन्यास 1946 ई. में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। निराला के पत्रों से पता चलता है कि इसे उन्होने 1943 ई. के अन्त तक पूरा कर लिया था। 1944 ई. के आरम्भ मे ही यह छपने के लिए प्रेस गया, लेकिन यह निकला जाकर 1946 ई. के मार्च मे। 27 मार्च, 1946 को निराला शास्त्रीजी को लिखते हैं : 'पकड़ भी निकल गयी। 3/4 दिन मे भेजेंगे।' (**निराला के पत्र**)

काले कारनामे का प्रकाशन-काल विजयादशमी, संवत् 2007 वि. (20 अक्तूबर, 1950) है। इसका प्रथम संस्करण कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग से निकला था। यह उपन्यास निराला ने **चोटी की पकड़** के बाद लिखा। 23 अगस्त, 1945 को वे पं. रामकृष्ण त्रिपाठी को सूचना देते हैं कि 'काले कारनामे एक उपन्यास लिख रहे हैं।' [साहित्य-साधना (3)] फिर वे 18-19 नवम्बर, 1945 को डा. रामविलास शर्मा को बतलाते हैं कि 'काले कारनामे उपन्यास आधा पूरा हुआ।' (उपर्युक्त) अनुमानतः यह उपन्यास उन्होंने 1945 ई. के नवम्बर-दिसम्बर तक ही लिखा, क्योंकि 28 दिसम्बर, 1945 को तो वे शर्माजी को यह लिखते हैं कि 'चोटी की पकड़ और काले कारनामे दो उपन्यास छप रहे हैं। जनवरी के आखीर तक निकल जायेंगे, अलग-अलग प्रकाशनों से।' (निराला के पत्र) स्पष्टतः **काले कारनामे** के प्रकाशन में **चोटी की पकड़** से भी ज्यादा विलम्ब हुआ, करीब पाँच वर्षों का। इस उपन्यास के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यह निराला का अधूरा उपन्यास है। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है: 'निरालाजी की अस्वस्थता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कि कहीं निरालाजी की यह नवीन कृति अन्धकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कर्तव्य समझते हैं।' प्रथम संस्करण में परिच्छेदों के शीर्षक इस तरह रखे गये थे—'पहिली नजर,' 'दूसरी नजर' आदि।

चमेली और **इन्दुलेखा** निराला के बिल्कुल अधूरे उपन्यास हैं। इनके जो अंश लिखे गये थे, वे क्रमशः 'रूपाभ' और 'ज्योत्स्ना' में प्रकाशित हुए थे। जैसा कि ज्ञप्ति में सूचित किया जा चुका है रचनावली के इस खण्ड में इन्हें भी संकलित कर लिया गया है, उपर्युक्त उपन्यासों के बाद।

निराला ने शास्त्रीजी को 28 अगस्त, 1943 को एक पत्र में लिखा था: 'उपन्यास (**चोटी की पकड़**) पूरा कर रहा हूँ। सीधी भाषा में है। अभी तक अच्छा चला, आगे की नहीं मालूम। उतर जायगा। विकेगा अच्छा। घटना-प्रधान है।' (निराला के पत्र) इसका मतलब यह है कि उपन्यास-लेखन में निराला व्यावसायिक दबाव महसूस करते थे और जान-बूझकर प्रचलित रुचि से समझौता करते हुए अपने उपन्यासों को घटना-प्रधान बनाते थे। व्यावसायिक दबाव से मुक्त उनके उपन्यास हैं: **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा**। इन लघु उपन्यासों में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में दिखलायी पड़नेवाले कल्पना और यथार्थ के अन्तर्विरोध को हल कर वे यथार्थ की भूमि पर आ गये हैं और उस पर अपनी विलक्षण सृजनशीलता का परिचय दिया है। निराला के मित्र श्री परमानन्द शर्मा ने **महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रन्थ** में निराला के संस्मरण लिखते हुए एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है: 'कथा-साहित्य और उपन्यास-कला पर बातचीत आरम्भ हो गयी। निरालाजी ने **अप्सरा** के सम्बन्ध में कहा, अभी मैंने केवल बीस परसेंट 'निराला' रखा है, तब यह दशा है कि साहित्य के बड़े-बड़े सेठ औंधे होने लगे। इसमें अस्सी परसेंट सरासर 'बाजार' है। यदि सौ-परसेंट निराला रख दें, तो शत-कोटि कैंडिल पावर से नहीं ज्ञात कितना अधिक प्रकाश

फैल जाय और देखनेवालों की आँखें चौंधिया जायँ। और न हो, तो हिन्दीवाले लाठी लेकर निराला को मार ही डालें।' (कलकत्ता में श्री निरालाजी, पृ. 141) निराला के ही शब्द लेकर कहें तो उन्होंने **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** में 'सेंट-परसेंट निराला' रखा है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इन उपन्यासों मे उन्होंने प्रचलित रुचि से किसी तरह का समझौता नही किया और ये शुद्ध यथार्थवादी उपन्यास हैं, इनमें कोई कल्पनाप्रसूत चमत्कार नही हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यही दोनों उपन्यास हिन्दी उपन्यास को निराला की देन है। **कुल्ली भाट** एक संस्मरणात्मक उपन्यास है, जिसमे कुल्ली भी हैं और निराला भी। दोनों के प्रसंग एक-दूसरे से जुड़े हैं। लेखक कही वहकता नही, और वह बड़े कौशल से अपने कथा-नायक के चरित्र को उद्घाटित करता हुआ आगे बढ़ता है। चरित्र भी कैसा? कुल्ली एक बिलकुल मामूली चरित्र है, जो आरम्भ में एक एक्का चलवाता है और यौन विकृति का शिकार है। धीरे-धीरे वह स्वाधीनता-आन्दोलन मे सम्मिलित होता है और कांग्रेस का कार्यकर्ता बन जाता है। इस क्रम मे उसके चरित्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है, वह कुन्दन की तरह निखर उठता है। निराला ने बड़ी खूबी से इस उपन्यास मे यह दिखलाया है कि चरित्र का निर्माण जनान्दोलनों मे होता है। जनान्दोलन मनुष्य के चरित्र को उसकी कमजोरियों और विकृतियों से मुक्त कर उसे अत्यन्त उदात्त स्तर पर पहुँचा देते हैं। **बिल्लेसुर बकरिहा** संस्मरणात्मक नहीं, रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। इसमे निराला ने अपने को अलग रखा है और बिल्लेसुर के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो जीवित रहने के लिए अथक संघर्ष करता है और अन्ततः विजयी होता है। बिल्लेसुर एक मामूली किसान है। निराला ने ये दोनों चरित्र अवध के कस्बाई और ग्रामीण इलाकों से लिये है और उनके परिवेश के साथ उनके चरित्र-चित्रण मे वैसी कलात्मकता का प्रदर्शन किया हैं, जैसी कलात्मकता संसार के महान् यथार्थवादी कथाकारो की कृतियों मे ही देखने को मिलती है। **अलका** और **निरुपमा** में ग्रामीण जीवन के चित्रण मे निराला की भाषा का जो नया रूप प्रकट हुआ था, वह यहाँ पूरे निखार पर है।

जैसा कि निराला ने **चोटी की पकड़** की भूमिका में लिखा है, वे स्वदेशी आन्दोलन को विषय बनाकर चार खण्डो मे उपन्यास लिखना चाहते थे। उनकी वह इच्छा पूरी नही हुई और उक्त उपन्यास के बाकी तीन खण्ड लिखे नही गये। इस खण्ड का कथा-सूत्र बहुत उलझा हुआ है और स्वदेशी-आन्दोलन की कथा को इसमें बहुत कम स्थान मिला है। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि यह उपन्यास हमे स्वदेशी आन्दोलन के उस दौर की सूचना देता है, जिसमें उसके समर्थक कुछ सामन्त और राजा भी होने लगे थे। **काले कारनामे** में गाँव के तिकड़म, जमींदारों के आपसी झगड़े, पुलिस-थाना आदि का चित्रण है। इससे यह तो पता चलता है कि निराला का ग्रामीण-जीवन का अनुभव बहुत पुख्ता था, लेकिन यह उपन्यास कोई उल्लेखनीय रचना नही बन पाता। यदि निराला **चमेली** नामक अपना उपन्यास पूरा कर पाते, तो वह अवश्य **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होता।

कहानी-संग्रह निराला के तीन हैं : लिली, सखी और सुकुल की बीवी। चतुरी चमार और देवी नये अथवा स्वतन्त्र संग्रह नहीं हैं। चतुरी चमार, सखी का ही नया नाम है और देवी मे विभिन्न संग्रहो की चुनी हुई कहानियाँ संकलित है। उसमे एक कहानी (जान की !) ऐसी भी है, जो पहले किसी संग्रह में संकलित नहीं हुई थी।

लिली 1934 ई. मे गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशित हुई थी। मार्च, 1934 की 'सुधा' मे 'नये फूल' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत यह सूचना दी गयी है कि उक्त पुस्तक का प्रकाशन फरवरी, 1934 मे हुआ। सखी अक्तूबर, 1935 मे सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ में निकली। सुकुल की बीवी 1941 ई. में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। 16 सितम्बर, 1941 को निराला एक पत्र मे श्री कुँवर सुरेश सिंह को लिखते हैं कि 'मेरी सुकुल की बीवी छप गयी है।' [साहित्य-साधना (3)] इससे यह पता चलता है कि यह कहानी-संग्रह 1941 के सितम्बर-अक्तूबर मे बाहर आया।

सखी ही चतुरी चमार के नाम से 1945 ई. मे किताब महल, इलाहाबाद से निकली। इसमे केवल इतना परिवर्तन किया गया था कि सखी की भूमिका के स्थान पर एक नयी भूमिका जोड दी गयी थी और 'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी को शुरू मे रख दिया गया था। एक परिवर्तन यह भी किया गया था कि सखी का समर्पण हटा दिया गया। देवी का प्रकाशन-काल 1948 ई. का उत्तरार्ध है। पुस्तक के प्रथम संस्करण मे प्रकाशन-काल का उल्लेख नहीं है। भूमिका के नीचे निराला ने 12 अगस्त, 1948 की तिथि दी है। उसी से ऐसा अनुमान होता है। इस पुस्तक मे निराला की ये कहानियाँ संकलित हैं—1. 'देवी', 2. 'भक्त और भगवान्,' 3. 'चतुरी चमार,' 4. 'हिरनी', 5. 'सुकुल की बीवी', 6. 'अर्थ', 7. 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 8. 'क्या देखा', 9. 'प्रेमिका-परिचय' और 10. 'जान की !'। जैसा कि कहा जा चुका है, 'जान की !' के अलावा बाकी सारी कहानियाँ निराला के पूर्वप्रकाशित संग्रहो से ली हुई है।

सुकुल की बीवी की भूमिका में निराला ने लिखा है कि उनकी पहली कहानी है—'क्या देखा'। यह 'मतवाला' के 1923 ई. के 20 अक्तूबर, 27 अक्तूबर, 1 दिसम्बर, 8 दिसम्बर और 15 दिसम्बर के अंकों मे पाँच किस्तों में निकली थी। लेखक की जगह एक छद्मनाम दिया गया था—'जनाबआली'। हमें इस कहानी से पहले प्रकाशित निराला की एक कहानी मिली है—'प्रेमपूर्ण तरंग'। यह कहानी 'मारवाड़ी सुधार' (मासिक, कलकत्ता) के वैशाख, संवत् 1980 वि. (मई, 1923) के अंक में निकली थी। ऐसी स्थिति मे यह कहना कठिन है कि निराला की पहली कहानी कौन-सी है। 'प्रेमपूर्ण तरंग', सम्भव है, उन्हें पसन्द न आयी हो, इसलिए उसे उन्होंने अपनी पहली कहानी होने का गौरव न प्रदान किया हो। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने इस कहानी को फिर से लिखा और उसे 'प्रेमिका-परिचय' शीर्षक दिया। यह कहानी 'सुधा' के जुलाई, 1933 के अंक मे

प्रकाशित और **लिली** नामक उनके पहले कहानी-संग्रह में संकलित हुई। **रचनावली** मे इन दोनों कहानियों को संकलित कर लिया गया है, जिससे निराला की कहानी की रचना-प्रक्रिया को भी ठीक से समझा जा सके। 'देवर का इन्द्रजाल', 'दो दाने' और 'विद्या' शीर्षक निराला की कहानियाँ अभी तक उनके किसी संग्रह में संकलित नही हुई थीं। **रचनावली** में इन्हें भी संकलित कर लिया गया है।

निराला ने कुल चौबीस कहानियाँ लिखी, जिन्हें यहाँ रचना-क्रम/प्रकाशन-क्रम से प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में कहानी-संग्रहों की भूमिकाएँ और समर्पण भी दे दिये गये हैं।

जिस तरह निराला के पहले चरण के उपन्यासों मे कल्पना और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोध देखने को मिलता है, उसी तरह उनकी कहानियों में भी। दोनों मे फर्क यह है कि उपन्यासो की तुलना में कहानियों में यह अन्तर्विरोध ज्यादा तीखा है। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण उनकी 'श्यामा' शीर्षक कहानी है। इसमें पहली बार किसान प्रकट होता है, अपने सम्पूर्ण उत्पीड़न के साथ। निराला सामन्त-विरोधी प्रखर जनवादी चेतना के लेखक थे। उनमें कल्पना और यथार्थ का अन्तर्विरोध बढ़ता जाता है और बहुत जल्दी यथार्थ का परिपक्व बोध उन्हें मोह से मोहभंग की अवस्था में पहुँचा देता है। उनके मोहभंग की अत्यन्त सशक्त कहानी है—'देवी'। 'देवी' के आगे-पीछे निराला 'हिरनी', 'अर्थ', 'चतुरी चमार' और 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जैसी कहानियाँ लिखते हैं, जो हिन्दी कहानी-साहित्य मे बेमिसाल हैं। स्मरणीय है कि ये सारी कहानियाँ **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** की रचना से पहले लिखी गयी, 1933-34 ई. में। विषय-वस्तु के अनुरूप ही इन कहानियों मे निराला ने कहानी का नया रूप आविष्कृत किया है। वे कई बार संस्मरणात्मक ढंग से अपनी बात कहते है और अन्त में अपनी कूँची के एक स्पर्श से संस्मरण को कहानी मे बदल देते है। इन कहानियों में उनका गद्य अनावश्यक साज-सम्भार से मुक्त होकर नयी दीप्ति के साथ सामने आता है। उसमे जितना कसाव है, उतना ही पैनापन भी। निराला के गद्य की अन्यतम विशेषता है हास्य। उसमें हास्य के कल-कल के नीचे प्रायः करुणा और आक्रोश की धारा बहती रहती है।

रानीघाट लेन, महेन्द्रू,
पटना-800006
21 जून, 1982

नन्दकिशोर नवल

अनुक्रम

परिशिष्ट

कुल्ली भाट

इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य में नहीं मिला, यद्यपि कुल्ली के गुण बहुतों में हैं, पर गुण के प्रकाश से सब घबराये। इसलिए समर्पण स्थगित रखता हूँ।

—'निराला'

पं. पथवारीदीनजी भट्ट (कुल्ली भाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका मे है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। रूढिवादियों के लिए यह दोष है, पर साहित्यिकों के लिए, विशेषता मिलने पर, गुण होगा। मैं केवल गुण-ग्राहकों का भक्त हूँ।

कुल्ली सबसे पहले मनुष्य थे, ऐसे मनुष्य, जिनका मनुष्य की दृष्टि में बराबर आदर रहेगा। सरस्वती-सम्पादक पं. देवीदत्तजी शुक्ल ने, पूछने पर, कहा, कुल्ली मेरे बड़े भाई के मित्र थे। अस्तु, जहाँ शुक्लजी की मित्रता का उल्लेख है, वहाँ पाठक समझने की कृपा करें कि कुल्ली शुक्लजी के मित्र नही, बड़े भाई-जैसे थे।

पुस्तिका मे हास्य-रस की प्रधानता है, इसलिए कोई नाराज होकर अपनी कमजोरी न साबित करें, उनसे प्रार्थना है।

लखनऊ
10-5-39

—'निराला'

एक

वहुत दिनो की इच्छा—एक जीवन-चरित लिखूँ, अभी तक पूरी नही हुई; चरितनायक नही मिल रहा था, ठीक जिसके चरित में नायकत्व प्रधान हो। बहुत आगे-पीछे, दायें-वायें देखा। कितने जीवन-चरित पढ़े, सवमे जीवन से चरित ज्यादा; भारत के कई महापुरुषों के पढ़े—स्वहस्त-लिखित; भारत पराधीन है; चरित वोलते है। वहुत दिनो की समझ—सत्य कमजोरी है, शहजोरी उसकी प्रतिक्रिया; अगर चरित्र में अँधेरा छिपा, प्रकाश आँखों मे चकाचौंध पैदा करता है, जो किसी तरह भी देखना नही—जड़ पकड़ गयी।

याद आया, कही पढ़ा था—वम्वई के सिनेमा-स्टारों की सर्र से दीवार चढ़ने की करामात देखकर—रँगे कृत्य मे आये—सत्य से अज्ञ—वाहर के किसी प्रेमी कार्यकर्ता ने कमर तोड़ ली है। बड़ी खुशी हुई। साफ देखा—कलम हाथ लेते ही कितने कवियो की आँख की परी विश्व-साहित्य के सातवें आसमान पर पर मारती है, कितने कर्मवीर दलिया खाते हुए, कमर कमान किये, जान पर खेल रहे है, कितने आधुनिक वेधडक समाजवाद के नाम से पूरे उत्तानपाद।

इसी समय तुलसीदास की याद आयी, जिन्होने लिखा है—

"जो अपने अवगुन सव कहऊँ, वाढ़ै कथा, पार ना लहऊँ;
ताते मैं अति अलप वखाने, थोरे महँ जानिहै सयाने।"

सोचा, तुलसीदास ने सिर्फ सयानों की आँख फैलायी है, यानी महापुरुषों की नही। वह स्वयं भी महापुरुप नहीं थे, आधुनिक विद्वानों का मत है। कहते है, जवानों के श्रीगणेश से, यानी अच्छी तरह होश आने से, उम्र के सौ साल वाद—अच्छी तरह होश जाने तक उनमें पुरुषत्व ही प्रधान रहा।

मुझसे कवि भगवतीचरण कहते थे—कविवर रामनरेश त्रिपाठी जानते है, वहुत आधुनिक रिसर्च है—तुलसीदासजी गर्मी से मरे थे; यह पता नहीं चला—गर्मी रत्नावली से मिली—कहाँ से; वाहुक की रचना के वक्त वाँह का दर्द गर्मी के कारण हुआ। कुछ हो, मैं ऐतिहासिक नही, समझा कि तुलसीदासजी पुरुष थे, महापुरुष नहीं; महापुरुष अकवर था—दीन-ए-इलाही चलाया, हर कौम की वेटी व्याही, चेले वनाये।

अपने राम के लकड़दादा के लकड़दादा के लकड़दादा राजा वीरवल त्रिपाठी अकवर के चेले थे; अपनी बेटी खाले के वाजपेयियों के घर व्याही; तव से

वाजपेयी-वंश मे भी महापुरुषत्व का असर है, यों ट्रिपल लकडदादा का प्रभाव कुल कनवजिया कुलीनो पर पडा। खैर, 'महापुरुप' 'पुरुष' का बढा हुआ रँगा हिस्सा लेकर है, उसी तरह उसके 'चरित' मे एक 'सत्' और जुड गया है। साहित्यिक की निगाह में यह साबुन का उपयोगितावाद है, अर्थात् सिर्फ साफ होता है, वह भी कपडा; रास्ता, घर या दिमाग नही। अगर 'वाद' लें, जैसे समाजवाद पैर बढ़ाये है, तो वह भी अकेला साहित्य नहीं ठहरता। साहित्य पुरुप का एक रोयाँ सिद्ध होता है।

मैं तलाश मे था कि ऐसा जीवन मिले, जिससे पाठक चरितार्थ हों, इसी समय कुल्ली भाट मरे।

दो

जीवन-चरित जैसे आदमियों के बने और बिगड़े, कुल्ली भाट ऐसे आदमी न थे। उनके जीवन का महत्त्व समझे, ऐसा अब तक एक ही पुरुप संसार में आया है, पर दुर्भाग्य से अब वह संसार मे रहा नही—गोर्की। पर गोर्की में भी एक कमजोरी थी; वह जीवन की मुद्रा को जितना देखता था, खास जीवन को नहीं। वादी-विवादी था। हिन्दी मे कोई है हिन्दी-भाषी ? किसी महापुरुष की जबान से कहा जा सकता है—'नहीं'।

मैं हिन्दी के पाठको को भरसक चरितार्थ करूँगा, पर कुल्ली भाट के भूगोल मे केवल जिला रायबरेली था स्थल, बाकी जल। एक बार लाचारी उम्र अयोध्या तक गये, जैसे किसी टापू मे यान, रेल। यों जिन्दगी-भर अपने वतन डलमऊ में रहे। लेकिन, जिन्दगी के बाद—जितने जानता हूँ, नाम-मात्र से लेकर पूरे परिचय तक— उनसे नही छूटे। गडही के किनारे कबीर को महासागर कैसे दिखा, मैं समझा।

बड़ा आदमी कुल्ली को कोई नही मिला, जिसे मित्र समझकर गर्दन उठाते, एक 'सरस्वती'-सम्पादक प. देवीदत्त शुक्ल को छोडकर; लेकिन शुक्लजी का बडप्पन जब उन्हें मालूम हुआ, तब मरने के छ महीने रह गये थे, मुझी से सुना था।

सुनकर गर्दन उठायी थी, साँस भरी थी, और कहा था, "वह मेरे लँगोटिया यार है। हम मदरसे मे साथ पढे है।"

मुझे हँसता देख फिर छोटे पड़े, पूछा, "देवीदत्त बडे आदमी है ?"

मैंने कहा "आपको मदरसे की याद आ रही है। जिस पत्रिका के आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी सम्पादक थे, उसके अब शुक्लजी हैं।"

न-जाने क्यों, कुल्ली को फिर भी विश्वास न हुआ। मैं सोच रहा था, या तो

कुल्ली मदरसे में शुक्लजी से तगड़े पड़ते थे; या—याद आया, शुक्लजी को बैसवाड़े के कवि कण्ठाग्र है कुल्ली की दोस्ती के कारण। कुल्ली गुरु-स्थान पर है। मुझे भी उन्होने कुली (एक दाँव) पर चढ़ाया था, नरहरि, हरिनाथ, ठाकुर, भुवन आदि—मालूम नहीं—कितने कवि गिनाये थे अपने वंश के। मुमकिन है, इसलिए भी कि धाक जमाने में मुझे कामयाबी न होगी, यह मैं बीस साल से जानता हूँ। अलावा मेरी दृष्टि का अप्रतिष्ठा-दोप कर दें। पर कुल्ली को मालूम न था कि मै कविता तो लिखता हूँ, पर कवि दूसरे को मानता हूँ। कुल्ली की शुक्लजी के प्रति हुई मनोदशा देखकर मैंने कहा, "जब आप मुझे इतना···तब शुक्लजी तो···मैं तो उनके चरणों तक ही पहुँचता हूँ।"

सुनकर कुल्ली बहुत खुश हुए, जैसे स्वयं शुक्लजी हो, बड़प्पन आ गया, स्नेह की दृष्टि से देखते हुए बोले, "हाँ, करते की विद्या है, जब आप गौने के साल आये थे, क्या थे ?" कहकर कुछ झेंपे। झेंपने के साथ उनके मनोभाव कुल हाल बेतार के तार से मुझे समझा गये। पच्चीस साल पहले की घटना, जो उस समय समझ मे न आयी थी, पल-मात्र में आ गयी। सारे चित्र घूम गये, और उनका रहस्य समझा। वही कुल्ली से पहली मुलाकात है, वही से श्रीगणेश करता हूँ।

तीन

मैंने सोलहवाँ साल पार किया, पूरा जीवन जी. पी. श्रीवास्तव के कथनानुसार। जी. पी. श्रीवास्तव ही नही, जितने गाँव-घर-टोला-पड़ोस के थे, यही कहते थे।

याद है, एक दिन पं. रामगुलाम ने पिताजी से कहा था, "लड़के का कण्ठ फूट आया, बगलें निकल आयी, मसें भीगने लगी, अब बबुआ नही है, गौना कर दो; हो भी तो हाथी गया है, लड़ता है, सुनते हैं।"

"हाँ।" कहकर पिताजी चिन्ता-मग्न हो गये थे।

इसी तरह, जब गौना लेने गये, श्रीमतीजी तेरहवाँ पार कर चुकी थी—कुछ दिन हुए थे, उनकी किसी नानी ने कहा था उनकी अम्मा से—मैं वही था—हम दोनों की गाँठ जोड़कर कौन एक पूजा की जा रही थी—मदनदेव की अवश्य नही थी। उन्होने कहा था, "दामाद जवान, बिटिया जवान; परदेश ले जाते है, तो ले जाने दो।"

गौना हुआ। बडी विपत। गाँव मे प्लेग। लोग बागों में पड़े। हमारा एक बाग गाँव के करीब है। प्लेग का अड्डा होता है—लोग वहाँ झोपड़े डालते हैं। हम लोग बंगाल से आये, उसी दिन लोग निकलने लगे। आखिर एक महुए के नीचे दो झोपड़े डलवाकर पिताजी मुझे और कुछ भैयाचार-नातेदारो को लेकर गौना लेने चले।

जेठ के दिन। इससे पहले यू. पी. की लू नहीं खायी थी। खैर, गौना हुआ, और एक झोपडे मे एक रात हम लोग कैद किये गये। जो बातें नही सोची थी, श्रीमतीजी के स्पर्श-मात्र से वे मस्तिष्क मे आने लगी। प्रौढ़ता के अन्त तक उनसे अधिक प्रौढ बातें नही आती, मैं नवयुवकों को विश्वास दिलाता हूँ। खैर, हम पूरे जवान हैं, हम दोनों समझे।

पाँचवें दिन ससुरजी विदा कराने आये। ससुरजी इसलिए भी आये कि गाँव का पानी नही पियेंगे, शाम तक विदा करा ले जायेंगे। पिताजी को बहुत बुरा लगा। वह बगाल से उतना रुपया खर्च करके आये थे। पाँच दिन के लिए नहीं। ससुरजी सुबह की गाडी से आये थे। मैं रात को जगा, सो रहा था। बातचीत नही सुनी; बाद को गाँव के एक भैया से सुनी। मेरी जब आँख खुली, तब ससुरजी अपनी लडकी को विदा कराके ले गये थे। सुना, प्लेग के भय से वह लड़की को विदा कराने आये थे।

पिताजी ने इस पर बहुत फटकारा, कहा, "यह भय हमारे लड़के के लिए आपको नही हुआ? अगर ऐसे आपके मनोभाव हैं, तो हम दूसरा विवाह कर लेंगे।"

पिताजी के तर्क-पूर्ण कथन का, मुमकिन ससुरजी पर प्रभाव पड़ता, लेकिन ससुरजी थे बहरे। वह अपनी कहते थे, और देख रहे थे कि विदाई की तैयारी हो रही है या नही। उधर ससुरजी की पुत्री अपने पिता और ससुर के कथोपकथन को एकनिष्ठ होकर सुन रही थी। पिताजी पुत्र की दूसरी शादी कर लेंगे, प्रभाव अनुमेय है। झल्लाहट मे पिताजी ने विदा कर दिया, और स्टेशन पहुँचा देने को बहल बुला दी।

दूसरे दिन नाई आया सासुजी की लम्बी चिट्ठी लेकर। 'क्षमा' शब्द का अतिशय प्रयोग। ससुरजी कम सुनते हैं, आज्ञा-पालन मे त्रुटि हुई। बुलाया। 'गवहीं' पहले नही ली, अब ले लें। बड़ी दीनता! यह भी लिखा था, "मेरी दो दाँत की लड़की, उसके सामने दूसरे विवाह की बात!"

पिताजी पिघले, मुझसे बोले, "ससुरार जाव लेकिन यहाँ से तिगुना खाना।"

मैंने कहा, "घी और बादाम तिगुने करा लूँगा। बेदाना तो वहाँ मिलते नहीं, अन्यथा शरबत मे तीन रुपये लग जाते रोज।"

पिताजी ने कहा, "रूह, रूह की मालिश करना रोज, होश दुरुस्त हो जायेंगे।"

शाम चार बजेवाली गाडी से चलने की तैयारी हो गयी। दुपहर ढलते नौकर बिस्तर-बॉक्स लेकर भेज दिया गया। मैं पिताजी के उपदेश धारण कर ढाई बजे के करीब रवाना हुआ। ठाट बंगाली; धोती, शर्ट, जूता, छाता। आँख मे भी बगाल का पानी, बाकी देश जंगल या रेगिस्तान दिखते थे।

बंगालियो की तरह मैं भी मानता था, आर्य बगाल पहुँचकर सही मानी मे सभ्य हुए, विशेषतः अँगरेजो के आने के बाद से। महुए की छाँह और तर किये झोपडे के अन्दर यू. पी. की गर्मी का हिसाब न लगता था। बाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोका आया कि एक साथ कुण्डलिनी जैसे जग गयी, जैसे वर पुत्र

पर पड़ी सरस्वती की कृपा-दृष्टि की तारीफ में रवि बाबू ने लिखा है—

"एके बारे सकल पर्दे घुचिए दाओ तारे।"

(एक साथ ही उसके कुल पर्दे हटा देती हो।)

वह प्रकाश दिखा कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है; रवि बाबू को आराम-कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड़ पर, मुझे गलियारे में। लू विरोध करती हुई कह रही थी, 'अब ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।'

फिर भी पैर पीछे नही पड़े; बंगाल की वीरता और प्रेमाशक्ति बैंक कर रही थी। पैर उठाकर सामने रखते ही, लीक के खड्ढ में डेढ़ हाथ खाले गया, और मैं 'गुडीगुडन्ता' के डण्डे की तरह गुडा; लेकिन स्पोर्टस् मैन था, झड़बेर की झाड़ी तक पहुँचते-पहुँचते अड गया। देह गर्दबर्द हो गयी। मुँह मे क्रीम लग गया था, घाव पर जैसे आयडोफार्म पड़ा।

लेकिन धन्यवाद है सूरदास को, मुझे लज्जित होने से बचा लिया: कलकत्ते से 'बिल्वमंगल' नाटक देखकर आया था--दूसरी जीवनियाँ भी पढी थी, लाश पकड़कर नदी पार करने और साँप की पूँछ पकडकर मंजिल चढ़ने के मुकाबले यह अति तुच्छ था, फिर वहाँ वेश्या, यहाँ धर्मपत्नी। आगे बढ़ा। एक झोंका और आया, मालूम हुआ, इस देश मे धूप से हवा मे गर्मी ज्यादा है। फिर भी हवा के प्रतिकूल चलना ही होगा। कालिदास को पढ़ रहा था, याद आया—"अजयदेकरथेन स मोदिनीम"; कडाई से पैर आगे बढ़ाया, ठकाका जूते ने काँकर से धोके से ठोकर ली, और मुँह फैला दिया। सोचा, बॉक्स में एक जोड़ा और है नया। तसल्ली हुई, फिर आगे बढ़ा। एक झोंका और आया। अबके छाता उलटकर दूसरी तरफ तना। हवा के रुख पर करके, सुधारकर तोड़ लिया।

आगे लोन-नदी आयी, जो आठ महीने सूखी रहती है, और जिसके किनारे संसार के आधे बेर-बबूल है; शायद इसी कारण इस प्रान्त का नाम कभी बनौधा था—"बारह कुँवर बनौधे केर।" स्वतन्त्रता-प्रेम भी अधिक था; क्योंकि छोटी-सी जगह मे बारह कुँवर थे। धोती कोछेदार बंगाली पहनी थी। एक जगह उड़ी, और, बेर की बाँहो से आलिंगन किया, न अब छोड़े, न तब—'गुलो से खार बेहतर है, जो दामन थाम लेते हैं' याद तो आया, पर बड़ा गुस्सा लगा। सैकड़ो काँटे चुभे हुए। धोती छप्पनछुरी हो रही थी। छुड़ाते नही बनता था। देर हो रही थी। आखिर मुट्ठी से कोछे को पकड़कर खीचा। धोती मे सहस्र-धार गंगा बन गयी, उधर बेर सहस्र विजय-ध्वज।

धोती कीमती थी;—शान्तिपुरी, खास ससुराल के लिए ली गयी थी, जैसे प्रसिद्ध लेखक खास पत्र के लिए लेख लिखते हैं। सान्त्वना हुई कि कई और है। नदी-गर्भ से ऊपर आया। कुछ दूर पर बेहटा-श्मशान मिला। दो ही मील पर देखा दुर्दशा हो गयी है, जैसे धूल का समन्दर नहाकर निकला हूँ। स्टेशन मील-भर रह गया था, गाड़ी का अर्राटा सुन पड़ा। अपने-आप पैर दौडने लगे। मन ने बहुत कहा, बड़ी अभद्रता है। लेकिन जैसे पैर के भी जबान लग गयी हो, बोले—"अभी भद्रता कुछ बाकी भी रह गयी है? घर लौटकर जाओगे, जिन्दगी-भर गाँववाले हँसेंगे—बाबू बनकर ससुराल चले थे। हजार-हजार सपाटे का उठान तो देखो।"

कहने पैर बेतहाशा उठ रहे थे। छाता बगल में। हाथ में जूते। सामने मील-भर का ऊसर। चार बजे की चटकती धूप। स्टेशन दिख पड़ने लगा। गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। दौड़ तेज हुई। लम्बा मैदान। गाड़ी पानी ले रही है। अभी छ फर्लांग और है। भूभुल में पैर जले जा रहे हैं, लेकिन रफ्तार धीमी नहीं, बढ़ायी भी नहीं जा सकती, कलेजा मुँह को आता हुआ। एंजिन पानी ले चुका, लौट रहा है, अभी चार फर्लांग है, और तेज हो नहीं सकते। बदन जलना। जान पड़ता है, गिर जाऊँगा।

इसी समय नौकर चन्द्रिकाप्रसाद ठोढ़ी उठाकर रास्ते की तरफ देखता हुआ देख पड़ा। चन्द्रिका के दूध के दाँत उखड़ने के बाद सामने के अगवारी नहीं जमे, इसलिए लोग 'निपुला' कहते हैं। हैरान होकर असम्बद्ध होंठों से—ठोढ़ी उठाये, एकदृष्टि—प्रतीक्षा करते देखकर मुझे नयी जान मिली, देखकर चन्द्रिका भी सजीव हुआ। टिकट कटा लिये थे, गनीमत हुई। मैं पहुँचा। चन्द्रिका हँसा, फिर सामान चढ़ाने लगा। स्टेशन में एक प्लेटफार्म है, उस तरफ उससे गाड़ी लगी हुई, मुझे न आता देख चन्द्रिका उतरकर इधर चला आया था। इधर से ही चढ़े। भीतर जाने के साथ इतनी गर्मी मालूम दी कि जान पर आ बनी। चन्द्रिका न होता, तो न जाने क्या होता। वह अँगोछे से हवा करने लगा। कुछ देर में होश दुरुस्त हुए। गाड़ी चली। ठण्डे होकर कपड़े बदले।

पाँचवाँ स्टेशन डलमऊ है। उतरा, तब सूरज छिप चुका था। लेकिन इतना उजाला कि अच्छी तरह मुँह दिखे। चन्द्रिका ने सामान उठाया। चले। गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था बना-चुना, बिलकुल लखनऊ-ठाट, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फें तर, जैसे 'अमीनाबाद' से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली, सिर के दाहिने किनारे रखी। ऐंठी मूँछें। दाढ़ी चिकनी। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल दो साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाजा लगाना मुश्किल है—हिन्दू है या मुसलमान। साँवला रंग। मजे का डीलडौल। साधारण निगाह में तगड़ा और लम्बा भी।

टिकट देकर निकलते ही मुझसे पूछा, "कहाँ जाइयेगा ?"

मैंने कहा, "शेरअन्दाजपुर।"

"आइये, हमारा एक्का है," कहकर उसने एक्केवान को पुकारा, और गौर से घूरते हुए पूछा, "किनके यहाँ ?"

मैंने अपने ससुरजी का नाम लिया। उसे एक बार देखकर दोबारा नहीं देखा, कारण वह मेरा आदर्श नहीं था, मुझसे दो इंच छोटा था और बदन में भी हल्का।

मैं एक्केवाले के साथ एक्के पर बैठा। चन्द्रिका भी था। वह जवान कुछ देर तक पैसेंजर देखता रहा, फिर उसी एक्के पर आकर बैठा। चुपचाप बैठा देखता रहा। तब मैं नहीं समझ सका, अब जानता हूँ—वैसी शुभ दृष्टि सुन्दरी-से-सुन्दरी पर पड़ती है, जिसकी बाढ़ का पानी रत्ती-भर नहीं घटा।

चन्द्रिका बेवकूफ की तरह उसे, विश्वास की दृष्टि से मुझे रह-रहकर देख

लेता था। उस मनुष्य ने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया, केवल अपने भाव में था। मुझे बोलने की कोई आवश्यकता न थी। एक्का चला, कस्बे में आकर मेरे ससुरजी के दरवाजे खड़ा हुआ। वह आदमी चौराहे पर उतर गया था। उतरते एक्केवाले से कुछ कहा था, मैंने सुना नहीं।

जब मैं किराया देने लगा, एक्केवाले ने कहा, "नम्बरदार ने मना किया है।"

"हम किसी नम्बरदार को नहीं जानते, किराया लेना होगा, पहले कह दिया होता।"

एक्केवाले ने हाथ तो बढाया, लेकिन कहा, "भैया, उन्हें मालूम होगा, तो मेरी नौकरी न रहेगी।"

मैं समझ गया, पैसे जेब में रक्खेगा। अब ससुराल के लोग आ गये। मैं प्रणाम-नमस्कारादि के लिए तैयार हुआ।

चार

पैर छूकर मैं एक गलीचा-बिछे पलँग पर बैठा, देखा, सासुजी की पलकों पर चिन्ता की छाया है। मन-ही-मन कारण की तलाश करने लगा। इसी समय हृदय के भाव को शब्दों में प्रकट कर उन्होंने पूछा, "क्यों भैया, तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो?"

मैंने सोचा, कुल्ली अछूत है। कहा, "आजकल यह सब चला गया है।"

मैंने अपनी समझ से पूरी तरह उनकी शंका मिटा दी, पर सासुजी की निगाह में त्रिशंकु स्वर्ग से गिरे; मेरे लहराते हुए बंगाली बालों को बड़े संशय से देखने लगीं—लहरियों से पुलकित होने की जगह सिहर-सिहर उठने लगीं, जैसे उनकी कन्या के भाग्य और सुहाग के लिए धोखे की टट्टी हो। एकाएक मेरी कोंछीदार धोती पर उनकी निगाह गयी, तो जैसे शंका को सुगठित प्रमाण मिला। एक ही भाव में कुछ देर स्थिर रहकर उन्होंने लम्बी साँस छोड़ी—निष्कर्ष तक पहुँचने की सूचना। फिर धीरे-धीरे भीतर गयीं।

मैं बैठा हुआ, फाटक के भीतर, घर के बाहरवाले आँगन में लगा चिलबल का पेड़ देखता रहा। एकाएक खयाल गया, इसकी डाल पर सावन में झूला पड़ता होगा, उस पर बैठी हुई भरे आकाश के सजल बादलों को देख-देखकर जो सावन, मल्लार, कजली और बारहमासियाँ गाती हुई पेंगों में झूलती है, उसे मैं पहचानता हूँ, उसके कुल गीतों का इधर मैं ही लक्ष्य रहा हूँगा।

इसी समय भीतर से एक नवीना कण्ठ की खिलखिलाहट सुन पड़ी; यद्यपि मैंने यह पहले-ही-पहल सुनी थी, फिर भी पहचानते देर नहीं हुई—वह किसकी है। उसकी ध्वनि में बड़े गहरे-गहरे अर्थ थे—'तुम मेरे हो, तुम पर मेरा पूरा विश्वास

है, तुम्हें पाकर मैं और कुछ भी नहीं चाहती, दूसरे तुम्हें नहीं समझते, तो न समझें, मैं किसी को समझाना नहीं चाहती ।'

चन्द्रिका खुले असवाव पर बैठा आकाश की शोभा देख रहा था । तारे निकल आये थे। भावावेश मे उसने मुझसे पूछा, "अच्छा, वाबा, आसमान मे तारे ज्यादा हैं या दुनिया मे आदमी ?"

मैंने कहा, "तुझे क्या जान पडता है ?"

चन्द्रिका कुछ सोच-विचारकर हँसा । कहा, "दुनिया आसमान से छोटी थोड़े ही है ? कहाँ से कहाँ तक है ! आदमी ज्यादा होंगे ।"

इसी समय सासुजी शरवत लेकर आयी । उनका नौकर बाहर गया था । आया । सासुजी ने उससे पानी ले आने के लिए कहा । मैंने देखा, सासुजी का चेहरा प्रकाश को भी प्रसन्न कर रहा है । उनकी आत्मजा जैसे उनकी आत्मा मे प्रविष्ट हो क्षण-मात्र मे उनकी शंका निवृत्त कर चुकी है, परिष्कृत स्नेह के स्वर मे कहा, "बच्चा, शरवत पी लो ।"

मैंने शरवत पिया । सासुजी ने इस बार भी एक साँस छोड़ी, जो मुझे स्निग्ध करनेवाली थी । चन्द्रिका ने भी शरवत पिया ।

सासुजी प्रसन्न चित्त से पलंग के नीचे एक कम्वल बिछाकर बैठी, और मेरे पिताजी की वर्वरता की खुली भाषा मे आलोचना करने लगी । मेरी कई बार इच्छा हुई कि उत्तर मे सासुजी को वर्वर कहूँ, लेकिन शृंगार की जगह, ससुराल मे वीर-रस की अवतारणा अच्छी न होगी, सोचकर रह गया । सासुजी अन्त तक यह कहती वाज न आयी कि इनकी पुत्री की तरह सुन्दरी, पढ़ी-लिखी, सुशील और बुद्धिमती लडकी संसार मे दुर्लभ है; अगर पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया, तो दैव-दुर्योग के अवश्यम्भावी थपेडे खाते-खाते मेरे पाँचो भूत संसार के इसी पार रह जायेंगे ।

मैंने इसका भी जवाब नहीं दिया । फलतः सासुजी मुझे अत्यन्त समझदार समझी । कहा, "मैंने तुम्हारा ही मुँह देखकर विवाह किया है, तुम्हारे पिता की तोद देखकर नहीं ।"

मुझे इसका मतलब लगाते देर नहीं लगी कि पिताजी अगर मेरा दूसरा विवाह करने लगें, तो मैं दूसरी ससुराल मे अपना मुँह न दिखाऊँ । मेरे ऐसे ही स्वभाव से शायद प्रसन्न होकर सासुजी ने पूछा, "अच्छा, भैया, मेरी लड़की तुम्हें कैसी सुन्दरी लगती है ?"

मौखिक इम्तहान में मैं वरावर पहला स्थान पाता रहा हूँ । कहा, "मैंने आपकी लडकी को छुआ तो है, बातचीत भी की है, लेकिन अभी तक अच्छी तरह देखा नहीं; क्योंकि जब मेरे देखने का समय होता था, तब दिया गुल कर दिया जाता था । दूसरे दिन दियासलाई ले तो गया, जलाकर देखा भी, लेकिन सलाई के जलते ही आपकी लडकी ने मुँह फेर लिया, और झोपडे के अगल-वगलवाले लोग खाँसने लगे । फिर जलाकर देखने की हिम्मत न हुई ।"

सासुजी मुस्किरायी, और उठकर भीतर चली गयी ।

भोजन के पश्चात् मैंने देखा, जैसे कवि श्री सुमित्रानन्दनजी पन्त को राय-

वहादुर पं. शुकदेवविहारीजी मिश्र ने, वैसे मेरी सासुजी ने मुझे भी सौ में एक सौ एक नम्बर दिये हैं, यानी मेरे शयन-कक्ष में वड़ी मोटी वत्ती लगाकर दिया रख दिया है, ताकि उनकी पुत्री के अनन्य लावण्य को पूरी सार्थकता के साथ देख सकूँ।

मैं हर्पित हो आँखें वन्द किये आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। सवका भोजन-पान समाप्त हो जाने पर मन्द गति से संसार के समस्त छन्दों को परास्त करती हुई उनकी पुत्री भीतर आयीं, और मुझे पान देती हुई वोली, "तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो ?"

यह 'कुल्ली का एक्का' कौन-सी वला है ? मैं हैरान होकर सोचने लगा। श्रीमतीजी आनतवदना खड़ी मुस्किराती रहीं।

पाँच

प्रात:काल जव आँख खुली, काफी देर हो गयी थी। सासुजी प्रात:कृत्य के लिए पूछने आयी। निवृत्त होकर जल-पान कर, एक किताव लेकर वैठा कि सासुजी ने कहा, "सुवह सूरज की किरन फूटने के साथ कुल्ली आये थे। हमने कहा, अभी सो रहे हैं। उन्होंने फिर आने के लिए कहा है। लेकिन, भैया, कुल्ली से मिलना-जुलना अच्छा नही।"

मैंने कहा, "जव वह खुद मिलने के लिए आवेंगे, तव मिलना ही होगा।"

"लेकिन वह आदमी अच्छे नहीं।" सासुजी ने गम्भीर भाव से कहा।

"तो भी आदमी हैं, इसलिए···"

"हमारा यह मतलव नही कि वह सींगवाले है। आदमियों में ही आदमी की पहचान होती है।"

"जव आपको यह पहचान थी, तव आपने उनसे कह दिया होता कि मुलाकात न हो सकेगी।"

"पर गाँव के आदमी से एकाएक ऐसा नहीं कहा जाता, फिर तुम नातेदार हो, तुमसे गाँव-भर के आदमी मिल सकते हैं स्नेह-व्यवहार मानकर, हमारा रोकना अच्छा नहीं।"

"तो क्या आपका कहना है, जव कोई स्नेह-व्यवहार मानकर आवे, तो मैं ही उसे रोक दिया करूँ ?"

सासुजी अप्रतिभ होकर वोली, "नही, हमारा यह मतलव नही; उसके साथ रहने पर तुम्हारी वदनामी हो सकती है।"

"पर," मैंने कहा, "मेरे साथ रहने पर उसकी नेकनामी भी हो सकती है।"

सासुजी मुझे देखती हुई शायद मुझमे स्पष्ट नेकनामी के चिह्न देखने लगीं।

इसी समय कुल्ली आये, और अवरुद्ध कण्ठ से आवाज दी, "जगे ?"

सासुजी की त्योरियों मे वल पड़ गये। श्रीमतीजी एक दफा इस तरफ से उस तरफ निकल गयी। मैं शुरू से विरोध के सीधे रास्ते चलता रहा हूँ। कुल्ली इतना खतरनाक आदमी क्यो है, जानने की उत्सुकता लिये हुए वाहर निकला। मधुर मुस्किराहट से आत्मीयता जतलाते हुए कुल्ली ने सिर झुकाकर नमस्कार किया। उसे अत्यन्त सभ्य मनुष्य के रूप में देखकर मैंने भी प्रतिनमस्कार किया।

दिन के समय वाहर की वैठक मे मेरे रहने का प्रवन्ध था। पलँग विछाया जा चुका था। मैं वैठक की तरफ चला। पलँग के पास एक खाली चारपाई पडी थी। कुल्ली अपनी तरफ से उस पर वैठ गये। वरावरी की होड़ नही की, यह मुझे वहुत अच्छा लगा। पलँग पर वैठकर मैंने अपनी सासुजी को उनके घनिष्ठ सम्वन्ध से याद कर लिया।

इसी समय पान आये। कुल्ली ने तश्तरी लेकर आदर की दृष्टि से देखते हुए मेरी तरफ वढायी। मैंने गौरवपूर्ण गम्भीरता से दो वीड़े लिये। आशीर्वाद के स्वर से कुल्ली को भी खाने के लिए कहा। मुस्किराते हुए कुल्ली ने दो वीड़े ले लिये, और तश्तरी चारपाई पर रख दी।

फिर वडी सभ्य भाषा मे वातचीत छेडी। वात उसी शहर के इतिहास पर थी। मैं देखता था, कुल्ली मुझे, खासतौर से मेरी आँखों को इस तरह देखते हैं, जैसे उनके वहुत वड़े कोई प्रियजन हैं। यह दृष्टि इससे पहले मैंने नही देखी थी। मुझे कौतूहल तो था, पर भीतर से अच्छा लगता था। कुल्ली ने कहा, "यह दलमऊ 'दल वावा' का था। उसका किला अव भी है।"

मुझे उत्सुकता हुई। मैंने पूछा, "क्या किला अव भी है?"

"हाँ," गम्भीर स्वर से कुल्ली ने उत्तर दिया, "लेकिन अव टूटकर ढह गया है। यहाँ के पुराने अपढ लोग तो कहते हैं, किला दल वावा के शाप से उलट गया है। जौनपुर के शाह से लडाई हुई थी। वरेली के वल और दलमऊ के दल मिल-कर शाह से लडे थे। यहाँ से कुछ दूर पर वह जगह है, जहाँ अव भी मेला लगता है। यहाँ की जगह और किले पर फिर मुसलमानो का अधिकार हुआ। शाह की कब्र यहाँ है, एक वारहदरी भी है, मकनपुर मे। वहुत पहले यह जगह कन्नौज के अधीन थी। जयचन्द का झोपड़ा यहाँ है, चौरासी के उस तरफ।"

यह इतनी ऐतिहासिक जगह है, सुनकर मैं पुलकित हो गया। ऐसी जगह ससुराल देने के कारण परम पिता को धन्यवाद दिया। मन में इतनी महत्ता आ गयी, जैसे मेरी श्रीमतीजी दल की ही दुहिता रही हों। मैं विच्छुरित आनन्द की दृष्टि से कुल्ली को देखने लगा।

कुल्ली ने कहा, "यहाँ घाट भी कई देखने लायक हैं। राजा टिकइतराय का घाट तो वड़ा ही सुन्दर है।"

मेरी ससुराल के सम्वन्ध मे एक साथ इतने नाम आयेंगे, मेरा स्वप्न मे भी जाना न था। मैं एक विशिष्ट व्यक्ति की तरह गम्भीर होकर वैठा।

मुस्किराकर कुल्ली ने कहा, "यहाँ और भी घाट है, मठ और मन्दिर। वहुत पुरानी जगह है। उजडी वस्ती। देखने लायक है।"

"मैं देखूँगा।" मन-ही-मन ससुरालवालो को इतर विशेष कहते हुए मैंने कहा।

कुल्ली ने कहा, "जब चलिए, आपको ले चलूँ। इस वक्त तो धूप हो गयी है। शाम को चलें, तो चलकर किला देख आइए।"

मैंने सम्मति दी। कुल्ली ने कहा, "मैं चार बजे आऊँगा। यहाँ आदमी भी बहुत बड़े-बड़े हो गये हैं, जैसे मेरे वंश के..."

कुल्ली ने कुछ कवियों के नाम गिनाये। मैंने उन्हें भी बड़ी इज्जत से मन में जगह दी। कुछ देर बाद कुल्ली उसी तरह आँखें देखते हुए नम्रतापूर्वक नमस्कार कर विदा हुए।

मैं बैठा सोचता रहा—दुनिया कैसी दुरंगी है। इस आदमी के लिए उसकी कितनी मन्द धारणा है!

बैठका निराला देखकर सासुजी भीतर आयीं। पहले कई बार शंकित दृष्टि से से झाँक-झाँककर चली गयी थी। आते ही हृष्ट चित्त से पूछा, "कुल्ली चले गये?"

गम्भीर होकर मैंने कहा, "हाँ, आज की बातचीत से मुझे तो वह बड़े अच्छे आदमी मालूम दिये।"

एक क्षण के लिए सासुजी फिर शंकित हो गयीं। फिर मुझसे कहा, "तुमने रामायण तो पढ़ी होगी?"

"यद्यपि मैं लड़की नही कि पतिदेव की आँखों मे पढ़ी-लिखी उतर जाने की गरज से रामायण-भर पढ़ी है, फिर भी रामायण की बातें मुझे मालूम है, और आपके सामने परीक्षा ही देनी है, तो कहता हूँ, कुल्ली रावण या कुम्भकर्ण नही है, यह मैं समझ गया हूँ।"

सासुजी मुस्किरायी, बोली, "परीक्षा में पास होने की शेखी लिये हुए भी तुम मेरी राय में रामायण में फेल हुए। मैंने रामायण का जिक्र इसलिए नहीं किया था कि तुम कुल्ली को रावण या कुम्भकर्ण बनाओ, मेरी बात के सिलसिले मे कुम्भकर्ण तो बिलकुल ही नही आता, रावण के योगी बनकर भीख माँगने के प्रसंग पर कुछ आता है, पर दरअसल ये दोनों मिसालें गलत आयी, मतलब कालनेमि से था।"

मैंने उसी वक्त कहा, "हाँ, 'कालनेमि जिमि रावण-राहू' लिखा है?"

सासुजी मधुर मुस्किरायी। कहा, "तुमने रामायण पढ़ी है, यह सही है। लेकिन यहाँ..."

"हनुमान्वाला प्रसंग है कि मैं पकडकर पैर पटक देता?" मैने बात छीन ली जैसे, गर्व से सासुजी को देखा।

सासुजी हँस दीं। बोलीं, "इसमे शक नही कि तुमने बड़ा ही सुन्दर अर्थ लगाया है, पर मुझे कह लेने दो। कालनेमि की मिसाल इसलिए है कि महावीरजी कितने साधु सज्जन थे, वह भी उसकी बातों में आ गये थे, पहले नही समझ सके कि उसमें छल है।"

"हूँ," मैंने कहा, "यह तो नही समझ सके, पर आपने अपनी पुत्री को समझा दिया होता कि वह मकरी-अप्सरा बनकर मुझे भेद बतला देती।"

"पर वह मकरी नहीं, न मकरी की तरह उसने तुम्हें पकड़ा है, और जबकि उस तरह नही पकड़ा, तब मरकर, अप्सरा बनकर भेद बतलाने की उसे आवश्यकता

नही हुई। परन्तु तुम अगर उसे मारकर यह भेद जानना चाहोगे, तो हत्या ही तुम्हारे हाथ लगेगी।"

सासुजी के ज्ञान पर मुझे आश्चर्य हुआ, खासतौर से इसलिए कि उनकी बात का कोई तात्पर्य मेरी समझ मे नही आया।

कुल्लीवाली चारपाई पर बैठी हुई सासुजी ने स्नेह के कण्ठ से मुझसे पूछा, "तुम्हारी और कुल्ली की क्या बातचीत हुई ?"

उच्छ्वसित होकर मैं कुल्ली की आकर्षक बातचीत कहने लगा। मुस्किराकर सासुजी बोली, "कालनेमिवाला प्रसंग पूरा उतर रहा है। वह तुम्हे यहाँ से ले जाना चाहता है।"

मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने पूछा, "तो क्या यहाँ किला नही है ?"

"किला है," सासुजी ने कहा, "लेकिन उसका मतलब तुम्हें किला दिखाना नही मालूम देता।"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ ?" मैंने रुखाई से पूछा।

"इस तरह की कुल्ली के हथकण्डे हमे मालूम है।"

बात फिर भी मेरी समझ मे न आयी। सासुजी गम्भीर होकर बोली, "जब जाना, तब चन्द्रिका को साथ ले जाना। अकेले उसके साथ हरगिज जाना नही हो सकता ?"

"क्यों ?" मैंने कहा, "क्या कुल्ली मुझसे ज्यादा शहजोर है, जो चन्द्रिका बल पहुँचायेगा ?"

सासुजी हँसी। कहा, "यह तो जानती हूँ, लेकिन फिर भी तुम लड़के हो, मा-बाप की बात का कारण नही पूछा जाता।"

कहकर उठी और कहा, "चलो, नहा लो, भोजन तैयार है।"

छह

मैं बचपन से आजादी-पसन्द था। दबाव नही सह सकता था। खासतौर से वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो। एक घटना, अप्रासंगिक न होगी, कहूँ। मैं आठ साल का था। पिताजी जनेऊ करने गांव आये थे। गांव के ताल्लुकेदार पं. भगवानदीनजी दुबे थे। उन्होने एक पतुरिया बैठायी थी। उससे एक लड़की और तीन लड़के हुए थे। जब की बात है, तब पं. भगवानदीनजी गुजर चुके थे। ताल्लुका उनकी धर्म-पत्नी से पैदा हुए पुत्र के नाम था। एकाएक मर गये थे, इसलिए पतु-रिया को और उससे पैदा हुए लडकों को अचल सम्पत्ति कुछ नही दे जा सके थे।

बाद को वसूली में पतुरिया के लड़के अड़चन डालते थे। इसलिए उनके अधिकारी भाई ने खाने के लिए उन्हें कुछ बागात और मातहत खेत दिये थे। मजे

में गुजर होता था। पतुरिया थी। उसके लड़कों के नाम हैं—शमशेरवहादुर, जंग-वहादुर, फतहवहादुर और लड़की का नाम परागा।

सवसे छोटे फतहवहादुर मुझसे आठ साल वडे थे। चौधरी पं. भगवानदीनजी ने सवसे वड़े शमशेरवहादुर को वड़े प्रयत्न से शिक्षा दिलायी थी। मैंने उनका सितार वाद के जीवन मे सुना है। वह वाक्य प्रशंसा के साथ मुझे अव तक याद है। शमशेर का उन्होने जनेऊ भी किया था, और कहते है, जनेऊ-भोर के व्रह्मभोज में अपनी ताल्लुकेदारी के और प्रभाव में आये और-और व्राह्मणो को आमन्त्रित करके खिलाया भी था। इसके व'द शमशेर का एक विवाह भी किया था। लड़की खालिस व्राह्मण-घर की नही, वाला व्राह्मण-विधवा मिली, उससे किया। तव से यह परिवार अपने को व्राह्मण समझता है। जरूरत पडने पर ये लोग शमशेरवहादुर दुवे, जंगवहादुर दुवे लिखकर सही करते है। अपनी मा पतुरिया को उसी तरह भोजन देते थे, जैसे एक हिन्दू यवनी को देता।

इतने पर भी ताल्लुकेदार साहव की आँखें मुंदने के साथ-साथ गाँव के लोगों ने इनकी तरफ से मुँह फेर लिया। इनके यहाँ का पान-पानी गाँव तथा ग्वेड़ के चारो ओर वात-की-वात में वन्द हो गया।

जव मैं गया, तव ये इसी अचल अवस्था में थे। प्रतिशोध की ताड़ना से इन्होंने गाँव तथा ग्वेड़ के हर घर का इतिहास कण्ठाग्र कर रक्खा था। और, अधिकारी-अनधिकारी जो भी इनसे भली तरह वातें करता था, उसे घेरकर घण्टों सुनाते रहते थे, "रामचरण की वेवा लड़की के लक्खू पासी का हमल रह गया था; शिवप्रसाद मिसिर की वीस साल की व्याही न होने की वजह से लछमन लोध के साथ भग गयी; रामदुलारे तिवारी अपने छोटे भाई की वेवा स्त्री को वैठाले हैं; सुन्दरसिंह का लड़का पल्टन मे था, ससुर ने पुतोहू के हमल कर दिया, वात फैल गयी, थानेदार आये, फिर रुपया देकर दवाया, और पुतोहू को वेटे के पास लेकर चले कहकर कलकत्ता, जाने कहाँ पहुँचे, वहाँ लड़का होने पर उसे मारकर पुतोहू को वेटे के पास ले गये; कहा—संग्रहणी हो गयी थी, कलकत्ता इलाज कराने गये थे।"

गाँव आने पर इसी खानदान का मुझ पर सवसे ज्यादा प्रभाव पडा। यही मुझे आदर्श आदमी नजर आये—चेहरे-मोहरे के, वातचीत के, उठक-वैठक के। तव मेरा जनेऊ नही हुआ था, इसलिए खान-पान की रोकथाम न थी। पतुरिया मुझमे स्नेह करती थी, खिलाती थी और लतीफे सुनाती थी। नये ढंग के कुछ दादरे और गजलें सिखायी थीं।

एक दिन उनके छोटे लड़के ने, जिनका मुझ पर ज्यादा प्रभाव था, कहा, "तुम्हारे वड़े चाचा हमारे यहाँ नौकर थे, हमारे घोड़े ने उनका हाथ काटकर वेकाम कर दिया था, तव हमने माफी दी थी, वह जमीन आज भी तुम्हारी चाची जुताया करती है।"

यह वात सच है। लेकिन ताल्लुकेदार भगवानदीन ने जव माफी दी थी, तव उनके यह पुत्र-रत्न भूमिष्ठ नही हुए थे। मैं तव यह इतिहास नही जानता था। मुझ मालूम पड़ा, यह सब इन्होंने किया है।

इसके बाद कहा, "अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जब जनेऊ हो जायेगा, न खाओगे।"

मैंने खुदवखुद सोचा, 'यह अन्याय है। अगर आज खाते हैं, तो कल क्यों न खायेंगे ?'

परागा बहन ने कहा, "बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नही।"

मुझे झेंप मालूम दी। मैं हलुआ छोड़कर लप्सी नही खाता, मन में कहा। कुछ दिन बाद जनेऊ हुआ। अब तक इस घर के आदमी-आदमी ने बगावत के लिए मुझे तैयार कर लिया था। मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि जनेऊ चाहे तीन बार हो, लेकिन मैं यहाँ भोजन न छोड़ूँगा। इनकी बातें मुझे संगत मालूम देती थीं। अगर गाँववाले कभी इनके यहाँ खाते थे, तो अब क्यों नही खाते ?

जनेऊ हो जाने के दूसरे रोज पिताजी ने एकान्त मे बुलाकर मुझसे कहा, "अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।"

मैंने कहा, "पतुरिया का छुआ तो उनके लड़के भी नही खाते-पीते।" पिताजी ने कुछ समझाकर कहा होता, तो मेरी समझ मे बात आयी होती। उन्होने डाँटकर कहा, "उसके हाथ का भी मत खाना।"

मैने पूछा, "जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे ?"

पिताजी ने होठ चबाकर कहा, "हम जैसा कहते हैं, कर।"

यही मैं कमजोर था। दिल से बात न मानी। जनेऊ के बाद दो-तीन दिन कहीं न गया, जनेऊ चढाता-उतारता रहा। दिन-भर मे कितने जनेऊ बदलने पडते थे। जनेऊ के बाद दो दिन पतुरिया के घर न गया; लोगो की धारणा बँध गयी, मैं रोक दिया गया, और बात मैंने मान ली।

तीसरे या चौथे दिन पं. फतहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डौल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा। मुझे देखकर वह मुस्किराये। मेरे दिल मे जैसे तेज तीर चुभा। बडा अपमान मालूम दिया। मैंने उनके पास पहुँचकर कहा, "भैया, पानी पिला दीजिए।"

भैया प्रसन्न हो गये। डोल से लोटे मे पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक्त उन्हे गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी, जैसे कोई किला तोड़ा हो। उन्होंने गाँव के लोगो को देखकर अपने ब्राह्मणत्व का गर्व किया था, मैंने अपनी प्रतिज्ञा-रक्षा का।

जिन पर भैया फतहबहादुर ने फतह पायी थी, उनमे भी सिर उठाने का हौसला कम न था। वे पिताजी के पास गये, और सिर उठाकर कहा, "आपका लडका सबके सामने पतुरिया के छोटे लडके का भरा पानी उन्ही के लोटे से पी रहा था। अभी नादान है, इसलिए इस दफा माफ किये देते है; फिर अगर ऐसी हरकत करते देखा गया, तो हमे लाचार होकर आपसे व्यवहार तोडना होगा।"

पिताजी पहले आज्ञा दे चुके थे, फिर ब्राह्मणो ने बात सभ्य ढंग से कही थी, पिताजी का क्रोध सप्तम सोपान पर पहुँचा। एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, इस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान! कहा है—'सब ते अधिक

जाति-अपमाना।' जाते ही मुझे पकडकर फौजी प्रहार जारी कर दिया। मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हे भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे है। मैं भी, स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।

जब पिताजी के बिजली के हाथ छुट रहे थे, मैं चिल्लाता हुआ उनकी पहले की मारें याद कर रहा था—एक दफा जाड़े के दिनो मे रात आठ बजे मैने बगल की बाड़ी मे पाखाने की हाजत रफा की, और यूरोपियनो के कागज का काम बैंगन के पत्तो से लिया, फिर भोजन के लिए रसोई जाना ही चाहता था कि भाभी ने रोक दिया, उन्होने झरोखे से मुझे देख लिया था। पिताजी से यथातथ्य कह दिया। पिताजी पहले गरजे, फिर एक हाथ से मेरी बाँह पकड़कर टाँग लिया, और ताल की ओर ले चले उसी तरह टाँगे हुए। वहाँ उसी तरह पकडे हुए डुबा-डुबाकर नहलाने लगे, 'सींचता जा, सींचता जा' कहते हुए। जब अपनी इच्छा-भर नहला चुके, तब प्रहार के ताप से जाड़ा छुटाने लगे।

याद आया—एक बार एकान्त मे मैंने पिताजी को सलाह दी थी, "तुम्हारे मातहत इतने सिपाही है, तुम इस राजा को लूट क्यो नही लेते?" पिताजी ने सोचा, यह किसी दुश्मन की सिखायी बात है, जो उनकी नौकरी लेना चाहता है। मुझे मार-मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है। मैं किसका नाम बतलाता? वह उद्भावना मेरी ही थी। मै जितना ही कहता था, यह बात मेरी ही सोची हुई थी, पिताजी उतना ही सन्देह करते और मार-मारकर पूछते जाते थे। मैं कुछ देर बाद बेहोश हो गया था। (तब से आज तक मैं नौकर और नौकरी को पहचानता हूँ। इस बयालीस साल की उम्र में, पहले, बड़ी मजबूरी मे नौकरी की थी, सिर्फ दो-ढाई साल चली। अस्तु।)

चाँटे की ताल-ताल पर पिताजी कबूल करा रहे थे, फिर तो मैं पतुरिया के यहाँ का पानी न पियूँगा, मैं स्वीकार कर रहा था। किसी तरह छुट्टी मिली।

दो-तीन दिन का समय दर्द अच्छा होने मे लगा। एक दिन मैं बाहर निकला कि दुर्भाग्य से फिर वैसा ही प्रकरण आ पडा। गाँव के मुखिया क्रोध से भरे हुए, गाँव के लोगों की रक्षा के विचार से गये, और गम्भीर होकर नाम लेते हुए कहा, "क्या तुम दूसरो का धर्म लेना चाहते हो? आज तुम्हारा लडका पतुरिया के लडके से ले-लेकर भूने चने चबा रहा था। आज से गाँव के ब्राह्मणों मे तुम्हारा व्यवहार बन्द है।"

ओज की मात्रा पिताजी में उनसे अधिक थी। फिर मुखिया ने ये बातें डाँट के साथ कही थी। व्यक्तिगत बात को व्यक्तिगत रूप देते हुए उन्होने कहा, "तू हमारा पानी बन्द करेगा? तू पासी का है, गाँव मे जा और पूछ, तेरी लडकी पटने मे एक-दो-तीन-चार, एक-दो-तीन-चार कर रही है—हम अपनी आँखो देख आये है। माना कि चौधरी भगवानदीन का काम बेजा था, लेकिन उनके सामने कहते! नहीं, जब तक वह जिये, इन्ही लड़को की (अंग-विशेष का उल्लेख कर कहा) धो-धोकर

पीते रहे, अब सब छंगे के बने फिरते हो ? शहर में होते, तो देखते हम, कितने आदमियों का बम्बे का पानी और डॉक्टर की दवा छुड़ाते हो। यहाँ क्या, नाम के करने को कौन-सा काम और गाने को छीता-हरन !"

मुखिया का थूक सूख गया। विशेष अस्वस्थ हों जैसे, धीरे-धीरे लौटे।

पिताजी ने गम्भीर स्नेह-स्वर से पुकारा, "अरे ए मुखिया, तमाकू खाये जाओ !"

मैं अब विकास पर हूँ। इन मेरी आँखों में धूल झोंकी जा रही है। मैं जरूर कुल्ली का साफ आसमान देखूँगा। चन्द्रिका मेरे साथ कर दिया जायेगा, तो उस बेवकूफ को एक काम देकर अलग कर देना कौन बडी बात है ? कहूँगा, अत्तार के यहाँ से रूह ले आ मालिश के लिए। रूह लेकर बड़े रास्ते पर खडे रहना, हम वहीं मिलेंगे। देखा जाय, ये लोग कुल्ली के नाम से क्यो कान खड़े करते हैं ! इसी प्रकार अपना आगे का कार्यक्रम तैयार कर रहा था कि बैठक का दरवाजा खुला।

"भीतर आऊँ ?" विनीत सभ्य कण्ठ की आवाज आयी। मैं समझ गया, कुल्ली है।

"आइए।" मैंने उसी सभ्यता से कहा। कुल्ली एक घण्टा पहले आये थे। बहुत बने-ठने। बालों से तेल जैसे टपकने पर हो। चिकन का धुला कुरता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेत। गर्मी के दिनो मे भी पैरों मे मोजे। विनीत, अप्रतिभ दृष्टि और श्री-हीन मुख। बात-बात मे कालिदास के 'शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना-चाटुकारः'। तब चाटूक्ति अच्छी लगती थी, क्योंकि उसका दर्शन न समझता था, कालिदास का यौन विज्ञान भी नही; समझता तो उस दृष्टि, चेहरे और बातचीत से ही खात्मा कर दिया होता।

कुल्ली ने बड़े अदब से इलायची दी। मैंने ले ली। कहा, "आप घण्टे-भर पहले आये।"

कुल्ली ने उत्तर दिया, "पाण्डेजी का मन्दिर भी रास्ते मे देख लेंगे।"

सासुजी पहले से सतर्क थी। फाटक बन्द कर उसी दालान मे अपना पलँग डलवाया था, और दुपहर-भर कुल्ली का रास्ता देखती रही। चन्द्रिका को अपनी ही दालान मे सुलाया था। दुपहर-भर उससे हम लोगों की बातें पूछती रही, 'कैसे रहते है, क्या खाते है, कौन कैसे है, घर मे किसका स्वभाव अच्छा है।' आदि-आदि।

चन्द्रिका बहुत अर्थों में बेवकूफ था। उससे घर की कोई भी बात मालूम की जा सकती थी। थोडी देर मे देखता हूँ, अपने डण्डे पर अच्छी तरह तेल चुपडे हुए चन्द्रिका बैठक के भीतर आया, साथ चलने के लिए कपड़े पहनकर, बिलकुल तैयार होकर।

चन्द्रिका को देखकर कुल्ली कुछ सहमे-से। फिर उससे कहा, "एक लोटा पानी हमारे लिए ले आओ।" चन्द्रिका पानी लेने गया, तो मुझसे बोले, "क्या यह भी साथ जायेगा ? इसका कौन-सा काम है ?"

कुल्ली के कहने से मेरा कौतूहल बढा। मैंने कहा, "साथ जाना उसका फर्ज है। लेकिन मैं उसे सौदा लेने के लिए दूसरी जगह भेज दूँगा।"

कुल्ली ने अपने ढंग से समझा। कुल्ली ने सोचा, मैं उनका इरादा समझ गया हूँ, और उनकी अनुकूलता कर रहा हूँ; मै वैसा ही आदमी हूँ, जैसा उन्होने सोचा था।

चन्द्रिका पानी ले आया। दो-एक छीटे मुँह पर मारकर कुल्ली ने कहा, "बड़ी गर्मी है। इतना ही आया, ब्रह्माण्ड फट रहा है।" चन्द्रिका कुल्ली को देख-देखकर आजमा रहा था कि एक झपट होने पर आसमान दिखा सकेगा या नही। मुँह पर छीटे मारकर, दो-एक घूँट पानी पीकर कुल्ली ने कहा, "अब देर न कीजिए।"

मै घर के भीतर चला। फाटक के पास जाते ही मालूम हुआ, सारा घर साँस साधे हुए है। फाटक खोलने पर सासुजी मिली, स्तब्ध भाव से मुझे देखती हुई। उनकी बेटी उनकी आड़ मे। मैं सीधे अपने कमरे मे गया। बाल कंघी किये, कपड़े बदले, जूते पहने; फिर छाता लेकर बाहर निकला। सासुजी रास्ता रोककर खड़ी हो गयी। अपने यहाँ का एक डण्डा देती हुई बोली, "इसे भी ले लो। जंगल का रास्ता ठहरा।"

मैंने कहा, "जरूरत पर मैं छाते से काम ले लूंगा।"

सासुजी की बेटी हँसीं। मैं बाहर निकला।

मैं फिर बैठक मे न घुसूं, इस विचार से कुल्ली दरवाजे के पास आ गये थे, मेरे निकलते ही निकल पड़े। कुल्ली के पीछे चन्द्रिका भी निकला। कुल्ली ने उसे घृणा से घूरा, पर कुछ कहा नही। रास्ते पर जाकर खड़े हो गये। मैं भी बढ़ा। मेरे पीछे चन्द्रिका। चन्द्रिका का रहना कुल्ली को अखर रहा था। मुझे सासुजी की बात याद आ रही थी कि कुल्ली मुझे यहाँ से ले जाना चाहता है। उसका उद्देश्य किला दिखाना नही। पर उसका उद्देश्य क्या है, जानने की बड़ी उत्सुकता हुई। इसी समय हम लोग बड़े रास्ते पर आये। कुल्ली ने एक दफा मेरी तरफ देखकर इशारा किया कि अब इसे बिदा कर दो। वह इशारा, मुँह और आँख का बनना, मुझे बड़ा अच्छा मालूम दिया। दो-एक दफा ऐसे इशारे और हो, देखूं, इस अभिप्राय से चन्द्रिका को लिये रहा। कुल्ली का उत्साह टूट गया; चाल धीमी पड़ गयी। पर आशा से हृदय बाँधकर पाण्डेजी के शिवाले की तरफ चले।

कुछ दूर पर शिवाला मिला। चारो ओर घूमकर हम लोगों ने मन्दिर देखा, देवता के दर्शन किये, फिर मन्दिर की चित्र-कला देखते रहे। फिर बैठकर कुछ देर विश्राम करने और पुजारीजी की बातचीत सुनने लगे। ज्यों-ज्यों देर हो रही थी, कुल्ली का पेट ऐंठ रहा था। पुजारीजी की बातचीत चल रही थी कि उस साल भगवान् का जन्म-दिन मुहर्रम के दिन पड़ा; जब ताजिए उठ रहे थे, पुजारी भगवान् की आरती कर रहे थे; आरती मे खूब बाजे बज रहे थे, इंस्पेक्टर साहब के पूछने पर पुजारीजी ने कहा कि जिनके यहाँ आदमी मरा, और कही लाश का पता नही, उनके यहाँ तो ये सब, और पुजारीजी के यहाँ आज भगवान् पैदा हुए (कहते है, उसी दिन पुजारीजी की स्त्री के लड़का हुआ था), तो यहाँ कितना उछाह होना चाहिए।

कुल्ली ने बीच मे टोककर कहा, "महाराज, अभी और जगहें देखनी है।" कहकर उठकर खड़े हो गये।

मैं पुजारीजी की वात खत्म होने पर उठा। तव तक कुल्ली सैकड़ों मर्तवे निगाह से मुझे उठाते रहे। मैं देखता और सुनता रहा। शिवाले के वाहर निकल-कर कुल्ली ने फिर इशारा किया। इस वार कुल्ली का इशारा चन्द्रिका ने देख लिया। लेकिन वात उसकी समझ में न आयी। उसने सोचा था, आगे चलकर कुल्ली को मारने की नौवत आयेगी; पर इस इशारे मे उसे काफी स्नेह दिखायी दिया।

इसी समय अत्तार के यहाँ से मैंने रूह खरीद लेने की आज्ञा दी। चन्द्रिका असमंजस मे पड़ गया—उसे सासुजी की आज्ञा साथ न छोड़ने के लिए थी, सासु-जी की वात याद आयी—साथ न छोडना, दोस्त-दुश्मन कौन कैसा साथ रहता है; लेकिन कुल्ली को दुश्मन मे शुमार न कर सकने के कारण उतरे गले से कहा, "मैं भी किला देख लेता।"

कुल्ली ने कहा, "क्या आज से किले का आना वन्द हुआ जाता है? कल देख लेना; कही मालिक की हुक्म-अदूली की जाती है? जाओ, रूह खरीद लो। वह आगे दूकान है।"

चन्द्रिका मेरी तरफ देखने लगा। मुझे भी उत्साह था। कहा, "खरीदकर यहीं या वडे रास्ते पर रहना। हम घण्टे-भर मे आ जाते हैं।"

चन्द्रिका मुडा। कुल्ली ने उत्साह से सीना तानकर गर्दन उठा दी। मुझे भी यह मुद्रा अच्छी लगी। वंगाल मे ऐसी अंग-भगी देखने को न मिली थी।

हम ढाल से नीचे उतरे। किला देख पड़ने लगा। मिट्टी के दो काफी ऊँचे टीले हैं, एक-दूसरे से जुडे हुए। इन्ही पर इमारत थी। इस समय केवल एक वारहदरी दूर से देख पड़ती है। किले के चारो तरफ ईंटो की चहारदीवारी थी, जगह-जगह मालूम देता है। ईंट कही-कही वहुत वडी है। वाकी इमारत की ईंट लखनऊ की जैसी कागजी थी, लेकिन वहुत पकी हुई मजवूत। घुसते एक फाटक मिला, मजे का, इन्ही ईंटो का वना। फाटक का रास्ता कागजी ईंटें गाडकर वनाया हुआ, नीचे से ऊपर को चढ़ता हुआ, गऊघाट की तरह का। दूर से दृश्य अच्छा मालूम देता है, ऊपर से और अच्छा। हम लोग फाटक से होकर चढ़ते हुए किले के भीतर गये। जाने पर प्राचीनता का नशा जकड़ लेता है, जिसकी स्तव्धता दूर इतिहास-काल में ले जाकर एक प्रकार का प्रगाढ आनन्द देती है। कुल्ली ने दूसरे टीले की तरफ हाथ उठाकर कहा, "वह रनवास है। वैठ गया है, दो-एक जगह से मालूम देता है। नीचे की दालानें देख पड़ती हैं। एक तहखाना भी है! लोग कहते हैं, यहाँ वड़ी दौलत है।"

फिर आगे वढ़े। एक जगह, एक मस्जिद थी, टूटी हुई। कुल्ली ने कहा, "यह मस्जिद है। शाह का कब्जा होने के वाद वनी थी। इसीलिए दूसरी इमारतों के मुकावले नयी मालूम देती है। सामने यह सिपाहियों के रहने की जगह थी, अव कुछ कब्रें हैं। देखिए, उस फाटक से उस वारहदरी तक कई फाटक थे। ड्योढ़ियाँ थीं। सिपाही पहरे पर थे। जगह देखते जाइए, धीरे-धीरे कैसी ऊँची होती गयी है। वारहदरी के पास किला काफी ऊँचा है।"

वैसे ही वढ़ते हुए कुल्ली ने दायी तरफ एक कुआँ दिखलाया। उस समय वह

सूख गया था। कुएँ के आगे ढाल में नीचे, किले का नावदान है। मुसलमानों का अधिकार होने पर किले की पत्थर की मूर्तियाँ वहाँ फेंक दी गयी थी, अब भी काफी संख्या मे पड़ी है। इसी जगह से बाहर निकलने को, कहते है, एक सुरंग थी। हम लोग बारहदरी की तरफ चले। कुल्ली ने कहा, "पहले यहाँ बहुत अच्छी इमारत थी। कुछ टूट गयी थी। अँगरेजो ने मरम्मत करायी, और अपनी कचहरी लगाते थे।"

मैंने देखा, जैसे एक छोटे पहाड़ की चोटी पर पहुँचा हूँ। बारहदरी के ठीक नीचे गंगा बह रही थी। कुछ सीढ़ियाँ बनी थी, जिनसे मालूम होता था, ऊपर से नीचे गंगा तक उतरने का ज़ीना बना था। किला ऐसे मौके पर कि एक तरफ से गंगा का प्रवाह जैसे रोके हुए है। बरसात में किले की बगल से सटकर गंगा बहती है। एक तो वहाँ गंगा का पाट भी चौड़ा है, दूसरे बहुत बड़ा कछार भी है, ऊँची जगह, निगाह दूर-दूर तक जाती है, जिससे जी को वैसा ही प्रसाद मिलता है। देखकर मुझे बड़ा आनन्द आया। मेरी खुशी से कुल्ली भी खुश हुए। बारहदरी पर जानेवाली सीढ़ी के सिरे पर बठ गये। मैं भी थका था, बैठ गया।

कुल्ली ने कहा, "दोस्त, क्या हवा चल रही है!"

कुल्ली का दोस्त कहना मुझे बड़ा अच्छा लगा। मित्रता की तरफ और गुरुडम के खिलाफ मैं पहले से था। मैंने कुल्ली का समर्थन किया। कुल्ली मुस्किराये मेरी मैत्री की आवाज पर, फिर इस स्वर को और उदात्त कर बोले, "दोस्त, तुम्हारा चेहरा बतलाता है कि तुम गाते हो, कुछ सुनाओ वक्त की चीज़।"

मैं गद्‌गद हो गया यह सोचकर कि वक्त की चीज़ सुननेवाला संगीत-मर्मज्ञ है। तारीफ से मैं अभी कल तक उमड़ आता था; उमड़ जाने पर आदमी हल्का हो जाता है, न जाना था। गाने लगा। कुल्ली सिर हिलाने लगे। मैं देखता था, ताल के साथ कुल्ली के सिर हिलाने का सम्बन्ध न था। आश्चर्य हुआ कि ऐसा समझदार यह क्या कर रहा है। इसके बाद कुल्ली ने सम की जगह समझकर "हुँः" किया; वहाँ सम न थी। एक कड़ी गाकर मैंने गाना बन्द कर दिया।

कुल्ली ने कहा, "यार, तुम तो बहुत ऊँचे दर्जे के गवैये हो, हमारा इतना जाना न था।"

मैं फिर फूल गया। कुछ उस्तादो के नाम गिनाये, जिनमें कुछ से कुछ सीखा था, अधिकांश के नाम सुने थे। कहा, "इन सबसे मैंने यह विद्या ली है।"

मेरे गुरुत्व पर गम्भीर होकर कुल्ली बोले, "हाँ, ये सब लोग राना साहब के यहाँ आते है। पर तुम्हारी और बात है। तुम्हारा गला क्या है! तुम्हारा गला है, जादू है?"

मैं संयत होने लगा, कुल्ली जो कुछ कह रहे है, ठीक है, समझकर।

शाम हो रही थी। घर की याद आयी। मैंने कहा, "अब चलना चाहिए।"

कुल्ली भावस्थ हो गये, फिर एक गर्म साँस छोड़ी। कहा, "अच्छा, चलो। हम लोग चलें।"

कुल्ली जिस रास्ते से ले चले, यह नया था। मेरे पूछने पर कहा, "जरा ही दूर मेरा मकान हे। अपनी चरण-रज से पवित्र तो कर दो।"

तब मैं ब्राह्मण था, इसलिए चरण-रज से पवित्र करने की ताकत है, समझता था। कुल्ली के मकान के साथ कुल्ली का देह भी संलग्न है भाव-रूप से, इसलिए उसके पवित्र करने की बात भी मेरे मन मे आयी, क्योंकि मैं देख चुका था, कुल्ली की भली बात का व्यंग्य रूप से लोग बुरा अर्थ लगाते है, फलतः कुल्ली के पवित्र होने की जरूरत है। कुल्ली अब तक के आचरण से किसी तरह भी अनाचरणीय मनुष्य नही। उसका यह भाव लोगों मे व्यक्त हो जाना चाहिए। चुपचाप कुल्ली के साथ चला जा रहा था। पुराने बाजार से कुछ आगे चौरासी पर कुल्ली का मकान था। कुल्ली ने घर का ताला खोला। गृह की यह दशा देखकर मैंने सोचा —कुल्ली त्यागी मनुष्य है। जम्बुको के वन मे अकेला सिद्ध वेदान्त-केसरी की तरह रहता है। कुल्ली ने लालटेन जलायी। फिर कहा, "यही झोपड़ी है। घर में मैं अकेला रह गया हूँ। कुछ जमीदारी है। लडके-बच्चे, जोरू-जाते कोई नही, दो एक्के चलवाता हूँ। शौक से रहता हूँ, यह आदमियों को अच्छा नही लगता। मान लो, कोई बुरी लत हो, तो दूसरो को इससे क्या? अपना पैसा बरबाद करता हूँ!"

बात मुझे संगत मालूम दी। मैंने कहा, "दूसरों की ओर उँगली उठाये बिना जैसे दुनिया चल ही नही पाती।"

कुल्ली खुश होकर बोले, "हाँ, लेकिन दुनिया मे हमारे-तुम्हारे-जैसे आदमी भी है, जो लोगो के उँगली उठाने से घबराते नही।"

कुल्ली ने बडे स्नेह के साथ मुझे पान दिया, और मेरे पान लेते वक्त जरा मेरी उँगली दबा दी। मैं बहुत खुश हुआ यह सोचकर कि ससुराल के सम्बन्ध से कुल्ली मेरे साले होते है, मुझसे दिल्लगी की है। मुझे खुश देखकर कुल्ली विचित्र तरह से तने। कुछ देर तक इस उत्तेजना का आनन्द लेकर बोले, "कल तुम्हारा न्योता है मिठाई का। लेकिन किसी से कहना मत, क्योंकि यहाँ लोग सीधी बात का टेढ़ा अर्थ लगाते है। कल नौ बजे तक आ जाओ।" फिर बहुत दीन होकर बोले, "गरीबो पर भी कृपा की जाती है।"

आजकल जिस तरह लोग मेरा व्यंग्य नही समझते, उसी तरह पहले लोगों का व्यंग्य मेरी समझ मे न आता था। मैंने कुल्ली का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया, और चलने को तैयार हुआ।

मेरे मुँह की ओर देखते हुए कुल्ली ने कहा, "पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हे! तुम्हारे होठ भी गजब के है। पान की बारीक लकीर रचकर, क्या कहूँ, शमशीर बन जाती है।"

कुल्ली हृदय की भाषा में कह रहे थे, मैं कुल अर्थ ससुराल के सम्बन्ध से लगाता हुआ बहुत ही प्रसन्न हो रहा था।

मैं बढ़ा। कुल्ली बड़े रास्ते तक आये, और नमस्कार करके कहा, "कल सबेरे नौ बजे इन्तजार करूँगा।"

मैंने भी प्रतिनमस्कार किया। ढाल के पास चन्द्रिका खड़ा था। देखकर कहा, "बहुत देर कर दी बाबा, तुमने। मुझे शंका हो रही थी कि कही धोखा न हुआ हो।"

मैंने कहा, "चन्द्रिका, धोखा तो खर नहीं हुआ, लेकिन धोखा देना है। तुम्हारी नानी पूछें, तो कहना, हम साथ थे।"

चन्द्रिका ने स्वीकार कर लिया। मैं कुल्ली की वातो के विचार मे था, चन्द्रिका के स्वभाव के अनुकूल समझाना याद न था।

सासुजी सर्वान्तःकरण से हमारा रास्ता देख रही थी। मैं कपडे छोड़ने भीतर गया, सासुजी चन्द्रिका से पूछने लगी, "कहाँ-कहाँ गये चन्द्रिका ?"

चन्द्रिका ने उतरे गले से कहा, "कही नहीं, वावा के लिए रूह लेने गया था।" इतना कह जाने पर चन्द्रिका को होश हुआ।

सासुजी को इतनी पकड काफी थी। पूछा, "भैया ने भेजा था ?"

"हाँ।" चन्द्रिका ने रुखाई से कहा, गलती कर जाने के कारण।

सासुजी ने पूछा, "फिर ?"

चन्द्रिका रुका, और फिर सँभलकर कहा, "फिर किले गये।"

सासुजी ने पूछा, "वहाँ सतमंजिला मकान देखा था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ।"

सासुजी ने पूछा, "वहाँ एक वहुत वड़ा ताल है, वहाँ गये थे ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ।"

सासुजी ने पूछा, "किले पर लखपेड़ा वाग है, देखा था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ, वहुत देर तक सव लोग देखते रहे।"

सासुजी समझ गयी, भीतर से एक डण्डा लाकर दिखाती हुई बोली, "देख, दहिजार लोध। भले आदमी की तरह ठीक-ठीक वता, नही तो वह डण्डा दिया कि मुंह टेढ़ा हो गया। तू कहाँ था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "देखो नानी, मुझे मारो मत, न मैं किले का नौकर हूँ, न किसी दूसरे का। जिनका नौकर हूँ, उनसे पूछ लो।"

वात पानी की तरह साफ हो गयी। सासुजी को पूछने की जरूरत नहीं हुई। मैं निकला, तो मुंह पर ऐसी दृष्टि उन्होने डाली, जैसे मुंह सड़ गया हो। चन्द्रिका को पास खड़ा देखकर मैं समझ गया।

कुछ देर वाद सासुजी भीतर गयी। मैं निश्चय कर लेने के विचार से वाहर निकला। पीछे-पीछे चन्द्रिका भी आया। फाटक के वाहर आकर मुझे पकड़कर रोने लगा। कहा, "बाबा, मैं न रहूँगा।"

मैंने कहा, "अरे, चन्द्रिका, इतनी जल्दी ऊव गये ? अभी कुछ दिन रूह की मालिश तो करो।"

चन्द्रिका ने रोनी आवाज में सासुजी की प्रश्नावली और अपने उत्तर सुनाये। मेरे होश उड़ गये। वडी लज्जा लगी। लेकिन उपाय न था।

हार खाने पर चिढ़ हुई। मन ने कहा, 'क्या विगाड़ लेंगे ? वे सभ्य आदमी ही नही हैं। होते, तो नौकर से भेद न लेते फिरते। इसी वक्त पूरी लापरवाही से रूह की मालिश कराओ। इन्हे समझा दो कि तुम देहात के रहनेवाले ऐरे-गैरे नही हो। तुम्हारी दूसरी ही वातें है।'

मन में आते ही मैं फाटक के भीतरवाले आँगन में गया, और चारपाई पर

चन्द्रिका को दरी विछाने के लिए कहा। सासुजी मेरी बिगडी मुद्राएँ कुछ देर तक देखती रही, फिर चुपचाप भीतर चली गयी। चन्द्रिका ने दरी विछायी, रूह की शीशी ले आया। मैं चित्त लेट गया, और छाती दिखाकर कहा, "यहाँ लगाओ।"

चन्द्रिका ने रूह और तेल मे भेद नही किया। 20) की रूह एक साथ गदोरी मे लेकर छाती मे थपथपाया। फिर कहा, "लेकिन बाबा, इतना ही है, इससे क्या होगा?"

एक दफा मेरा जी छन्न से हुआ कि इसने बीस की मत्थे दी; पर साँस साधे पड़ा रहा कि कुछ कहूँगा, तो अशिष्टता होगी। रूह की खुशवू चारो तरफ उड़ चली। ससुरजी सूंघते-सूंघते वाहर निकल आये, और सूंघते और आँखें तिलमिलाते हुए बोले, "अरघाने उठ रही है, बच्चा!"

मैंने आवाज दी। उन्होने खुश होकर कहा, "इतना अतर-फुलेल न लगाया करो, हूरें पकडती है।" कहकर प्रसन्न होकर चले गये।

सुगन्ध भीतर तक आफत कर रही थी। सासुजी वाहर निकली। चन्द्रिका तल्लीन होकर तेल की-जैसी मालिश कर रहा था। सासुजी कुछ देर तक देखती रही। फिर पूछा, "इत्र है?"

मैंने गम्भीर होकर कहा, "रूह!"

सासुजी चौंकी। पूछा, "कितने की है?"

मैने गम्भीर शालीनता से कहा, "बीस रुपये की।"

सासुजी देर तक विस्मय की दृष्टि से देखती रही। फिर पूछा, "ऐसी मालिश कितने-कितने दिन वाद करते हो?"

मैंने वैसे ही उदात्त स्वर से उत्तर दिया, "एक-एक दिन का अँतरा देकर।"

सासुजी फिर थोडी देर तक देखती रही, और एक लड़की की तरह पूछा, "इससे क्या होता है?"

मैंने कहा, "सीना तगड़ा होता है।"

मेरा सीना वचपन से चौड़ा था। सासुजी ने विश्वास कर लिया। कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खड़ी रहकर अत्यन्त स्वाभाविक स्वर से पूछा, "तुम्हारे पिताजी तनख्वाह कितनी पाते है?"

इसका उत्तर वड़ा अपमानजनक था, पिताजी की तनख्वाह वहुत थोड़ी थी, किसी भली जगह किसी तरह कहने लायक नही। पर जहाँ विश्व का ऐश्वर्य झूठ है, वहाँ झूठ का हिसाव लगाना भी किसी सत्य की शक्ति की वात नही। सही बात को दवाकर गले मे खूब जोर देकर कहा, "पिताजी की आमदनी की कितनी सूरतें है, क्या कहूँ? उनकी आमदनी कब कितनी हो जायेगी, कहाँ से, कैसे, किससे, यह वही नही बता सकते।"

उत्तर सुनकर सासुजी एकाएक रोने लगी, कुछ देर रोकर स्वयं ही भाव स्पष्ट किया, "जो वाप अपने वेटे के लिए रोज मालिश मे बीस रुपये की रूह खर्च करता है, वह अपनी वहू के लिए वीस सौ का चढ़ावा भी नही लाता? अरे राम रे! मुझे क्या हो गया, जो मैने शादी कर दी।"

मुझे एक आश्वासन मिला कि पहली वात दब गयी। रूह सूख चुकी थी,

चन्द्रिका रगड़-रगडकर आग निकाल रहा था। मैंने मालिश वन्द करा दी।

घर मे सन्नाटा था, जिसे 'मसा नही भन्नाय' कहा है। देर तक भोजन के लिए बुलावा न आया। वैठा 'चर्पट-पंजरिका' के धोखे श्लोक याद करता रहा। विलकुल विरोधाभास—एक दिन में यह हाल, तो पूरी गवही कैसे पार होगी? साले साहव, जो इस समय कई वच्चों के वाप है, तव मुश्किल से चार साल के थे। एकाएक चिल्लाकर रो उठे। चन्द्रिका झपकियाँ ले रहा था, सोचा—खाने का वुलावा है, सजग होकर सुनने लगा, फिर वीतश्रद्ध होकर हाथों से घुटने वाँधे।

मैंने पूछा, "चन्द्रिका, कैसा लग रहा है?"

चन्द्रिका ने कहा, "वावा, घर मे भोजन कर अव तक एक नीद सो चुकता था।"

मैंने कहा, "यहाँ भोजन भी तो अनेक प्रकार के मिलते है।"

चन्द्रिका ने ऊँघते हुए कहा, "तेल और नमक-मिली जव-चनी की रोटी का स्वाद यहाँ नहीं मिलता।"

इसी समय सासुजी का नौकर आया, और वडे गम्भीर स्वर से आवाज दी, "भोजन तैयार है।"

भोजन के समय विलकुल सन्नाटा। एक-एक साँस गिनी जा सकती थी। कोई किसी से वोलता न था। मैं निरपेक्ष भाव से भोजन कर हाथ-मुंह धोकर, अपने शयन-कक्ष में जाकर लेटा।

घर-भर का भोजन हो जाने पर कल की तरह आज भी श्रीमतीजी आयी। लेकिन गति मे छन्द नही वजे। पान दिया, पर दृष्टि मे वह अपनापन न था। मैं एक तरफ हट गया। उनकी आधी जगह खाली कर दी। वेमन पैर दवाकर वह लेटी। उनका मनोभाव आज क्यों ऐंठ गया, कुछ-कुछ मेरी समझ मे आया। पर चुपचाप पड़ा रहा। सोचा, कमजोर दिल अपने-आप वोलना शुरू करता है। अन्दाजा ठीक पड़ा। कुछ देर तक चुपचाप पड़ी रहकर उन्होंने कहा, "इत्र की इतनी तेज खुशवू है कि शायद आज आँख नही लगेगी।"

मैंने कहा, "अनभ्यास के कारण। एक कहानी है, तुमने न सुनी होगी। एक मछुआइन थी। एक दिन नदी-किनारे से घर आते रात हो गयी। रास्ते में राजा की फुलवाड़ी मिली, उसमे एक झोंपड़ी थी वही सो रही। फूलों की महक से वाग गमक रहा था। मछुआइन रह-रहकर करवट वदल रही थी। आँख नही लग रही थी। फूलों की खुशवू मे उसे तीखापन मालूम दे रहा था। उसे याद आयी, उसकी टोकरी है। वह मछलीवाली टोकरी सिरहाने रखकर सोयी, तव नीद आयी।"

श्रीमतीजी गर्म होकर वोलीं, "तो मैं मछुआइन हूँ?"

"यह मैं कव कहता हूँ," मैंने विनयपूर्वक कहा, "कि तुम पण्डिताइन नही मछुआइन हो; मैंने तो एक वात कही, जो लोगों मे कही जाती है।"

श्रीमतीजी ने वड़ी समझदार की तरह पूछा, "तो मैं भी मछलियाँ खाती हूँ?"

मैंने वहुत ठण्डे दिल से कहा, "इसमे खाने की कौन-सी वात है? वात तो सूँघने की है। अपने वाल सूंघो, तेल की ऐसी चीकट और वदवू है कि कभी-कभी मुझे मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूं।"

श्रीमतीजी विगड़कर वोली, "तो क्या मैं रण्डी हूँ, जो हर वक्त वनाव-सिगार

के पीछे पड़ी रहूँ ?"

"लो," मैंने बडे आश्चर्य से कहा, "ऐसा कौन कहता है, लेकिन तुम बकरी भी तो नही हो कि हर वक्त गँधाती रहो, न मुझे राजयक्ष्मा का रोग है, जो सूँघने को मजबूर होऊँ।"

श्रीमतीजी जैसे बिजली के जोर से उठकर बैठ गयी। बोली, "तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो लो, मै जाती हूँ।"

सिर्फ मेरे जवाब के लिए जैसे रुकी रही।

मैने बडे स्नेह के स्वर से कहा, "मेरी अकेली इच्छा से तो तुम यहाँ सोती नही, तुम अपनी इच्छा की भी सोच लो।"

श्रीमतीजी ने जवाब न दिया, जैसे मैने बहुत बडा अपमान किया हो, इस तरह उठी, और दरवाजा खुले छोड़कर चली गयी।

मैंने मन मे कहा, 'आज दूसरा दिन है।'

सात

सवेरे जब जगा, तब घर मे बड़ी चहल-पहल थी। साले साहब रो रहे थे। सासुजी ने मारा था। ससुरजी खुड्ढी मे गिर गये थे, नौकर नहला रहा था। घर मे तीन जोड़े बैल घुस आये थे। श्रीमतीजी लाठी लेकर हाँकने गयी थी, एक के ऐसी जमायी कि उसकी एक सीग टूट गयी। ज्योतिषीजी बुलाये गये कि बतलायें, कि इसका क्या प्रायश्चित्त है। महरी पानी भरने गयी थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ मे चला गया था। घर का पानी खत्म हो आया था। दूसरी रस्सी न होने के कारण पानी भरना बन्द था। पड़ोस मे सवेरे रस्सी मिली नही। लोगो ने कहा, "हमारा पानी भर जाय, तब ले जाओ।" चन्द्रिका सबेरे से लापता था। जब मेरी आँख खुली, तब सुना, सासुजी कह रही है, "जब बिपत आती है, तब एकसाथ आती है।"

मुझे इसकी अँगरेजी उक्ति मालूम थी। समझा, उठने के साथ सासुजी श्रीमतीजीवाली घटना पर मुझी को सुनाकर कह रही हैं। जमकर धीरे-धीरे उठा। घर मे जितने थे, सब व्यस्त थे। क्रमशः एक-एक दुर्घटना मालूम होती गयी। चन्द्रिका का पता न था। ससुरजी को साफ कर जब उनका नौकर आया, उसने कहा, "चन्द्रिका ने कहा है, मैं गाँव जा रहा हूँ, पैसे पास नही है, रेल की पटरी-पटरी चला जाऊँगा, रास्ता नही जाना, बाबा चिन्ता न करें, कहकर नही जा रहा, क्योंकि बाबा नही छोड़ेंगे।" फिर उसने अपनी तरफ से कहा कि मुझसे कह गया है कि मै किसान आदमी हूँ, मेरी नौकरी न रहेगी, तो मुझे इसकी चिन्ता नही, किसानी और मजदूरी कर खाऊँगा।

मैं समझ गया, रात से ही वायुमण्डल बिगड़ा है, सवेरे किसी ने उससे कुछ कहा होगा। ज्यादा शंका मुझे श्रीमतीजी पर हुई। मैंने पूछा, "जब बैल की सींग तोड़ी गयी थी, तब चन्द्रिका था या नही ?"

नौकर ने इशारे मे सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

शृंग-भंग-शान्ति की बातचीत हो रही थी कि आठ का वक्त हो गया। मुझे मित्रवर कुल्ली की याद आयी। तैयार होकर बाहर निकला। कुएँ के पास भरा घड़ा लिये एक युवती मिली। सगुन देखकर मन प्रसन्न हो गया। कुछ आगे बढ़ने पर दुहकर छोड़ी हुई एक गाय बछड़े को पिलाती हुई मिली। मेरी चाल और तेज हुई। कुछ लोग बड़े रास्ते पर मिले; मुझे देखकर तारीफ करने लगे—डील-डौल, चाल-चलन की। मैं संयत मुद्रा से पैर बढ़ाये कुल्ली के घर की तरफवाले रास्ते को बढ़ा। देखा, कुल्ली रास्ते पर खड़े थे। देखने के साथ पूरी स्वतन्त्रता से कदम उठाते हुए मथुरा में नादिरशाह की सेना की तरह, मेरी तरफ बढ़े, जैसे मित्र के भी देश पर पूरी विजय पा ली है। मुझे भरा घड़ा मिला ही था, भरे हृदय से मैं कुल्ली को देख रहा था।

कुल्ली हृदय से लिपट गये, "आओ, आओ।" मुझे मालूम हुआ, गंगा और यमुना का संगम है।

कुल्ली बड़े आदर से मुझे अपने घर ले गये। एक बड़ा आईना चारो ओर तीन-लड़ माला से सजा था। मेरे जाने के साथ-ही-साथ पकड़कर सामने जाकर खड़े हुए। मैंने देखा, बिना माला पहने हम दोनो माला पहने हुए हैं। कुल्ली की कला पर जी मुग्ध हो गया। कुल्ली आईने में ही मुझे देखकर हँसे। देखकर मैं भी मुस्किराया। कुल्ली बहुत प्रसन्न होकर बोले, "अच्छा।"

फिर जल्दी-जल्दी भीतर एक कमरे में गये, और मिठाई की तश्तरी उठा लाये। पलँग के सामने एक ऊँची चौकी रखी थी, उस पर रख दी। फिर जल-भरा लोटा और गिलास वही रख दिया, और मुझसे बड़े विनय के स्वरों से खाने के लिए कहा।

मैं खाने लगा। कुल्ली विनीत चितवन से मेरा खाना देखते रहे। भोजन समाप्त होने पर उन्होंने हाथ धुलाया-पोंछाया। फिर पान दिया।

पान खाकर मैं पलँग पर बैठा। बड़ा सुन्दर पलँग। सुन्दर गलीचा बिछा। कुल्ली ने इत्र की एक शीशी दिखायी। कहा, "मैंने मँगा लिया है। रूह नही, क्योंकि मालिश तो करनी नही।"

मैं अज्ञातयौवन युवक की तरह कुल्ली को देखने लगा। कुछ देर तक कुल्ली स्तब्ध रहे। मैंने देखा, कुल्ली का चेहरा बहुत विकृत हो गया है। मतलब कुछ मेरी समझ में न आया। कुल्ली अधीरता से एक दफा उचके, लेकिन उचककर वही रह गये। मैं सोच रहा था, इसे कोई रोग है। कुल्ली ने एक दफा भरसक प्रेम की दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा, "तो मैं दरवाजा बन्द करता हूँ।"

लेकिन आवाज के साथ जैसे लरबराकर रह गये। कुल्ली से मुझे भय हुआ, इसलिए नही कि कुल्ली मेरा कुछ कर सकता है, बल्कि इसलिए कि कुल्ली के लिए जल्द डॉक्टर दरकार है। घबराकर मैंने कहा, "क्या डॉक्टर बुला लाऊँ ?"

"ओह ! तुम बड़े निठुर हो।" कुल्ली ने कहा।

मैं बैठा सोच रहा था कि कुल्ली की इस ऐंठन से मेरी निठुरता का क्या सम्वन्ध है। सोचकर भी कुछ समझ न पाया।

कुल्ली एकाएक उचके, अवके भरसक जोर लगाकर, यह कहते हुए, "मैं जवर-दस्ती···"

मुझे हँसी आ गयी, खिलखिलाकर हंसने लगा। कुल्ली जहाँ थे, वहीं फिर रह गये। और, वैसे ही कुएँ मे डूवे हुए-जैसे कहा, "मैं तुम्हे प्यार करता हूँ।"

मैंने कहा, "प्यार मैं भी तुम्हे करता हूँ।"

कुल्ली सजग होकर तन गये। कहा, "तो फिर आओ।"

मेरी समझ मे न आया कि कुल्ली मुझे वुलाता क्यों है। मैंने कहा, "आया तो हूँ।"

कुल्ली ने मुझसे पूछा, "तो क्या और कही भी नही···?"

वात एक भी मेरी समझ मे ज्यो-ज्यो नही आ रही थी, त्यों-त्यों गुस्सा वढ रहा था। वोला, "साफ-साफ कहो, क्या कहते हो ?"

कुल्ली पस्त, जैसे लत्ता हो गये।

"अच्छा, नमस्कार।" कहकर मैं वाहर निकला। वह रूप मुझे विलकुल पसन्द नही, इतना ही समझा।

कुल्ली की पहली मुलाकात का अन्त हुआ। मै घर आया। मेरी तरफ से चारो ओर सन्नाटा, जैसे होकर भी न होऊँ। सवको सविनय अवज्ञा करते देखकर मुझे पिताजी की याद आयी। मालूम हुआ, पिताजी वहुत अभिज्ञ मनुष्य हैं। उन्होने ससुरजी की चाल का एक वाक्य मे जवाव दिया, और यहाँ का सारा वायुमण्डल घहरा उठा; मैं ऐसा हूँ कि वाक्य पर वाक्य चढते हैं, मैं जवाव नही दे पाता।

विलकुल व्यवहार की वाणी मे सासुजी ने पूछा, "भैया, कहाँ गये थे ?"

मैंने उस समय झूठ वोलना पाप समझा। कहा, "कुल्ली के यहाँ।" अधिक वढाकर कहना भी उचित नही मालूम दिया।

सासुजी मुँह की ओर देखकर रह गयी। शाम से ही वह नि:शंक थी। श्रीमती-जी के उठ जाने के वाद से तो शंका का लेश न रह गया था। सवेरे से नि.शंकता के निर्भय आचरण भी शुरू हो गये थे। मेरे जाने तक गति मे चारुता आने लगी थी।

मैंने सोचा, हौसला तोड दिया जाय। चन्द्रिका के चले जाने से मैं लँगडा हो गया हूँ। कहा, "वैल की सीग ही नही तोडी गयी, मेरा पैर भी तोड़ा गया है। वैल की सीग के लिए तो आपने प्रायश्चित्त किया-कराया, मेरे पैर के लिए क्या इलाज सोचा है ?"

सासुजी पैर पकडकर बैठ गयी, "कहाँ, देखूँ ?"

मैंने कहा, "अपनी वेटी को वुलाइए।"

सासुजी ने कहा, "विटिया, रात को पैर दवाने के वक्त तुमने भैया की नस तिड़का दी है ? यहाँ आओ। हमसे यह क्यो नही कहा ?"

"कहाँ ?" शंकित दृष्टि से देखती हुई श्रीमतीजी आयी।

फुटवाल खेलते-खेलते मेरे दाहने अँगूठे मे गुम्मड़ पड गया था, वायें हाथ से दाहना अँगूठा मोटा मालूम देता है। सासुजी को कुछ नजर न आया, मोटा अँगूठा

देख पड़ा, तो पकड़कर कहा, "यह है ?" फिर स्वगत कहा, 'यही होगा ।' फिर अपनी बेटी से बोलीं, "देखो बिटिया, उससे मोटा जान पड़ता है न ?"

उनकी लड़की चिन्तित भाव से बोलीं, "हाँ ।" फिर मा की अनुवर्तिता की । वह भी पकड़कर देखने लगीं ।

सासुजी ने कहा, "क्यों भैया, हल्दी-चूना गर्म कर दें ?"

मैंने सोचा, जिसने पैर पकड़ा है, उसे माफ करना चाहिए। इस समय चन्द्रिका की बात रहने दी जाय । वैराग्य से कहा, "रहने दीजिए ।"

बड़े स्नेह से सासुजी ने कहा, "नही, रहने क्या दिया जाय ? जाओ तो बिटिया, हल्दी-चूना गर्म करो ।"

मैं, जो सुलह हो जाय जंग होकर, सोच रहा था । इसलिए रहस्य को बाद मे ही रहने दिया । श्रीमतीजी हल्दी-चूना गर्म करने लगी ।

आठ

दूसरे दिन रूह की मालिश के लिए कहने पर सासुजी ने कहा, "हमारे यहाँ रूह की मालिश नही चल सकती । हम इतने बड़े आदमी नही । कड़ुआ तेल लगाओ । खाया तो घी जाय, जो रुपये मे सेर-भर मिलता है, और लगायी रूह, जो अस्सी रुपये तोले आती है ?"

मैंने सोचा, अब गवही खत्म है । लेकिन श्रीमतीजी का आकर्षण जबरदस्त था । यद्यपि 'चर्पट-पंजरिका' स्तोत्र कई बार उन्हें सुना-सुनाकर पाठ किया, फिर भी वैराग्य की मात्रा श्रीमतीजी ने मुझमें कभी नही देखी । वह भी मेरे चारो ओर धोखा-ही-धोखा देखने लगी । ललित-कला-विधि में मैं कालिदास नही था, उन्होने मेरा शिष्यत्व स्वीकार नही किया ।

रुपये खत्म हो चुके थे । रूह अपनी गाँठ से नही मँगा सकता था । सासुजी इस ताक में थीं, मैं कितने दफे मँगाकर मालिश कराता हूँ, देखें; मेरे पिताजी ने खर्च के रुपये दिये ही होंगे । हृदय मे निश्चय था, सब झोल है । रूह की मालिश कराते उन्होने किसी बड़े रईस को भी नही देखा-सुना ।

मेरा दम घुट रहा था । रह-रहकर मन मे उठता था, पिताजी की तरह दूसरी शादी की बात कहूँ । लेकिन कुल्ली की तरह दिल से बैठ जाता था । यद्यपि वैराग्यो-द्दीपक 'का ते कान्ता कास्ते पुत्र' गाया करता था, फिर भी श्रीमतीजी दिल से अच्छी तरह जानती थी, बिना कान्ता के एक रात इनकी पार नही हो सकती, और आधु-निक प्रेमियो की तरह जिस शब्द-न्यास से यह मुझसे पेश आते हैं, यह दूसरा विवाह हरगिज न करेंगे । यानी मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता । बात सही थी । दिन-भर विराग रहता था, रात को श्रीमतीजी को देखने के साथ अनुराग मे परिणत हो

जाना। श्रीमतीजी मौन साधे हुए अपने मनोभावों की मारें सहती थीं।

एक दिन मुझसे न रहा गया, हालांकि इसलिए नहीं कि मैं श्रीमतीजी के मनोभाव समझता था, बल्कि इसलिए कि श्रीमतीजी मेरे अधिकार मे पूरी तरह नहीं आ रही थीं, अर्थात् शिष्यत्व स्वीकार नहीं कर रही थीं। वह समझती थी, मैं और जो कुछ भी जानता होऊँ, हिन्दी का पूरा गँवार हूँ, हिन्दी का वैसा गँवार नहीं, जैसा पढ़े-लिखे सैकडा पीछे निन्यान्नवे होते हैं—बिल्कुल ठोस मूर्ख। मुझे श्रीमतीजी की विद्या की थाह नही थी।

एक दिन बात लड़ गयी। मैंने कहा, "तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी में क्या है?"

उन्होने कहा, "जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है।"

मैंने कहा, "हिन्दी मुझे नहीं आती?"

उन्होने कहा, "यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली का क्या जानते हो?"

तब मैंने खड़ी बोली का नाम भी नहीं सुना था। पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी, पं. अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आदि तब मेरे लिए स्वप्न में भी नहीं थे, जैसे आज हैं। श्रीमतीजी पूरे उच्छ्वास से खड़ी बोली के ऐसे धुरन्धर साहित्यिकों के बीसियो नाम गिनाती गयी, जैसे लेख मे उद्धरण पर उद्धरण देखकर पाठक लेखक की विद्वत्ता और विचारो की उच्चता पर दंग हो जाता है, वैसे ही मैं भी खडी बोली के साहित्यिकों के नाम-मात्र से श्रीमतीजी की खड़ी बोली के ज्ञान पर जहाँ का वहीं रह गया। अब समझता हूँ, 'सहस्रनाम' का प्रभाव इतना क्यों है।

मैंने निश्चय किया कि अब यहाँ मेरी दाल न गलेगी। पाँच-छ रोज हो गये। रूह की मालिश नहीं करायी। सासुजी जैसे दिन गिन रही थी, इधर श्रीमतीजी की खड़ी बोली का ज्ञान दिन-पर-दिन गालिब हो रहा था। सोचा, घर चला जाऊँगा। लेकिन मारे प्रेम के स्टेशन की तरफ देखने की इच्छा नहीं होती थी। इसी समय किसी एक उपलक्ष में गाने का आयोजन हुआ। सासुजी ने एक दिन अपनी पुत्री के संगीत की तारीफ की थी। कहा था, "शहर में कोई लडकी और औरत मुकाबला नहीं कर सकती।" मैंने सोचा, आज सुन लूंगा, चलते-चलते श्रवण-रन्ध्र सार्थक हो जायेंगे। मजलिस लगी। ढोलक बजने लगी, लेकिन औरतों की जैसी 'उदुम-घुसुक, उदुम-घुसुक' नहीं। मैंने सोचा, कुछ आनन्द आयेगा—'टिकारा वदन्ति?' पुरुष भी जमने लगे। मनचले, कुछ नहीं, तो दूसरे की औरत का हाथ-पैर ही देख लेनेवाले। भीतर से पान आने लगे। पान-तम्बाकू खाकर एक-एक पीक थूकते हुए घर भ्रष्ट करनेवाले औरतो की आलोचना करने लगे। गाना शुरू हुआ। श्रीगणेश गजलों से। जो औरत गजल गाना नहीं जानती, उसकी आफत। गजल गानेवालियो से प्रभावित अक्सर गजल न जाननेवाली पुरानी वृद्धाएँ थीं, भजन गानेवाली; उन पर नवीनाओं का वैसा ही रोब था, जैसा आजकल साहित्य और समाज मे देखा जाता है।

मुझे ताज्जुब यह था कि अँगरेजों के वक्त ही अँगरेजी इतना अपना ली गयी

कि चाल-ढाल, बात-चीत, अदब-कायदा, खान-पान, उठक-बैठक, हेत-व्यवहार, यहाँ तक कि राजनीतिक विचारों तक में अपना ली गयी, और इतनी जल्दी; पर मुसलमानो के वक्त फारसी और हाफ़िज़ की ग़ज़लों के लिए हमारी देवियों ने इतनी देर क्यों की, जिस तरह आज की बी. ए. पास देवी धड़ल्ले से घूमती है, अँगरेजी बोलती है, यूरोप में कोर्टशिप करती है, पियानो बजाती है, और पिछड़ी हुई देश की स्त्रियो को शिक्षा देती है, उसी तरह हमारी प्राचीनाओ ने ग़ज़लों को क्यों नही अपनाया ? चाहिए तो यह था कि अपनी सांस्कृतिक विभूति अपनी बेटियों को देतीं। मालूम हुआ कि वे विचारों में मार्जित और उदार नही थीं, इस-लिए उनका सांस्कृतिक हाजमा बिगड़ा था। यह बात राजा राममोहन राय को सबसे पहले मालूम हुई। खैर, अँगरेजी अज्ञेयों का उद्धार करे; मैं तन्मय होकर ग़ज़लें सुनने लगा।

गाने के साथ-साथ बाहर आलोचना भी चलने लगी—कौन गा रही है, यानी गाना उठाया हुआ किसका है, यों साथ-साथ कितने ही मँजे और नौसिखिए गले चलते थे। लोग ग़ज़लों और ग़ज़ल गानेवालियो को चाहते थे। उनके नमक के कारण, पर उनके चरित्र से उन्हे घृणा थी। अब तक श्रीमतीजी कवि-सम्मेलन के बड़े कवि की तरह बैठी थी। मुझे नही मालूम था कि लोग एक के बाद दूसरे उन्हीं के लिए टूट रहे हैं। खैर, उन्होने गाया। गनीमत यह कि पहले भजन गाया, वह भी साहित्यिक गीतों का शिरोभूषण—'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणम्।' लोग साँस रोककर सुनने लगे। 'कन्दर्प अगणित-अमित-छवि-नवनील-नीरज-सुन्दरम्' की जगह जान पड़ने लगा, गले में मृदंग बज रहा है। मेरा दम उखड़ गया। यह इतनी है, बगाल से पाये संस्कार के प्रकाश में मैं न देख पाया।

इसके बाद एक ग़ज़ल हुई—'अगर है चाह मिलने की, तो हरदम लौ लगाता जा।' यह त्याग की बारूद भड़की, तो लोगों में प्रेम पैदा हो गया, बिना जनेऊ तोड़े, न-जाने क्यो ? एक-दूसरे से कनखियो से बातें करने लगे। मैंने सोचा, यह मेरे प्रेम पर है पर फिर शंका हुई, क्योंकि मैं मिल चुका था। लोग मुस्किराते हुए अपने-अपने प्रेम की थाह ले रहे थे।

इसके बाद दादरा शुरू हुआ—

'सासुजी का छोकड़ा, मेरी ठाढ़ी पे रख दिया हाथ।
बहुत गम खा गयी, नही चाँटे लगाती दो-चार।'

एक श्रोता बहुत बिगड़े। बोले, "अपने मर्द को चाँटे लगाती ? वैसा ही मर्द होगा।"

उन्हें यह ख्याल नही था कि उनका मर्द सामने बैठा है। दूसरे ने मेरी तरफ देखकर मुस्किराकर कहा, "यह मर्द के लिए नही, देवर के लिए है। सासुजी का छोकड़ा देवर भी हो सकता है।"

तीसरे ने कहा, "देवर तो है ही।" मेरी जान में जान आयी।

कुछ देर और होकर गाना बन्द हुआ। लोग जम्हाई ले-लेकर उठे। स्त्रियाँ भी एक-एक कर निकलने लगीं। थोड़ी देर मे घर अपने ही लोगों का रह गया। श्रीमतीजी का गाना अच्छा, हिन्दी अच्छी। मेरी इन दोनों विषयों की तालीम तब

तक नही खुली । संसार मे हारने की-सी लाज नही, स्त्री सृष्टि की सबसे बडी हार है, पुरुष की जीत की सबसे बडी प्रमाण-प्रतिमा, इससे मैं हारा । एकान्त मे पिताजी को एक चिट्ठी लिखी, "मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, लिखने-पढने का नुकसान हो रहा है । आप जब चाहे पानी बदलकर आयें; मैं प्रसन्न हूँ, यहाँ कुशल है ।" चिट्ठी डाकखाने छोड़ी और बिस्तरा बाँधकर तैयार होने लगा ।

सासुजी ने पूछा, "भैया, बिस्तरा क्यों बाँध रहे हो ?"

मैंने कहा, "कलकत्ता जा रहा हूँ ।"

सासुजी का रंग उड गया । गाने के बाद अपनी लडकी की गलेबाजी पर मुझसे राय लेनेवाली थी, एकाएक हौसला जाता रहा । कहा, "बांधना-खोलना हमारा काम है, नौकर है, कलकत्ता अभी कैसे जा सकते हो ? तुम्हारे पिताजी भी क्या कहेगे ? यहाँ के लोग समझेंगे—दामाद गवही आया था, हफ्ते से ज्यादा न रख सकी, हमारी बेइज्जती होगी ।"

मैंने कहा, "बेइज्जती एक ही ओर की रहने दी जाय ।"

सासुजी ने कहा, "तुम्हारी कैसी बेइज्जती ?"

"अपनी बेइज्जती की बात कोई अपनी जबान से नही कहता ।" मैंने कहा ।

सासुजी सोचकर जैसे समझ गयी, यानी कुल्लीवाली बात के लिए उन्होंने सोचा कि वे लोग समझ गये, यह मुझे मालूम हो गया है । बोली, "मैंने तो बहुत पहले तुम्हें मना किया था कि कुल्ली का साथ अच्छा नही ।"

मैंने कहा, "कुल्ली का साथ अच्छा नही या आपकी बेटी का, यह सब रहने दीजिए ।"

मैंने तो सीधे ढंग से कहा था, लेकिन सासुजी एकाएक उच्च स्वर से रोने लगी । उनके साथ उनकी बेटी भी, छोटी होने के कारण मन्द स्वर से । भगवान् जाने इस बीच पिताजी के लिए क्या सोचा हो ! घबराकर बोली, "मेरी बेटी तो भैया, तुम्हें भगवान् मानती है । रात का वक्त है,झूठ नही कहूँगी, सामने आग जल रही है, मेरे मुँह में आग लगे, तुम कहो, तो मेरी लडकी तुम्हारी बात पर अंगार खा सकती है । और, आज ही गाँव-भर की औरतें आयी थी, उसी की वाहवाही रही, हर बात पर, यों चाहे, जो कहो ।"

"इसी के लिए तो जा रहा हूँ ।" मैंने कहा ।

सासुजी चौंकी हुई देखने लगी । मै फिर बिस्तरा बाँधने लगा ।

ससुराल मे बिस्तरा बाँधना नाराजगी का कारण है । सासुजी के मन में आया —रूह नही मँगायी गयी, इसलिए जा रहे हैं । बोली, "दाम नही थे, इसलिए रूह नही मँगायी, कल वह भी आ जाती है ।"

मैंने कहा, "वह तो बाहरी रूह है, यहाँ भीतरी फना है ।"

सासुजी प्रश्न-भरी चिन्तित दृष्टि से देखती रही ।

मैंने कहा, "पढ़ाई पडी है । फिर तैयारी न कर पाऊँगा ।"

आश्वस्त होकर सासुजी ने नौकर को बुलाया । उसे बिस्तरा बाँधने के लिए कहा । मुझसे सस्नेह बोली, "कलकत्ता जा रहे हो, ऐ, मैंने सोचा था, कलकत्ते का बहाना है, घूमकर फिर गाँव जाओगे, और गाँव मे जबकि प्लेग है, और···

कलकत्ता पढ़ाई के लिए जा रहे हो, हाँ, आगे की फिकिर तो करनी ही है।"

विस्तरा वँध गया। ताँगा आया। रायबरेलीवाली गाड़ी के समय पर सासु और ससुरजी के पैर छूकर मै विदा हुआ।

नौ

पाँच साल बीत गये। कुल्ली मुझसे नही मिले, कई बार ससुराल गया-आया। मैं भी नही मिला। एक आग दिल मे लगी थी—मैंने हिन्दी नही पढी। बगाल मे हिन्दी का जानकार नही था, जहाँ मैं था—देहात मे। राजा के सिपाही जो हिन्दी जानते थे, वह मुझे मालूम थी—व्रजभाषा। खड़ी वोली के लिए अडचन पड़ी। तव हिन्दी की दो पत्रिकाएँ थी—'सरस्वती' और 'मर्यादा'। दोनो मँगाने लगा। 'सरस्वती' चेहरे की भी सरस्वती थी, 'मर्यादा' अमर्यादा। पढ़कर भाव अनायास समझने लगा। पर लिखने मे अड़चन पडती थी। व्रजभाषा या अवधी, जो घर की जवान थी, खडी वोली के व्याकरण से भिन्न है। 'उइ कहेन' और 'उन्होने कहा' एक नही। यह 'ने' खटकता था। जो केवल भारतीय संस्कृति के शिक्षित है, उनके लिए 'ने' शूल है। 'ने' के प्रयोग भी मालूम न थे। लेकिन मिहनत सवकुछ कर सकती है। मैं रात दो-दो, तीन-तीन वजे तक 'सरस्वती' लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अँगरेजी और वंगला-व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगा। जहाँ 'कहा', 'कहे', 'कही' क्रिया के प्रयोग आते है, वहाँ गौर से कारण की तलाश करने लगा। यह संस्कृत, अँगरेजी और वंगला-व्याकरण मे नही। मुझे कारण भी मिला। वह आनन्द कारण की प्राप्ति के वाद जो हुआ, व्रह्मानन्द से कम नही कहा जा सकता।

ऐसी अनेक और अड़चनें पार की। आचार्य द्विवेदीजी को गुरु माना; लेकिन शिक्षा अर्जुन की तरह नही—एकलव्य की तरह पायी। व्याकरण की शिक्षा पूरी करने से पहले 'जुही की कली' लिखी थी, जो व्याकरण की दृष्टि से वाद को पूरी उतरी। जिस तरह संसार के वड़े-वड़े कवियो के लिए कहा जाता है कि सात-आठ साल की उम्र से कविता लिखने लगे थे, उसी तरह अल्पवुद्धि मैं भी लिखने लगा था। लेकिन तव, वगला में लिखता था। 'दरिद्राणां मनोरथ:' जैसे वे भी उठकर, कागज की पंक्तियों मे खिलकर, अज्ञात के हृदय मे मिल गयी। उनका कोई चिह्न शेप नही। सोलह-सत्रह साल की उम्र से भाग्य मे जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौडा था, जीव के पीछे नही। इसीलिए शायद वच जाऊँगा। जीव के पीछे पड़नेवाला वडे-वड़े मकान, राष्ट्र चमत्कार और जादू से प्रवाहित होकर जीवन से हाथ धोता है, जीवन के पीछे चलनेवाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नही होता, अस्तु।

मकतब की शिक्षा अर्थकरी समझकर मैंने छोड़ दी थी; तब 'अर्थ' का व्यापक अर्थ मुझे मालूम नहीं था। इसीलिए जडार्थ से मेरा हमेशा छत्तीस का सम्बन्ध रहा। लेकिन विशाल 'अर्थ' जिसके लिए, जिसे न जानकर भी, मैंने अर्थकरत्व छोड़ा था, मेरे विशाल-हृदय मित्रों से मुझे प्राप्त होता रहा। पर जब की बात लिख रहा हूँ, तब मैं उसी एस्टेट मे एक मामूली नौकर हुआ। चिट्ठी-पत्री, हिसाब-किताब अच्छा नहीं लगता था। पर लाचारी थी, इसी समय राजा साहब को अपना थिएटर खोलने का शौक हुआ। बड़े आदमी की इच्छा अपूर्ण नहीं रहती। कचहरी के बाबू नायक-नट बनने के लिए बुलाये गये। सबके साथ मैं भी गया। मुझे एक बहुत मामूली संस्कृत का गाना दिया गया, इसलिए कि बंगालियो मे अधिकांश संस्कृत का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते।

मैंने श्लोक याद कर रिहर्सल के दिन गया। राजा साहब पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होने मेरे लिए गाना सीखने का प्रबन्ध कर दिया। धीरे-धीरे कला की कृपा से मेरी लोकप्रियता बढ चली, साथ दूसरो की ईर्ष्या भी।

इसी समय इनफ्लुएन्जा का प्रकोप हुआ। पिताजी एक साल पहले गुजर चुके थे। इसीलिए नौकरी की थी। नहीं तो हर लड़के की तरह दुनिया को सुखमय देखते रहने के स्वप्न लिये रहता; कम-से-कम लिये रहूँगा, यही सोचता था।

तार आया—'तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, अन्तिम मुलाकात के लिए आओ।' मेरी उम्र तब बाईस साल थी। स्त्री का प्यार उसी समय मालूम दिया, जब वह स्त्रीत्व छोड़ने को थी। अखबारों से मृत्यु की भयंकरता मालूम हो चुकी थी। गंगा के किनारे आकर प्रत्यक्ष की। गंगा में लाशों का ही जैसे प्रवाह हो। ससुराल जाने पर मालूम हुआ, स्त्री गुजर चुकी है; दादाजाद बडे भाई देखने के लिए आकर बीमार होकर घर गये हैं। मैं दूसरे ही दिन घर के लिए रवाना हुआ। जाते हुए रास्ते में देखा, मेरे दादाजाद बड़े भाई साहब की लाश जा रही है। रास्ते में चक्कर आ गया। सिर पकड़कर बैठ गया।

घर जाने पर भाभी बीमार पडी दिखी। पूछा, "तुम्हारे दादा को कितनी दूर ले गये होगे?" मैं चुप हो गया। उनके चार लड़के और एक दूध-पीती लड़की थी। उस समय बड़ा लडका मेरे साथ रहता था, बंगाल में पढता था। घर में चाचाजी अभिभावक थे। भाई साहब की लाश निकलने के साथ चाचाजी भी बीमार पडे। मुझे देखकर कहा, "तू यहाँ क्यों आया?"

पारिवारिक स्नेह का वह दृश्य कितना करुण और हृदयद्रावक था, क्या कहूँ? स्त्री और दादा के वियोग के बाद हृदय पत्थर हो गया। रस का लेश न था। मैंने कहा, "आप अच्छे हो जायें, तो सबको लेकर बंगाल चलूँ।"

इतनी उम्र के बाद यह मेरा सेवा का पहला वक्त था। तब से अब तक किसी-न-किसी रूप से फुर्सत नहीं मिली। दादा के गुजरने के तीसरे दिन भाभी गुजरीं। उनकी दूध-पीती लडकी बीमार थी। रात को उसे साथ लेकर सोया। बिल्ली रात-भर आफत किये रही। सुबह उसके प्राण निकल गये। नदी के किनारे उसे ले जाकर गाडा। फिर चाचाजी ने प्रयाण किया। गाड़ी गंगा तक जैसे लाश ही ढोती रही। भाभी के तीन लड़के बीमार पड़े। किसी तरह सेवा-शुश्रूषा से अच्छे हुए।

इस समय का अनुभव जीवन का विचित्र अनुभव है। देखते-देखते घर साफ हो गया। जितने उपार्जन और काम करनेवाले आदमी थे, साफ हो गये। चार वड़के दादा के, दो मेरे। दादा के सबसे वड़े लड़के की उम्र 15 साल, मेरी सबसे छोटी लड़की साल-भर की। चारो ओर अँधेरा नजर आता था।

घर से फुर्सत पाने पर मैं ससुराल गया। इतने दुःख और वेदना के भीतर भी मन की विजय रही। रोज गंगा देखने जाया करता था। एक ऊँचे टीले पर बैठकर लाशों का दृश्य देखता था। मन की अवस्था बयान से बाहर। डलमऊ का अवधूत-टीला काफी ऊँचा, मशहूर जगह है। वहाँ गंगाजी ने एक मोड़ ली है। लाशें इकट्ठी थीं। उसी पर बैठकर घण्टो वह दृश्य देखा करता था। कभी अवधूत की याद आती थी, कभी संसार की नश्वरता की।

एक दिन पूछ-पूछकर कुल्ली वहाँ पहुँचे। पहले दुखी थे, मेरे लिए समवेदना लिये हुए थे, देखकर मुस्किरा दिये—वड़ी निर्मल मुस्कान। मैंने देखा—यह सच्चा मित्र है।

कुल्ली ने कहा, "मैं जानता हूँ, आप मनोहर को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की ही जगह मार देता है, होश कराने के लिए। आप मुझसे ज्यादा समझदार हैं, और मैं आपको क्या समझाऊँ ? पर यह निश्चित रूप से समझिएगा, भोग होता है, अच्छा वह है, जिसका अन्त अच्छा हो।"

मैं अवधूत की कुटी की गड़ी ईंटें देख रहा था। कुल्ली ने कहा, "यहाँ आप क्यो आये हैं ? क्योंकि मृत्यु का दृश्य आपने देखा है। मृत्यु के बाद मन शान्ति चाहता है। जो मर गये हैं, वे भी शान्ति प्राप्त कर चुके हैं। यह अवधूत-टीला है। वहुत पहले यहाँ एक अवधूत रहते थे। वस्ती से यह जगह कितनी दूर है ! मरघट से भी दूर है, यानी अवधूत मृत्यु के बाद जैसे पहुँचे हो। यहाँ जैसे शान्ति-ही-शान्ति हो।"

कुल्ली की वात वड़ी भली मालूम दी। बड़ा सुन्दर तत्त्व जैसे निहित था। मुझे वड़ा आश्वासन मिला। ऐसी वात इधर मैंने किसी से नही सुनी थी।

कुल्ली ने कहा, "चलिए, रामगिरि महाराज के मठ मे दर्शन कीजिए। आप वहाँ हो तो आये होगे ?"

मैंने कहा, "नहीं।"

कुल्ली उठे। उनके साथ मैं भी चला गया।

दस

इसके वाद मैं अपनी नौकरी पर चला गया। कुछ दिन नौकरी करने के वाद एक दुर्घटना हुई। एक साधु आये। एक पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, धूनी रमाये, चिमटा

गाड़े। मेरी निगाह नये ढंग की थी। साधु के सम्बन्ध मे भी निगाह नयी हो गयी थी, स्वामी विवेकानन्दजी और स्वामी रामतीर्थजी की बातें सुनकर, किताबें पढ-कर। साधु का सम्बन्ध पारलौकिक साधना से होता है, साधना प्राचीन ढंग की तरह-तरह की है। मैं बिलकुल आधुनिक था। आदमी सत्य की प्राप्ति के बाद समझने की अपेक्षा नही रखता, क्योंकि सत्य स्वयं तब समझ के तौर पर मिल जाता है। उस पर आधुनिकता और प्राचीनता के नाम का केवल प्रभाव पड़ता है। मैंने जिन साधुओ को पढा था, उन्होने नशे के खिलाफ बहुत-कुछ लिखा था। पर जो साधु नशा करते है, वे रास्तों पर मारे-मारे फिरते है। स्वामी विवेकानन्दजी या स्वामी रामतीर्थजी की तरह अँगरेज़ीदाँ नही, न अँगरेज़ीदाँ उनके शिष्य है, जो गाँजे की चिलम से भड़क जायँगे। ऊँचे सत्य मे विद्या की भी गुंजाइश नही रहती, शब्द खत्म हो जाता है, लिहाजा रास्तो पर घूमनेवाले थकान की प्रतिक्रिया मिटाने के लिए नशा करते हैं। जिस तरह रोग मे जहर का प्रयोग चलता है, उसी तरह जीवन के नाश मे, प्रतिक्रिया मे वे नशा करते हैं। उनके पास चरित्र का मूल्य है, पर उस चरित्र का अर्थ ऐसा नही कि आदमी सात रोज पाखाना न जाय, या पाँच रोज पेशाब न करे, तो सिद्ध है।

अँगरेज़ीदाँ गृहस्थ अँगरेजीदाँ साधु ही खोजता है, क्योंकि यूरोप की, अमेरिका की बाते होनी चाहिए, इस पर उनकी क्या राय है। सत्य के पास यूरोप, अमेरिका नही। रास्तेवाले साधु यहाँ अँगरेज़ीदाँ साधुओं को ही धोखा देता हुआ समझते है। मैंने कइयो को कहते सुना है, अपना-अपना गढ बनाये हुए है। खैर, यह साधु अनेक अर्थो मे साधु थे। इनकी इच्छा थी, जगन्नाथजी जायेंगे, किराया मिल जाये। राजा साहब के हाउसहोल्ड सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब इन पर प्रसन्न थे। उन्होंने राजा साहब से इनकी साधुता की तारीफ करते हुए इनके किराये की प्रार्थना की। राजा साहब ने सुन लिया।

कचहरी हो जाने पर शाम से दस बजे तक मै राजा साहब के पास रहता था। उन्हें गाने-बजाने का शौक था। अच्छा मृदंग बजाते थे। जाने पर उन्होने कहा, "एक साधु आये है; देख आओ।"

राजा लोग एक विषय को अनेक मुखों से सुनते है, तब राय कायम करते है, इसलिए कि उनके कान-ही-कान हैं, आँखें सब जगह नही पहुँचती। मैंने राजभक्ति की पराकाष्ठा दिखलाते हुए उसी वक्त कहा, "हुजूर, राजकोष का रुपया इस तरह नही खर्च होना चाहिए।"

तब मेरे मस्तिष्क मे अनेक तरहें थी, जैसी उपयोगितावादी में होती हैं। राजा साहब मुस्किराये। मैं कुछ नही समझा। लेकिन उनकी आज्ञा की उपयोगिता समझता था, क्योंकि नौकर था। प्रणाम करके साधु के पास चला। मन मे यह निश्चय लिये हुए कि कोष की एक कौडी नही जानी चाहिए। मन मे यह भाव होने के कारण साधु के प्रति रूप कैसा था, कहने की आवश्यकता नही।

मुझे देखते ही साधु ने कहा, "आइए।"

मैंने मन में कहा, 'यही तो ठग विद्या है।' खुलकर कहा, "तुम काम क्यों नही करते ?"

साधु ने मुझे 'आप' कहा था, मैने 'तुम' कहा, तब मुझे यह नहीं मालूम था— ईश्वर की प्राप्ति के लिए निकला हुआ मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति के बाद दग्ध-कर्म हो जाता है। उसके मन मे केवल ईश्वर रहता है।

साधु ने कहा, "मैं 'आप' कहता हूँ, आप 'तुम' कहते है। मै क्या काम करूँ ?"

मेरी 'आप' कहने की प्रवृत्ति नही हुई। मैंने कहा, "तुम्हें संसार में कोई काम ही नही मिलता ?"

साधु ने कहा, "आप फिर 'तुम' कहते है। यह सब काम कौन करता है ?"

मुझे मालूम हुआ, यह पूरा ठग है। क्योकि लिखी किताबो मे साधुओं के हथकण्डे और तरह-तरह की शिकायतें पढ़ी थी। कहा, "तुम्हें रुपया नही मिलेगा।"

साधु ने कहा, "होश मे आ।" और चिमटा जोर से जमीन मे गाड़ दिया।

मुझे मालूम हुआ, वह चिमटा मेरे सिर मे समा गया। गर्दन झुक गयी। लेकिन मुझमें मामूली आग नही थी। मेरा अभिप्राय असत्य था। फिर भी साधु के प्रति श्रद्धा न निकली।

साधु ने जैसे सिर पर सवार होकर पूछा, "तू राजा है ?"

जो अपराध मैं कर रहा था, वही साधु करने लगे, क्योंकि मैने साधु को 'तू' नही कहा था, 'तुम' कहा था। पर अभी मैं अपने को सँभाल रहा था, जैस-लड़ने-वाला नीचे चला गया हो, हार न खायी हो। सँभलकर कहा, "नही, मै राजा नही हूँ।"

साधु व्यंग्य कर रहा था, उसका राजा का अर्थ राम था; मेरा केवल सीधा, वही राजा, जहाँ से मैं आया था।

साधु ने कहा, "तू नौकर है, तो नौकर की तरह बातें क्यों नही करता ?"

साधु फिर भूला। नौकर भी राम है। खास तौर से मै महावीर को अधिक प्यार करता था, राम को कम।

साधु चाहता था, मै अपनी पकड छोड़ दूँ, तो वह होश दे दे, लेकिन मेरी पकड़ मे नौकर नहीं था, साक्षात् महावीर थे। पकड़ छुड़ाने के लिए साधु ने कहा, "तेरी नौकरी नही रहेगी।"

अगर मै यहाँ करुण हुआ होता, तो साधु ने बाजी मारी होती। मैंने कहा, "महाराज, तब तो मैं बच जाऊँ।" यह महावीर की ही वाणी थी, राम के प्रति। तब मैं यह कुछ नही जानता था।

साधु के होश उड़ गये। यह नौकरी के लिए आग्रह नही था, फिर मेरे सिर उतने बच्चों का बोझ था।

साधु रोने लगे। कहा, "अरे, तेरे लिए मैने घर-बार छोड़ दिया, और तू मुझे सताता फिरता है ?"

अब मैं भी समझा। मुझे ज्योति भी दिखी। पहले 'जुही की कली' लिखते वक्त दिखी थी, तब नही समझा था। अबके एक साधु ने पहचान करा दी।

मैं चलने लगा, तो साधु ने कहा, "तो चलो, चलें।"

लेकिन मैंने संसार की तरफ खीचा, क्योकि ज्ञान के साथ कर्म-काण्ड जो

वाकी था, उसकी ओर आकर्षण हुआ। इस समय साधु को वैसा ही कष्ट हुआ, जैसा मुझे हुआ था। बडी ही करुण ध्वनि की, जैसे वदन टूट रहा हो।

राजा साहव के पास गया, तव सव भूल गया, जड राजा का भूत सवार हो गया। राजा साहव ने पूछा, "कैसे साधु है?" मैंने कहा, "ऐसे आदमी को रुपये नही देने चाहिए।" राजा साहव चुप हो गये।

सुवह सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव फिर आये, और वीस रुपये की मंजूरी करा ली। रुपये लेकर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव गये। पर हाथ जो वढ़े, वे दम्भ के हाथ थे। साधु ने कहा, "मैं रुपये नही लूंगा। कल राजा आये थे। मैंने उन्हें नाराज कर दिया है। मैं जाता हूँ।" कहकर अपना चिमटा वही फेंक दिया, और चले गये।

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव ने रास्ता रोककर कहा, "महाराज, वह राजा नही था, वह तो एक मामूली नौकर है।"

साधु ने कहा, "तू नही समझता, वह राजा था।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव मुँह फैलाकर देखने लगे। साधु चले गये।

कुछ देर वाद मैं भी उस रास्ते से गुजरा। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव ने कहा, "तुमने कल साधु से क्या कहा था—मैं राजा हूँ?"

"नही दादा," मैंने कहा, "मैंने ऐसा तो नही कहा।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट मुझसे भी वड़े राजभक्त थे। कहा, "तुमने कहा है। साधु ने रुपये नही लिये, अपना चिमटा फेंककर चला गया। मैं महाराज से अभी रिपोर्ट करता हूँ।"

कौन समझना है, वह निश्छल नत जन विश्व के सामने नत है—वह दादा कहनेवाला और है। यह सलाम करनेवाला नही।

दादा ने राजा साहव से रिपोर्ट की, वड़े उदात्त शब्दों मे। सुनी वात पर जैसी अतिशयोक्ति होती है।

मेरे जाने पर सस्नेह राजा साहव ने कहा, "तुमने साधु से कहा था—मैं राजा हूँ?"

उत्तर उस तरह मुझसे न देते वना, जिस तरह देना चाहिए था, क्योंकि मैं भी राजा को साक्षात् पुरुषोत्तम नहीं देख रहा था। कहा, "हाँ, मैंने कहा, राजा का नौकर राजा नही तो क्या है?"

यह अद्वैतवाद राजा समझते थे। भारत की नौकरशाही का यही अर्थ है।

उस समय के लिए निष्कृति मिली। कठिन संसार की उलझन साथ ही थी। एक दिन मै राजा साहव के यहाँ से अपने डेरे जा रहा था, रात के ग्यारह वजे होगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव कचहरी नही गये थे। लेकिन हाथीखाने के पास, जो जगह उनके मकान से मील-भर है, मुझे मिले। यह शराव पीते हैं, यह मशहूर वात थी, शराव पीनेवाला और भी वहुत-कुछ करता है। संसार का अपना एक चरित्र है—दिखाऊ। उसके प्रतिकूल कुछ होने पर घवराहट होती है। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहव को रात ग्यारह वजे देखने के साथ मैं चौंका, वह भी चौंके। वह मेरी शिकायत कर चुके थे, इसलिए भी। मैं चौका, वह यहाँ इतनी रात को क्या कर रहे हैं। चौंका-चौंकी के साथ मुझे शराब की बू मालूम दी। पर मैं चुपचाप चला गया।

दूसरे दिन कथा-प्रसंग पर मैंने राजा साहब से कह दिया, पर शिकायत के तौर पर नही, मजाक के तौर पर। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब पीते है, यह सब लोग जानते थे, राजा साहब और बहुत जानते थे। हँसने लगे।

पर बड़े आदमी कहलानेवाले लोग अपने मातहत रहनेवालों या नौकरों से तरह-तरह से पेश आते हैं। एक दिन एकाएक मुझे हुक्म हुआ, "गोपालजी के मन्दिर मे जाकर कसम खाकर कहो, तुमने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को शराब की हालत मे देखा है।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को हुक्म हुआ, "तुम कहो, मैने नही पी।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब संसारी आदमी थे। एक गवाह ठीक कर लिया था— फीलवान, यह कहने के लिए कि सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के लड़के को भूत लगा था, वह फूंक डालने गया था। उसे हुक्म हुआ, वह कुरान लेकर कहे।

कसम के दिन फीलवान नही गया। हम दोनों गये। मैंने जैसी सुगन्ध पायी थी, उसके लिए कसम खायी। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बिलकुल डकार गये।

कसमी-कसमा हो जाने के बाद मैंने इस्तीफा दाखिल किया। राजा साहब को एक निजी पत्र लिखा, "मेरे धर्म-स्थल पर हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार न था। फिर मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की नौकरी लेने के लिए नही कहा था।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने उन्हें यही समझाया था कि उस साधु के सम्बन्ध में चूंकि उन्होने सही-सही बातें कही है, इसलिए उनकी नौकरी लेने के अभिप्राय से मैंने यह जाल रचा है। अब जब से हुजूर ने वह सब काम छोड़ दिया है, तब से हुजूर की बराबर अनुवर्तिता वह कर रहे है, इसीलिए हुजूर ने गुरुमन्त्र लेने की बात भी कही थी। गुरुमन्त्र का प्रभाव होता ही है।

मेरा इस्तीफा मंजूर न किया गया। राजा साहब की चिट्ठी आयी, "यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।"

मैंने कहा, "अध्रुव की ही सेवा सही, मेरी तनख्वाह दे दी जाय, मेरा काम समझ लिया जाय।"

नौकरी छोड़ दी। कई लोग, यहाँ तक कि असिस्टेण्ट मैनेजर साहब, जिन पर रोज रिश्वत का इलजाम लगता था, मिलने पर कह गये, "यहाँ तुम्हीं एक आदमी हो। बहुतों ने झुकी कमर सीधी कर-करके देखा।" मैंने अपनी चीजें नीलाम करके, एक भतीजे को साथ लेकर गाँव का रास्ता लिया।

गाँव पहुँचकर ससुराल गया। देश मे पहला असहयोग-आन्दोलन जोरों पर था। खलिहानो मे बैठे हुए किसान जमीदारों से बचने के लिए रह-रहकर 'महात्मा गांधीजी की जय' चिल्ला उठते थे। कुछ अति आधुनिक सरकारी नौकर, जमीदार और पुलिस के आदमी मजाक करते थे—तरह-तरह के अपशब्द। कुछ अकर्मण्य मालदार राजनीतिक विद्वान् अखबारों का उलथा कर-कर टीका-टिप्पणी के साथ समाज मे चर्चा करते हुए पाचन-शक्ति बढ़ा रहे थे। ऐसे ही एक ने मुझसे कहा, "महात्माजी ने सिद्ध कर दिया है, चर्खा चलाने से कम-से-कम रोटियाँ चल सकती हैं।"

मैं वेकार था। 'सरस्वती' से कविता-लेख वापस आते थे। एक-आध चीज छपी थी। 'प्रभा' में, मालूम हुआ, बड़े-वडे आदमियों के लेख-कविताएँ छपती हैं। एक दफा ऑफिस जाकर वातचीत की, उत्तर मिला, इसमे 'भारतीय आत्मा', 'राष्ट्रीय पथिक', मैथिलीशरण गुप्त-जैसे कवियो की कविताएँ छपती हैं। ऐसे ही कुछ लेखको के नाम सुने। मुंह लटकाकर लौट आया। जीविका का कोई उपाय न था। चार भतीजो की परवरिश सिर पर। जिन सज्जन ने चर्खे की उपयोगिता समझायी थी, उन्हें एक तकुआ खरीद लाने के लिए पैसे दिये थे, वह कानपुर गये थे। यहाँ मेरे गाँव के पडोस मे कोरी वुनाई का काम करते है, मैं सीखने के लिए रोज जाने लगा। कोरियो ने कहा, "तुम महाराज होकर क्या यह काम करोगे ? अरे, कही भागवत वाँचो।"

वह सज्जन कानपुर से लौटे, वोले, "जल्दी मे था, खरीदने की याद नहीं थी।"

मन मे अत्यधिक उथल-पुथल थी। इसी समय कन्यादायग्रस्त भी आ-आकर घेरते थे। वर्णनो मे किसी की कन्या इन्दिरा से कम न थी। बडा गुस्सा आया। ससुराल चला गया। कन्यादायग्रस्तो की संख्या वहाँ और अधिक दिखी। एक दिन गगा के किनारे वैठा था। टहलते हुए कुल्ली आये। समय का प्रभाव कुल्ली पर वहुत पडा था। चेह॰ से सभ्य राजनीतिक हो गये थे। मुझे देखकर उसी ढंग से नमस्कार किया। पहले की अदालतवाली सभ्यता अव राजनीतिक सभ्यता मे वदली है, मैंने देखा। मैं वैठा था। कुल्ली ने सोचा, मैं कोई महान् राजनीतिक कर्मी हूँ। इधर कुल्ली अखवार पढने लगे थे। त्याग भी किया था, अदालत के स्टाम्प वेचते थे, वेचना छोड़ दिया था। महात्माजी की वातें करने लगे। मै सुनता रहा। जव कुछ पूछते थे, तव जितना जानता था, कहता था।

एकाएक भाव मे उमड़कर कुल्ली ने कहा, "मुझे कुछ उपदेश दीजिए।"

मैं जला हुआ था ही। कहा, "गंगा में डूव जाइए।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?" पूरे राजनीतिक आश्चर्य मे आकर पूछा।

"आप डूव सकते है या नही ?"

"डूव कैसे जाऊँ ? कोई मतलव की वात भी हो ?"

"मतलव की वात मुझे नही आती।"

"तो आप वे-मतलव यहाँ वैठे हुए हैं ?"

"हाँ, इतना ही मतलव था। आपसे मिलने के मतलव से तो नही आया था ?"

कुल्ली मेरी ओर देखते रहे। उन्हें नही मालूम था, इनके चारो ओर आग लगी है। चुपचाप उठकर चले गये।

अनेक आवर्तन-निवर्तन के वाद मैं पूर्ण रूप से साहित्यिक हुआ। कुछ ही दिनों मे कविता-क्षेत्र में जैसे चूहे लग जायें, इस तरह कवि-किसानों और जनता-जमींदारों मे मेरा नाम फैला। साल ही भर मे इलाहावाद के श्रीहर्ष और कलकत्ते के कालिदास हिन्दी के काव्य का उद्धार करने के लिए आ गये, एक ही समय में। पुराने स्कूलवालों ने अपनी मोर्चाविन्दी की, और लड़ाई छेड़ दी। पर हार-पर-हार खाते गये; कारण, वुद्धि की वारूद नही थी। एयरगन की फुट्‌फैर होकर रह गयी। इस तरह अव तक अनेक लड़ाइयाँ हुई। पर नये लड़नेवालो से लड़ने पर पुराने वरावर हारे हैं।

अस्तु, हिन्दी के काव्य-साहित्य का उद्धार और साहित्यिकों के आश्चर्य का पुरस्कार लेकर मैं गाँव आया। गाँव से ससुराल गया। कुल्ली मिले। अखवार पढ़ते थे। अखवारों मे मेरा नाम, आलोचना आदि मे पढ़ चुके थे, जाने पर वड़ी आव-भगत उन्होंने की। एकटक देखते रहे। अव उनका वह प्रियजन विकास पर है। इस वार अपने घर के जितने कवियों की चर्चा की, सवको उतारकर, क्योंकि अखवारों में उनकी वैसी आलोचना नहीं छपती थी, फिर वे राजा के आश्रित थे।

कुल्ली ने मुझे देखते हुए आवेग से पूछा, "आपने दूसरी शादी नही की?"

मैंने कहा, "करने की आवश्यकता नही मालूम दी।"

पूछा, "रहते किस तरह हैं?"

उत्तर दिया, "एक विधवा जिस तरह रहती है।"

कुल्ली, "विधवाएँ तो तरह-तरह के व्यभिचार करती है।"

मैं—"तो मैं भी करता हूँगा।"

कुल्ली वहुत खुश हुए। कहा, "लेकिन पाप होता है।"

मैं—"पुण्य के साथ-साथ पाप हो, तो डर नही। कहा है—एक अंगारा पहाड़-भर भूसा जला सकता है।"

कुल्ली जमे। पूछा, "समाज के लिए आपके क्या विचार है?"

"जो कुछ मैं कह गया," मैंने कहा, "इसी का नाम समाज है। जो कुछ वहता है, उसमे हमेशा एक-सा जलत्व नही रहता।"

"आप हिन्दू-मुसलमान के सम्वन्ध में क्या कहते है?"

मैं—"हिन्दू मुसलमान वन सकता है, मुसलमान हिन्दू नहीं।"

कुल्ली वहुत खुश हुए। उनके दिल की वात थी। उनका इतिहास मुझे मालूम न था, लेकिन वह अपने जीवन के अनुभव और सत्य को मुझसे मिला रहे थे। पूरा उतरता देखकर कहा, "एक मुसलमानिन है। मैं उससे प्रेम करता हूँ। वह भी मेरे लिए जान देती है। ले चलने को कहती है, पर यहाँ के चमारों से डरता हूँ।"

मैंने कहा, "चमारो से सभी डरते हैं, लेकिन जूते गाँठने के लिए देते रहने पर दवे रहते हैं चमार।"

"तो आपकी राय है, ले आऊँ?"

मैं कलकत्ते का हिन्दू-मुस्लिम दंगा देख चुका था। उन दिनों अखबारों में यही चर्चा थी। बाजे के प्रश्नोत्तर चल रहे थे। इसी पर मुंशी नवजादिकलाल साहब महादेव बाबू को चार महीने की सख्त सजा दिला चुके थे। छूटने पर मैं स्वागत करा चुका था। समय का रंग सब पर रहता है, लड़कपन हो, जवानी। मैंने पूरी उत्तेजना से कहा, "अवश्य ले आओ।"

कुल्ली में जैसे स्वर्गीय स्पिरिट आ गयी। उदात्त स्वर में बोले, "ये हिन्दू नामर्द हो गये हैं। दूसरे को भी नामर्द करना चाहते हैं।"

"आप इनके सामने आदर्श रखिए।" मैंने कहा।

कुल्ली झटके से उठे, उसी वक्त आदर्श रखने के विचार में, और सीधे उसी प्रिया के घर गये, उसे ले आने के लिए।

बारह

इन दिनों मैं लखनऊ रहने लगा था। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन समाप्त हो चुका था। अछूतोद्धार की समस्या थी। इसी समय दलमऊ गया। कुल्ली की पूर्ण परिणति थी। राजनीति और सुधार दोनों के पूर्ण रूप थे। आन्दोलन का केन्द्र रायबरेली था, तब कुल्ली काफी भाग ले चुके थे। पहले नमक-कानून दलमऊ में तोड़ा जानेवाला था, तब कुल्ली ने ही खबर दी थी कि पुलिस गोली चलाने की तैयारी में है। तब कार्यकर्ता दलमऊ से हटकर रायबरेली चले गये थे, ताकि पुलिस को तकलीफ न हो। अदालत जानेवाले वकीलों, पुलिस के नौकरों, सरकारी अफसरों, पण्डों, पुरोहितों, जमींदारों और ताल्लुकेदारों से घृणा करने लगे थे। प्रसंग-वश ब्राह्मणों से भी घृणा करने लगे थे।

कुल्ली एक अच्छे-खासे नेता की तरह मिले। मिलते ही पूछा, "आपके उधर कैसा कार्य है?"

मैंने ताज्जुब से पूछा, "कौन-सा कार्य?"

"यही, जो चल रहा है।" कुल्ली ने भी आश्चर्य से मुझे देखते हुए कहा।

"राजनीतिक?" मैंने सीधे-सीधे पूछा।

"हाँ, यही आन्दोलनवाला।" कुल्ली कुछ कटे हुए बोले।

"अब तो समाप्त है।"

"इससे कुछ होगा?"

"किससे क्या होता है, क्या मिलता है, क्या जाता है, यह मैं नहीं जानता, इसलिए मानता भी नहीं; कुछ मेरी भी सुनी-सुनायी, पढ़ी-पढ़ायी बातें हैं, उन्हीं में कुछ नमक-मिर्च अपनी समझ से मिलाकर।"

कुल्ली खुश हो गये। एक भेड़ बनता है, तो दूसरा भेड़िया बनने का हौसला

दवा नहीं सकता। इसीलिए अब तक दीनता और दीन की ही संसार के लोगों ने ऊँचे स्वर से तारीफ की है। मैं साधारण आदमी हूँ, इसने कुल्ली को असाधारणता का बोध तत्काल करा दिया। मुझसे कहा, "मैं उसे ले आया।"

"किसे ?"

"उसी मुसलमानिन को।"

"तब तो मेरी पहली बात तुमने मान ली। मैंने कहा था, तुम गंगा में कूद पड़ो, तुम मुझे लाँग समेटे हुए ही उस वक्त देख पड़े थे।"

कुल्ली ने आश्चर्य से कहा, "गंगा में कैसे कूदा ?"

"किताब मे स्त्री को नदी कहा है। नदियो में गंगा श्रेष्ठ है। तुम श्रेष्ठ स्त्री ले आये हो।"

कुल्ली प्रसन्न हो गये। बोले, "लेकिन एक बात है, यहाँवाले मानते नहीं।"

"जब जानेंगे, तब मानेंगे।" मैंने कुल्ली की छड़ी देखते हुए कहा, "किसी को यह संशय नही कि यह छड़ी नहीं।"

कुल्ली ने भी अपनी छडी देखी, और मुस्किराकर कहा, "लोग सताते है। पथवारी देवी के दर्शनो के लिए भेजा था, लोगो ने मन्दिर के दरवाजे पर भी नही जाने दिया।"

"तुम्हें समझना था, देवीजी ने कृपा की, ज्ञान दिया, क्योंकि वह मन्दिरवाली नही थी, पथवाली थी।"

"अच्छा !" कुल्ली बहुत खुश हुए। कहा, "इसलिए पथवारी कहते है !" नम्र होकर बोले, "मेरा नाम भी पथवारीदीन है।"

"तब ?" मैंने कहा, "और पथवारी देवी उसे क्या देतीं ?"

"आप बहुत-बहुत बड़े ज्ञानी है," कुल्ली ने हाथ जोडकर मुँह के सामने हाथी की सूँड़ उठायी। मैंने मन मे कहा, 'देखो, अब कौन ज्ञानी है।'

"देखो कुल्ली," मैंने कहा, "गणेशजी जितने ज्ञानी है, मैंने सुना है, उतने ही मूर्ख हैं। बंगाल में हस्तिमूर्ख कहते है, यानी हाथी की तरह का मूर्ख, इससे बड़ा मूर्ख दूसरा नही। एक दफा मेरे एक दोस्त जंगल में शिकार खेलने गये थे। एक शेर मारा। मारकर पत्तों से ढककर उसे नीचे डालकर फिर मचान पर जा बैठे कि एक-आध हिरन आ जाय, तो मारकर खाने का भी इन्तजाम कर लें। इत्तिफाक, आया हाथियों का झुण्ड। जंगली हाथी सबसे खतरनाक है। क्योंकि वह हिलाकर पेड़ से भी आदमी को कैथे की तरह गिरा लेता है, या डाल तोड़कर नीचे लाता है। मेरे मित्र पक्के शिकारी थे। उन्हें यह सब मालूम था। मचान कुछ ऊँचा था। हाथियों के नायक के सूँड़ बढाते ही उन्होंने अपनी बन्दूक नीचे डाल दी, ठीक उसी जगह, जहाँ शेर मारा ढका था। हाथी बन्दूक लेकर तोड़ने लगा। तब तक मेरे मित्र और ऊँची डाल पर चले गये। बन्दूक तोडकर पत्तों से ढकी चीज को देखने की उत्सुकता से हाथी ने सूँड बढायी। पत्ते खोलते ही शेर दिखा। हाथी बेतहाशा भागा, उसके साथी भी भगे। मित्र बच गये, यद्यपि यह एक संयोग की बात थी, पर इसमें शिक्षा की कमी नही। जहाँ हाथी सताते हों, वहाँ शेर की खाल काम देती है। बुद्धि इसी-लिए सबसे ऊपर है।"

कुल्ली समझ गये कि कहनेवाला और जो कुछ हो, वेवकूफ नही। बोले, "अछूत-पाठशाला खोली है। तीस-चालीस लड़के आते हैं, धोवी, भगी, चमार, डोम और पासियों के। पढाता हूँ। लेकिन यहाँ के वड़े आदमी कहे जानेवाले लोग मदद नही करते। यहाँ के चेयरमैन साहव के पास गया, वह जवान से नही बोले, हालाँकि शहर के आदमी है। टाउनएरिया मे सिर्फ कुछ घर हैं। वाकी गगापुत्रो की वस्ती है। ये लोग उदासीन है। कुछ सरकारी अफसर है, वे भड़काया करते है। कैसे काम चले ? मदद कही से नही मिलती। जो काम करता था, आन्दोलन मे छोड़ दिया। अव देखता हूँ, उसी गवे पर फिर चढ़ना होगा।"

मैंने सोचा, 'यह कार्य की वात है, रस की नही। जिन्हें कार्य करना है, वे अपना रास्ता खोज लेंगे। जरा कुल्ली से एक चोट कसकर मजाक क्यों न किया जाय। जहाँ तक रस मिले, पान करना चाहिए, आर्यो की सन्तान हूँ, सोमरस के अभाव मे ताडी का प्रयोग प्रशस्त है, काका कालेलकर साहव ने समझा दिया है। प्रकृति को पर्दे मे रखना दुनिया के आदमियों का काम है। जिन्हें कही खुला नजर आयेगा, आप रुकेंगे।'

खुलकर पूरे एमोशन के साथ कहा, "महात्माजी को लिखिए।"

कुल्ली मे इतना उच्छ्वास आया, जैसे उनकी अर्जी मंजूर हो। पूछा, "महात्मा-जी का पता क्या है ?" मैंने पता वतला दिया।

नोटवुक निकालकर कुल्ली नोट करते रहे। फिर सिर उठाकर मुझसे पूछा, 'महात्माजी के अलावा और भी किसी को लिखना चाहिए ?" जैसे न्योता भेज रहे हो।

"हाँ," मैंने कहा, "पं. जवाहरलाल नेहरू को।"

फिर सिर झुकाकर लिखते हुए पूछा, "आनन्द-भवन, इलाहावाद ?"

"या स्वराज्य-भवन, इलाहावाद।" मैंने कहा।

कुल्ली ने लिख लिया। फिर निश्चिन्त होकर मुझसे कहा, "एक रोज हमारे यहाँ चलिए, आपको सवकुछ दिखाऊँ; अपनी भौजी को भी देखिए।"

"साँवली हैं—गोरी ?" मैंने जल्द उत्तर पाने की गरज से पूछा।

कुल्ली मुस्किराये। कहा, "अपनी आँखो देखिए।"

"कुछ योग्यता ?" मैंने विलकुल आधुनिक फैशन के आदमी की तरह पूछा।

कुल्ली गम्भीर होकर वोले, "वहुत अच्छी रामायण पढती है। अभी गयी थी..." राजा साहव या रानी साहव, शिवगढ, या किसे, कहा, पढ़कर सुनायी; उन्हें वहुत खुशी हुई।

पूछना चाहता था, सिर्फ खुशी रही या वख्शिश भी मिली; लेकिन स्त्री और सभ्यता का विचार कर रह गया।

कुल्ली ने पूछा, "तो पाठशाला देखने कव आइएगा ?"

अछूतों का मामला, यहाँ चालाकी नही चलेगी, सोचकर मैंने कहा, "जव आप कहें, आऊँ। मैं समझता हूँ, परसों ठीक होगा, क्योंकि आप लड़कों को खवर भेज दे सकेंगे; उस रोज अधिक-से-अधिक लड़के हाजिर हो सकेंगे।"

नमस्कार कर कुल्ली विदा हुए।

मैं श्रीमती मुखोपाध्याय के यहाँ गया। ये स्त्रियों की चिकित्सा, प्रसव आदि के लिए खासतौर से नियुक्त सरकारी डॉक्टर थीं। इनके पति मुखोपाध्याय महाशय उस समय बंगाल से आकर वही रहते थे। श्रीमती मुखोपाध्याय उनकी दूसरी या तीसरी पत्नी थी। ईश्वर की कृपा से उनके एक पुत्र और सात-आठ कन्याएँ थीं। जब कन्याओं को लेकर गंगा नहाने जाती थी, तब देखनेवाले को 'व्वायज़ टु लिलिपुट' याद आ जाता था। मुखोपाध्याय महाशय सन्दिग्ध-स्वभाव के आदमी थे। कोई भी सरकारी अफसर लेडी डॉक्टर से मिलने जाता था, तब वह सन्देह करने लगते थे, पति-पत्नी मे अक्सर तकरार चलती थी, पर वृद्ध मुखोपाध्याय मुश्किल से एक रात पूरी उतार सकते थे। मनचले आदमी समझ गये थे, इसलिए सवेरे ही कोई-न-कोई पहुँचते थे।

मेरी-उनकी इस तरह जान-पहचान हुई कि मेरे एक सम्मान्य मित्र के यहाँ वह जाया करते थे। मित्र कान्यकुब्ज है, साथ सुप्रसिद्ध। वह मुखोपाध्याय महाशय को उतना ही वड़ा मानते थे, जितना बड़ा कलकत्ता-बम्बईवाले हिन्दोस्तानियों को मानते हैं। मुखोपाध्याय महाशय दुखी होते थे। एक दिन मैंने यह दृश्य देखा, तो आमन्त्रित करके इन्हें खिलाया। तब से इनके यहाँ कभी-कभी जाया करता था। मवेशी डॉक्टर भी बंगाली थे। वहाँ प्रायः रोज जाते थे। मुसलमान सब-तहसीलदार साहब भी जाते थे। मैंने कुल्ली के सम्बन्ध मे पूछा, तो सबको नाखुश पाया। कहा, "यह इतना अच्छा काम कर रहे है, आप इनसे सहानुभूति क्यों नही रखते?"

लोगों ने कहा, "अछूत-लडकों को पढ़ाता है, इसलिए कि उसका एक दल हो; लोगों से सहानुभूति इसलिए नही पाता; हेकड़ी है; फिर मूर्ख है, वह क्या पढायेगा? …तीन किताब भले पढा दे। ये जितने कांग्रेसवाले है, अधिकांश में मूर्ख और गँवार। फिर कुल्ली सबसे आगे है। खुल्लमखुल्ला मुसलमानिन बैठाये है। उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले जाकर गुरु-मन्त्र भी दिला आया है। पर आदमी आदमी हैं, जनाब, जानवर थोडे ही है? कान फुँकाने से विद्वान्, शिक्षक और सुधारक होता है? देखो तो, बीबी तुलसी की माला डाले है। दुनिया को ढोंग।"

तीसरे दिन कुल्ली आये। बडे आदर से ले गये। देखा, गड़हे के किनारे, ऊँची जगह पर, मकान के सामने एक चौकोर जगह है। कुछ पेड़ है। गडहे के चारो ओर के पेड़ लहरा रहे है। कुल्ली के कुटीनुमा बंगले के सामने टाट बिछा है। उस पर अछूत-लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे है। आँखों से निर्मल रश्मि निकल रही है। कुल्ली आनन्द की मूर्ति, साक्षात् आचार्य। काफी लड़के। मुझे देखकर सम्मान-प्रदर्शन करते हुए नतशिर अपने-अपने पाठ मे रत है। बिलकुल प्राचीन तपोवन का दृश्य। इनके कुछ अभिभावक भी आये है। दोनों मे फूल लिये हुए, मुझे भेंट करने के लिए। इनकी ओर कभी किसी ने नही देखा। ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत-मस्तक ही संसार से चले गये है। संसार की सभ्यता के इतिहास मे इनका स्थान नही। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे; रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होने लिखे है;

अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के है। फिर भी ये थे, और हैं।

अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढा है, कुछ नही; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने जम्बुको मे वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा-लिखा नही; लेकिन अधिक पढा-लिखा कोई उससे बड़ा नही। उसने जो कुछ किया है, सत्य समझकर। मुख-मुख पर इसकी छाप लगी हुई है। ये इतने दीन दूसरे के द्वार पर क्यों नही देख पडते ? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था।

इसी समय बिना स्तव के, बिना मन्त्र के, बिना वाद्य, बिना गीत के, बिना बनाव, बिना सिंगारवाले वे चमार, पासी, धोबी और कोरी दोने मे फूल लिये हुए मेरे सामने आ-आकर रखने लगे। मारे डर के हाथ पर नही दे रहे थे कि कही छू जाने पर मुझे नहाना होगा। इतने नत। इतना अधम बनाया है मेरे समाज ने उन्हें।

कुल्ली ने उन्हें समझाया है, मैं उनका आदमी हूँ, उनकी भलाई चाहता हूँ, उन्हें उसी निगाह से देखता हूँ, जिससे दूसरे को। उन्हें इतना ही आनन्दविह्वल किये हुए है। बिना वाणी की वह वाणी, बिना शिक्षा की वह सस्कृति, प्राण का पर्दा-पर्दा पार कर गयी। लज्जा से मैं वही गड गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सबकुछ देखती-समझती हैं। वहाँ चालाकी नहीं चलती। ओफ् ! कितना मोह है ! मैं ईश्वर, सौन्दर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ ! —फिर क्रान्तिकारी ! !

संयत होकर मैंने कहा, "आप लोग अपना-अपना दोना मेरे हाथ मे दीजिए, और मुझे उसी तरह भेटिए, जैसे मेरे भाई भेंटते है।" बुलाने के साथ मुस्किराकर वे बढे। वे हर बात मे मेरे समकक्ष है, जानते हैं। घृणा से दूर है। वह भेद मिटते ही आदमी-आदमी मन और आत्मा से मिले, शरीर की बाधा न रही।

इस रोज मैं और कुछ नही कर सका, देखकर चला आया, कुछ लड़कों से कुछ पूछकर।

तेरह

दूसरे रोज कुल्ली आये। नमस्कार-प्रणाम आदि के बाद बैठे। कहने लगे, "अछूत-पाठशाला खोलने के बाद से लोगों की रही सहानुभूति भी जाती रही। क्या कहूँ, आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं। वह अपने लिए सबकुछ चाहता है, पर दूसरे को जरा भी स्वतन्त्रता नही देना चाहता। इसीलिए हिन्दोस्तान की यह दशा है, मैं समझ गया हूँ।"

मैंने कहा, "कुछ सरकारी अफसरो से मेरी मुलाकात हुई थी। वे आपसे

नाराज हैं, इसलिए कि आप यह सब करते हैं। शायद आपसे उन्हें इज्जत नही मिलती। वे नौकर होकर सरकार है, यह सोचते हैं; आप उन्हें याद दिला देते है, वे नौकर हैं; उन्हें रोटियाँ आपसे मिलती है।"

कुल्ली हँसे। कहा, "और भी बातें है। भीतरी रहस्य का मैं जानकार हूँ, क्योकि यही का रहनेवाला हूँ। भण्डा फोड़ देता हूँ। इसलिए सब चौके रहते है। वह मेम है, सरकार की तरफ से नौकर है, लेकिन बच्चा होआने जाती है, तो रुपया लेती है, और एक की जगह दस-दस; मैने एक धोबिन को कहा, बुलाये और रुपया न दे, ज्यादा बातचीत करे, तो देखा जायेगा। धोबिन ने ऐसा ही किया। मेमसाहब नाराज हो गयी। यही हाल मवेशी-डॉक्टर का है। मुसलमान इसलिए नाराज है कि मुसलमानिन ले आया हूँ। अरे भई, तुम्ही गाते हो—दिल ही तो है, न संगोखिश्त दर्द से भर न आये क्यों? फिर नाराज क्यो होते हो? क्या यह भी कही लिखा है कि दिल सिर्फ मुसलमान के होता है? और हिन्दू, हिन्दू है बुजदिल, खासतौर से ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया बेचारा क्या करे—इस कोठे का धान उस कोठे करे, उसे फुर्सत नही, उसके लिए ये सब समझ से बाहर की बातें है क्योकि रुपये-पैसे की नहीं। आखिर क्या करूँ? आदमी हूँ, आदमियो मे ही रहना चाहता हूँ।"

मैंने कहा, "आपकी गंगा जिस तरह पवित्र करती हुई बह रही है, लोगों की समझ मे वह तरह नही आती, इसलिए कि वे जड़वादी है। वे जड गंगा का महत्त्व मानते है। अछूत ही इसमे ठीक-ठीक पवित्र होगे। पर कुछ दान लिया कीजिए। नही तो गुजर कैसे होगी?"

कुल्ली हँसे। बोले, "बहुत गरीब है; फिर मैं पहले जमींदार था, लोग अब भी नम्बरदार कहकर पुकारते है; आप जानते ही है, उनसे कुछ ले नही सकता। सिर्फ बत्ती का तेल लेता हूँ। रात को ही लडकों की पढ़ाई अच्छी होती है, क्योंकि बड़े लडके रात को ही अपने काम-काज से फुर्सत पाकर आते हैं।"

मैंने कहा, "भाभी साहबा को सुना, आपने पूर्ण रूप से शुद्ध किया है।"

"हाँ," कुल्ली ने मुस्किराकर कहा, "अयोध्याजी ले गया था। वहाँ गुरुमन्त्र दिलाया। लेकिन हिन्दू बड़े नालायक है। इस हद तक मुझे उम्मीद न थी। कहते है, बिल्ली को तुलसी की माला पहनाकर लाया है।" कहकर कुल्ली खुद हँसे।

फिर कहा, "यहाँ महेश-गिरि के मठ से कुछ रुपये माहवार मिलने की उम्मीद है। कुँवर साहब, सेमरी, चेयरमैन है यहाँ के ट्रस्ट के; मैंने उनसे निवेदन किया था, उन्होने देने का वचन दिया है। लेकिन यहाँ के जो लोग हैं, वे विरोधी हैं।"

मैंने कहा, "यहाँ कौन-कौन है, आप कहिए, मैं मिलकर उनसे कहूँ।"

उदास होकर कुल्ली ने कहा, "वे लोग न करेंगे।"

मैंने नाम पूछा। कुल्ली ने नाम बतलाये।

मैंने कहा, "अच्छा, नम्बरदार, ये लोग आपसे नाराज क्यों है?"

कुल्ली ने कहा, "सच बात कह दूँ; जब मैं मन्त्र लेवाकर आया, तब एक ने बड़े भले आदमी की तरह मुझसे आकर पूछा, 'कहो, नम्बरदार, कहाँ से मन्त्र

लिवाया ?' मैंने बतलाया। यहाँ से एक आदमी अयोध्याजी गया, और वहाँ जाकर पूछा कि राय पथवारीदीन की स्त्री को मन्त्र दिया गया है, तो क्या यह मालूम कर लिया गया है कि वह किस जाति की है ? गुरुजी के चेले ने पूछकर कहा कि राय पथवारीदीन की स्त्री है, बस। उस आदमी ने कहा, 'आपको धोखा दिया गया है, वह मुसलमानिन है।' गुरुजी के मठ मे खलबली मच गयी। उनके चेले बिगड जायेंगे, तो आमदनी का क्या नतीजा होगा, और फिर अयोध्याजी है, जहाँ रामजी की जन्मभूमि पर बाबर की बनायी मसजिद है,—हिन्दू-मुसलमानवाला भाव सदा जाग्रत रहता है, सोचकर, समझकर चेले ने कहा, 'आप जाइए, हम उसे छल करने की शिक्षा देंगे।' वह आदमी चला आया। मेरे पास चिट्ठी आयी, 'तुमने हमसे छल किया, इसलिए कण्ठी-माला-मन्त्र वापस कर दो; नही तो हम उलटी कण्ठी बाँधकर, उलटे मन्त्र से उलटी माला जपकर अपना दिया मन्त्र वापस ले लेंगे।' "

कौतूहलवर्धक बात थी। मैंने पूछा, "तब तो तुम्हे कोई अधिकार नही।"

कुल्ली बोले, "जब तक दम नही निकलता। जब तक है, तब तक सबके जो अधिकार हैं, मुझे भी है; हालाँकि यन्त्र-मन्त्र पर मुझे यो भी विश्वास नही। लेकिन जिन्हें है, उन पर है। लिहाजा यह सब करना पडा।"

"फिर तुमने भी कोई जवाब दिया ?" मैंने पूछा।

"हाँ; कसकर। गुरुजी की बोलती बन्द हो गयी। मैंने लिखा, जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नही ग्रहण कर सकते, तब आप गुरु नही, ढोंगी हैं, आपने व्यापार खोल रक्खा है, आपमे हृदय का बल नहीं, आप एक नही, सौ उलटी माला जपिए। हिन्दुओ ने बराबर समाज को धोखा दिया है। लेकिन यह कबीर की बहन है। इसे कोई धोखा नही दे सकता। इसमे श्रद्धा है। श्रद्धा न होती, तो मेरे पास न आती। कबीर को भी रामानन्द ने ऐसी ही बात कही थी। लेकिन कबीर समझदार था। इसीलिए आप-जैसे सैकडो गुरु उनके चेले हुए। हिन्दुओ को चराया, मुसलमानो को भी, और था महामूर्ख।" कुल्ली ओज मे आ गये थे। कहकर हाँफने लगे।

मैंने सोचा, कुछ सुस्ता ले। कुछ देर बाद मैंने पूछा, "आपने महात्माजी को लिखा ?"

कुल्ली ने कहा, "जान पडता है, वह भी ऐसे ही होंगे।"

मैंने कहा, "नही, साल-भर अछूतोद्धार करने का उन्होने कार्य ग्रहण किया है। देश के इस कोने से उस कोने तक दौरा करेंगे।"

कुल्ली ने कहा, "बस, दौरा-ही-दौरा है। काम क्या होता है ? पहले अछूतों की बात नही सोची ? जब सरकार ने पेंच लगाया, तब खोलने के लिए दौड़े-दौडे फिर रहे हैं।"

मैंने कहा, "अच्छा, यह बताओ दोस्त, तुमने भी पेंच मे पडकर अछूतोद्धार सोचा है या नही ?"

कुल्ली नाराज हो गये। कहा, "मेरे साथ भी कोई जमात है ? और अगर यही है, तो बैठा लें महात्माजी मुसलमानिन।"

"तुम कैसे हो ?" मैंने डाँटा, "वह बुड्ढे हो गये है, अव मुसलमानिन वैठायेंगे !"

कुल्ली शान्त हो गये। कहा, "एक वात कही।" फिर शायद खत लिखने की सोचने लगे। सोचकर कहा, "कोई चारा नही देख पड़ता। हाथ भी बँधे हैं। लेकिन काम करना ही है। क्या किया जाय ?"

मैंने कहा, "नम्वरदार, 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इसीलिए कहा है। जिधर चलना चाहते हों आप, उधर चले हुए वहुत आदमी नजर आयेंगे आपको—आपसे वडे-वड़े, उसी तरफ चले जाइए। आज तक ऐसा ही हुआ है। कोई कुछ काम करता है, तो दुनिया से ही वस्तु-विषय ग्रहण करता है, और उस विषय के काम करनेवालों को देखता है, पढता है, सीखता है, समझता है, तव अपनी तरह से एक चीज देता है। आप अछूतोद्धार कर रहे है, कीजिए, करनेवालो से मिलिए, उनकी आज्ञा लीजिए; जिन्हें अधिकांश जन मानते है, मेरे-आपके न मानने से उनकी मान-हानि नही होती, यही समझिए, मैं-आप उनके मुकावले कितने क्षुद्र है। अगर यह धोखा है, तो इस धोखे को आप तो नही मिटा सकते ? आप अपना रास्ता भी नही निकाल सकते, क्योकि अभी आपने ही कहा—चारा नही, हाथ भी बँधे हैं। महात्माजी को संसार की वड़ी-वड़ी विभूतियाँ मानती है। वह मामूली आदमी नही।"

कुल्ली कुछ देर स्तव्ध रहे। फिर साँस भरकर वोले, "यहाँ कांग्रेस भी नही है। इतनी वड़ी वस्ती, देश के नाम से हँसती है, यहाँ कांग्रेस का भी काम होना चाहिए।"

कुल्ली की आग जल उठी। सच्चा मनुष्य निकल आया, जिससे बडा मनुष्य नही होता। प्रसिद्धि मनुष्य नही। यही मनुष्य बड़े-वडे प्रसिद्ध मनुष्य को भी नहीं मानता, सर्वशक्तिमान् ईश्वर की भी मुखालिफ़त के लिए सिर उठाता है, उठाया है। इसी ने अपने हिसाव से सवकी अच्छाई और वुराई को तोला है, और संसार मे उसका प्रचार किया है। संसार मे कव उतरा ?

मैं कुल्ली को देख रहा था। एक साँस छोड़कर कुल्ली ने कहा, "मधुआ चमार की औरत को कल तेज वुखार था, देखने जाना है, अस्पताल अगर न ले जा सका, तो डॉक्टर साहव के पैरों पड़ूँगा—देख लें, फीस के रुपये उसके पास कहाँ, मधुआ काम पर गया होगा, उसका लड़का ढोर चराने।" कहकर, नमस्कार कर कुल्ली उठे। मैं देखता रहा, तेज-कदम वह चले गये।

मैं उठकर महेश-गिरि-मठ के मेम्वरों से मिलने गया। मेम्वर वे ही होते है, जो प्रतिष्ठित है; जो प्रतिष्ठित है, उन्हें अप्रतिष्ठा की वातें सव समय घेरे रहती हैं। पहले लालाजी मिले। वडे सज्जन हैं। दर्जी की दूकान पर खड़े थे। कोई कोट सिलने को दिया था। कपड़े के शौकीन है। घर के साधारण जमींदार। मेरे घनिष्ठ मित्र। दर्जी कई वार उनके मुँह पर कह चुका है कि रायवरेली छोड़कर दलमऊ में वह इसलिए है कि लाला साहव ने उसे पहचाना है, और उसने लाला साहव को; अगर मन का काम न मिला, तो कारीगर का जी नही भरता; लाला साहव एक-एक अंग नपाते हैं, और देखते हैं, ठीक वैठा या नही।

मुझे देखकर प्राचीन पद्धति के अनुसार लाला साहब ने प्रणाम किया, दर्जी ने भी हाथ जोड़े। आशीर्वाद मैं देता नही, नमस्कार करता हूँ या खीस निपोरता हूँ। एक दिन मेरे पुत्र ने लडकपन मे पूछा था, "बप्पा, कोई पैर लगता है, तो आप आसीस क्यो नही देते ?" मैंने कहा, "मामा के यहाँ रहते-रहते तुम्हारी जैसी आदत हो गयी, मेरी वैसी नही हो पायी।"

मित्र ने डाँट के साथ पूछा, "क्या है ?"

मैंने कहा, "सुना, तुम महेश-गिरि-मठ के मेम्बर हो। तुम्हे लोग मानते भी बहुत है। मेरे मित्र हो, इसलिए समझदार हो, मैं भी मानता हूँ। एकान्त की एक बात है।"

मित्र गर्दन बढाकर एकान्त की ओर चले। दर्जी समालोचक की दृष्टि से देखने लगा।

एकान्त में मैंने पूरे कविकण्ठ से गद्य में कहा, "यार, कुछ अछूतों के लिए भी करो।"

"अहद"—मित्र ने ध्वनि की, "मैं समझ गया, कुल्ली ने पकड़ा होगा आपको। अरे, आप भले आदमी, इन बातो मे न पड़िए। आपने तो जैसा सुना, वैसा ही समझा।"

"नही," मैंने कहा, "मैं व्यंग्य बहुत लिख चुका हूँ, जैसे का वैसा ही नहीं समझता।"

"व्यंग्य क्या ?" मित्र ने पूछा।

मैंने कहा, "जैसे तुम्हारा सर है। सर होकर न हो, या इस पर चार सीगें हो।"

"यानी ?" मित्र कुछ बिगड़े।

"अब यानी और क्या ?" मैंने सीधे देखते हुए कहा।

"आप सही-सही बात कहिए।" मित्र कुछ दोरुखे होकर बोले।

'अब आये' सोचकर व्यंग्य मे मैंने कहा, "रास्ते पर, कल आठ-दस आदमी तुम्हारा नाम लेकर कह रहे थे, लाला की एक टाँग तोड़ दी जाय; जब देखो, दर्जी की दूकान पर खड़े रहते है।"

"एँ !" लाला घबराये। पूछा, "कोई वजह भी मालूम हुई ?"

"कुछ नही," मैंने कहा, "काले-काले आदमी थे। यही पासी-चमार होंगे।"

लाला सोचकर निश्चय पर पहुँचने लगे। कहा, "हाँ, मैं समझ गया।"

"कुल्ली मिले थे ?" लाला ने पूछा।

"वह तो बहुत दिन से नही मिले। वे लोग क्यों बिगड़े है, मुझे अन्दाज लडानी पडी।"

सोचते हुए लाला दर्जी की ओर बढे। मै पण्डितजी की ओर चला। दिन के ग्यारह का समय होगा। पण्डितजी के यहाँ पहुँचा, तो देखा, पण्डितजी कनकैया उड़ा रहे है। मझा लखनऊ से मँगवाया है, इसलिए कि उनकी कनकैया कोई काट न पाये।

मैंने कहा, "एक जरूरी काम से आया था।"

बोले, "देख ही रहे है, अभी फुर्सत नही है।"

मैं समझ गया, यह और कड़ा मुकाम है। कहा, "रायबरेली से डिप्टी साहब आये है। गंगा नहाने आये थे। मै यहाँ हूँ, जानते थे। क्योकि उनगे मिलकर आया था, और उन्हे बुला भी आया।"

पण्डितजी को जैसे जूड़ी आ गयी। पूछा, "कहाँ है?"

मैंने कहा, "मेरे यहाँ ही है; आपको बुलाया है। साथ ही आते थे। मैंने कहा, 'नहा चुके हो, गरमा जाओगे, फिर पैदल चलना है, और चढाई भी है, मैं जाता हूँ, वह भी मेरे मित्र है, बुला लाता हूँ'।"

पण्डितजी ने नौकर को बुलाकर कहा, "अरे डोर लपेट। हमें डिप्टी साहब ने बुलाया है।"

नौकर ने पतंग ले ली। आप तुर्त-फुर्त नीचे उतरे, कपड़े पहनने लगे। तैयार होकर छड़ी लेकर चले। बड़ी जल्दी-जल्दी पैर उठ रहे थे। मैं उनकी चाल देखता, साथ चलता जा रहा था। आधे रास्ते पर आकर पूछा, "अपने हल्के के महादेव-प्रसादजी है?"

मैंने कहा, "हाँ।"

न-जाने क्या सोचते रहे। घर आकर मैंने वैठका खोला। वैठका खोलते ही उन्होंने पूछा, "डिप्टी साहब?"

मैंने कहा, "अपनी ऐसी-की-तैसी मे चले गये।"

"आपने मुझे धोखा दिया।" पण्डितजी ने कहा।

"आपने मुझे कौन ज्ञान दिया था?" मैंने कहा।

"वस, अव क्या कहूँ आपको!" पण्डितजी गरमाये हुए लौटे।

मैं तभी समझ गया था, इस मूर्ख की वुद्धि का कोठा विलकुल खाली है। कहा, "जैसा मेरा आना-जाना व्यर्थ रहा, वैसा ही आपका; दुःख न कीजिएगा। जाइए, कनकैया उड़ाइए।"

चौदह

मैं लखनऊ आकर कुछ दिनों वाद लौटा। कुल्ली ने अपने काम के सम्वन्ध मे क्या किया, क्या कर रहे है, जानने की इच्छा थी, आग्रह था। जाने पर ससुराल में ही कुल्ली की तारीफ सुनी। श्रीमतीजी की जगह सलहज साहवा थी; अव तक दो-तीन वच्चे की मा हो चुकी थी, इसलिए इच्छा होने पर वात-चीत छेड़ देता था, घूंघट के भीतर से श्रृंगार-साहित्य के उत्तर वड़े भले मालूम पड़ते थे।

एक दिन कहा भी कि महात्माजी पर्दे के खिलाफ प्रचार कर रहे है, तुम उनकी भक्त भी हो, फिर मेरे सामने क्यों घूंघट काढ़ती हो? उन्होने कहा, "यों मेरी इच्छा नही, लेकिन यहाँ के आदमी ऐसे हैं कि कुछ-का-कुछ सोच लेते हैं।" मैंने

कहा, "तो अपनी आँखें ढँककर दूसरों की आँखों पर पर्दा डालना चाहती हो!... रहस्यवाद अच्छा है।" ऐसी मेरी छोटी सलहज साहबा और सासुजी मेरे जाते ही उच्छ्वसित होकर भिन्न-भिन्न वाक्यो से एक ही बात कर गयीं, "कुल्ली बड़ा अच्छा आदमी है, खूब काम कर रहा है; यहाँ एक-दूसरे को देखकर जलते थे, अब सब एक-दूसरे की भलाई की ओर बढने लगे है; कितने स्वयंमेवक इस बस्ती मे हो गये है। काग्रेस कायम हो गयी है। सब अकेले कुल्ली का किया हुआ है।"

सासुजी के सुपुत्र ने गले मे और जोर देकर कहा, "अम्मा, कुल्ली अठारह घण्टा काम करते है। छ-छ. कोस पैदल जाते हैं काग्रेस के नियम्बर (मेम्बर) बनाने के लिए। बस्ती मे और बाहर सब जगह इतनी इज्जत है कि लोग देखकर खड़े हो जाते हैं।"

सासुजी ने कहा, "भैया, आदमी नही, देवता है कुल्ली!"

सलहज साहबा ने कहा, "मैं तो उन्हे अवतार मानती हूँ। विन्दा खटिक की दुलहिन मर रही थी; गाँव मे इतने आदमी थे, कोई नही खड़ा हुआ, नम्बरदार ने अपने हाथो उसकी सेवा की।"

मैंने कहा, "जरा उनसे मिलना था।" मन मे ऊधम मचा हुआ था कि महात्माजी को कुल्ली ने लिखा होगा, देखूँ, क्या जवाब आया।

साले साहब ने कहा, "मैं चला जाऊँगा।" कहकर बड़ी तेजी मे अपना डण्डा उठाकर, एक दफा अपनी बीवी को, फिर मुझे, फिर विश्वास की दृष्टि से अपनी अम्मा को देखकर चले।

मैंने बाहर के बैठके का रास्ता लिया। इस समय कुछ प्रसिद्ध हो जाने के कारण, बस्ती के स्कूल-कॉलिज के पढनेवाले लड़के भी आते थे, उन्हे भी समय देना पडता था। प्रायः सबका पहला प्रश्न 'छायावाद क्या है' रहा। मैं उत्तर देता-देता अभ्यस्त हो गया था। समझाने मे देर न होती थी, यद्यपि लड़को की समझ मे कुछ न आता था। बाद को आश्वासन देता था कि बाद को समझिएगा।

इन्ही दिनो श्रीमान् बाबू इकबाल वर्मा साहब 'सेहर' से वहाँ मुलाकात हुई। अपनी सज्जनता और शुद्ध साहित्यिकता के कारण वह स्वयं पहले मुझसे मिलने आये थे—यह मालूम कर कि मैं वहाँ हूँ। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'सेहर' साहब की और मेरी एक ही बस्ती मे ससुराल है। उनके साथ गोस्वामी तुलसीदासजी के सुप्रसिद्ध समालोचक-विद्वान् बाबू राजबहादुर लमगोडा एम्. ए., एल्.-एल्. बी. साहब के भाई साहब भी थे। लमगोड़ा साहब से मिलने की मेरी बहुत दिनो की इच्छा थी। क्योंकि उनकी आलोचना मुझे बहुत पसन्द आयी थी, पर दुर्भाग्यवश मिल नही सका था, उनके भाई साहब से मैंने जिक्र किया, उन्ही के मकान मे; उन्होंने मुझे फतेहपुर बुलाया; फिर 'सेहर' साहब ने कविता सुनाने की आज्ञा की; मैंने सुनायी। ऐसी अनेक घटनाएँ हुईं; पर अप्रसिद्ध जनो की होने के कारण रहने दी गयी। सब जगह एक बात मैंने देखी, मेरी कविता पढ़कर लोग नही समझे, सुनकर समझे, और इतना समझे कि मुझे 'श्रुति' पर ही कविता को छोड़ना पड़ा।

बैठके मे बैठा नये भाव रूपमयी की तलाश मे था कि साले साहब आये, और

बड़ी इज्जत से कुल्ली को दिखाकर—'वह हैं'—भीतर चले गये। उठकर मैंने कुल्ली का स्वागत किया। वह बैठे। देखा, चेहरा एक दिव्य आभा से पूर्ण है, लेकिन देह पहले से दुबली, जैसे कुल्ली समझ गये हैं, जीवन की सन्ध्या हो गयी है, अब घर लौटना है। कविता का दिव्य रूप और भाव सामने जड शरीर में देखकर पुलकित हो उठा।

कुल्ली स्थिर भाव से बैठे रहे। इतनी शान्ति कुल्ली मे मैंने नही देखी थी, जैसे संसार को संसार का रास्ता बताकर अपने रास्ते की अड़चनें दूर कर रहे हो। मैं कुछ देर और चुपचाप बैठा रहा।

कुल्ली ने एक साँस छोड़ी, जैसे कह रहे हो, 'संसार मे साँस लेने का भी सुबीता नही, यहाँ बड़ी निष्ठुरता है; यहाँ निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते है; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जन-सेवा हो, चाहे देश-सेवा; इस सेवा से लोग अपनी सेवा करना चाहते हैं; किसान इसलिए कांग्रेस मे आते है कि जमीदार की मारों से, सरकार के अन्याय से बचें, और जमीन उनकी हो जाय, गरीब इसलिए तारीफ करते है कि उन्हें कुछ मिलता है। पर इतना ही क्या सबकुछ है? क्या इससे जीवन को शान्ति मिलती है? शायद साँस के रहते नही।'

इतना स्तब्ध भाव था कि बात करने की हिम्मत नही होती थी। इसी समय साले साहब भीतर से जल-पान ले आये, और कुल्ली के सामने आदरपूर्वक रखते हुए बोले, "रात-भर दुखिया चमार की सेवा करते है, उसकी स्त्री का देहान्त हो गया है, दुखिया बीमार है। आज लालगंज जायँगे, वहाँ कांग्रेस का काम है। कल दुपहर को जल-पान किया था तब से ऐसे ही है।"

चुपचाप तश्तरी उठाकर कुल्ली नाश्ता करने लगे। चेहरा सुर्ख। मनुष्यत्व रह-रहकर विकास पा रहा है। देखकर मैंने सिर झुका दिया।

कुल्ली नाश्ता करके हाथ-मुँह धोकर बैठे, पान खाया। एक तृप्ति की साँस ली। उन्हें कुछ देर तक एकटक देखकर मेरे साले साहब ने प्रस्थान किया।

बड़ी हिम्मत करके मैंने पूछा, "नम्बरदार, फिर महात्माजी को लिखा था?"

कुल्ली मुस्किराये। कहा, "अब क्या कहूँ?"

मेरे लिए इतना बहुत था। एक दफा बैठके के इस तरफ से उस तरफ तक टहल आया। नाटक के पार्ट काफी कर चुका था। प्रभावित होकर कहा, "बड़ा गुस्सा लगता है। कितना बड़ा नेता क्यों न हो, आदमी की पहचान नहीं कर पाता। करें भी कहाँ से? दस-पाँच जगह कार्यकर्ताओ ने धोखा दिया कि समझ बैठे सब धोखेबाज हैं।" कहकर कुल्ली को देखा, प्रभाव पड रहा था। कहा, "मैं तो इसी-लिए राजनीति मे भाग नहीं लेता। मैं जानता हूँ, मुझे प्राविंशल कांग्रेस-कमेटी का भी प्रेसीडेण्ट न बनायेंगे, और कहने से भी बाज न आयेंगे कि सिपाही का धर्म सरदार बनना नही है। लेकिन सरदार सरदार ही रहेंगे—सैकडों पेंच कसते हुए, ऊपर न चढ़ने देंगे।" कुल्ली जगे। "ध्वनि में प्रतिध्वनि होती ही है।" कहकर मैं बैठ गया। पूछा, "क्या जवाब दिया महात्माजी ने?"

"कुछ नही," कुल्ली ने शुरू किया, "मैने सत्रह चिट्ठियाँ (सत्रह या सत्ताईस कहा, याद नही) महात्माजी को लिखी, लेकिन उनका मौन भंग न हुआ। किसी

एक चिट्ठी का जवाव महादेव देसाई ने दिया था। वस, एक सेंतर—इलाहावाद मे प्रधान आफिस है, प्रान्तीय, लिखिए।"

"आपने फटकारा नही ?" मैंने उग्र सहानुभूति से कहा।

कुल्ली खाँसकर वोले, "आप क्या समझते हैं ? मैंने लिखा—महात्माजी, आप मुझसे हजार गुना ज्यादा पढ़े हो सकते है। तमाम दुनिया मे आपका डंका पिटता है, लेकिन हरएक की परिस्थिति को आप हरगिज नही समझ सकते। अगर समझते, तो मौन न रहते। जव मौन है, तव आप भगवान् हरगिज नही हो सकते। भगवान् अन्तर्यामी होते हैं, आप अन्तर्यामी नही है। यह मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया है। आपको वनियो ने भगवान् वनाया है, क्योकि ब्राह्मणो और ठाकुरो मे भगवान् हुए है, वनियो मे नही। जिस तरह वनियों ने आपको भगवान् वनाया है, उसी तरह आप वनिया-भगवान् है।"

मैंने कहा, "अरे, कुछ काम की वात भी लिखी ?"

"काम की वात तो सत्रह वार लिख चुका था।"

"तो यह अट्ठारहवाँ पत्र है, या अट्ठाईसवाँ ?"

"यह मुझे याद नही। आप आइएगा, तो आपको नकल दिखाऊँगा।"

मैंने कहा, "वीच-वीच मे दोहा-चौपाई-शेर भी लिखे थे? इसमें प्रभाव पडता है।"

"उस वक्त कुछ याद ही नहीं आया। जो समझ मे आया, लिखा। यह तो जानता ही हूँ कि मूर्ख हूँ, वडी वडाई मूर्ख कह लेगे। लेकिन भगवान् तो मूर्ख और पण्डित नही मानते, उनकी दृष्टि में सव वरावर है।"

"लेकिन गांधीजी ऐसे भगवान् नही। वह तो सवको भगवान् वनाना चाहते है, इसलिए लोग उन्हे अवतार कहते है।"

"झूठ है।" कुल्ली ने कहा।

मैंने पूछा, "अच्छा, फिर आपने क्या किया ?"

"फिर इलाहावाद को लिखा (अछूतो के जिस ऑफिस का नाम कुल्ली ने लिया, वह मुझे याद नही), लेकिन पहले वहाँ से भी जवाव न आया, तव मैंने पं. जवाहरलालजी को लिखा।"

'कैसे लिखा, यह कहिए।"

गम्भीर होकर कुल्ली वोले, "पहले तो सीधे-सीधे लिखा, जैसा सवको लिखा जाता है। वडे आदमी हैं, इसलिए कुछ इज्जत के साथ लिखा, लेकिन उसका उत्तर जव न आया—तव डाँटकर लिखा। अरे, अपने राम को क्या, रानी रिसायँगी, अपना रनवास लेंगी!"

मैं ताड़ गया, राजा इस समय कुल्ली खुद है; इसलिए राजा नही कहना चाहते। कहा, "इस साल जवाहरलालजी राष्ट्रपति है, राजा कहना चाहिए था।"

"वह राजा-रानी एक है।" कुल्ली ने कहा, "दूसरे पत्र का जवाव तो उन्होने नही दिया, लेकिन पत्र को अछूतो के कार्यालय मे भिजवा दिया। वहाँ से जवाव आया कि मदद की जायगी। रायवरेली मे जिलावाली ऑफिस से रुपये लीजिएगा, यहाँ से भेज दिये जायँगे।"

मैंने पूछा, "फिर आपको रुपये मिले?"

"हाँ, एक वार, बस।" कहकर कुल्ली ने बाहर की तरफ देखा। कहा, "बड़ों की वात बड़े पहचानें। ज्यादा कहना उचित नही। अपने सिर दोष लेना सीख रहा हूँ। इतना है कि तबियत नही भरी, जिस तरह चार पैसे के भोजन से सीधे व्यवहार से भरती है। मुझे लालगंज जाना है। वहाँ से उधर देहात घूमूँगा। काग्रेस के मेम्बर बना रहा हूँ। फुर्सत कम रहती है। पाठशाला आपकी भाभी चलाती हैं। एक दिन जाइएगा। मैं कई रोज के लिए जा रहा हूँ। वहुत दुर्बल भी हूँ। भगवान् के भरोसे अब नाव छोड़ दी है। कोई खेनेवाला नही देख पड़ा। अच्छा, कुछ खयाल न कीजिएगा। नमस्कार।"

कुल्ली चले गये। अव यह वह कुल्ली नही है। प्रायः पचपन-छप्पन की उम्र। लेकिन कितनी तेजी! कोई उपाय नही मिला, किसी ने हाथ नही पकडा, कुछ भी सहारा नही रहा, तव दूसरी दुनिया की तरफ मुँह फेरा है। कितना सुन्दर है, इस समय सबकुछ कुल्ली का! मैं देखता और सोचता रहा।

पन्द्रह

दो-तीन दिन रहकर कुल्ली की पाठशाला और पत्नी को देखकर मैं लखनऊ चला आया। लेकिन जी नही लगा। कोई शक्ति मुझे दलमऊ की तरफ खीच रही थी, वहाँ की श्यामल-सजल प्रकृति, निर्मल गंगा, सुन्दर घाट, दिगन्त-विस्तार रह-रहकर याद आने लगा। सबसे अधिक आकर्षण कुल्ली का। एक जैसे पारलौकिक स्नेह मौन आमन्त्रण दे रहा था—तुम आओ, तुम आओ। इसी समय याद आया, वहुत दिनो से दलमऊ की कतकी नही नहायी। इस वार चलकर नहायें।

इस तरह तीन-ही-चार महीने के अन्दर फिर दलमऊ गया। गंगा-तट की शारद प्रकृति बड़ी सुहावनी मालूम दी। सघन वृक्षावली में एक पुरानी स्मृति जैसे लिपटी हो। प्रकृति जैसे वर्षा से नहाकर निखर गयी है। चारो ओर उज्ज्वलता। कुल्ली के लिए ऐसा ही उज्ज्वल समय आ गया है, सोचकर मन हर्ष से भर गया। मैं इक्के पर चला जा रहा था, पहले दिन की याद आयी, जब कुल्ली मिले थे। वह अदालती फैशन का बिगड़ा कुल्ली आदर्श आदमी बन गया है।

इक्का ससुराल के सामने रास्ते पर रुका। आदमी आया। सामान उतार ले गया। सासुजी फाटक के सामने खड़ी हुईं। इक्केवाले को पैसे दिला दिये। उतरकर मैंने उनके चरण छुए। भीतर गया। सलहज साहबा तिदरे के सामने आकर खडी हुईं। यह स्वागत था—कलश उनके प्राकृतिक थे, साक्षात् प्रकृति को मन मे नमस्कार किया। त्रुटियाँ वहुत होती है, लेकिन इनकी कृपा के बिना पर्दा पार करना दुःसाध्य है, बहुत पहले से जानता था। भविष्य की भगवान् जाने। साले

साहब भीतर थे। बाहर निकले। कहा, "जीजा, कुल्ली सख्त बीमार हैं, आप बड़े मौके से आये। मुलाकात हो जायेगी। डॉक्टर साहब कहते थे, अब नहीं बचेंगे—कम-से-कम हमारे मान की बात नहीं रही, क्योंकि यहाँ वैसे अस्त्र नहीं हैं, न वैसी दवा है; रायबरेली ले जायँ, वहाँ बचना हुआ, बच जायँगे। कल जाइए, देख आइए।"

मैंने पूछा, "हुआ क्या है ?"

उन्होंने मुँह बिगाड़कर कहा, "गर्मी। पहले थी, इधर दौड़े बहुत, क्वार की धूप सिर से उतरी, फाके किये, बीमार हो गये। लेकिन जीजा, यहाँ कोई गाँव नहीं, जहाँ कुल्ली ने कांगरेस के नियम्बर (मेम्बर) नहीं बनाये। नीचे का गेट तक सड़ गया है—सेरों पस निकलता है, इतनी बदबू आती है कि कोई छन-भर नहीं ठहर सकता। और···"

मैंने कहा, "और क्या ?"

साले साहब मुस्किराकर रह गये।

मैंने कहा, "हँसने की कौन-सी बात है ?"

अपनी अम्मा और पत्नी की तरफ देखकर साले साहब ने मुझे एकान्त में चलकर बुलाया, और मेरे जानेपर कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "लिंग लापता है।"

"लापता ?" मैने सन्देह के प्रकाश्य स्वर से पूछा।

"हाँ।" उन्होंने कहा, "लोग कहते हैं, अब नहीं रहा। कहते है—अब अगर कुल्ली जी भी गये, तो कुल्लियायन क्या करेंगी ?" मैं गम्भीर होकर चारपाई पर आकर बैठा।

सलहज साहबा गम्भीर होकर बोली, "हाँ, कुल्ली की बहुत खराब हालत है।"

सासुजी मेरे जल-पान की व्यवस्था के लिए भीतर चली गयी थीं। अपनी बहू की बात सुनकर उसे भीतर बुलाया। मैं दम साधे बैठा रहा। जल-पान के बाद घर की और-और बातें होती रहीं।

दूसरे दिन सवेरे धूप निकलने पर मैं कुल्ली के यहाँ गया। रास्ते में कई स्वयं-सेवक उधर जाते हुए मिले, दरवाजे पर कई अछूत लड़के, उनके तीन-चार अभि-भावक। सबके चेहरे कह रहे थे, कुल्ली नहीं बचेंगे। मैं भीतर गया।

ठीक उसी जगह, जहाँ पहले दिन कुल्ली बैठे थे, आज पड़े दीखे। आज वे भाव यथास्थान अपनी कुरूपता को प्राप्त हैं, लेकिन मुख पर नहीं। मुख पर दिव्य कान्ति क्रीडा कर रही है। प्रवेश करते ही ऐसी बदबू आयी कि जान पड़ा, एक क्षण नहीं ठहर सकूँगा। हिम्मत करके खड़ा रहा। विद्या और अविद्या का आधा-आधा भाग कुल्ली की देह मे पूर्ण रूप से प्रकाशित था। कुल्ली कुछ ध्यान मे थे। आँखें खोलकर देखा—सामने देखकर, "आह! आप हैं? बड़े सौभाग्य, बड़े सौभाग्य, अब मैं कुछ नहीं चाहता।" कहकर विह्वल हो गये। एक अछूत से सिर-हाने की तरफ बिस्तर बिछा देने के लिए कहा, मुझसे कहा, "यह हाल है। बड़ी बदबू मिलती होगी। लेकिन इधर न मिलेगी। दिल के ऊपर मैं नहीं चढ़ने दे

रहा। मुझे इसका रूप देख पड़ता है। हृदय से ऊपर मैं वहुत अच्छा हूँ। सिरहाने वैठकर वताइए, वदवू मिलती है ?"

वैठकर मैंने मालूम किया, वास्तव में उधर वदवू नही थी। क्या कहूँ, क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आ रहा था। पाँच रुपये निकाले, और कुल्ली की स्त्री को देते हुए कहा, "आप दूध पीजिएगा।"

कुल्ली कुछ न वोले। केवल ऊपर की तरफ देखा। कुछ देर फिर मौन रहा।

मैंने पूछा, "डॉक्टर साहव क्या कहते है ?"

"डॉक्टर क्या कहेंगे ? अव कहने की वात नही रही। ईश्वर की इच्छा।" कुल्ली ने आँखें मूँद ली।

कुछ देर तक मैं वैठा रहा। फिर वाहर निकला। कुल्ली की स्त्री रोने लगी। कहा, "रायवरेली ले जाने के लिए कहते हैं। खर्चा यही पाँच रुपया है। डोली में आयेंगे नही। लारी कोई आयेगी, यहाँ खाली होगी, तो उसमें ले जाऊँगी, लेकिन फिर वहाँ क्या होगा ? वहाँ भी खर्चा है।" कहकर रोने लगी।

मैंने कहा, "आप इन्हें ले जाइए। मैं कुछ रुपये चन्दा करके रायवरेली आता हूँ। आगे ईश्वर मालिक है।"

आश्वस्त होकर कुल्ली की स्त्री देखती रही, मैं धीरे-धीरे वाहर चला।

घर में दूसरे दिन मालूम किया, कुल्ली की स्त्री एक लारी पर कुल्ली को लेकर रायवरेली गयी है। उत्तरदायित्व वढ़ गया। दलमऊ के स्वयंसेवकों को लेकर काग्रेस-कमेटी के दफतर गया। वहाँ प्रेसीडेण्ट साहव अपना पक्का मकान वनवा रहे थे। उन्ही के अधवने मकान के एक कमरे में कांग्रेस-कमेटी का दफ्तर है। स्वय-सेवको ने मेरा परिचय दिया। कुल्ली का काम वह देख चुके थे। रुपये की वात मैंने कही, तो वोले, "कांग्रेस का यह नियम नही, वह आपसे रुपये ले सकती है, पर दे नही सकती।"

"यह मैं जानता हूँ, पर जिसे योग्य समझती है, उसे इतना देती है कि दूसरों को पता नहीं चलता।"

वोले, "आपका मतलव ?"

मैंने कहा, "यह तो पहले अर्ज कर चुका।"

एक प्रेसीडेण्ट की हैसियत से वोले, "रुपये नही दिये जायेंगे।"

मैंने कहा, "पहले मैं पाँच रुपये दे चुका हूँ, अव और दो रुपये दे रहा हूँ। रायवरेली का खर्च वरदाश्त करूँगा। इससे अधिक इस समय मेरी शक्ति नहीं। तीन रुपये और तीन सज्जन मित्रों से एक-एक रुपया चन्दा करके लिया है। कुछ आप दे दें, तो काम चल जायगा।"

उन्होंने कहा, "सात रुपये विजयलक्ष्मी के स्वागत के खर्च से वचे है, आठ हो चुके है, हालाँकि वह आयी नही, लेकिन वे रुपये जमा कर दिये गये है।"

मैंने कहा, "विजयलक्ष्मीजी के स्वागत से कुल्ली नम्वरदार की जान ज्यादा कीमती है, यह तो आप मानते हैं ?"

उन्होने कहा, "मैं सवकुछ जानता हूँ। लेकिन यही शहरवाले जब घर वन गया, तव कहते हैं, दो हाथ म्युनिसिपैलिटी की जगह वढ़ा ली है ?"

'इसीलिए आप विजयलक्ष्मीजी का ध्यान कर रहे है ?' मैंने मन में कहा। खुलकर कहा, "कोई विजयलक्ष्मीजी का स्वागत करता है, तो पहले पता लगाती है—क्यों स्वागत किया गया। अगर कारण कोई उन्हे पाएदार मालूम हुआ, तो उसके पाए उखाड़कर तब दम लेती है। मैं तो लखनऊ में रहता हूँ, रोज देखता-सुनता हूँ। साक्षात् विजयलक्ष्मी है।" हाथ जोड़कर मैंने प्रणाम किया, "कभी किसी मे नही मिलती, इसीलिए देश मे क्या, ससार मे उनकी जोड़ नही। लेकिन उन्हे मालूम हो जाय कि किसी ने कांग्रेस के किसी कार्यकर्त्ता के पीछे एक रकम फूंक दी है, तो फिर उनसे जो चाहे, करवा ले।"

लाला मुँह फैलाये सुनते रहे। पूछा, "आपसे मिलती है ?"

मैंने कहा, "नही, किसी से नही। लेकिन काम की बात होती है, तो इनकार भी नही करती।" मैंने फिर नमस्कार किया, "साक्षात् देवी।"

लाला ने कहा, "तो वे सात रुपये है, ले जाइए।"

"हाँ," मैंने कहा, "दीजिए, बड़ी देर हो गयी।"

लालाजी से रुपये लेकर मैंने रायबरेली जाने की तैयारी की। कुल्ली के एक मुसलमान मित्र भी स्टेशन पर मिले, वही जा रहे थे। रायबरेली पहुँचने पर सिविलसर्जन से मालूम हुआ, पहले से दशा सुधार पर है, क्योंकि पहले चिल्लाते थे, अब चुप रहते हैं। कुल्ली को देखने पर उल्टा फल मालूम दिया—शक्ति बिलकुल क्षीण हो गयी है। ऑपरेशन के बाद से चित्त ऊबता जा रहा है। कुल्ली ने यहाँ भी कहा, "डॉक्टरो को कुछ नही आता। मैं कहता हूँ, ढाढस न दीजिए, मै चन्द घण्टो का मेहमान हूँ, लेकिन कहते हैं, नही, यह दिल की घबराहट है, तुम अच्छे हो जाओगे।"

मैं देखता था, कुल्ली की वाणी मे, मुख पर, दृष्टि मे कोई दोष नही, उसकी कोई उपमा भी नही दी जा सकती।

इसी समय सर्जन साहब भी देखने आये। कुल्ली ने कहा, "बाबूजी, मैं बचूंगा नही, लोगो को अब मेरे ही पास रहने दीजिए, उन्हें फल और दवा के लिए दौड़ाएँ नही।"

डॉक्टर साहब ने कहा, "अगर तुम्हे यह दिव्य ज्ञान था, तो यहाँ आना ही नही था; जब आये हो, तब जैसा हम कहते हैं, करो। पहले तुम्हारा गला सोने पर घरघराता था, अब बन्द हो गया है।"

कुल्ली ने कहा, "बाबूजी, मेरा गला नही घरघराता था, नाक बोलती थी, अब कमजोर हो गया हूँ, नही बोलती।"

"चुप रहो," डॉक्टर साहब ने कहा, "नाक बजना और गला घरघराना एक बात नही। हम खुद देख-सुन चुके है। बोलो मत।"

डॉक्टर साहब दूसरे रोगी की तरफ चले गये। कुल्ली सीधी-सरल दृष्टि से उन्हे देखते रहे।

दलमऊ मे मैंने सुना था, जब से कुल्ली की हालत और संगीन हुई, तब से उनकी स्त्री के यहाँ एक क्षण पैर नही जमते। रायबरेली-भर मे भागी फिरती हैं

मैंने बात साफ कर लेने के लिए पूछा, "क्या दुःख से ?"

उत्तर वहुत शोभित नही मिला।

लेकिन, जव मैं गया, दुर्भाग्यवश वह वहाँ नहीं थी। रुपये लिये खड़ा रहा। वह सुनी वात रह-रहकर याद आती रही। अन्त में जव धैर्य जाता रहा, तव मैने कहा, "आपकी श्रीमतीजी नही हैं, कुछ रुपये लाया हूँ।"

कुल्ली ने साथ गये मुसलमान सज्जन की ओर इशारा करके कहा, "इन्हे दे दीजिए। वह वेचारी तो इस-उस काम से दिन-भर मारी-मारी फिरती है।"

मैंने रुपये दे दिये। रहने के लिए कुल्ली ने पूछा, "यहाँ कहाँ रहियेगा ?"

मैंने कहा, "कुछ मदद रायवरेली से भी पहुँचाने का इन्तजाम करूँगा। मेरे एक मित्र यहाँ ट्रेजरी-अफसर है। उनके बँगले मे ठहरूँगा। वही वातचीत करूँगा।"

नमस्कार कर मैं विदा हुआ। कुल्ली ने कहा, "अव मुलाकात न होगी।" आँखों से आँसू टपक पड़े। मै वहाँ से वाहर निकल आया।

सोलह

ट्रेजरी अफसर से कुल्ली की मदद के लिए कहकर मैं दलमऊ चला आया। दो ही तीन रोज में मालूम हुआ, कुल्ली का देहान्त हो गया है; उनकी लाश दलमऊ लायी जा रही है, दलमऊ के स्वयंसेवक अछूत और कांग्रेस-कार्यकर्ता जुलूस निकालेंगे। फिर नाव पर शव लेकर गंगाजी के उस पार अन्तर्वेद में जलायेंगे। दाह के लिए कुल्ली-वंश के कोई दीपक वुलाये गये हैं, उनकी स्त्री चूँकि विवाहिता नही, इसलिए उसके हाथ अन्तिम संस्कार न कराया जायगा। मैं स्तब्ध हो गया। कुल्ली का यह परिणाम देखकर, लेकिन साथ ही कस्वे-भर के मनुष्यों की उमड़ती हुई सहानुभूति से आश्चर्य भी हुआ। एक साधारण आदमी देखते-देखते इतना असाधारण हो गया। दुःख था, अव कुल्ली से मुलाकात न होगी। कुल्ली मुझे क्या समझने लगे थे, यह लिखकर कलम को कलंकित न करूँगा। उनके जीवन पर किसकी गहरी छाप थी, यह मुझसे अधिक कोई नही जानता। कुल्ली साधारण आदमी थे, हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यक्ति प्रेमचन्दजी और 'प्रसादजी' अन्तिम समय में अपना एक-एक सत्य मुझे दे गये थे; वह मेरे ही पास रहेगा, इसलिए कि उसकी वाहर शोभा न होगी, कदर्थ होगा; उनकी महान् आत्माएँ कुण्ठित होंगी। ऐसा ही एक सत्य कुल्ली के पास भी था। मनुष्य अपने समझे हुए जीवन की समझ ऐसे ही परिवर्तन के समय पाता है, और देता है। कुल्ली कुछ पहले दे चुके थे, इन लोगों ने वाद को दी, इसलिए कि इनमे स्पर्द्धा थी, इनसे स्पर्द्धा करनेवाला हिन्दी मे न था।

दूसरे की मैं नही जानता, मुझ पर एक प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जो दुःख नही, नशे की तरह का है, जव किसी प्रियजन का वियोग होता है, या वैसा भय मुझमें आता है। कुल्ली का देहान्त हो गया है, मैंने वैठके मे सुना था। कुल्ली की

लाश दलमऊ पहुँची, उस समय मैं बैठके मे था, स्वयंसेवक दो बार बुलाकर तीसरी बार बुलाने आया। जब जुलूस निकल रहा था, मैं वही था, न जा सकने की बात कही। कुल्ली को फूंककर लोग वापस आये, मैं वहीं बैठा था। घर के लोग देख-देखकर लौट गये। शाम को प्रकृतिस्थ होकर भोजन किया। कुल्ली की स्त्री चिल्ला-चिल्लाकर आसमान फाड़ रही है, सुना करता था; जा नही सका। दस दिन हो गये। कुल्ली का दसवाँ समाप्त हो गया। अवश्य मुझे यह मालूम न था कि कुल्ली का दसवाँ हो गया, एकादशाह है।

एकादशाह के दिन दस बजे के करीब कुल्ली की स्त्री को देखने गया। उस समय वहाँ एक घटना हो गयी थी, इसलिए कुल्ली की स्त्री मे कुल्ली की अपेक्षा मुसलमानिनवाला भाव प्रबल था।

मुझसे स्वर को खीचकर कहा, "नम्बरदार तो चले गये, उनका सब काम हो गया, लेकिन दस दिन तक जो लोग आये, रहे, वे आज एकादशाह को क्यो नही आयेंगे? मैं आपसे पूछती हूँ, यह हिन्दुओ का खरापन है या दोगलापन?"

बात कुछ मेरी समझ मे नही आयी। मैंने कहा, "भाव जरा और साफ करके बताइए। मैं इतने से नही समझा।"

श्रीमती कुल्ली दोनो हाथ के पंजे उठाकर उपदेश की मुद्रा से बोलीं, "देखिए, आप तो आये नही; नम्बरदार को दाग दिया—उनके है कोई, मैं नही जानती; अच्छा भाई, दाग दिया तो दिया; दस रोज माना, ठीक है; दसवें दिन पण्डित और टोला-पड़ोस, गाँवघर के सब आदमी थे। दाग देनेवाले ने मुझसे कहा, 'इतना तो हम कर सकते है। लेकिन साल-भर हम न मान सकेंगे, हमे काम है, फिर हमारे चाचा भी बीमार है—अरे हाँ, कुछ हो जाय, तो उनके भी कोई नही, इसलिए सपिण्डी तुम ले लो।' पण्डित ने भी कहा, 'ठीक है, ले लो।' गाँव के दस भलेमानसो ने भी कहा। मैंने कहा, 'अच्छी बात है, पण्डित जब कहते है, तब ले लें।' सपिण्डी ले ली। अब आज होम है। पण्डित को बुलाया, तो कहते हैं, हम न जायेंगे।"

मैंने पूछा, "क्यो?"

जो बुलाने गया था, वह एक अछूत लड़का था। उसने कहा, "मन्नी पण्डित ने कहा है, एक तो यो ही हमारी बहन की शादी नही होती, क्योकि हम गंगापुत्रो के यहाँ पण्डिताई करते है, कुल्ली की स्त्री के घर होम कराने जायेंगे, तो कोई पानी भी न पियेगा।"

"सुन लिया आपने?" कुल्ली की स्त्री ने कहा, "यही मन्नी पण्डित कल कहते थे—सपिण्डी ले लो। अगर तुम्हें काम नही करना था, तो तुम ने कहा क्यो? और जब कहा, तब आओगे कैसे नही? दस आदमी गवाह है—रामगुलाम पण्डित, राजाराम गंगापुत्र, घोखे महाबाह्मन···"

मैंने कहा, "यह अदालत तो है नही। जो नही आना चाहता, उसे दूसरे मजबूर नही कर सकते।" मन्नी पण्डित की दशा मुझे मालूम थी। वह कुलीन कान्यकुब्ज है। लेकिन उनकी बहन प्रायः बीस साल की हो गयी थी, कोई ब्याह नही करता था, कारण, वह गगापुत्रो के यहाँ यजन करते थे, उनका धान्य लेते थे। मन्नी के लिए दूसरा उपाय जीविका का न था।

मैंने कहा, "आप घबराइए नहीं। आपका काम हो जायगा।"

कुल्ली की स्त्री ने आश्वास की साँस ली। कहा, "अब आप ही लोग है!" कहकर, कृत्रिम करुणा से जैसे कण्ठावरोध हो गया—आँखों में आँसू आ गये हों—आँचल एक दफा आँखों पर फेर लिया। फिर जोश में आकर बोली, "बिना आपके गये वह न आयेंगे। आप ऐसे ही कहिएगा कि···"

"मैं समझ गया," मैंने कहा, "मेरी वहाँ जरूरत नही। नहाकर मैं यही आता हूँ। तब तक आप एक दफा पण्डित को और बुला भेजें। मैं अभी आता हूँ। वह न आयेंगे, तो मैं हवन करा दूँगा।"

कुल्ली की स्त्री को जान पड़ा, साक्षात् वशिष्ठजी उनके घर जा रहे हैं।

मैं ससुराल की तरफ लौटा। रास्ते मे ज्योतिषीजी का मकान है। यह वही ज्योतिषी है, जिन्होने मेरा विवाह विचारा था; मैं मंगली था, ससुरजी इनकार कर रहे थे, लेकिन इनके पिता वहाँ के बृहस्पति थे—राना साहब, राजा साहब, लालसाहब. सब उन्हें मानते थे, अब भी उनके लड़कों को मानते है—उन्होने कहा, विवाह बहुत अच्छा है, अगर लड़की को कुछ हो जायेगा, तो बुरा नहीं, फिर जहाँ लडका मंगली है, वहाँ लड़की राक्षस है, पटरी अच्छी बैठती है। तब से इस खानदान पर मेरी एक-सी श्रद्धा चली आती है। ज्योतिषीजी मुझसे बडे है। प्रणाम कर मैंने तिथि और संवत् वगैरा पूछा। ज्योतिषीजी चौंके। मैं किस काट और कोटि का आदमी हूँ, जानते है। पूछा, "क्या करोगे? तुम और तिथि?"

मैंने कहा, "मन्नी पण्डित बहन के व्याह के डर से कुल्ली के घर नही जाना चाहते। हवन कराऊँगा। 'मासानां मासोत्तमे' तो हर महीने आप लोग कहते हैं। संकल्प में तिथि जान लेना जरूरी है।"

पण्डितजी ने पूछा, "हवन कैसे कराओगे? क्या तुम यह सब जानते हो?"

"जानता तो दरअसल कुछ नही," मैंने कहा, "लेकिन यह जानता हूँ कि हवन मे ब्रह्म से लेकर देव-दानव, यक्ष-रक्ष, नर-किन्नर, सबमें चतुर्थी लगती है, बाद 'स्वाहा' और इतनी संस्कृत मुझे आती है कि कुल बातें अपनी रची संस्कृत मे करूँ, यहाँ के पण्डितों से क्रिया शुद्ध होगी, क्या कहते हैं?"

पण्डितजी ने कहा, "हाँ, यह तो है।"

"अच्छा, पंचांग दीजिए।" मैंने कहा, "जल्दी है।"

पंचांग लेकर ससुराल गया। मेरे हाथ में देशी जूता देखकर सासुजी को उतना आश्चर्य न होता, जितना पंचांग देखकर हुआ। पूछा, "यह क्या है भैया?"

"पंचांग।" मैंने कहा, "चौकी और घड़ा-भर पानी रखा दीजिए, जल्दी है, नहा लूँ।"

"क्या है?" सासुजी ने आश्चर्य से पूछा।

"मन्नी पण्डित कुल्ली के एकादशाह को नही गये, सपिण्डी कुल्ली की स्त्री ने ले ली है, इसलिए; कहते है, एक तो यों ही गंगापुत्रों की पुरोहिती के कारण लोग पानी पीते डरते है, फिर तो बहन बैठी ही रह जायगी।" पंचांग रखकर मैं कपडे उतारने लगा।

शंकित होकर सासुजी ने कहा, "तो तुम यह सब क्या जानो?"

"मैं जानता हूँ।" मैंने कहा।

"तो तुम वहाँ पुरोहिती करने जाओगे ?"

"हाँ, और एक जोडा जनेऊ निकाल लीजिए, पहन लूँ नहाकर।"

सासुजी घबरायी। कहा, "बच्चा, तुम हमे मेटोगे !"

"कैसे ?" चौकी की ओर चलते हुए पूछा।

"ऐमे कि लोग हमारे यहाँ का खान-पान छोड़ेंगे।"

मैंने कहा, "मैं आपका ससुर हूँ या अजियाससुर ?" मेरे पापों का फल आपको क्यो भुगतना पड़ेगा, मेरा दिया हुआ पिण्ड-पानी जबकि आपको नही मिल सकता ? आप मुझे चौके मे न खिलाइए, बस।"

सासुजी रोने लगी। मैं नहाने गया। नहाकर जनेऊ पहना। कहा, "मैं जनेऊ नही पहनता, यहाँवाले जानते थे। तभी यहाँ का खान-पान छोड दिया होता। मैं ढोगियों को जानता हूँ।"

नहाकर कपड़े पहने। चलने को हुआ, तो सासुजी को जैसे होश हुआ। बोली, "खाये जाओ।"

मैंने कहा, "लौटकर खाऊँगा।"

"नही," सासुजी ने कहा, "तुम वहाँ खा लोगे !" अपनी बहू से कहा, "गुट्टो, परस तो जल्दी।"

जल्दी-जल्दी भोजन कर मैं निकला। देखता हूँ, चारो ओर से लोगों का ताँता बँधा है—सब कुल्ली के घर जा रहे हैं। 1937 ई. में काफी प्रसिद्ध हो चुका था, कुछ प्राचीन भी, 40 पार कर चुका था। एकादशाह कराने जा रहा हूँ, वहाँ के जीवन मे सबसे बड़ा आश्चर्य था।

कुल्ली के घर मे आदमी नहीं अँट रहे थे। सबमे कौतूहल की दृष्टि। कुल्ली की स्त्री मे भी वैसी ही श्रद्धा। वह समझती थी, मैं कृतार्थ हो गयी। लोग मुझे देखकर शर्मा-शर्माकर काना-फूसी करने लगते थे। बहुतो को यह शंका थी, यह कैसे करायेंगे। मैं निश्चिन्त था। मुख देखकर लोगो को विश्वास हो जाता था।

यथासमय मैं आँगन मे जाकर बैठा। सामने हाथ जोडकर कुल्ली की स्त्री बैठी। लोग कोई खडे, कोई बैठे। कोई भीतर, कोई बाहर। मैं चौक पूरने लगा। सुरबग्घी लडकपन मे बहुत खेल चुका था। वैसा ही एक चौकोर घेरा बनाया। लेकिन जानता था कि नौ कोठे नवग्रहो के बनते हैं, बनाये। बालू की वेदी पर हवन की लकड़ी रक्खी। घट मे स्वस्तिका बनायी। सामने गौर रक्खी। घट का दिया जलाया।

मन्त्र पढते वक्त बार-बार अटकता था, क्योंकि पण्डिताऊ स्वर नही निकल रहा था। कुछ देर सोचता रहा, ब्रजभापा-काल मे हूँ, सूरदास का सूरसागर और तुलसीदास की रामायण पढ़ रहा हूँ। अपने-आप वैसा ही मनोमण्डल बन गया। फिर क्या; अपनी संस्कृत शुरू की। सकल्प, गणेश-पूजन, गौरी-पूजन, घट की प्राण-प्रतिष्ठा करने लगा। लोग प्रभावित हो गये। खड़े जो जैसे रहे, रह गये, जैमे कवि-सम्मेलन मे कविता पढ़ते वक्त होता है। पूजन कराकर, हवन कराने लगा, उँगली के पोरों मे संख्या रख रहा हूँ। दिखाता हुआ। घी मेरे पास था, साकल्य कुल्ली

की स्त्री के पास। कुछ जाने-पहचाने नाम तो लिये, फिर जो जीभ के सामने आया, उसी के पीछे चतुर्थी छोड़कर 'स्वाहा' कहने लगा। कह दिया था, मेरे कहने के वाद कुल्ली की स्त्री स्वाहा कहती थी। हवन में जितनी देर लगती है, लगी। देखने-वाले अव तक पूर्ण रूप से आश्वस्त और विश्वस्त हो गये थे। पीछे की गर्द झाड़कर उठ-उठ चलने लगे थे। कुछ सहनशील बैठे हुए थे।

हवन पूरा हो जाने पर साल-भर ब्रह्मचर्य के साथ पति की क्रिया करते रहने की प्रतिज्ञा करायी, यहाँ भी अपनी ही सस्कृत थी—'मैं पं. पथवारीदीन की धर्म-पत्नी' की संस्कृत उपस्थित लोगो में प्रायः सभी समझे। सुनकर मुस्किराये। एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ी इस मुस्कान के भीतर मैंने कुल्ली की एकादशाह-क्रिया समाप्त की। यजमान को आशीर्वाद देकर सीधा भेज देने के लिए कहा, और वाहर निकला।

वाहर निकल रहा था कि आलोचना सुन पड़ी, "सव ठीक हुआ। बन गयी कुल्ली की।"

खाँसकर गम्भीर मुद्रा से मैं ससुराल की तरफ वढा।

शाम को कुल्ली के यहाँ से सीधा आया। मैंने सासुजी से कहा, "रखा लीजिए। आप लोग इसमे से कुछ न लीजिए। कल पूडी बना दीजिएगा।"

देखकर सासुजी ने कहा, "एक दफे मे तुम्हारे खाये न खाया जायगा, इतना घी है।" मैं गम्भीर होकर रह गया।

दूसरे दिन सवेरे, जैसी आदत थी, चिकवे के यहाँ से गोश्त ले आया।

देखकर सासुजी ने कहा, "भैया, तुम तो आज पूडी खाने के लिए कहते थे।"

मैंने कहा, "कुल्ली की स्त्री पहले मुसलमानिन थी; इसलिए प्रकृति ने उनके संस्कारों के अनुसार मुझे गोश्त खाने के लिए प्रेरित किया है। इसमे दोष नही।"

०००

बिल्लेसुर बकरिहा

कलाकार—

प्रिय बन्धु श्री अमृतलाल नागर को

स्नेह-भेंट

—'निराला'

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्राक्कथन

'बिल्लेसुर बकरिहा' हास्य लिये एक स्केच है। मुझे विश्वास है, पाठकों का मनोरंजन होगा।

लखनऊ
25 दिसम्बर 1941

—'निराला'

द्वितीय संस्करण की भूमिका

निवेदन

'बिल्लेसुर बकरिहा' प्रगतिशील साहित्य का नमूना है। मित्रों ने इसका बड़ा समादर किया है। बड़ी स्तुति की है। पत्रों में काफी निबन्ध, आलोचनाएँ इस पर आ चुके हैं। इसका एक संस्करण बहुत जल्द बिक गया। बहिरङ्ग-चित्रण पर ही अङ्ग-चित्रण सूचित है जो प्रगतिशील साहित्य का प्रथम चरण है। कला ऐसी है जैसे तीन छोटी-बड़ी कहानियाँ एक जोड़ के साथ रख दी गयी हैं। अन्त समाप्त होकर भी लटका हुआ है जिसमें पाठक को एक धक्का-सा लगता है, पर दिल को ताकत पहुँचती है। पढ़कर ही विवेचन करें।

दारागंज
15.4.45

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

एक

'विल्लेसुर'—नाम का शुद्ध रूप वड़े पते से मालूम हुआ—'विल्वेश्वर' है। पुरवा डिवीजन में, जहाँ का नाम है, लोकमत विल्लेसुर शब्द की ओर है। कारण, पुरवा मे उक्त नाम के प्रतिष्ठित शिव है। अन्यत्र यह नाम न मिलेगा, इसलिए भाषा-तत्त्व की दृष्टि से गौरवपूर्ण है। 'वकरिहा' जहाँ का शब्द है, वहाँ 'वोकरिहा' कहते है। वहाँ 'वकरी' को 'वोकरी' कहते है। मैंने इसका हिन्दुस्तानी रूप निकाला है। 'हा' का प्रयोग हनन के अर्थ में नही, पालन के अर्थ में है।

विल्लेसुर जाति के ब्राह्मण, 'तरी' के सुकुल है, खेमेवाले के पुत्र खैयाम की तरह किसी वकरीवाले के पुत्र वकरिहा नही। लेकिन तरी के सुकुल को संसार पार करने की तरी नही मिली तव वकरी पालने का कारोवार किया। गाँववाले उक्त पदवी से अभिहित करने लगे।

हिन्दी-भाषा-साहित्य में रस का अकाल है, पर हिन्दी वोलनेवालो मे नही; उनके जीवन में रस की गङ्गा-जमुना वहती हैं; बीसवी सदी-साहित्य की धारा उनके पुराने जीवन मे मिलती है। उदाहरण के लिए अकेला विल्लेसुर का घराना काफी है। विल्लेसुर चार भाई आधुनिक साहित्य के चारों चरण पूरे कर देते है।

विल्लेसुर के पिता का नाम मुक्ताप्रसाद था; क्यों इतना शुद्ध नाम था, मालूम नही; उनके पिता पण्डित नही थे। मुक्ताप्रसाद के चार लड़के हुए—मन्नी, ललई, विल्लेसुर, दुलारे। नाम उन्होने स्वयं रक्खे, पर ये शुद्ध नाम है। उनके पुकारने के नाम गुणानुसार और-और हैं। मन्नी पैदा होकर साल-भर के हुए, पिता ने वच्चे को गर्दन उठाये वैठा झपकता देखा तो 'गपुआ' कहकर पुकारना शुरू किया, आदर मे 'गप्पू'। दूसरे लड़के ललई की गोराई रोयो में निखर आयी थी, आँखें भी कंजलोचन, स्वभाव में वदले-वदले, पिता ने नाम रक्खा 'भर्रा', आदर मे 'भूरू'। विल्लेसुर के नाम मे ही गुण था; पिता 'विलुआ', आदर मे 'विल्लू' कहने लगे। दुलारे अपना ईश्वर के यहाँ से खतना कराकर आये थे, पिता को नामकरण मे आसानी हुई, 'कटुआ' कहकर पुकारने लगे, आदर मे 'कट्टू'।

अभाग्यवश पुत्रो का विकास देखने से पहले मुक्ताप्रसाद संसार-वन्धन से मुक्त हो गये। उनकी पत्नी देख-रेख करती रही। पर वे भी, पीसकर, चौका-टहल कर, कण्डे पाथकर, ढोर छोड़कर, रोटी पकाकर, छोटे-से वाग के आम-महुए वीनकर, लडकों को किसानी के काम मे लगाकर ईश्वर के यहाँ चली गयी। उनके न रहने

पर चारों भाइयों की एक राय नही रही। विवाद काम मे विघ्न पैदा करता है। फलत. चार भाइयों की दो टोलियाँ हुईं। मन्नी और बिल्लेसुर एक तरफ हुए, ललई और दुलारे एक तरफ, जैसे सनातनधर्मी और आर्यसमाजी। कुछ दिन इसी तरह चला। फिर इनमें भी शाखें फूटी जैसे वैष्णव और शाक्त, वैदिक और वितण्डावादी। फिर सबकी अपनी डफली और अपना राग रहा।

सनातन धर्मानुसार मन्नी दुखी हुए कि तरी के सुकुल होने के कारण कोई लडकी नही ब्याह रहा। पर विवाह आवश्यक है, इस लोक के लिए भी और परलोक के लिए भी। माता-पिता गुजर गये हैं, पानी तो उन्हे मिल जाता है, पर माताजी को वडियाँ नही मिलती। विना गृहिणी के घर मे भूत डेरा डालते हैं। विचार के अनुसार मन्नी बातचीत करते और जहाँ कही अनाथ की लडकी देखते थे, डोरे डालते थे। एक जगह लासा लग गया। कहना न होगा, ऐसे विवाह की बातचीत मे अत्युक्ति ही प्रधान होती है, अर्थात् झूठ ही अधिक यानी एक पैसे की हैसियत एक लाख की बनायी जाती है। मन्नी के विवाह मे ऐसा ही हुआ। लड़की ने माँ का दूध छोडा ही था, माँ बेवा थी, कहा गया, रुपये दो-तीन सौ लेकर क्या करोगी जब कि लड़की को अभी दस साल पालना-पोसना है,—वही चलकर रहो, घी-दूध खाओ और रानी की तरह रहकर लडकी की परवरिश करो। बात माँ के दिल में बैठ गयी। मन्नी तव तीस साल के थे; पर चूंकि नाटे कद के थे, इसलिए अट्ठारह-उन्नीस की उम्र बतलायी गयी। मूछो की वैसी बला न थी। बात खप गयी।

मन्नी के खेतों के पास एक झाडी है; कहते है, वहाँ देवता झाडखण्डेश्वर रहते है। एक दिन शाम को मन्नी धूप-दीप, अक्षत-चन्दन, फूल-फल-जल लेकर गये और उकड़ूँ बैठकर उनकी पूजा करते न-जाने क्या-क्या कहते रहे। फिर लौटकर प्रसाद पाकर लेटे और पहर रात रहते पुरवा की तरफ चल दिये। एक हफ्ते बाद, बैगनी साफा बाँधे, एक बेवा और उसकी लड़की को लेकर लौटे। रास्ते मे जमीदार का खलिहान लगा था, दिखाकर कहा— सब अपनी ही रब्बी है। सासुजी ने मुश्किल से आनन्दातिरेक को रोका। कुछ बढ़े। गाँव के बागात देख पडे। मन्नी ने हाथ उठाकर बताया—वहाँ से वहाँ तक सब अपनी ही बागें है। सासुजी को सन्देह न रहा कि मन्नी मालदार आदमी है। घर टूटा था। भाइयो से जुदा होकर एक खण्डहर मे रहे थे; लेकिन वाग्देवी प्रचण्ड थी, खण्डहर को भी खिला दिया। पहुँचने से पहले रास्ते में जमीदार की हवेली दिखाकर बोले—हमारा असली मकान यह है, लेकिन यहाँ भाई लोग हैं, आपको एकान्त मे ले चलते है। वहाँ आराम रहेगा, यहाँ आपकी इज्जत न होगी, फिर उसी को हवेली बना लेंगे। सासु ने श्रद्धापूर्वक कहा—हाँ भय्या, ठीक है, बाहरी आदमियो मे रहना अच्छा नही। मन्नी खण्डहर मे ले गये। इस दिन पसेरी-भर दूध ले आये। सासुजी लज्जित होकर बोली—ऐ, इतना दूध कौन पियेगा? मन्नी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—औटने पर थोडा रह जायगा, तीन आदमी है, ज्यादा नही; फिर अभी कुछ दूध-चीनी शरवत के तौर पर पियेंगे। सासु ने आराम की साँस ली। मन्नी भग छानते थे। ठाकुरद्वारे मे एक गोला पीसकर तैयार किया और चुपचाप ले आये। दूध मे

शकर मिलाकर गोला घोल दिया। भंग में बादाम की मात्रा काफी थी, सासुजी को अमृत का स्वाद आया, एक साँस मे पी गयी। मन्नी ने थोड़ी-सी अपनी भावी पत्नी को पिलायी, फिर खुद पी। सासुजी हाथ-पैर धोकर बैठी, मन्नी पूड़ी निकालने लगे। जब तक नशा चढ़े-चढ़े तब तक काम कर लिया। पूड़ी-तरकारी दूध-शक्कर, मिठाई-खटाई बड़ी तत्परता से सासुजी को परोसा। सासुजी को मालूम दिया, मन्नी बड़ी तपस्या के फल मिले। खूब खाया। मन्नी ने पलँग बिछा दिया था, माँ-बेटी लेटी। मन्नी भोजन करके ईश्वर स्मरण करने लगे। आधी रात को जोर से गला झाड़ा, पर सासुजी बेखबर रही। फिर दरवाजे पर हाथ दे-दे मारा, पर उन्होने करवट भी न ली। मन्नी समझ गये कि सुबह से पहले आँखें न खोलेंगी। बस, अपनी भावी पत्नी को गले लगाया और भगवान बुद्ध की तरह घर त्यागकर चल दिये। पत्नी गले लगी सोती रही। सुबह होते-होते मन्नी ने सात कोस का फासला तै किया। जहाँ पहुँचे, वहाँ रिश्तादारी थी। लोग सध गये। सासुजी ने सवेरे हल्ला मचाया। बात खुली। पर चिडिया उड चुकी थे। वे रो-पीटकर शाप देती हुई कि तू मर जा—तेरी चारपाई गंगाजी जाय, घर चली गयीं। मन्नी शुभ दिन देखकर चुपचाप विवाह कर पत्नी को साथ लेकर परदेश चले गये। पत्नी की दस-बारह साल सेवा की। अब धर्म की रक्षा करते हुए, उसे बीस साल की अकेली, उसकी माँ की गोद मे जैसे एक कन्या, छोड़कर स्वर्ग सिधार गये हैं। मन्नी कट्टर सनातनधर्मी थे।

ललई का दूसरा हाल है। पहले ये भी कलकत्ता-बम्बई की खाक छानते फिरे, अन्त मे रतलाम में आकर डेरा जमाया। यहाँ एक आदमी से दोस्ती हो गयी। कहते हैं, ये गुजराती ब्राह्मण थे। ईश्वर की इच्छा, कुछ दिनों में दोस्त ने सदा के लिए आँखें मूंदी। लाचार, दोस्त के घर का कुल भार ललई ने उठाया। दोस्त का एक परिवार था। पत्नी, दो बेटे, बड़े बेटे की स्त्री। इन सबमे ललई का वही रिश्ता हुआ जो इनके दोस्त का था। इस परिवार मे कुछ माल भी था, इसलिए ललई ने परदेश रहने से देश रहना आवश्यक समझा। चूंकि अपने धर्म-कर्म मे दृढ़ थे इसलिए लोक-निन्दा और यशःकथा को एक-सा समझते थे। अस्तु इन सबको गाँव ले आये। एकसाथ पत्नी, दो-दो पुत्र और पुत्रवधू को देखकर लोग एकटक रह गये। इतना बडा चमत्कार उन्होने कभी नही देखा था। कहीं सुना भी नही था। गाँववालों की दृष्टि ललई पहले ही समझ चुके थे, जानते थे, जिस पर पड़ती है, उसका जल्द निस्तार नही होता, इसलिए निस्तार की आशा छोड़कर ही आये थे। गाँववालो ने ललई का पान-पानी बन्द किया। ललई ने सोचा, एक खर्च बचा। गाँववाले भी समझे, इसने बेवकूफ बनाया, माल ले आया है जिसका कुछ भी खर्च न कराया गया। ललई निर्विकार चित्त से अपने रास्ते आते-जाते रहे। मौके की ताक मे थे। इसी समय आन्दोलन चला। ललई देश के उद्धार में लगे। बड़ा लड़का गुजरात में कहीं नौकर था, खर्चा भेजता रहा। गाँववाले प्रभाव में आ गये। ललई की लाली के आगे उनका असहयोग न टिका। अब मिलने की बातें कर रहे है। ललई राजनीतिक सुधारक सामाजिक आदमी है।

बिल्लेसुर का हाल आगे लिखा जायगा। इनमे बिल और ईश्वर दोनों के भाव

साथ-साथ रहे।

दुलारे आर्यसमाजी थे। बस्तीदीन मुकुल पचास साल की उम्र मे एक वेवा ले आये थे। लाने के साल ही भर में उनकी मृत्यु हो गयी। दुलारे ने उस वेवा को समझाया, पति के रहते भी तीन साल या तीन महीने खबर न लेने पर पत्नी को दूसरा पति चुनने का अधिकार है। फिर जब बस्तीदीन नही रहे तब तीसरे पति के निर्वाचन की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता है, और दुलारे उनकी सब तरह सेवा करने को तैयार है। स्त्री को एक अवलम्ब चाहिए। वह राजी हो गयी। लेकिन दुलारे भी साल-भर के अन्दर ससार छोड़कर परलोक सिधार गये। पत्नी को हमल रह गया था, बच्चा हुआ। अब वह नारद की तरह ललई के दरवाजे बैठा खेला करता है। माँ नही रही।

दो

मन्नी मार्ग दिखा गये थे, बिल्लेसुर पीछे-पीछे चले। गाँव मे सुना था, बगाल का पैसा टिकता है, बम्बई का नही, इसलिए बंगाल की तरफ देखा। पास के गाँवों के कुछ लोग वर्दवान के महाराज के यहाँ थे सिपाही, अर्दली, जमादार। बिल्लेसुर ने साँस रोककर निश्चय किया, वर्दवान चलेगे। लेकिन खर्च न था। पर प्रगतिशील को कौन रोकता है ? यद्यपि उस समय बोल्शेविज्म का कुछ ही लोगों ने नाम सुना था, बिल्लेसुर को आज भी नही मालूम, फिर भी आइडिया अपने आप बिल्लेसुर के मस्तिष्क मे आ गयी। वे उसी फटेहाल कानपुर गये। बिना टिकट कटाये कलकत्तेवाली गाडी पर बैठ गये। इलाहाबाद पहुँचते-पहुँचते चेकर ने कान पकडकर गाड़ी मे उतार दिया। बिल्लेसुर हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय कानून-भग कर रहे थे, कुछ बोले नही, चुपचाप उतर आये; लेकिन सिद्धान्त नही छोडा। प्लेटफार्म पर चलते-फिरते समझते-बूझते रहे। जब पूरब जानेवाली दूसरी गाडी आयी, बैठ गये। मोगलसराय तक फिर उतारे गये; लेकिन, दो-तीन दिन में चढते-उतरते, वर्दवान पहुँच गये।

पं. सत्तीदीन सुकुल, महाराज वर्दवान के यहां जमादार थे। यद्यपि बंगालियो को 'सत्तीदीन' शब्द के उच्चारण मे अडचन थी, वे 'सत्यदीन' या सतीदीन कहते थे, फिर भी 'सत्तीदीन' की उन्नति मे वे कोई बाधा नही पहुँचा सके। अपनी अपार मूर्खता के कारण सत्तीदीन महाराज के खजांची हो गये, आधे; आधे इसलिए कि ताली सत्तीदीन के पास रहती थी, खाता एक दूसरे बाबू लिखते थे। सत्तीदीन इसे अपने एकान्त विश्वासी होने का कारण समझते थे। दूसरे हिन्दोस्तानियो पर भी इस मर्यादा का प्रभाव पड़ा। बिल्लेसुर समझ-बूझकर इनकी शरण मे गये। सत्तीदीन सस्त्रीक रहते थे दो-तीन गायें पाल रखी थी। स्त्री 'शिखरिदशना' थी, यानी

सामने के दो दाँत आवश्यकता से अधिक बड़े थे। होंठों से कोशिश करने पर भी न बन्द होते थे। पैकू के सुकुल। कनवजियापन में बिल्लेसुर से बहुत बड़े। फलतः बिल्लेसुर को यहाँ सब तरह अपनी रक्षा देख पड़ी।

बिल्लेसुर सत्तीदीन के यहाँ रहने लगे। ऐसी हालत मे गरीब की तहजीब जैसी, दबे पाँव, पेट खलाये, रीड झुकाये, आँखें नीची किये आते-जाते रहे। उठते जोवन में सत्तीदीन की स्त्री को एक सुहलानेवाला मिला। दो-तीन दिन तक भोजन न खला। एक दिन औरतवाले कोठे जी गया। नक्की सुरों मे बोली, "मै कहती हूँ, बिल्लेसुर, तुम तो आ ही गये हो और अभी हो ही, इस चरवाहे को बिदा क्यों न कर दूं? हराम का पैसा खाता है। कोई काम है? घास खड़ी है, दो बोझ काट लानी है; नही, पैर की बँधी मूँठें है—यहाँ-वहाँ का जैसा धान का पैरा नहीं—बड़ा-बडा कतर देना है और थोडी-सी सानी कर देनी है, देश मे जैसे डण्डा लिये यहाँ ढोरो के पीछे नहीं पड़ा रहना पड़ता। लम्बी-लम्बी रस्सियाँ, तीन गायें है, घास खड़ी है, बस ले गये और खूँटा गाड़कर बाँध दिया, गायें चरती रही, शाम को बाबू की तरह टहलते हुए गये और ले आये, दूध दुह लिया, रात को मच्छड़ लगते है, गीले पैरे का धुआँ दे दिया; कहने मे तो देर भी लगी।" कहकर सत्तीदीन की स्त्री ने कनपटी घुमायी और दोनों होठ सटाने शुरू किये।

बिल्लेसुर चौकन्ने। ढोर चराने के लिए समन्दर पार नही किया। यह काम गाँव मे भी था। लेकिन परदेश है। अपना कोई नही। दूसरे के सहारे पार लगना है। सोचा, तब तक कर लें; नौकरी न लगी तो घर का रास्ता नापेंगे।

बिल्लेसुर को जवाब देते देर हुई। सत्तीदीन की स्त्री ने कनपटी घुमायी कि बिल्लेसुर बोले, "कौन बडा काम है। काम के लिए ही तो आया हूँ सात सौ कोस—देस सात सौ कोस तो होगा?"

बिल्लेसुर के निश्चय पर जमकर सत्तीदीन की स्त्रीने कहा, "ज्यादा होगा।" कानपुर से बर्दवान की दूरी। सोचकर बोली, "जमादार आयेगे तो पूछूंगी, उनकी किताब में सब लिखा है।"

बिल्लेसुर खामोश रहे। मन मे किस्मत को भला-बुरा कहते रहे।

शाम को जमादार आये। भोजन तैयार था। स्त्री ने पैर धुला दिये। जमादार पाटे पर बैठे। स्त्री दिन को मक्खियाँ उड़ाती है, रात को सामने बैठी रहती है। जमादार भोजन करने लगे। स्त्री ने कहा, "जमादार, बिल्लेसुर कहते हैं, अपना देस यहाँ से सात सौ कोस है, मैं कहती हूँ, और होगा। तुम्हारी किताब मे तो सबकुछ लिखा है?"

सत्तीदीन को एक डायरी मिली थी। डायरी भी वही बाबू लिखता था। लिखने के विषय के अलावा और क्या-क्या उसमें लिखा है, सत्तीदीन उस बाबू से कभी-कभी पढ़ाकर समझते थे। सत्तीदीन ने सोचा, महाराज ने ऊँचा पद तो दिया ही है, संसार को भी उनकी मुट्ठी मे बेर की तरह डाल दिया है। कई रोज वह किताब घर ले आये थे, और वहाँ जो कुछ सुना था, जितना याद था, जबानी स्त्री को सुनाया था।

बायें हाथ से मूँछो पर ताव देते हुए मुंह का नेवाला निगलकर सत्तीदीन ने

कहा, "सात सौ कोस इलाहाबाद तक पूरा हो जाता है।" उनकी स्त्री चमकती आँखो से बिल्लेसुर को देखने लगी। बिल्लेसुर हार मानकर बोले, "जब किताब में लिखा है तो यही ठीक होगा।"

पति को प्रसन्न देखकर पत्नी ने अर्जी पेश की जिस तरह पहले बडे आदमियो का मिजाज परखा जाता था, फिर बात कही जाती थी। बिल्लेसुर गर्जमन्द की बावली निगाह से देखते रहे। सत्तीदीन ने उसमे एक सुधार की जगह निकाली, कहा, "बिल्लेसुर अपने आदमी है इसमे शक नही, लेकिन इसमे भी शक नही कि उस छोकडे से ज्यादा खायेंगे। हम तनख्वाह न देंगे। दोनों वक्त खा लें। तनख्वाह की जगह हम तहसील के जमादार से कह देंगे, वे इन्हें गुमाश्तों के नाम तहसील की चिट्ठियाँ देते रहे, ये चार-पाँच घण्टे मे लगा आयेंगे, इन्हे चार-पाँच रुपये महीने मिल जाया करेंगे, हमारा काम भी करते रहेंगे।"

सत्तीदीन की स्त्री ने किये उपकार की निगाह से बिल्लेसुर को देखा। बिल्लेसुर खूराक और चार-पाँच का महीना सोचकर अपने घनत्व को दबा रहे थे, इतने से आगे बहुत कुछ करेंगे। सोचते हुए उन्होंने सत्तीदीन की स्त्री से हामी की आँख मिलायी।

जमादार गम्भीर भाव से उठकर हाथ-मुँह धोने लगे।

तीन

बिल्लेसुर जीवन-संग्राम मे उतरे। पहले गायो के काम की बहुत-सी बातें न कही गयी थी, वे सामने आयी। गोबर उठाना, जगह साफ करना, मूत पर राख छोड़ना, कण्डे पाथना, कभी-कभी गायो को नहलाना आदि भीतरी बहुत-सी बातें थी। दरअसल फुर्सत न मिलती थी। पर बिना चिट्ठी लगाये पूरा न पड़ता था। पास-पास की चिट्ठियाँ मिलती थी, जैसा सत्तीदीन कह गये थे। एक चिट्ठी के तीन आने मिलते थे। कुछ दिनो मे बिल्लेसुर को मालूम हुआ, दूर की चिट्ठी मे दूना मिलता है। उन्होंने हाथ बढ़ाया। तहसील के जमादार ने कहा, न तुम नौकर हो, न किसी की एवज पर हो, फिर सत्तीदीन ने मना किया है, दूर की चिट्ठी हम न देंगे। बिल्लेसुर पैरो पड़े, कहा, नौकर तो आप ही करेंगे; तब तक दूरवाली चिट्ठी भी दें, मै बारह कोस छ घण्टे मे जाऊँगा-आऊँगा। जमादार चिट्ठी देने लगे।

चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को अखरता था। बिल्लेसुर लौटकर सदा चढी त्योरियाँ देखते थे। गोकि काम मे कसर न रहती थी। दस बजे तक कुल काम कर जाते थे। लौटकर गायो को खोल लाते थे और रात नौ बजे तक उनके पीछे लगे रहते थे। फिर भी सत्तीदीन की स्त्री की शिकन न मिटती थी। दूसरा नौकर भी न रक्खा, क्योंकि बिल्लेसुर सस्ते थे। बातें कभी-कभी सुनाती थी जो

कानों को प्यारी न थी, और उनसे पेट की आँतें निकालने की होती थी। विल्लेसुर वरदाश्त करते थे। गर्मी के दिनों मे दस-बारह वजे तक घर का कुछ काम करते थे, फिर चिट्ठी लगाते हुए, देर हुई सोचकर धूप में, नंगे सिर, विना छाता, दौड़ते हुए रास्ता पार करते थे। लौटते थे, हाँफते हुए, मुँह का थूक सूखा हुआ, होठ सिमटे हुए, पसीने-पसीने, दिल धड़कता हुआ, यहाँ का वाकी काम करने के लिए। पहुँचकर जमीन पर जरा बैठते थे कि सत्तीदीन की स्त्री पूछती थीं, कितना कमा लाये विल्लेसुर ? जवान छुरी-सी पैनी, मतलव हलाल करता हुआ। बिल्लेसुर उस गरमी मे वनावटी नरगी लाते हुए, खीस निपोडकर जवाव देते हुए, जरा सुस्ताकर गायो के पीछे तरह-तरह के काम मे दौड़ते हुए।

उन दिनों कइयों से विल्लेसुर कह चुके, मर्द से औरत होना अच्छा। कोई नहीं समझा। बिल्लेसुर सूखे होंठो की हार खायी हँसी हँसकर रह गये।

गाँव में भी विल्लेसुर की वरदाश्त करने की आदत पड़ी थी। कभी कुछ वोले नही। अपनी जिन्दगी की किताव पढ़ते गये। किसी भी वैज्ञानिक से वढकर नास्तिक।

विल्लेसुर दूसरे का अविश्वास करते-करते एक खास शक्ल के वन गये थे। पर अपना वल न छोड़ा था, जैसे अकेले तैराक हों। सत्तीदीन की स्त्री को न मालूम होने दिया कि दूर की कौड़ी लाते है। वारह कोस की दौड छ कोस की रही। दुनिया को खुश करने की नस टोये पा चुके थे; दम साधे, दवाते हुए कई महीने खे गये। एक दिन जमादार को खुश देखकर बोले, "वावा, अव नौकरी लगा देते!"

उन्होने कहा, "अच्छा, कल नाप देना।"

विल्लेसुर मन्नी के भाई थे, पाँच फीट से कुछ ही ऊपर! जानते थे, ऊँचाई घटेगी। तरकीव निकाली। चमरौधा जूता था डेढ इंच से कुछ ज्यादा ऊँचे तले का। उसमें रुई की गद्दी लगायी। पहनकर खडे हुए तो जैसे ईटों पर खड़े हों। लेकिन झेंपे नही, न डरे, जैसे फर्ज अदा कर रहे हो, गये। कचहरी में लट्ठ लाकर लगाया गया। विल्लेसुर ने आँख उठायी कि देखें, पूरे हो गये। नापनेवाले ने कहा, —डेढ इंच घटा।

विल्लेसुर ने जमादार को उड़ी निगाह से देखा। साथ आरजू-मिन्नत। जमादार मुस्कराये। कहा, "विल्लेसुर, तुम नौकर नहीं हो सकते, लेकिन कोई-न-कोई सिपाही छुट्टी पर रहता है, जगह तुम्हें मिलती रहेगी, विना तनख्वाह की छुट्टीवाले की तनख्वाह भी।"

विल्लेसुर तरक्की की सोचकर मुस्कराये।

एक साल वीत गया।

चार

सत्तीदीन की स्त्री को आये कई साल हो गये, उन्होंने जगन्नाथजी के दर्शन नहीं किये। पैसा पास था। एक दिन जमादार से बोली, "जमादार, पैसा तो पास है, लेकिन लड़का-बच्चा कोई नहीं। हमारे-तुम्हारे बाद पैसा अकारथ जायगा। इतने दिन आये हुए, अभी जगन्नाथजी के दर्शन नहीं हुए। अबके सोचती हूँ, बाबा के दर्शन करूँ और कहूँ, बाबा मेरी गोद भर दो तो तुम्हारे चरणों पर लोटकर तुम्हारी एक सौ एक रुपये की शिरनी चढाऊँ। मेरा जी कहता है, बाबा मेरी मनोकामना पूरी करेंगे। देश-देश के लोग जाते हैं, मुँहमाँगा वरदान उन्हें मिलता है, भगवान् ही हैं--अरे हाँ—जो कर, थोड़ा। फिर न जाने क्या सोचकर सत्तीदीन की स्त्री फूट-फूटकर रोने लगी, फिर अपने हाथ आँसू पोछकर हिचकियाँ लेती हुई बोलीं, "मुझे सब सुख है। जैसा वर मिला, वैसा अच्छा घर; धन है, मान है, गहने है, कपडे हैं, दूध से भरी हूँ, लेकिन ऊँ हूँ हूँ"—फिर रोदन, यानी पूत नहीं।

सत्तीदीन ने छाती से लगाकर कहा, "अभी तुम्हारी कोई उमर हो गयी है? पहली होती तो एक बात होती। वे तो बेचारी चक्की पीसती हुई चली गयीं। पाँच साल हुए, तुम्हे ब्याह कर लाया हूँ। अब तुम्हारी उम्र बीस साल की होगी?"

सिसकियाँ लेते हुए स्त्री ने कहा, "उन्नीसवाँ चल रहा है।" हालाँकि उनकी उम्र पच्चीस साल से ऊपर थी।

"फिर?" सत्तीदीन ने कहा, "इतनी उतावली क्यो होतीं हो? मैं भी अभी बुड्ढा नही। लडके-बच्चे जब आते हैं, अपने आप आते हैं।"

"ऐसा न कहो," स्त्री ने कहा, "कहो जगन्नाथजी की कृपा से आते हैं।"

सत्तीदीन गम्भीर हो गये। बोले, "जगन्नाथजी की कृपा सब तरफ है। ऊँचा ओहदा मिला है, यह भी जगन्नाथजी की कृपा है; और उनके दर्शन हम रोज करते है मन में, रही बात उनकी पुरी मे जाने की, सो चले चलेंगे, दस दिन की छुट्टी ले लेंगे। यह कौन बडी बात है?"

स्त्री को ढाँढस बँधा। इसी समय बिल्लेसुर आये। जमादार ने पूछा, "बिल्लेसुर जगन्नाथजी चलोगे?"

बिल्लेसुर खरचा नही लगाना चाहते थे। सत्तीदीन समझ गये। लेकिन बिल्लेसुर के पास होगा भी कितना, सोचकर कहा, "अच्छा, अपनी छुट्टी मंजूर करा लेना दस दिन की, अगले इतवार को चलेंगे।" सत्तीदीन को साथ एक नौकर चाहिए था।

बिल्लेसुर जब दूसरे की एवज मे काम करने लगे, तब कचहरी की लगातार हाजिरी जरूरी हो गयी। सत्तीदीन को गायों के काम के लिए दूसरा नौकर रखना पड़ा। बाहर का बहुत-सा काम बिल्लेसुर कर देते थे, यों वे अब अलग रहते थे, अलग पकाते खाते थे।

फोकट मे जगन्नाथजी के दर्शन होगे, बिल्लेसुर के आनन्द का आरपार न रहा। उन्होंने छुट्टी मंजूर करा ली। अगले इतवार के दिन सत्तीदीन के सामान के रक्षक

के रूप से जगन्नाथजी के दर्शनों के लिए सत्तीदीन और उनकी स्त्री के साथ रवाना हुए।

जिस तरह सत्तीदीन की स्त्री का विश्वास था कि जगन्नाथजी की कृपा की दृष्टि पड़ते ही वे गर्भिणी हो जायँगी, उसी तरह बिल्लेसुर का विश्वास था कि सत्तीदीन की इच्छामात्र से उनकी नौकरी स्थायी हो जायगी, चाहे डेढ इंच की जगह बालिश्त-भर छोटे पड़ें।

अपने विश्वास को फलीभूत करने का उपाय बिल्लेसुर रास्ते में सोचते गये।

पुरी पहुँचकर बहुत खुश हुए। ऐसा दृश्य कानपुर से वर्दवान तक न देखा था। समन्दर का किनारा— बालू के ढूह—देखकर बहुत खुश हुए, समुद्र देखकर जामे से बाहर हो गये। जगन्नाथजी की स्मृति में बहुत से घोंघे समुद्र के किनारे से चुन-कर रख लिये, कुछ छोटे-छोटे शंख-से।

मार्कण्डेय, वटकृष्ण, चन्दनतालाब आदि प्रसिद्ध जगहे देखते फिरे। मन्दिर के अहाते मे और छोटे-छोटे मन्दिर है। एक-एक देखते फिरे। एकादशी को एक जगह उल्टा टँगी देखकर हँसे। सत्तीदीन ने कहा, "बाबा के प्रताप से यहाँ एकादशी उल्टा टाँग दी गयी है; यहाँ कोई एकादशी का व्रत नही कर सकता।" बिल्लेसुर ने उन्हे भी हाथ जोड़कर प्रणाम किया। फिर सब लोग कलयुग की मूर्ति देखने गये। कलियुग अपनी बीवी को कन्धे पर बैठाये बाप को पैदल चला रहा है। सत्तीदीन की स्त्री गौर से देखती रही। कई रोज बड़े आनन्द से कटे। भुवनेश्वर चलने की तैयारी हुई।

जगन्नाथजी मे जूठा नही होता, या दूसरे की जूठन खाना प्रचलित है। इधर के लोग, जिन्हें चौके की कैद माननी पड़ती है, वहाँ खुलकर एक दूसरे की जूठन खाते हैं। कोई बुरा नही मानता। बिल्लेसुर ने जमादार और जमादारिन की पत्तलों मे अपने जठे हाथ से भात उठाकर डाल दिया। वे कुछ न बोले, बल्कि खाते हुए हँसते रहे।

दो दिन बीत जाने पर की बात है, जमादार नहा चुके थे, बिल्लेसुर भी नहा-कर आये। आकर सीधे जमादार के पास गये और उनके पैर पकड़कर पेट के बल लेट गये। "क्या है बिल्लेसुर ? —क्या है बिल्लेसुर ?" जमादार शंका की दृष्टि से देखते हुए पूछने लगे। बिल्लेसुर ने करुण स्वर से कहा, "कुछ नही, बाबा, मेरा भवसागर से उद्धार करो।"

"भवसागर से उद्धार हम कैसे करें, बिल्लेसुर ? क्या हो गया है ?" सत्तीदीन विचलित हो गये।

पैर पकड़े हुए ही बिल्लेसुर ने कहा, "बाबा, मुझे गुरुमन्त्र दो !"

"अरे गुरु यहाँ एक-से-एक बड़े है, छोड़ो पाँव, उनमे जिससे चाहो, मन्त्र ले लो।" सत्तीदीन ने पैर छुड़ाने को किया।

"मेरी निगाह मे तुमसे बडा कोई नही। तुम मुझ पर दया करो।" पैर पकड़े हुए बिल्लेसुर ने पैर पर माथा रख दिया।

"मुझे तो कोई गुरुमन्त्र आता ही नही। सिर्फ गायत्री आती है।" विकल होकर सत्तीदीन ने कहा।

"बाबा, गायत्री से बड़ा गुरुमन्त्र और कोई नहीं है। मैं यही मन्त्र लूँगा।"

"अरे, गायत्री तो जनेऊ होते वक्त तुम सुन चुके हो।"

"मैं भूल गया हूँ। तुम्हारे पैर छूकर कहता हूँ। कल मैंने सपना देखा है कि बाबा जगन्नाथजी कहते हैं···लेकिन कहूँगा तो सपना फलियायगा नहीं।"

स्वप्न की बात से सत्तीदीन की स्त्री रोमांचित हुई। बिल्लेसुर बाजी मार ले गया, सोचा। पुकारकर कहा, "बिल्लेसुर पैर छोड़ दो। तुम्हें बाबा का सपना हुआ है, तो मैं कहती हूँ। जमादार गुरुमन्त्र देंगे। यहाँ आओ, अकेले में मुझसे बताओ कि क्या सपना देखा।"

बात पाकर बिल्लेसुर ने पैर छोड़ दिये। सत्तीदीन की स्त्री कोठरी की तरफ बढ़ी। बिल्लेसुर साथ-साथ गये। वहाँ जाकर कहा, "मैं सोता था, सोता था, देखा भस्स से एक आग जल उठी, उसमें तीन मुँहवाला एक आदमी बैठा था, उसने कहा, बिल्लेसुर, तू गरीब ब्राह्मण है, सताया हुआ है, लेकिन घबड़ा मत, तू जिसके साथ आया है, उनकी सेवा कर, उनसे यही गुरुमन्त्र ले ले, तू दूधो-पूतो फलेगा। फिर देखता हूँ तो कहीं कुछ नहीं।"

सत्तीदीन की स्त्री ने निश्चय किया, फल उल्टा हुआ। वह सपना दरअसल उन्हें होना था। कोई खता न हो गयी हो। हर सोमवार बाबा के नाम घी की बत्ती देने का संकल्प किया। फिर सत्तीदीन से मन्त्र दे देने के लिए कहा। सत्तीदीन ने कण्ठी, माला, मिठाई, अँगोछा आदि बाजार से खरीद लाने के लिए बिल्लेसुर से कहा। बिल्लेसुर गये, क्षण-भर में खरीद लाये। सत्तीदीन ने गायत्री मन्त्र से पुनर्वार बिल्लेसुर को दीक्षित किया।

बिल्लेसुर की श्रद्धालु आँखों का प्रभाव सत्तीदीन की स्त्री पर पड़ा। जगन्नाथ-दर्शन बिल्लेसुर के मुकाबले उनका फीका रहा सोचकर जमादार से बोली, "जमादार, मैं कहती हूँ, मन्त्र मैं भी क्यों न ले लूँ।" जमादार ने कहा, "अच्छा, पण्डाजी आवें, तो पूछ लें।" ईश्वर की इच्छा से पण्डाजी कुछ ही देर में आ गये। सत्तीदीन ने पूछा। पण्डाजी ने सत्तीदीन की स्त्री को देखा और कहा, "अभी तुम रख नहीं सकेगा। अभी तो तुमको मासिक धर्म होता है।"

सत्तीदीन की स्त्री कटी निगाह देखती रही। पण्डाजी ने सत्तीदीन को सलाह दी कि चौथेपन में गुरुमन्त्र लेना लाभदायक होता है। जब तक स्त्री को मासिक धर्म होता है तब तक वह मन्त्र की रक्षा नहीं कर सकती, अशुद्ध रहती है और तरह-तरह से पैर फिसलने की सम्भावना है। सत्तीदीन मान गये।

वहाँ से भुवनेश्वर गये, फिर बर्दवान वापस आये।

पाँच

सत्तीदीन की स्त्री एक साल तक जगन्नाथजी की शक्ति की परीक्षा करती रहीं। हर सोमवार को घी का दिया देती थी; और हर महीने के अन्त तक प्रतीक्षा करती थीं। लेकिन कोई फल न हुआ।

बिल्लेसुर की क्रिया-काष्ठा बहुत बढ़ गयी। तिलक, माला, और गायत्री के धारण से उनकी प्रखरता दिन-पर-दिन निखरती गयी।

जब एक साल तक पुत्र-विषय मे बाबा जगन्नाथजी ने कृपा न की तब सत्ती-दीन की स्त्री का देवता पर कोप चढ़ा और वे दिव्य शक्ति को छोड़कर मनुष्य-शक्ति की पक्षपातिनी बन गयी; यथार्थवादी लेखक की तरह।

बिल्लेसुर को बड़ी ग्लानि हुई। उनके गुरुमन्त्र का लोग मजाक उड़ाते थे। उनकी हालत मे भी कोई सुधार नहीं हुआ। उन्होने निश्चय किया, देश चलकर रहेगे, जमीदार की गुलामी से गुरु की गुलामी सख्त है, यहाँ से वहाँ की आबोहवा अच्छी, अपने आदमी बोलने-बतलाने के लिए हैं, अब यहाँ नहीं रहेगे।

गुरुआइन का यथार्थवाद भी बिल्लेसुर को खला। एक दिन वे अपनी कण्ठी और माला लेकर गये और गुरुआइन के सामने रखकर कहा, "मैंने देश जाने की छुट्टी ली है। लौटूँ या न लौटूँ। कहने को क्यों रहे, यह माला है और यह कण्ठी, लो, अब मैं चेला नही रहूँगा, जैसे गुरु वैसे तुम, यह तुम्हारा मन्त्र है!"

कहकर गायत्री-मन्त्र की आवृत्ति कर गये और सुनाकर चल दिये, फिर पैर भी नही छुए।

छह

बिल्लेसुर गाँव आये। अण्टी में रुपये थे, होंठों में मुसकान। गाँव के जमीदार, महा-जन, पडोसी, सबकी निगाह पर चढ़ गये—सबके अन्दाज लडने लगे—'कितना रुपया ले आया है।' लोगों के मन की मन्दाकिनी मे अव्यक्त ध्वनि थी—बिल्लेसुर रुपयों से हाथ धोयें! रात को लाठी के सहारे कच्चे मकान की छत पर चढ़कर, आँगन मे उतरकर, रक्खा सामान और कपड़े-लत्ते उठा ले जानेवाले चोर ताक में रहने लगे कि मौका मिले तो हाथ मारें। एक दिन मन्सूबा गाँठकर त्रिलोचन मिले और अपनी ज्ञानवाली आँख खोलकर बड़े अपनाव से बिल्लेसुर से बातचीत करने लगे, "क्यो बिल्लेसुर, अब गाँव में रहने का इरादा है या फिर चले जाओगे?"

बिल्लेसुर त्रिलोचन के पिता तक का इतिहास कण्ठाग्र किये थे, सिर्फ हिन्दी के ब्लैक वर्स के श्रेष्ठ कवि की तरह किसी सम्मेलन या घर की बैठक मे आवृत्ति करके

सुनाते न थे। मुस्कराते हुए नरमी से बोले, "भैया, अब तो गाँव मे रहने का इरादा है—बंगाल का पानी बड़ा लागन है।"

त्रिलोचन के तीसरे नेत्र मे और चमक आ गयी। एक कदम बढकर और निकट होते हुए, समीप्यवाले भक्त के सहानुभूतिसूचक स्वर से बोले, "बड़ा अच्छा है, बडा अच्छा है। काम कौन-सा करोगे ?"

"अभी तक कुछ विचार नही किया।" बिल्लेसुर वैसे ही मुस्कराते हुए बोले।

"बिना सोते के कुआँ सूख जाता है। बैठे-बैठे कितने दिन खाओगे ?"

"सही-सही कहता हूँ। अभी तो ऐसे ही दिन कटते है।"

"ऐसा न कहना। गांव के लोग बड़े पाजी हैं। पुलिस में रिपोट कर देगे तो बदमाशी में नाम लिख जायगा। कहा करो, जब चुक जायगा तब फिर कमा लायेंगे।"

बिल्लेसुर सिटपिटाये। कहा, "हाँ भैय्या, आजकल होम करते हाथ जलता है। लोग समझेंगे, जब कुछ है ही नही तब खाता क्या है?—चोरी करता होगा।"

त्रिलोचन ने सोचा, परले दरजे का चालाक है, कही कुछ खोलता ही नही। खुलकर बोले, "हाँ, दीनानाथ इसी तरह बहुत खीस निपोड़कर बातचीत किया करते थे, अब लिख गये बदमाशी में, रात को निगरानी हुआ करती है।"

बिल्लेसुर फिर भी पकड़ मे न आये। कहा, "पुलिसवाले आँखें देखकर पहचान लेते हैं—कौन भला आदमी है, कौन बुरा। अपने खेत मैं रामदीन को बँटाई में देकर गया था। वही खेत लेकर किसानी करूँगा।"

त्रिलोचन को थोडी-सी पकड़ मिली। कहा, "हाँ, यह तो अच्छा विचार है। लेकिन तुम्हारे बैल तो हैं ही नही, किसानी कैसे करोगे ?"

बिल्लेसुर पेंच में पड़े। कहा, "इसलिए तो कहा था कि अभी तक कुछ तै नही कर पाया।"

त्रिलोचन का पारा चढ़ना ही चाहता था, लेकिन पारा चढ़ने से खरी-खोटी सुनकर अलग हो जाने के अलावा और कोई स्वार्थ न सधेगा, सोचकर मुश्किल से उन्होने अपने को यथार्थ कहने से रोका, और बडे धैर्य से कहा, "हमारे बैल ले लो।"

"फिर तुम क्या करोगे ?"

"हम और बड़ी गोई लेना चाहते है। लेकिन सौ रुपये लेगे।"

बिल्लेसुर ने निश्चय किया, सौ रुपये ज्यादा नही है। कहा, "अच्छा, कल बतलायेंगे।"

त्रिलोचन, एक काम है, कहकर चले। मन में निश्चय हो गया कि सौ रुपये एकमुश्त देनेवाले बिल्लेसुर के पास पाँच-सात सौ रुपये जरूर होगे। त्रिलोचन दूसरी जगह सलाह करने गये कि किस उपाय से वे रुपये निकाले जायँ।

बिल्लेसुर त्रिलोचन के जाने के साथ घर के भीतर गये और कुछ देर मे तैयार होकर बाहर के लिए निकले। लोगों ने पूछा—कहाँ जाते हो, बिल्लेसुर? बिल्लेसुर ने कहा—पटवारी के यहाँ।

शाम होते-होते लोगों ने देखा, तीन बड़ी-बड़ी गाभिन बकरियाँ लिये बिल्लेसुर एक आदमी के साथ आ रहे हैं। गाँव-भर में हल्ला हो गया। बिल्लेसुर तीन बकरियाँ

ले आये है। सवने एक-एक लम्वी साँस छोड़ी।

वकरियो का समाचार पाकर त्रिलोचन फिर आये। कहा, "वकरी ले आये, अच्छा किया, अव ढोर काफी हो जायेंगे।" विल्लेसुर ने कहा, "हाँ, वैलोंवाला विचार अव छोड़ दिया है, कौन हमारे सानी-पानी करेगा? वकरियो को पत्ते काट-कर डाल दूंगा। वैलो को वाँधकर वैल ही वना रहना पड़ता है।"

"और किसानी?"

"वँटाई मे है, साझे में कर लेंगे।"

सात

विल्लेसुर ने लम्वे पतले वाँस के लग्गे में हँसिया वाँधा—वढ़ाकर गूलर-पीपल, पाकड़ आदि पेड़ों की टहनियाँ छाँटकर वकरियों को चराने के लिए। तैयारी करते दिन चढ़ आया। विल्लेसुर गाँव के रास्ते वकरियों को लेकर निकले। रामदीन मिले। कहा, "ब्राह्मण होकर वकरी पालोगे? लेकिन है वड़ी अच्छी वकरियाँ, खूव दूध देंगी, अव दो साल में वकरी-वकरो से घर भर जायेगा, आमदनी काफी होगी।" कहकर लोभी निगाह से वकरियों को देखते रहे। रास्ते पर जवाव देना विल्लेसुर को वैसा आवश्यक नहीं मालूम दिया। साँस रोके चले गये। मन में कहा—'जव जरूरत पर ब्राह्मणों को हल की मूठ पकड़नी पडी है, जूते की दूकान खोलनी पड़ी है, तव वकरी पालना कौन वुरा काम है?' ललई कुम्हार अपना चाक चला रहे थे, वकरियों को देखकर एक कामरेड के स्वर से विल्लेसुर का उत्साह वढाया। विल्ले-सुर प्रसन्न होकर आगे वढे। आगे मन्दिर था। भीतर महादेवजी, वाहर पीछे की तरफ महावीरजी प्रतिष्ठित थे। जवकि विल्लेसुर गुरुमन्त्र छोड़ चुके थे, फिर भी वकरियों की भेड़िये से कल्याण-कामना किये विना नही रहा गया—मन्दिर में गये। उन्हें महादेवजी से महावीरजी अधिक शक्तिशाली मालूम दिये। यह भी हो सकता है कि वाहर महावीरजी के पास जाने से वे गलियारे से जाती हुई वकरियो को भी देख सकते थे। अस्तु, महावीरजी के पैर छूकर, मन-ही-मन उन्होने कुछ कहा और फिर अपनी वकरियों का पीछा पकड़ा। खेत की हरियाली की तरफ लपकती वकरी को हटककर सामने लक्ष्य स्थिर करके वढ़े। मन्नू का पक्का कुआँ आया। गलियारे मे ही खड़े-खड़े लग्गा वढ़ाकर गलियारे पर आती पीपल की निचली डाल से टहनियाँ छाँटने लगे। टहनियों के गिरते ही वकरियाँ पत्तियों से जुट गयी। जरूरत-भर लच्छियाँ छाँटकर लग्गा डाल के सहारे खड़ा कर विल्लेसुर कुएँ की जगत पर चढ़कर वैठे, वकरियों को देखते हुए। सामने पड़ती जमीन थी। वगल से एक वरसाती नाला निकला था। चरवाहे लड़के वही ढोर लिये इधर-उधर खड़े थे। विल्लेसुर को देखा। उनकी वकरियो को देखा। भगाने की सूझी। सयाने लड़कों

ने सलाह की। बात तै हो गयी कि खेदकर नाले में कर दिया जाय। बिल्लेसुर परेशान होंगे, खोजेंगे। मिलेंगी, मिलेंगी; न मिलेंगी, बला से। एक ने कहा—पासियों को खबर कर दी जाय तो नाले में मारकर निकालेंगे, कुछ मांस हमें भी मिलेगा। दूसरे ने कहा—गाभिन है, किस काम का मांस। फिर बकरियों को भगाने का लोभ लडको से न रोका गया। सलाह करके कुछ बाहर तक रहे, कुछ बिल्लेसुर के पास गये। एक ने कहा, "काका, आओ, कुछ खेला जाय।" बिल्लेसुर मुस्कराये। कहा, "अपने बाप को बुला लाओ, तुम क्या हमारे साथ खेलोगे?" फिर सतर्क दृष्टि से बकरियों को देखते रहे। दूसरे ने कहा, "अच्छा काका, न खेलो; परदेश गये थे वहाँ के कुछ हाल सुनाओ।" बिल्लेसुर ने कहा, बिना अपने मरे कोई सरग नही देखता। बड़े होकर परदेश जाओगे तब मालूम कर लोगे कि कैसा है।" एक तीसरे ने कहा, "यहाँ हम लोग हैं भेड़िये का डर नही; वह ऊँचे हार में लगता है।" बिल्लेसुर ने कहा, "इधर भी आता है, लेकिन आदमी का भेस बदलकर।"

यह कहकर बिल्लेसुर उठे। बकरियाँ एक-एक पत्ती टूँग चुकी थी। झपाटे से बढकर लग्गा उठाया और हाँककर दूसरी तरफ ले चले। पड़ती जमीन से ऊँचे बाग की तरफ चलते हुए कुछ बकरियाँ की लच्छियाँ छाँटी। दीनानाथ गॉव जाते हुए मिले। लोभी निगाह से बकरियो को देखते हुए पूछा, "कितने की खरीदी?" बिल्लेसुर ने निगाह ताड़ते हुए कहा, "अधियाँ की मिली हैं।" बिल्लेसुर के जगे भाग से दीना की चोटी खडी हो गयी—ऐसा तअज्जुब हुआ। पूछा, "तीनो?" बिल्लेसुर ने अपनी खास मुस्कराहट के साथ जवाब दिया, "नही तो क्या—एक?" दीना ने अरथाकर पूछा, "यानी बकरी तुम्हारी, दूध तुम्हारा, मर जाय, उसकी; बच्चे, आधे-आधे?" बिल्लेसुर ने कहा, "हाँ।" बिल्लेसुर के असम्भावित लाभ के बोझ से जैसे दीना की कमर टेढी हो गयी। दबा हुआ बोला, "हाँ गुसैंयाँ जिसको दे।" मन मे ईर्ष्या हुई। बिल्लेसुर अकेले मजा लेंगे? दीना नही, अगर बकरियो को पेट मे न डाला। बिल्लेसुर ने देखा, दीना के माथे पर बल पड़े हुए थे, आँखो में इरादा जाहिर था। बिल्लेसुर को जिन्दगी के रास्ते रोज ऐसी ठोकर लगी है, कभी बचे है, कभी चूके है। अब बहुत सँभले रहते हैं, हमेशा निगाह सामने रहती है। वहाँ से बढते हुए गूलर के पेड़ के तले गये। कुछ पत्ते काटे और उनका बोझ बनाकर बाँध लिया घर मे बकरियों को खिलाने के इरादे। जब बकरियो का पेट भर गया तब बोझ सर पर रखकर दूसरे रास्ते से बकरियो को लिये हुए घर लौटे।

विल्लेसुर के अपने मकान के इतने हिस्से हुए थे कि बकरियो को लेकर वहाँ रहना असम्भव था। भाइयों को राजयक्ष्मा न होने के कारण बकरियों की गन्ध से ऐतराज होता। दूसरे, पुराना होकर घर कई जगह गिर गया था। रात को भेड़िये के रूप से चोर आ सकते थे और बकरियों को उठा ले जा सकते थे। ऐसे अनेक कारणों से विल्लेसुर ने गाँव मे एक खाली पड़ा हुआ पुराना मकान रहने के लिए लिया। खरीदा नही; यह शर्त रही कि छायेगे, छोपेगे, गिरने से मकान को बचाये रहेगे। नोटिस मिलने पर छ महीने मे मकान खाली कर देंगे, मालिक-मकान परदेश में रहते थे, एक तरह वही बस गये थे। जिनके सुपुर्द मकान था, वे सोलह आने नजर लेकर विल्लेसुर पर दयालु हो गये थे।

यह मकान परदेशी का होने के कारण वज़ादार हो, यह बात नही। परदेशी जब इस मकान में रहते थे, विल्लेसुर की ही तरह देशी थे। देश की दीनता के कारण ही परदेश गये थे। मकान के सामने एक अन्धा कुआँ है और एक इमली का पेड़। बारिश के पानी से धुलकर दीवारें ऊबड़-खावड़ हो गयी है, जैसे दीवारों से ही पनाले फूटे हों। भीतर के पनाले का मुँह भर जाने से बरसात का पानी दहलीज की डेहरी के नीचे गड्ढा बनाकर बहा है। गड्ढा बढ़ता-बढ़ता ऐसा हो गया है कि बड़े जानवर, कुत्ते जैसे आसानी से उसके भीतर से निकल सकते है। दहलीज की फर्श कहीं भी बराबर नही; उसके ऊपर लेटने की बात क्या, चारपाई भी उस पर नही डाली जा सकती। दूसरी तरफ एक खमसार है और उसी से लगी एक कोठरी। इसी मे विल्लेसुर आकर रहे। दरवाजे का गढ़ा तोप दिया। बाकी घर की धीरे-धीरे मरम्मत करते रहे।

एक वक्त रोटी पकाते थे, दोनो वक्त खाते थे। इस तरह साल-भर से ज्यादा झेल ले गये। उनका लक्ष्य और काम बढ़ते गये। लेकिन अड़चन से पीछा नही छूटा। गाँव में जितने आदमी थे, अपना कोई नही, जैसे दुश्मनों के गढ़ में रहना हो। भाई भी अपने नही। विल्लेसुर सोचते थे, क्यों एक-दूसरे के लिए नही खड़ा होता। जवाब कभी कुछ नहीं मिला। मुमकिन, दुनिया का असली मतलब उन्होंने लगाया हो। फिर भी, जान रहते काम करना पड़ता है, दूसरे की मदद करनी पड़ती है, सहारा लेना पड़ता है, यह सच है। इधर कोई ध्यान नही देता, यह कमजोरी दूर नही हो रही; कोई सूरत भी नही नजर आ रही। हमारे सुकरात के जबान न थी, पर इसकी फिलासफी लचर न थी; सिर्फ कोई इसकी सुनता न था; इसे भी भूल-भुलैया से बाहर निकलने का रास्ता नही दिखा, इसलिए यह भटकता रहा।

कुछ वक्त और बीता। बकरियो के साथ ही रहते थे, सारे घर मे लेंड़ियाँ। दमदार पहले से थे, बकरियों के साथ रहकर और हो गये थे। अब तक खरीदी बकरियों के नाती-नातिनें पैदा हो चुकी थी। कुछ पट्ठे बेच भी चुके थे। अच्छी आमदनी हो चली थी। गाँववालो की नजर मे और खटकने लगे थे। एक दफा कुछ लोग विल्लेसुर के खिलाफ जमीदार के यहाँ फरियाद लेकर गये थे कि गाँव के कुल

पेड विल्लेसुर ने ठूँठे कर दिये—उनकी बकरियाँ बिकवा दी जानी चाहिए। जमीदार ने, अच्छा, कहकर उनका उत्साह बढाकर टाल दिया, क्योंकि बिल्लेसुर की बकरियो पर उनकी निगाह पहले पड चुकी थी और वे सरकारी पेड़ों की छँटाई की एक रकम बिल्लेसुर से तै करके लेने लगे थे। गाँववाले दिल का गुबार बिल्लेसुर को बकरिहा कहकर निकालने लगे। जवाब मे बिल्लेसुर बकरी के बच्चो के वही नाम रखने लगे जो गाँववालो के नाम थे।

नौ

नहाकर, रोटी पका-खाकर, शाम के लिए रखकर, बिल्लेसुर बकरियो को लेकर निकले। कन्धे मे वही लग्गा पडा हुआ। जामुन पक रही थी। एक डाल मे लग्गा लगाकर हिलाया। लग्गे के एक तरफ हँसिया, दूसरी तरफ लगुसी बँधी थी। फरेंदे गिरे। बिनकर अँगोछे मे ले लिये और खाते हुए गलियारे से चले। आगे महावीर-जी वाला मन्दिर मिला। चढ गये और चबूतरे के ऊपरसे मुँह की गुठली नीचे फेंक-कर महावीरजी के पैर छुए और रोज की तरह कहा, मेरी बकरियो की रखवाली किये रहना। तुलसीदासजी या सीताजी की जैसी अन्तर्दृष्टि न थी; होती, तो देखते; मूर्ति मुस्करायी। जल्दी-जल्दी पैर छूकर और कहकर मन्दिर के चबूतरे से नीचे उतरे। बकरियो को लेकर गलियारे से होते हुए बाग की ओर चले। दुपहर हो रही थी। पानी का गहरा दौगरा गिर चुका था। जमीन गीली हो गयी थी। ताल-तलैयाँ, गडही-गढ़े बहुत-कुछ भर चुके थे। कपास, धान, अगमन, ज्वार-बाजरे, अरहर, सनई, सन, लोबिया, ककडी-खीरे, मक्की, उर्द, आदि बोने के लोभी किसान तेजी से हल चला रहे थे। किसानी के तन्त्र के जानकार बिल्लेसुर पहली वर्षा की मटैली सुगन्ध से मस्त होते हुए मौलिक किसानी करने की सोचते अपनी इसी धुन मे बकरियों को लिये जा रहे थे। उन बँटाई उठाये खेतों मे एक खेत खुद-काश्त के लिए ले लिया था। बरसातवाली किसानी मे मिहनत ज्यादा नही पडती। एक बाह दो बाह करके बीज डाल दिया जाता है। वर्षा के पानी से खेती फूलती-फलती है। बैल नही हैं, अगमन जोतने-बोने के लिए कोई माँगे न देगा। बिल्लेसुर ने निश्चय किया कि छ-सात दिन मे अपने काम-भर की जमीन वे फावडे से गोड डालेंगे। गाँव के लोग और सब खेती करते हैं, शकरकन्द नही लगाते। इसमें काफी फायदा होगा। फिर अगहन मे उसी खेत मे मटर बो देंगे। जब शकरकन्द बैठेगी, रात को ताकना होगा, तब किसी को कुछ देकर रात को तका लेंगे। एक अच्छी रकम हाथ लग जायगी।

निश्चय के बाद जब बिल्लेसुर इस दुनिया मे आये तब देखा, वे बहुत दूर बढ आये हैं। आग्रह और उतावली से जाँच की निगाह बकरियों पर डाली—गंगा,

यमुना, सरजू, पारवती हैं; सेखाइन, जमील, गुलबिया, सितविया है; रमुआ, स्यमुआ, भगवतिया, परमुआ है; टुरई है, और दिनवा ? बिल्लेसुर चौकन्ने होकर देखने लगे, पीछे दूर तक निगाह दौड़ायी। दीनानाथ न दिखे। कलेजा धक्-से हुआ। दीनानाथ सबसे तगड़े थे, वही पिछड़ गये, या कहाँ गये। बुलाने लगे, "उर्र्र्र्, उर्र्र् ! दिनवा अ ले—अ ले उर्र्र्र्! आव—आव, दिनवा ! उर्र्र्, उर्र्र्; बेटा दीनानाथ, उर्र्र् !" टुरुई मिमियाने लगी। दीनानाथ की कोई आहट न मिली। 'टुरुई, कहाँ है दिनवा ?' टुरुई मिमियाती हुई विल्लेसुर के पास आ गयी। विल्लेसुर बकरियों को लेकर उसी रास्ते लौटे। उसी नाले के पास लड़के ढोर लिये खड़े थे। विल्लेसुर को देखकर मुस्कराये। बिल्लेसुर का हृदय रो रहा था। मुस्कराहट से दिमाग मे गर्मी चढ़ गयी। लेकिन जब्त किया। भलमंसाहत से पूछा, "बच्चा, हमारा बकरा इधर रह गया है ?"

"कौन बकरा ?"

"पट्ठा एक, हम दिनवा कहते थे।"

"दिनवा कहते थे तो दिनवा से पूछो। हम नही जानते, कहाँ है।"

बिल्लेसुर ने फिर पूछताछ नही की। सन्देह हुआ। जी में आया, चलकर नाले के किनारे खोजें, लेकिन बकरियों को किसके भरोसे छोड़ जायँ, फिर एक बच्चा गायब कर दिया जाय तो क्या करेंगे ? जल्दी-जल्दी मकान की तरफ बढ़े। बच्चों और बकरियो को भगाते ले चले। रास्ते मे दो-एक आदमी मिले, पूछा, "क्या है बिल्लेसुर, इतनी जल्दी और भगाये लिये जा रहे हो ?" बिल्लेसुर ने कहा, "भय्या, एक पट्ठा किसी ने पकड़ लिया है, वहाँ नाले के पास लड़के ढोर लिये खड़े हैं, बताते नहीं।" सुननेवालों ने कहा, "जानते हो गाँव में ऐसे चोर हैं कि कठैली भी आँगन में रह जाय तो अटारी से उतरकर उठा ले जायँ। बोलो तो हार-बाहर बेइज्जत करें। कहाँ कोई गाँव छोड़कर भग जाय ?" बिल्लेसुर बढ़े। दरवाजा खोला। कोठरी में बच्चों को और दहलीज में बकरियो को ताले के अन्दर बन्द करके डण्डा लेकर दीना का पता लगाने चले।

पहले दीना के घर गये। पता लगा कि वह घर मे नही है। वहाँ से सीधी खुश्की से नाले की ओर बढ़े। ऊँचे टीले पर लड़का बैठा इधर-उधर देख रहा था। बिल्लेसुर समझ गये। नाले के किनारे-किनारे बढ़े। लड़के ने एक खास तरह की आवाज की। बिल्लेसुर समझ गये कि पास ही कही है। बढ़ते गये, बढ़ते गये। दूर एक झाड़ी दिखी, निश्चय हुआ कि यही कही मारा पड़ा होगा। झाड़ी के पास पहुँचे, वहाँ कोई नही था। झाड़ी के भीतर गये। अच्छी तरह देखने लगे, खून से तर जमीन दिखी। तअज्जुब से देखते रहे। बकरा या आदमी न दिखा। चेहरा उतर गया। दिल रो रहा था, लेकिन आँखों मे आँसू न थे। कही इन्साफ नही, सिर्फ लोग नसीहत देते हैं। चलकर कुएँ के पास आये। बहुत गरमा गये थे। जगत पर बैठे। बकरा मार डाला गया। लड़के जानते हैं, लेकिन बतलाते नही। आठ रुपये का था। जी रो उठा। कोई मददगार नही। ढलते सूरज की धूप सिर पर पड़ रही थी, लेकिन बिल्लेसुर ख्याल मे ऐसे डूबे थे कि गरमी पहुँचकर भी न पहुँचती थी।

अब बकरियाँ भूखी है। शाम हो आयी है, चराने का वक्त नही। लग्गा नहीं; पत्तियाँ नही काटी; रात को भी भूखी रहेगी। इस तरह कैसे निवाह होगा ? बिना खाये सवेरे दूध न होगा। बच्चे भूखे रहेंगे। दुबले पड़ जायेंगे। बीमारी भी जकड़ सकती है। चोकर रक्खा है, लेकिन उतनी बकरियो और बच्चों को क्या होगा ? रात को पेड़ छांटना पडेगा।

सूरज डूब गया। बिल्लेसुर की आँखो मे शाम की उदासी छा गयी। दिशाएँ हवा के साथ सायँ-सायँ करने लगी। नाला बहा जा रहा था जैसे मौत का पैगाम हो। लोग खेत जोतकर धीरे-धीरे लौट रहे थे, जैसे घर की दाढ के नीचे दबकर, पिसकर मरने के लिए। चिड़ियाँ चहक रही थी। अपने-अपने घोसले की डाल पर बैठी हुई, रो-रोकर साफ कह रही थी, रात को घोसले मे जंगली बिल्ले से हमे कौन बचायेगा ? हवा चलती हुई इशारे से कह रही थी, सबकुछ इसी तरह बह जाता है।

बिल्लेसुर डण्डा लिये धीरे-धीरे गाँव की ओर चले। ढाढस अपने आप बँध रहा था। दूसरे काम के लिए दिल मे ताकत पैदा हो रही थी। भरोसा बढ़ रहा था। गाँव के किनारे आये। महावीरजी का वह मन्दिर दिखा। अँधेरा हो गया था। सामने से मन्दिर के चबूतरे पर चढ़े। चबूतरे-चबूतरे मन्दिर की उल्टी प्रदक्षिणा करके, पीछे महावीरजी के पास गये। लापरवाही से सामने खड़े हो गये और आवेग मे भरकर कहने लगे, "देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबो का सहायक कहते है, मैं इसीलिए तेरे पास आता था, और कहता था, मेरी बकरियो को और बच्चो को देखे रहना। क्या तूने रखवाली की, बता, लिये थूथन-सा मुँह खडा है ?" कोई उत्तर नही मिला। बिल्लेसुर ने आँखों से आँखे मिलाये हुए महावीरजी के मुँह पर वह डण्डा दिया कि मिट्टी का मुँह गिली की तरह टूटकर बीघे भर के फासले पर जा गिरा।

दस

बिल्लेसुर, जैसा लिख चुके है, दुख का मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को बार-बार चुनौती दे चुके थे। कभी हार नही खायी। आजकल शहरो मे महात्मा गाधी के बकरी का दूध पीने के कारण, दूध बकरीदी की बडी खपत है, इसलिए गाय के दूध से उसका भाव भी तेज है; मुमकिन, देहात मे भी यह प्रचलन बढ़ा हो; पर बिल्लेसुर के समय सारा संसार बकरी के दूध से घृणा करता था; जो बहुत बीमार पड़ते थे, जिनके लिए गाय का दूध भी मना था, उन्हें बकरी के दूध की व्यवस्था दी जाती थी। बिल्लेसुर के गाँव मे ऐसा एक भी मरीज नही आया। जब दूध बेचा नही बिका, किसी को कृपा-पात्र बनवाये रहने के लिए व्यवहार मे देने

पर मुँह वनाने लगा, तव विल्लेसुर ने खोया वनाना शुरू किया। वकरी के दूध का खोया वनाने में पहले प्रकृति वाधक हुई; वकरी के दूध मे पानी का हिस्सा वहुत रहता है; वडी लकड़ी लगानी पड़ी; वड़ी देर तक चूल्हे के किनारे वैठा रहना पड़ा; वडी मिहनत; पहाड़ खोदने के वाद जव चुहिया निकली—खोये का छोटा-सा गोला वना, तव मन भी छोटा पड़ गया। भैंस के दूध के सेर-भर मे पाव-भर का आधा भी नही होता था। धीरज वाँधकर वेचने गये; भजना हलवाई जोतपुर-वाले के यहाँ, वह गट्टे काट रहा था, जल्दी मे उसने देखा नही, तोलकर दाम दे दिये; दूसरे दिन गये तो तोलकर रख लिया। विल्लेसुर ने पूछा, "दाम ?" उसने कहा, "दाम कल दे चुका हूँ, मै समझा था भैंस का खोया है, यह वकरी का खोया है, वकरी के खोये के आधे दाम भी वहुत हैं, मैं वकरी का खोया नही लेता; अव न ले आना, सारी मिठाई वरवाद हो जाती है, गाहक गाली देते हैं, न घी है, न स्वाद; जो कुछ थोड़ा-सा घी निकलता है, वह दूसरे घी में मिलाया नहीं जा सकता—कुल घी वदवू छोडने लगता है।" विल्लेसुर सिर झुकाकर चुपचाप चले आये। माल है, पर विकता नही। तव तरकीव निकाली। इसमें खोया वनाने से कम मिहनत पड़ती है। कण्डे की आग परचाकर हण्डी में दूध रख देने लगे, अपना काम भी करते थे, दूध गर्म हो जाने पर ठण्डा करके जमा देते थे, दूसरे दिन मथकर मवखन निकाल लेते थे। मट्ठा खुद भी पीते थे, वच्चों को भी पिलाते थे। मक्खन का घी वनाकर उसमे चौथाई हिस्सा भैंस का घी खरीदकर मिला देते थे, और छटाक आध पाव सस्ते भाव मे वाजार जाकर वेच आते थे। देहात मे गाय, भैंस और वकरी का मिला घी भी विकता है। जिनके यहाँ जानवरों की दोनों या तीनों किस्मे है, वे दूध अलग-अलग नहीं जमाते। विल्लेसुर का काम चल निकला। वकरे के मारे जाने को उन्होने हानि-लाभ, जीवन-मरण की फिलासफी मे शुमार कर अपने भविष्य की ओर देखा। उन्होने निश्चय किया, वकरियो को हार में चराने न ले जायँगे, घर मे ही खिलायेंगे जव तक खेत तैयार न हो जाय और शकरकन्द की वौड़ी न लग जाय। सवेरा होते ही विल्लेसुर फावड़ा लेकर खेत में जुटे। रात को इतनी पत्ती काट लाये थे कि आज दिन-भर के लिए वकरियों को काफी चारा था। वकरियाँ और वच्चे उसी तरह कोठरी और दहलीज में वन्द थे। फावड़े से खेत गोड़ते देखकर गाँव के लोग मजाक करने लगे, लेकिन विल्लेसुर वोले नही, काम में जुटे रहे। दुपहर होते-होते काफी जगह गोड़ डाली। देखकर छाती ठण्ढी हो गयी। दिल को भरोसा हुआ कि छ-सात दिन मे अपनी मिहनत से वकरे का घाटा पूरा कर लेंगे। दुपहर होने पर घर आये, नहाकर लप्सी वनायी और खाकर कुछ देर आराम किया। दुपहर अच्छी तरह ढल गयी, तीसरा पहर पूरा नही हुआ था, उठकर फिर खेत गोड़ने चले। शाम तक खेत गोड़कर वकरियों के लिए पत्ते काटकर पहर-भर रात होते घर आये। सात दिन की जगह पाँच ही दिन में विल्लेसुर ने खेत का वह हिस्सा गोड़ डाला। खेत से एक पाटी निकाल ली। लोग पूछते थे, क्या वोने का इरादा है विल्लेसुर ? विल्लेसुर कहते थे, भंग। देहात मे कोई किसी को मन नही देता, यों कही भी नही देता। विल्लेसुर पता लगाकर शकरकन्द की वौड़ी ले आये। एक दिन लोगों ने देखा, विल्लेसुर शकरकन्द लगा

रहे है। पानी वरसने और शकरकन्द की वौड़ी के फैलने के साथ बिल्लेसुर आलू की जैसी मेड़ों पर मिट्टी चढ़ाने लगे।

ग्यारह

जव से त्रिलोचन के बैल न लेकर बिल्लेसुर ने वकरियाँ खरीदी तभी से इस वेचारे को जटने के लिए त्रिलोचन पेच भर रहे थे। वकरियो के वच्चों के वढ़ने के साथ गाँव मे धनिकता के लिए विल्लेसुर का नाम भी वढ़ा। लोग तरह-तरह की राय जाहिर करने लगे। क्वार का महीना; विल्लेसुर की शकरकन्द की वेलें लहलही दिख रही थी, लोग अन्दाजा लड़ा रहे थे कि इतने मन शकरकन्द निकलेगी; विल्लेसुर छप्पर के नीचे वकरी के दूध में सानकर सत्तू-गुड खा रहे थे, त्रिलोचन आये। वकरी के वच्चे ढकने का एक झौआ औधाया था, उस पर चढ़कर वैठने के लिए घूमे, लेकिन विल्लेसुर को हाथ हिलाते देखकर वही जमीन पर वैठ गये। 'एक वडी वढिया खवर है, बिल्लेसुर।' विल्लेसुर से मुस्कराते हुए कहा। उपदेशक की मुद्रा से हथेली उठाकर विना कुछ वोले आश्वासन देते हुए, विल्लेसुर ने समझाया, कुछ देर धीरज रक्खो। त्रिलोचन ने पूछा, भोजन करते वोलते नही क्या ? गम्भीर भाव से आँखें मूँदकर सिर हिलाते हुए विल्लेसुर ने जवाव दिया। त्रिलोचन अपनी वातचीत का सिलसिला मन-ही-मन जोड़ते रहे।

जल्दी-जल्दी सत्तू खाकर विल्लेसुर उठे। पनाले के पास वैठकर हाथ धोये, कुल्ले किये, अभ्यास के अनुसार जनेऊ मे वँधी ताँवे की दन्तखोदनी उठाकर दाँत खरिका किये, फिर कुल्ले किये, और एक डकार छोड़कर सिर झुकाये हुए कोठरी के भीतर गये। त्रिलोचन देखते रहे। विल्लेसुर एक खटोला निकालकर वाहर ले आये। डालकर कहा, "आओ, जरा सँभलकर वैठना, हचकना नही।" त्रिलोचन उठकर खटोले पर वैठे। एक तरफ विल्लेसुर वैठे।

त्रिलोचन ने विल्लेसुर को देखा, फिर आश्चर्य से आँखें निकालकर कहा, "करना चाहो तो एक वड़ा अच्छा व्याह है।"

विवाह के नाममात्र से विल्लेसुर की नसो मे बिजली दौड़ गयी; लेकिन हिन्दू-धर्म के अनुसार उसे उपयोगितावाद में लाते हुए कहा, "अव देखते ही हो, सत्तू खाना पडा है। औरत कोई होती तो मरती हुई भी रोटी सेंककर रखती।"

"यथार्थ है," त्रिलोचन गम्भीर होकर वोले।

विल्लेसुर को वढ़ावा मिला, कहा, "गाँव के चार भाइयों का मोह है, पड़ा हूँ, नहीं तो मरने के लिए दुनिया-भर मे मुझे ठौर है।"

"अव यह भी तुम समझाओगे तव समझेंगे ?"

विल्लेसुर का पौरुष जग गया। उन्होंने कहा, "वंगाल गया था, चाहता तो

एक बैठा लेता; लेकिन बाप-दादे का नाम भी तो है ? सोचा, कौन नाक कटाये ? तुम्हीं लोग कहते, बिल्लेसुर ने बाप के नाम की लुटिया डुबा दी।" बिल्लेसुर अपनी भूमिका से एकाएक विषय पर नही आ सकते थे। आने के लिए बढ़कर फिर हट जाते थे। त्रिलोचन ने कहा, "सारा गाँव तुम्हारी तारीफ करता है; गाँव ही नही, ग्वेंड भी कि बिल्लेसुर मर्द आदमी है।"

बिल्लेसुर ने कहा, "नाम के लिए दुनिया मरती है। इतनी मिहनत हम क्यों करते हैं? नाम ही नही तो कुछ नही। हमारे बाप मरकर भी नही मरे, क्यों? और अगर उनके पोता न रहा तो?"

त्रिलोचन ने कहा, "तुम्हारे जैसा समझदार लड़का जिनके है, उनके पोता कैसे न रहेगा?" कहकर त्रिलोचन गम्भीर हो गये।

बिल्लेसुर ने कहा, "माँ-बाप ही दुनिया के देवता हैं। धर्म तो रहा ही न होता अगर माँ-बाप न रहे होते।"

त्रिलोचन ने कहा, "बेशक! धर्म की रक्षा हरएक को करनी चाहिए। तभी तो धर्म के पीछे जान दे देने के लिए कहा है।"

"अब देखो, खेत मे काम करने गये, घर आये, औरत नही; बिना औरत के भोजन विधि-समेत नही पकता; न जल्दी में नहाते बनता है, न रोटी बनाते, न खाते; धर्म कहाँ रहा?" बिल्लेसुर उत्तेजित होकर बोले।

"हम तो बहुत पहले समझ चुके थे, अब तुम्ही समझो।" कहकर त्रिलोचन ने तीसरी आँख पर मन को चढ़ाया।

बिल्लेसुर ने एक दफा त्रिलोचन को देखा, फिर सोचने लगे, 'देखो, दलाल बन कर आया है। सोचता है, दुनिया में हम ही चालाक हैं। अभी रुपये का सवाल पेश करेगा। पता नहीं, किसकी लड़की है, कौन है। जरूर कुछ दाग होगा। अड़चन यह है कि निबाह नही होता। भूख लगती है, इसलिए खाना पड़ता है, पानी बरसता है, धूप होती है, लू चलती है, इसलिए मकान मे रहना पड़ता है। मकान की रखवाली के लिए व्याह करना पड़ता है। मकान का काम स्त्री ही आकर सँभालती है। लोग तरह-तरह की चीज-वस्तुओं से घर भर देते है; स्त्री को जेवर-गहने बनवाते हैं। यो सब झोल है—ढोल मे सब पोल-ही-पोल तो है?' बिल्लेसुर को गुरुआइन की याद आयी, गाँव के घर-घर का सूना इतिहास आँख के सामने घूम गया। अब तक वे झूठ कहते रहे। यही कारण है कि बुलबुल काँपे मे फँसता है। त्रिलोचन के ज्ञान मे रहने की प्रतिक्रिया बिल्लेसुर मे हुई। फिर यह सोचकर कि अपना क्या बिगड़ता है,—इसका मतलब मालूम कर लेना चाहिए, करुण स्वर से बोले, "हाँ भया, समझदार तुमको गाँव के सभी मानते हैं।"

खुश होकर त्रिलोचन ने कहा, "ऐसी औरत गाँव मे आयी नही—सोलह साल की, आग-भभूका।"

बिल्लेसुर को देवियों की याद आ गयी थी, इसलिए विचलित होकर सँभल गये। कहा, "तुम्हारी आँख कभी धोखा खा सकती है? कहाँ की है?"

"यह तो न बतायेंगे, जब व्याहने चलोगे, तभी मालूम करोगे।"

"पहले तो फलदान चढ़ेंगे, या इसकी भी जरूरत नही?"

"फलदान चढ़ेंगे, लेकिन कोई पूछताछ न होगी, तिवारियों के यहाँ की लड़की है। सब काम हमारी मारफत होगा।"

"किस गाँव की है ?"

"इतना बता दिया तो क्या रह जायगा ? यह व्याह से पहले मालूम हो ही जायगा। मगर एक बात है। उनके यहाँ व्याह का खर्च नही। भलेमानस हैं। लड़की नही वेचेंगे, पर खर्च तुम्हे देना होगा।"

"कितना ?"

त्रिलोचन हिसाब लगाने लगे, खुलकर कहते हुए, "तुम्हारे यहाँ फलदान चढाने आयेंगे तो ठहरेंगे हमारे यहाँ। थाल में सात रुपये रक्खेंगे और नारियल के साथ एक थान। इसमे वीस रुपये का खर्च है। यह तुम्हें फलदान के दिन से सात रोज पहले दे देना होगा। फिर फलदान चढ जाने पर डेढ सौ रुपये विवाह के खर्च के लिए उस दिन देना पडेगा, सब हमारी मारफत। भले आदमी है, नही निवाह सकते। तुमसे हाथ फैलाकर लें, तो कैसे ? द्वार के चार से, व्याह, भात और बडहार, बरतौनी तक डेढ सौ, दाल मे नमक के बराबर भी नहीं। लेकिन तुम्हें भी तो नही उजाड सकते ? कुल मे तुमसे वडे।"

बिल्लेसुर ने कहा, "कुल मे वड़े है तो व्याह फलेगा नही। मन्नू वाजपेयी ने, रुपये न होने से उतरकर व्याह किया, लड़की वेवा हो गयी। भैया, मुझे तो यही वडा डर है कि कही···"

त्रिलोचन का चेहरा उतर गया। वोले, "घवडाते हो नाहक। जितने वड़े हैं सव वने हुए हैं। अस्ल मे वडे है नही। मन्नू वाजपेयी की लड़की ने अपने पति को मार डाला। कहते है, उसकी उम्र ज्यादा हो गयी थी, मायके मे ही विगड गयी थी, इसलिए मन्नू ने उसका व्याह उतरकर कर दिया था। अपने यार के कहने पर उसने पति को जहर खिला दिया। वह कुछ दिन से वीमार था, दवा हो रही थी।"

"कहीं यह भी ऐसा ही मुझ पर करे !" विल्लेसुर शंका की दृष्टि से देखने लगे।

"कहता तो हूँ, किसी तरह का खौफ न खाओ। बिचवासी मैं हूँ। लड़की में न दाग, न कलंक, न चाल-चलन विगडा, न काली-कानी-लँगड़ी-लूली।"

"जब तुम कह रहे हो तो एतबार सोलह आने है; लेकिन पता विना जाने दस रोज पहले आये नातेदारो से क्या कहूँगा ? उनसे यह भी नही कहते वनता कि त्रिलोचन भैया जानते है; इसीलिए पता पूछता हूँ। दूसरी वात, कुण्डली विचरवा लेनी है। लडकी की कुण्डली ले आओ। मैं अपने सामने विचरवाऊँगा। लड़की मंगली निकली तो वेमौत मरना होगा ? व्याह करना है तो आँखें खोलकर करना चाहिए।"

त्रिलोचन मन से वहुत नाराज हुए। वोले, "ऐसी वातें करते हो जैसे वाला के हो। तुम्हारे यहाँ वे नही आये और कभी कोई भलामानस न आयेगा। हम कहते थे कि भद्रा के जैसे मारे इधर-उधर घूमते हो, तुम्हारा घर वस जाय, लेकिन तुम आ गये अपनी असलियत पर। मान लो, तुम्ही मगली निकले, तो ? कौन बाप

अपनी लड़की तुम्हें सौंप देगा ? रही बात नातेदारीवाली, सो हम तो इसे सोलहो आने बेवकूफी समझते हैं। बैठे-बैठाये पच्चीस रुपये का खर्च सिर पर। हम तो कहते है, चुपचाप चले चलो, विवाह कर लाओ। लडकी के बाप का नाम मालूम करना चाहते हो तो चले चलो, उनका घर भी देख आओ। लेकिन तुम्हारा जाना शोभित नही है, गाँव-भर तुम दोनों को हँसेंगे।"

बिल्लेसुर को कुछ विश्वास हुआ। लेकिन रुपये की सोचकर कटे। लड़की के रूप का मोह भी घेरे था, सैकड़ों कलियाँ चटक रही थी, खुशबू उड़ रही थी, पर त्रिलोचन पर पूरा-पूरा विश्वास न हो रहा था। पूछा, "यहाँ से कितनी दूर है ?"

"तीन-चार कोस होगा।"

बिल्लेसुर ने सोचा, एक दिन में चलेंगे और लौट भी आयेंगे। बकरियो को बड़ी तकलीफ न होगी। पत्ते काटकर डाल जायेंगे। बोले, "तो चले चलो भैया, देख लेना चाहिए, जिस दिन कहो तैयारी कर दी जाय।"

त्रिलोचन ने मतलब गाँठकर कहा, "अच्छा, आज के चौथे दिन चलेंगे।"

बारह

बिल्लेसुर को उस रात नीद न आयी। वही रूप देखते रहे। बहुत गोरी है, सोचते रामरतन की स्त्री की याद आयी। सोलह साल की है, सोचा तो रामचरन सुकुल की बिटिया की सूरत सामने आ गयी। बड़ी-बड़ी आँखें होंगी जैसे पुखराजबाई की लडकी हसीना की है। इस घर में आयेगी तो घर में उजाला छाया रहेगा। जिस कोठरी मे बच्चे रक्खे जाते हैं, उसमें उसका सामान रहेगा। बच्चे दहलीज में रहेंगे। एक छप्पर डाल लेंगे, सब ऋतुओं के लिए आराम रहेगा।

एक दफा भी बिल्लेसुर ने नही सोचा कि बकरी की लेंड़ियों की बदबू से ऐसी औरत एक दिन भी उस मकान में न रह सकेगी।

सबेरे उठकर पडोस के गाँव में बजाज के यहाँ गये और कुर्ते का कपड़ा लिया, साफा खरीदा गुलाबी रंग का, धोती एक ली। दरजी को कुर्ते की नाप दी। उसी दिन बना देने के लिए कहा। गाँव के चमार से जूते का जोड़ा खरीदा।

इधर यह सब कर रहे थे, उधर ताड़े रहे कि त्रिलोचन कहाँ है। तीसरे दिन त्रिलोचन घर से निकले। पहनावा और हाथ का डण्डा देखकर बिल्लेसुर समझ गये कि जा रहा है, बातचीत करके कल इन्हें ले जायगा। चलने की दिशा देखकर अपने साधारण पहनावे से दूर-दूर रहकर, पीछा किया। त्रिलोचन बाबू पुरवा के सीधे कच्ची सड़क छोड़कर मुड़े। बिल्लेसुर दूर पुरवा के किनारे खड़े होकर देखने लगे कि त्रिलोचन दूसरे गाँव के लिए पुरवा से बाहर निकलते न दिखे, तब बिल्लेसुर को विश्वास हो गया कि यहीं है। वे भी गाँव के भीतर गये। निकास पर एक

आदमी मिला। विल्लेसुर ने पूछा, "यहाँ श्यामपुर के त्रिलोचन आये हैं ?" आदमी ने कहा, "हाँ, वहाँ रामनारायण के यहाँ बैठा है ठग कहीं का। दोनों एक से। किसी का गला नाप रहे होंगे।"

विल्लेसुर का कलेजा धक्-से हुआ। पूछा, "रामनारायण के लड़की-लड़के कुछ हैं ?"

आदमी चौंककर विल्लेसुर को देखने लगा, "तुम कहाँ रहते हो ? तुम रामनारायण को नहीं जानते ? उस साले के लड़की-लड़के ! पूछो, व्याह भी हुआ है ?"

आदमी इतना कहकर आगे बढ़ा। विल्लेसुर को बड़ी कायली हुई। वे उसी तरफ मन्नी की ससुराल को चले। मन्नी की सास से मिले। भली-बुरी, सुख-दुख की बातें हुईं। विल्लेसुर ने ढाढस बँधाया। कहा, खर्चा न हो तो आकर ले जाया करो। कहकर एक रुपया हाथ पर रख दिया। मन्नी अच्छी तरह हैं, कहा। उनकी लड़की की अच्छी सेवा होती है, मन्नी उसकी बड़ी देख-रेख रखते हैं। अब वह बहुत बड़ी हो गयी है।

मन्नी की सास बहुत प्रसन्न हुईं। रुपया उठा लिया और पूछा, घर बसा या नहीं। विल्लेसुर ने जवाब दिया कि घर माँ-बाप के बसाये बसता है। मन्नी की सास ने कहा कि वे दस-पन्द्रह दिन में आयेंगी तब व्याह की पक्की बातचीत करेंगी। विल्लेसुर पैर छूकर विदा हुए।

तेरह

त्रिलोचन दूसरे दिन आये, और कहा, "विल्लेसुर, तैयार हो जाओ।"

विल्लेसुर ने कहा, "मैं तो पहले से तैयार हो चुका हूँ।"

त्रिलोचन खुश होकर बोले, "तो अच्छी बात है, चलो।"

विल्लेसुर ने कहा, "भैया, मन्नी की मौसिया सास की भतीजी की ससुराल में एक लड़की है, कल आये थे, बातचीत पक्की कर गये हैं, अब तो मुझे माफी दीजिए।"

त्रिलोचन नाराज होकर बोले, "तो वह व्याह जरूर गैतल होगा। वैसी ही लड़की होगी। हम शर्त बदकर कह सकते हैं।" मुस्कराकर विल्लेसुर ने जवाब दिया, "और तुम्हारा दूध का धोया है ? मन्नी की मौसिया सास की भतीजी की ससुराल की लड़की में दाग है, और तुम्हारे में, जिसके न बाप का पता, न माँ का, न गाँव का, न सम्बन्ध का, मखमल का झब्बा लगा है ?"

"देखो, फिर पीछे पछताओगे।" त्रिलोचन बढ़कर बोले।

"पछताने का काम ही नहीं करते; बहुत समझकर चलते हैं, त्रिलोचन भैया।" विल्लेसुर ने कड़ाई से जवाब दिया।

"अच्छा, चलकर जरा लड़की तो देख लो—तुम्हें लड़की भी दिखा देंगे।"

"अब लड़की नहीं, लड़की की आजी तक को दिखाओ तो भी मैं नही जाऊँगा। जब घर मे, अपने नातेदारों मे लड़की है तब दूसरी जगह नही जाना चाहिए। यह तो धर्म छोड़ना है। गृहस्थ की लड़की का रूप नही देखा जाता, गुण देखा जाता है। कहते हैं, रूपवती लड़की बदचलन होती है।"

"तो यह तेरे लिए सावित्री आ रही है। देख ले, अगर गाँव के घिगरों से पीछा छूटे।"

"यह सब हमें मालूम है। लेकिन घर का सामान लेकर भाग न जायगी, देख लेना। जो मुसीबत पड़ेगी, झेलेगी। किसी का धर्म बिगाड़ने से नही बिगडता। गाँव में सबका हाल हमे मालूम है।"

"तू सबको दोष लगा रहा है।"

"मै किसी को दोष नही लगा रहा, सच-सच कह रहा हूँ।"

"अच्छा बता, हमें क्या दोष लगा है, नही तो—"

"तुम चले जाओ यहाँ से, नही तो मैं चौकीदार के पास जाता हूँ।"

चौकीदार के नाम से त्रिलोचन चले। करुणा भरे क्रोध से घूम-घूमकर देखते जाते थे।

बिल्लेसुर अपना काम करने निकले।

चौदह

कातिक लगते मन्नी की सास आयी। कुछ भटकना पड़ा। पूछते-पूछते मकान मालूम कर लिया। बिल्लेसुर ने देखा, लपककर पैर छुए। मकान के भीतर ले गये। खटोला डाल दिया। उस पर एक टाट बिछाकर कहा, "अम्मा, बैठो।" खटोले पर बैठते हुए मन्नी की सास ने कहा, "और तुम खड़े रहोगे।" बिल्लेसुर ने कहा, "लड़कों को खड़ा ही रहना चाहिए। आपकी बेटी है तो क्या? जैसे बेटी, वैसे बेटा। मुझसे वे बडी ही है। आप तो फिर धर्म की माँ हैं। पैदा करनेवाली तो पाप की माँ कहलाती है। तुम बैठो, मैं अभी छन-भर में आया।"

बिल्लेसुर गाँव के बनिये के यहाँ गये। पाव-भर शकर ली। लौटकर बकरी के दूध मे शकर मिलाकर लोटा भरकर खटोले के सिरहाने रक्खा। गिलास मे पानी लेकर कहा, "लो अम्मा, कुल्ला कर डालो। हाथ-पैर धोने हों तो डोल में पानी रक्खा है, बैठे-बैठे गिलास से लेकर धो डालो।" कहकर दूधवाला लोटा उठा लिया। मन्नी की सास ने हाथ-पैर धोये। बिल्लेसुर लोटे से दूध डालने लगे, मन्नी की सास पीने लगीं। पीकर कहा, "बच्चा, मैं बकरी का दूध ही पीती हूँ। इससे बड़ा फायदा है, कुल रोगों की जड़ मर जाती है।"

शाम हो रही थी। आसमान साफ था। इमली के पेड़ पर चिड़ियाँ चहक रही थी। विल्लेसुर ने आसमान की ओर देखा, और कहा, "अभी समय है। अम्मा तुम बैठो। मैं अभी आता हूँ। बकरियों को देखे रहना, नही, भीतर से दरवाजा बन्द कर लो। आकर खोलवा लूंगा। यहाँ अम्मा, बकरियो के चोर बडे लागन हैं।" विल्लेसुर बाहर निकले। मन्नी की सास ने दरवाजा बन्द कर लिया।

सीधे खेत-खेत होकर रामगुलाम काछी की बाड़ी मे पहुँचे। तब तक रामगुलाम बाडी मे थे। विल्लेसुर ने पूछा, "क्या है ?" रामगुलाम ने कहा, "भाँटे हैं, करेले हैं, क्या चाहिए ?" विल्लेसुर ने कहा, "सेर-भर भाँटे दे दो। मुलायम-मुलायम देना।" रामगुलाम भाँटे उतारने लगा। विल्लेसुर खडे बैंगन के पेडों की हरियाली देखते रहे। एक-एक पेड़ ऐंठा खड़ा कह रहा था, 'दुनिया में हम अपना सानी नही रखते।' रामगुलाम ने भाँटे उतारकर, तोलकर, मालवाला पलडा काफी झुका दिखाते हुए, विल्लेसुर के अँगोछे मे डाल दिये। विल्लेसुर ने पहले अँगोछे मे गाँठ मारी, फिर टेंट से एक पैसा निकालकर हाथ बढाये खडे हुए रामगुलाम को दिया। रामगुलाम ने कहा, "एक और लाओ।" बिल्लेसुर मुस्कराकर बोले, "क्या गाँव-वालो से भी बाजार का भाव लोगे ?" रामगुलाम ने कहा, "कौन रोज अँगोछा बढाये रहते हो ? आज मन चला होगा या कोई नातेदार आया होगा।" विल्लेसुर ने कहा, "अच्छी बात है, कल ले लेना। इस वक्त नही है।" विल्लेसुर की तरकारी खाने की इच्छा होती थी तो चने भिगो देते थे, फिर तेल-मसाले मे तलकर रसेदार बना लेते थे। लौटते हुए मुरली कहार से कहा, "कल पहर-भर दिन चढते हमे दो सेर सिंघाडे दे जाना।" फिर घर आकर दरवाजा खोलवाया। दीया जलाकर बकरियों को दुहा। सवेरे की काटी पत्तियाँ डालीं और रसोई मे रोटी बनाने गये। रोटी, दाल, भात, बैंगन की भाजी, आम का अचार, बकरी का गरम दूध और शकर परोसकर पाटा डालकर पानी रखकर सासजी से कहा, "अम्मा, चलो, भोजन कर लो।" मन्नी की सास शरमायी हुई उठी, हाथ-पैर धोकर चौके में जाकर प्रेम से भोजन करने लगी। खाते-खाते पूछा, "भैंस तो तुम्हारे है नही, लेकिन घी भैंस का जान पड़ता है।" विल्लेसुर ने कहा, "गृहस्थी मे भैंस का घी रखना ही पड़ता है, कोई आया-गया, अपने काम मे बकरी का घी ही लाता हूँ।" मन्नी की सास ने छककर भोजन किया, हाथ-मुँह धोकर खटोले पर बैठी। विल्लेसुर ने इलायची, मसाले से निकालकर दी। फिर स्वयं भोजन करने गये। बहुत दिनो बाद तृप्ति से भोजन करके पड़ोस से एक चारपाई माँग लाये; डालकर, खटोले का टाट उठाकर अपनी चारपाई पर डाला और मन्नी की सास के लिए बंगाल से लायी रंगीन दरी बिछा दी, वही का गुरुआइन का पुरानी धोतियो को लपेटकर सीया तकिया लगा दिया। सासजी लेटी। आँखें मुदकर विल्लेसुर की बकरियो की बात सोचने लगी। जब विल्लेसुर काछी के यहाँ गये थे, उन्होने एक-एक बकरी को अच्छी तरह देखा था। गिनकर आश्चर्य प्रकट किया था। इतनी बकरियाँ और बच्चों से तीन भैंस पालने के इतना मुनाफा हो सकता है, कुछ ज्यादा ही होगा।

विल्लेसुर धैर्य के प्रतीक थे। मन मे उठने पर भी उन्होने विवाह की बातचीत के लिए कोई इशारा भी नहीं किया। सोचा, 'आज थकी हैं, आराम कर लें कल

अपने आप बातचीत छेड़ेंगी, नहीं तो यहाँ सिर्फ मुँह दिखाने थोड़े ही आयी है ?'

बिल्लेसुर पड़े थे। एकाएक सुना, खटोले से सिसकियाँ आ रही हैं। साँस रोककर पड़े सुनते रहे। सिसकियाँ धीरे-धीरे गूँजने लगी, फिर रोने की साफ आवाज उठने लगी। बिल्लेसुर के देवता कूच कर गये कि खा-पीकर यह कारन करके रोना कैसा ? जी धक् से हुआ कि विवाह नही लगा, इसकी यह अग्र-सूचना है। घबराकर पूछा, "क्यों अम्मा, रोती क्यों हो ?" मन्नी की सास ने रोते हुए कहा, "न जाने किस देश में मेरी बिटिया को ले गये ! जब से गये एक चिट्ठी भी न दी।"

बिल्लेसुर ने समझाया, "अम्मा, रोओ नही। भाभी बड़े मजे मे है। मन्नी भैया उनकी बड़ी सेवा करते हैं। मैं जहाँ गया था, मन्नी वहाँ से दूर हैं। हाल मिलते थे। लोग कहते थे, अच्छी नौकरी लग गयी है। उनका सारा मन भाभी पर लगा है। अब भाभी उतनी ही बड़ी नही है। लोग कहते थे, बिल्लेसुर, अब दो-तीन साल में तुम्हारे भतीजा होगा।"

"राम करे, सुख से रहें। हमको तो धोखा दे गये बच्चे ! हमारे और कौन था ? जिस तरह दिन कटते हैं, हमारी आत्मा जानती है।" कहकर मन्नी की सास ने अघाकर साँस छोडी।

बिल्लेसुर ने कहा, "जैसे मन्नी, वैसे मैं। तुम यहाँ रहो। खाने की यहाँ कोई तकलीफ नही। मुझे भी बनी-बनायी दो रोटियाँ मिल जायेंगी।"

मन्नी की सास बहुत प्रसन्न हुईं। कहा, "बच्चा, फूलो-फलो, तुम्हारा तो आसरा ही है। अबके आयी हूँ तो कुछ दिन रहकर जाऊँगी। तुम्हारा काम-काज यहाँ का देख लूँ। ब्याह एक लगा है, हो गया तो उसे तुम्हारी गृहस्थी समझा दूँ।"

"इससे अच्छी बात और क्या होगी।" बिल्लेसुर पौरुष मे जगकर बोले।

मन्नी की सास ने कहा, "बच्चा, अब तक नही कहा था, सोचा था, जब काम से छुट्टी पा जाओगे, तब कहूँगी। ब्याह एक ठीक है। लड़की तुम्हारे लायक, सयानी है। लेकिन हमारी बिटिया की तरह गोरी नही। भलेमानुस है। घर का काम-काज सँभाल लेगी। बताओ, राजी हो ?"

बिल्लेसुर भक्तिभाव से बोले, "आप जानें। आप राजी हैं तो मैं भी हूँ।"

मन्नी की सास प्रसन्न हुईं। कहा, "ठीक है। कर लो। उसको भी तुम्हारे साथ तकलीफ न होगी। थोड़ी-सी मदद उसकी माँ की तुम्हें करती रहनी पड़ेगी। ब्याह से पहले, बहुत नही, तीस रुपये दे दो ! गरीब है, कर्जदार है। फिर कुछ-कुछ देते रहना। उसके भी और कोई नहीं। मैं लड़की को तुम्हारे यहाँ ले आऊँगी। यही विवाह कर लो। बारात उसके यहाँ ले जाओगे तो कुल खर्चा देना पड़ेगा, इसमे ज्यादा खर्चा बैठेगा। घर मे अपने चार नातेदार बुलाकर ब्याह कर लोगे, भले-भले पार लग जाओगे।"

बिल्लेसुर को मालूम दिया, इस जबान मे छल नही। कहा, "हाँ, बड़ी नेक सलाह है।"

मन्नी की सास कई रोज रही। बिल्लेसुर को बना-बनाया खाने को मिला। तीन-चार दिन मे रंग बदल गया। उन्होने आग्रह किया कि ब्याह तक वे यही रहें।

मन्नी की सास ने भी स्वीकार कर लिया।

गाँव मे बिल्लेसुर की चर्चा ने जोर मारा। एक दिन त्रिलोचन ने मन्नी की सास को घेरा और पूछा, "बताओ, व्याह कहाँ रचा रही हो ?"

"अपनी नातेदारी मे।" मन्नी की सास ने कहा।

"वह कहाँ है ?" त्रिलोचन ने पूछा।

"क्यो, क्या बिल्लेसुर तुम्ही हो ?" मन्नी की सास ने आँखें नचाकर पूछा, फिर कहा, "बच्चे, मेरी निगाह साफ है, मुझे तीगुर नही लगता। अब तुम बताओ कि तुम बिल्लेसुर के कौन हो ?"

बल्ली नहीं लगी। त्रिलोचन बहुत कटे। कहा, "अच्छी बात है, कौन है, यह व्याह होने पर बतायेंगे जब उनका पानी बन्द होगा।"

"नातेदार-रिश्तेदार जिसके साथ हैं, उसका पानी परमात्मा नही बन्द कर सकते। अच्छा, हमारे घर से बाहर निकलो और गांव मे पानी बन्द करो चल-कर।" त्रिलोचन खिसियाये हुए घर से बाहर निकल गये।

बड़े आनन्द से दिन कट रहे थे। बिल्लेसुर की शकरकन्द खूब बैठी थी। कई रोज उन्होने मन्नी की सास को शकरकन्द भूनकर बकरी के दूध मे खिलाया। मन्नी की सास मन्नी से जितना अप्रसन्न थी, बिल्लेसुर से उतना ही प्रसन्न हुई। उन्होने बिल्लेसुर के उजड़े बाग का एक-एक पेड़, शकरकन्द के खेत की एक-एक लता देखी। उनके आ जाने से ताकने के लिए बिल्लेसुर रात को शकरकन्द के खेत मे रहने लगे। दो-एक दिन जंगली सुअर लगे; दो-तीन दिन कुछ-कुछ चोर खोद ले गये। अभी बौंडी पीली नहीं पड़ी थी। नुकसान होता देखकर मन्नी की सास ने कुल शकरकन्द खोद लाने की सलाह दी। बिल्लेसुर ने वैसा ही किया। उन्होंने घर मे ढेर लगाकर देखा, इतनी शकरकन्द हुई है कि सारा घर भर गया है। एक-एक शकरकन्द जैसे लोढा, मन्नी की सास ने मुस्कराते हुए कहा, "इससे तुम्हारा व्याह भी हो जायेगा और काफी शकरकन्द भी खाने को बच रहेगी।" शकरकन्दो को विश्वास की दृष्टि से देखते हुए बिल्लेसुर ने कहा, "अम्मा, सब तुम्हारा आसिर-वाद, नही तो मैं किस लायक हूँ ?" सास ने साँस छोड़कर कहा, "मेरा बच्चा जीता होता तो अब तक तुम्हारे इतना हुआ होता। खेती-किसानी करता; मैं मारी-मारी न फिरती।" बिल्लेसुर ने उन्हे धीरज दिया, कहा, "हमी तुम्हारे लडके हैं। तुम कैसी भी चिन्ता न करो, मेरी जब तक साँस चलती है, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। जी न छोटा करो।" सास ने आँचल से आँसू पोछे। बिल्लेसुर दूसरे गाँव की तरफ शकरकन्दो का खरीदार लगाने चले। सोचा, बकरियो के लिए, लौटकर पत्ते काटूँगा। दूसरे दिन खरीदार आया और 70) की बिल्लेसुर ने शकरकन्द बेची। सारे गाँव मे तहलका मच गया। लोग सिहाने लगे। अगले साल सबने शकरकन्द लगाने की ठानी।

पन्द्रह

कातिक की चाँदनी छिटक रही थी। गुलावी जाड़ा पड़ रहा था। सवन-जाति की चिड़ियाँ कहीं से उड़कर जाड़े-भर इमली की फुनगी पर वसेरा लेने लगी थीं; उनका कलरव उठ रहा था। विल्लेसुर रात को चवूतरे की वुर्जी पर बैठे देखते थे, पहले शाम को आसमान मे हिरनी-हिरन जहाँ दिखते थे, अव वहाँ नही हैं। बिल्लेसुर कहते थे, जव जहाँ चरने को चारा होता है, ये चले जाते हैं। शाम से ओस पड़ने लगी थी, इसलिए देर तक बाहर का बैठना वन्द होता जा रहा था। लोग जल्द-जल्द खा-पीकर लेट रहते थे। विल्लेसुर घर आये। मन्नी की सास ने रोज की तरह रोटी तैयार कर रक्खी थी। इधर विल्लेसुर कुछ दिनों से मन्नी की सास की पकाई रोटी खाते हुए चिकने हो चले थे। पैर धोकर चौके के भीतर गये। मन्नी की सास ने परोसकर थाली बढ़ा दी। सास को दिखाने के लिए विल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे। भोजन करके उठते वक्त हाथ में ले लेते थे और रखकर हाथ-मुंह धोकर कुल्ले करके वकरी के वच्चे को खिला देते थे। अगरासन निकलने से पहले लोटे से पानी लेकर तीन दफे थाली के वाहर से चुवाते हुए घुमाते थे। अगरासन निकालकर टुनकियाँ देते हुए लोटा वजाते थे और आँखें वन्द कर लेते थे। वह कृत्य आज भी किया।

जव भोजन करने लगे तव सासजी वड़ी दीनता से खीसें काढकर वोली, "वच्चा, अव अगहन लगनेवाला है; कहो तो अव चलूं।" फिर खाँसकर वोली, "वह काम भी तो अपना ही है।"

कौर निगलकर गम्भीर होते हुए, मोटे गले से विल्लेसुर ने कहा, "हाँ, वह काम तो देखना ही है।"

"वही कह रही थी," कुछ आगे खिसककर सासजी ने कहा, "कुछ रुपये अभी दे दो, कुछ वाद को, व्याह के दो-तीन रोज पहले दे देना।"

रुपये के नाम से विल्लेसुर कुनमुनाये। लेकिन विना रुपये व्याह न होगा, यह समझते हुए एक पख लगाकर व्याह पक्का करने लगे। कहा, "अभी तो अम्मा, किसी पण्डित से विचरवाया भी नहीं गया, न वने तो?"

"वच्चे की वात," पूरे विश्वास से सिर उठाकर मन्नी की सास ने कहा, "उसमे जव कोई दोख नही है तव व्याह वनेगा कैसे नहीं? वच्चे, वह पूरी गऊ है। और उसका व्याह? वह अव तक होने को रहता? रामखेलावन आये, परदेश से, उल्टे पाँव लौट जाना चाहते थे, हाथ जोड़ने लगे,—चाची, व्याह करा दो, जितना रुपया कहो, देंगे। अच्छा भाई, लड़की की अम्मा को मनाकर कुण्डली लेकर विचरवाने गये, फट से वन गया। लड़की की अम्मा को तीन सौ नकद दे रहे थे। पर सिस्टा की वात; लड़की की अम्मा ने कहा, मेरी विटिया को परदेश ले जायँगे, फिर कभी इधर झाँकेंगे नही; विमारी-अरामी वूंद-भर पानी को तरसूंगी; रुपये लेकर मैं क्या करूँगी? वना-वनाया व्याह उखड़ गया। फिर चुकन्दरपुर के जमींदार रामनेवाज आये। उनसे भी व्याह वन गया। जव फलदान चढ़ने का दिन

आया तब लडकी की अम्मा को उनके गाँव के किसी पट्टीदार ने भड़काया कि राजनेवाज अपने बाप का है ही नहीं; बस ब्याह रुक गया। कितने ब्याह आये सब बन गये लेकिन कोई न हो पाया।"

बिल्लेसुर को निश्चय हो गया कि लडकी के खून में कोई खराबी नही। उन्होंने सन्तोष की साँस छोड़ी। मन्नी की सास का भावावेश तब तक मन्द न पडा था, बगालिन की तरह चटककर बोली, "अब तुमसे कहती हूँ, हमारे अपने हो, सैकड़ो सच्ची-झूठी बातें न गढ़ती तो वह राँड तुम्हारे लिए राजी न होती।"

बिगड़कर बिल्लेसुर बोले, "तुम तो कहती थी बड़ी भलेमानुस है ?"

"कहने के लिए, बच्चा ए, भलेमानुस सबको कहते है; लेकिन, कैसा भी भलामानुस हो, अपनी चित कौडी को पट होते देखता है ? फिर वह दस त्रिस्वे-वाली तुम्हारे यहाँ कैसे लड़की ब्याह देती ? उसको समझाया कि दुरगादास के सुकुल है, परदेश कमा के आये है, कहो कि एक साथ गिन दें तो ऐसा न होगा, धीरे-धीरे देंगे। आखिर कहाँ जाती, मान गयी। तुमसे इसीलिए कहा, 30) ब्याह से पहले दो, फिर धीरे-धीरे मदद करते रहो।" सासजी टकटकी बाँधे बिल्लेसुर को देखती रही। इतने कम पर राजी न होना मूर्खता है, समझकर बिल्लेसुर ने कहा, "अच्छा, कल कुण्डली और एक रुपया लेकर चलो, तीन-चार दिन मे मैं पण्डित से आकर पूछूंगा कि कैसा बनता है।"

"एक दफे नही, बच्चा, दस दफे। लेकिन जब आना तब पन्द्रह रुपये लेते आना कम-से-कम।"

गम्भीर होकर बिल्लेसुर उठे और हाथ-मुँह धोने लगे। मन को समझाती हुई सासजी भोजन करने बैठी। भोजन के बाद दोनो लेटे और अपनी-अपनी गुत्थी सुलझाते रहे। किसी ने किसी से बातचीत न की। फिर वे सो गये। पौ फटने से पहले जब आकाश मे तारे थे, मन्नी की सास जगी और बिल्लेसुर को जगाने के इरादे से ऊँचे स्वर से राम-राम जपने लगी।

बिल्लेसुर उठकर बैठे और आँखें मलकर, स्नेह सूचित करते हुए पूछा, "अम्मा, क्या सवेरे-सवेरे निकल जाने का इरादा है ?"

मन्नी की सास ने आँखों मे आँसू भरे। कहा, "बच्चा, अब देर करना ठीक नही। पिछले पहर चलूंगी तो रात होगी, काम न होगा।"

बिल्लेसुर ने अँधेरे में टटोलकर सन्दूक में रक्खी कुण्डली निकाली और सास-जी को देते हुए कहा, "देखियेगा, कही खो न जाय।"

"नही, बच्चा, खो क्या जायगी ?" कहकर सासजी ने आग्रह से कुण्डली ली। बिल्लेसुर ने टेंट से एक रुपया निकाला; सासजी के हाथ मे रखकर पैर छुए; कहा, "यह तुम्हे कुछ दे नहीं रहा हूँ।"

"क्या मैं कुछ कहती हूँ, बच्चा ?" असन्तोष को दबाकर मन्नी की सास घर के बाहर निकली। रास्ते पर आकर एक साँस छोडी और अपने गाँव का रास्ता पकडा। अब तक सवेरा हो चुका था।

बिल्लेसुर ने इधर बड़ा काम किया। शकरकन्दवाले खेत मे मटर बो दिये। उधर-वाले मे चने बो चुके थे, जो अब तक बढ आये थे।

काम करते हुए रह-रहकर बिल्लेसुर को सास की याद आती रही; विवाह की बेल जैसे कलियाँ लेने लगी; काम करते-करते दुचित्ते होने लगे; साँस रुक-रुक जाने लगी, रोएँ खडे होने लगे।

आखिर चलने का दिन आया। बिल्लेसुर दूध दुहकर, एक हण्डी में मुस्का बाँधकर, दूध लेकर चलने के लिए तैयार हुए। रात के काटे पत्ते रक्खे थे, बकरियों के आगे डाल दिये।

फिर पानी भरकर घर मे स्नान किया। थोड़ी देर पूजा की। रोज पूजा करते रहे हों, यह बात नहीं। पूजा करते समय दरपन कई बार देखा, आँखें और भौंहे चढाकर-उतारकर, गाल फुलाकर-पिचकाकर, होंठ फैलाकर-चढ़ाकर। चन्दन लगा-कर एक दफा फिर मुंह देखा। आँखें निकालकर देर तक देखते रहे कि चेचक के दाग कितने साफ दिखते है। फिर कुछ देर तक अशुद्ध गायत्री का जप करते रहे मन मे यह निश्चय लिये हुए कि काम पूरा हो जायगा। फिर पुजापा समेटकर भीतर के एक ताक पर रखकर बासी रोटियाँ निकाली। भोजन करके हाथ-मुंह धोया, कपड़े पहनने लगे। मोजे के नीचे तक उतारकर धोती पहनी, फिर कुर्त्ता पहनकर चारपाई पर बैठे, साफा बाँधने लगे। बाँधकर एक दफे फिर उसी तरह दरपन देखा और तरह-तरह की मुद्राएँ बनाते रहे। फिर जेब मे छोटा-सा दरपन और गले में मैला अँगोछा और धुस्सा डालकर लाठी उठायी। जूते पहले के तेलवाये रक्खे थे, पहन लिये। दरवाजे से निकलकर मकान मे ताला लगाया, और दोनों नथनों मे कौन चल रहा है, दबाकर देखकर, उसी जगह दायाँ पैर तीन दफे दे दे मारा, और दूधवाली हण्डी उठाकर निगाह नीची किये गम्भीरता से चले।

थोड़ी दूर पर भरा घड़ा मिला। बिल्लेसुर खुश हो गये। घड़ेवाली सगुन को सोचकर मुस्करायी, कहा, "मेरी मिठाई कब ले आते हो?" काम निकलने के बाद-वाले आशय से सिर हिलाकर आश्वासन देते हुए बिल्लेसुर आगे बढ़े।

नाला मिला। किनारे रियें और बबूल के पेड़। खुश्की पकड़े चले जा रहे थे। बनियों के ताल के किनारे से गुजरे। देखकर कुछ बगुले इस किनारे से उस किनारे उड़ गये। बिल्लेसुर बढ़ते गये। शमशेर-गंज का बरहना मिला। एक जगह कुछ खजूर और ताड़ के पेड़ दीखे। सामने खेत, हरियाली लहराती हुई। ओस और सूरज की किरनें पड रही थी। आँखों पर तरह-तरह का रंग चढ-उतर रहा था। दिल मे गुदगुदी पैदा हो रही थी। पैर तेज उठ रहे थे। मालूम भी न हुआ कि हाथ मे दूध से भरी भारी हण्डी है।

आम और महुए की कतारें कच्ची सड़क के किनारे पड़ी। जाड़े की सुहावनी सुनहली धूप छनकर आ रही थी। सारी दुनिया सोने की मालूम दी। गरीबीवाला रंग उड़ गया। छोटे-बड़े हर पेड़ पर पड़ा मौसिम का असर उनमे भी आ गया।

अनुकूल हवा से तने पाल की तरह अपने लक्ष्य पर चलते गये। इस व्यवसाय मे उन्हें फायदा-ही-फायदा है, निश्चय बँधा रहा है। चारो ओर हरियाली। जितनी दूर निगाह जाती थी, हवा से लहराती हरी तरंगें ही दिखती थी; उनके साथ दिल मिल जाता और उन्ही की तरह लहराने लगता था।

आशा की सफलता-जैसे, खेत और वगीचे के भीतर से गाँव की दीवारें दिखने लगी। विल्लेसुर उतावली से वढ़ते गये। गलियारे-गलियारे गाँव के भीतर पहुँचे। कुएँ की जगत के किनारे नहाने के लिए वनी पक्की चौकी पर वैठे एक वृद्ध सूर्य की ओर मुँह किये काँपते हुए माला जप रहे थे। कुछ आगे वढ़ने पर वढ़इयों का मकान मिला। गाडी के पहिये वनने की ठक-ठक दूर तक गूँज रही थी। कुछ आगे दर्जी की दूकान मिली। वहाँ वहुत से लोग इकट्ठे दिखे। तरह-तरह के रंगीन कपड़े सिलने को आये फैले हुए। दर्जी सिर गड़ाये तत्परता से मशीन चलाता हुआ। एक लड़का चौपाल की दूसरी तरफ वैठा भरी रजाई में टाँके लगाता हुआ। दो आदमी नये कपड़े काटते और मशीन पर चढ़ाने के लिए टाँकते हुए। लोग गौर से रंगों की वहार देखते लाठी के सहारे खड़े गप लड़ाते तम्वाकू थूकते हुए। विल्लेसुर तद्गतेन मनसा सासजी के मकान की ओर वढ़े चले गये। एक कोलिया के भीतर सासजी का अधगिरा मकान था। दरवाजे खुले थे। आवाज देते हुए भीतर चले गये। सासजी इन्तजार कर रही थी। देखकर मुस्कराती हुई उठी। नजर हुण्डी पर थी। विल्लेसुर ने गर्व से हुण्डी रख दी और सासजी के पैर छुए। सासजी ने कुशल पूछी जैसे एक मुद्दत के वाद मुलाकात हुई हो, फिर विछी चारपाई पर ले चलकर वैठाला और गौर से विल्लेसुर की व्याहवाली उतावली की आँख देखती रही।

कुछ देर तक विल्लेसुर वैठे गम्भीर होते रहे; फिर आवाज मे भारीपन लाकर भले गृहस्थ की तरह पूछा, "व्याह विचरवा तो लिया गया होगा ?"

सासजी के समन्दर पर जैसे तूफान आ गया। उद्वेल होकर तारीफ करने लगी —किस तरह पण्डित के यहाँ गयी,—पण्डित ने विचारा—आँखें चढ़ाकर कहा, 'साक्षात् लक्ष्मी है, घर पर पैर रखते ही घर भर देगी'—विवाह वहुत वनता है, लड़की वैश्य वर्ण है और देव गण,—विल्लेसुर से कोई वैर नही पड़ता। साथ ही यह भी कहा कि कुल मे ऊँचे हैं, इसलिए विल्लेसुर यहाँ अपने को छंगे के नही तो दुर्गादासवाले जरूर कहें, नही तो उनको तौहीन होगी।

विल्लेसुर की वाछें खिल गयी। विनम्र भाव से कहा, "माँ-वाप का कहना सभी मानते हैं, जैसी आज्ञा होगी कहने मे मुझे ऐतराज न होगा।"

सासजी ने तृप्ति की साँस छोड़ी। फिर विल्लेसुर के पास एक पण्डित वुला लायी। पण्डित ने शीघ्रवोध के अनुसार वनते हुए व्याह की प्रशंसा की। विल्लेसुर श्रद्धापूर्वक मान गये। अगली लगन मे व्याह होना निश्चित हो गया, और सासजी की आज्ञा के अनुसार उन्ही के यहाँ से व्याह होने की वात तै रही। शाम को एक लडकी ले आयी गयी और दीये के उजाले मे विल्लेसुर ने उसे देखा। उन्हे विश्वास हो गया कि कहीं कोई कलङ्क नही। हाथ-पैर के अलावा उन्होंने उसका मुँह नही देखा। उसकी अम्मा से देर तक वातचीत करते रहे। उन्हें ढाढ़स देकर गाँव की राह ली। रुपये मन्नी की सास को दे आये।

विल्लेसुर गाँव आये जैसे कोई किला तोड़ लिया हो। गरदन उठाये घूमने लगे। पहले लोगों ने सोचा, शकरकन्दवाली मोटाई है; बाद को राज खुला। त्रिलोचन दाँत काटी रोटीवाले मित्र से मिले; वहाँ मालूम हुआ कि वह वही लडकी है जिससे वह गाँठ जोडना चाहते थे। गाँव के रँडुओं और बिल्लेसुर से ज्यादा उम्रवाले क्वाँरो पर व्याह का जैसे पाला पड़ा। त्रिलोचन ने बिल्लेसुर के खिलाफ जली-कटी सुनाते हुए गरमी पहुँचायी; कहा, "ब्राह्मण है! —बाप का पता नही। किसी भले-मानुस को पानी पिलाने लायक न रहेगा।" लोगो को दिलजमई हुई।

गाँव के बाजदार डोम और परजा बिल्लेसुर को आ-आकर घेरने लगे, खुशामद की चार बातें सुनाते हुए कि घर की सूरत बदली, चिराग रौशन हुआ, साल-भर मे बाप-दादे का नाम भी जग जायगा, पहले सूने दरवाजे से साँस लेकर निकल जाते थे, अब अडे रहेंगे, कुछ लेकर टलेंगे। बिल्लेसुर को ऐसी गुदगुदी होती थी कि झुर्रियों मे मुस्करा देते थे। सोचते थे, परजे नाक के बाल बन गये। पतले हाल की परवा न कर चढ़कर व्याह करने की ठानी; लोग-हँसाई से डरे। परजे ऐसा मौका छोड़कर कहाँ जायेंगे, सोचा, इन्हें कुछ लिया-दिया न गया तो रास्ता चलना दूभर कर देंगे, बाप-दादों से बँधी मेड कट जायगी। भरोसा हुआ कि व्याह का खर्च निवाह लेंगे।

नाई रोज तेल लगाने और बाल बनाने की पूछने लगा। कहार एक रोज अपने आप आकर दो घड़े पानी भर गया। बेहनावत्ती बनाने के लिए रुई की चार पिंडियाँ दे गया। चमार आकर पूछ गया, व्याह के जोड़े नरी के बनाये या मामूली। चौकीदार पासी रोज आधी रात को हाँक लगाता हुआ समझा जाने लगा कि पूरी रखवाली कर रहा है। गंगावासी एक दिन दो जोड़े जनेऊ दे गया। एक दिन भट्टजी आये और सीता स्वयंवर के कुछ कवित्त और भूषण की अमृत ध्वनि सुना गये। गर्ज यह कि इस समय कोई नहीं चूका।

विल्लेसुर का पासा पड़ा। जमीदार ने उनकी देहली पर पैर रक्खा। सारा गाँव टूट पड़ा। जमीदार गये थे, व्याह हो रहा है, कम-से-कम दो रुपये विल्लेसुर नजर देंगे, फिर मदद के लिए पूछेंगे, कुछ इस तरह वसूल हो जायगा। जैसे कानपुर से आटा-शकर मँगवायेंगे तो बैल-गाड़ी के किराये के अलावा कुछ काट-कपट करा ही ली जा सकेगी। त्रिलोचन भी जमींदार के साथ थे, सोचा था, उनके पीछे पूरी ताकत खर्च कर देंगे; कुछ हाथ लग ही जायगा। त्रिलोचन को देखकर विल्लेसुर ने निगाह बदली। जब भी त्रिलोचन तथा दूसरों ने जमीदार के समन्दर पर बरसने के लिए विल्लेसुर को बहुत समझाया—'रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम्' फिर भी विल्लेसुर अपनी जगह से हिले नही, जमीदार के सम्मान मे, बैठे, दाँतों मे तिनके-सा लिये रहे। कुछ देर बाद जमींदार मन मारकर उठ गये, त्रिलोचन पीछे लगे रहे। आगे बढकर अच्छी तरह कान भर दिये कि हुक्म-भर की देर है। गाँव में दूसरे दिन से विल्लेसुर की इज्जत चौगुनी हो गयी। जमीदार के घर जाने का

मतलब लोगों ने लगाया, बिल्लेसुर के हाथ कारूँ का खजाना लगा है। तरह-तरह की मन-गढन्तें फैली। किसी ने कहा, 'सोने की ईंटें उठा लाया है, किसी से बतलाता नही, छिपा जोगी है, दो साल मे देखो, गाँव खरीदेगा।' किसी ने कहा, 'महाराज के यहाँ से जवाहरात चुरा लाया है; लेकिन घर मे नही रक्खे, बाहर कही घूरे में या पेड़-तले गाड़ दिये है ताकि चोरो के हाथ न लगें।' ऐसी बातचीत जितनी बढ़ी, बिल्लेसुर के सामने लोगो की आँख उतनी ही झुकती गयी। दूसरे गाँव के लोग भी दरवाजे से निकलते हुए बिल्लेसुर को पूछने लगे।

एक दिन नाई को बुलाकर बिल्लेसुर ने कहा, "मन्नी की ससुराल गोवर्द्धनपुर जाओ और कह आओ, ब्याह बरात ले जाकर करेंगे। लड़की को मन्नी की सास बुला लें। उन्ही के घर में खम गड़ेगा। बाकी यहाँ आकर समझ जायें।"

नाई कह आया। फिर नातेदारो के यहाँ न्योता पहुँचाने चला—एक गाँठ हल्दी, एक सुपाडी और तेल-मायन-ब्याह के दिन जवानी। जितने मान्य थे, दोनो जगहो की बिदाई की सोचकर मडलाने लगे।

बिल्लेसुर के बड़प्पन की बात के पर बढ़ चुके थे। वे अवसर नही चूके। दूसरे गाँव मे गाड़ी माँगी। व्यवहार रक्खे रहने के लिए मालिक ने गाड़ी दे दी। बिल्लेसुर चक्की से गेहूँ पिसा लाये। गाँव की निठल्ली बेवाओं से दाल दरा ली। मलखान तेली को कानपुर से शकर ले आने के लिए कहा। बाकी कपडा और सामान गाँव के जुलाहे, काछी, तेली, तम्बोली, डोम और चमारों से तैयार करा लिया। घर के लिए चिन्ता थी कि बकरियो मे नातेदारों की गुजर न होगी, वह भी दूर हो गयी; सामने रहनेवाली चौधरी की बेवा ने एक कोठरी अपने लिए रखकर बाकी घर छोड़ देने का पूरी उत्सुकता से वचन दिया—बिल्लेसुर की खुली किस्मत से उन्होने भी शिरकत की।

नातेदार आने लगे, कुल-के-कुल बिल्लेसुर के पिता के मान्य यानी रुपये लेने-वाले। चौधरी के मकान में डेरा डलवाया गया तो चौकन्ने हुए। बकरियो का हाल मालूम कर खिंचे, फिर अलग रहने के कारण से खुश होकर बाहर-ही-बाहर बरतौनी और काट जाने की सोचकर बाजी-सी मार बैठे।

अपने लिए ब्याह के कुल गहने—कण्ठा, मोहनमाला, बजुल्ला; पहुँची, अँगूठी बिल्लेसुर मँगनी माँग लाये। मुरली महाजन को देने में कोई एतराज नही हुआ। वह भी बिल्लेसुर का महात्म्य सुन चुका था। चढ़ाव का कुल जेवर बिल्ले-सुर ने चोरो से खरीदा रुपये में नकद दो आने कीमत चुकाकर। फिर साफ करा-कर पटवे से गुहा लिये; कड़े-छड़े पायजेबें रहने दी।

तेल के दिन डोमो के निकट वाद्य से गाँव गूँज उठा। बिल्लेसुर के अदृश्य वैभव का सब पर प्रभाव पड़ा। पड़ोस के जमीदार ठाकुर तहसील से लौटते हुए दरवाजे से निकले। बिल्लेसुर को देखकर प्रणाम किया। कारूँ के खजाने की सोचकर कहा, "लोगो की आँख देखकर हम कुल भेद मालूम कर लेते हैं। ब्याह करने जा रहे हो, हमारा घोड़ा चाहो तो ले जाओ।" बिल्लेसुर ने राज दबाकर कहा, "हम गरीब ब्राह्मण, ब्राह्मण की तरह जायेंगे। आप हमारे राजा है, सबकुछ दे सकते हैं।" ठाकुर साहब यह सोचकर मुस्कराये कि खुलना नही चाहता, फिर

प्रणाम कर विदा हुए।

मातृ-पूजन के दूसरे दिन बरात चली। कुआँ पूजा गया। दूध विल्लेसुर की एक चाची ने पिलाया। पैर लटकाये देर तक कुएँ की जगत पर अड़ी बैठी रहीं। पूछने पर कहा, "हम सोने की ईंट लेंगे।" विल्लेसुर समझकर मुस्कराये। गाँव-वालों ने कहा, "बुरा नहीं कहा, आखिर और किस दिन के लिए जोड़कर रक्खी गयी है?" विल्लेसुर ने कहा, "चाची, यहाँ तो निहात्था हूँ। पैर निकालो, लौट-कर तुम्हें ईंट ही दूँगा।" चाची खुश हो गयी। गाँववालो के मुँह हर हवाइयाँ उड़ने लगी। उन्हे पूरा विश्वास हो गया कि विल्लेसुर के पास सोने की पचासों ईंटें हैं।

बरात निकली। अगवानी, द्वारचार, व्याह, भात, छोटा-बड़ा आहार, बरतौनी, चतुर्थी, कुल अनुष्ठान पूरे किये गये। वहाँ इन्ही का इन्तजाम था। मान्य कुल मिलाकर पाँच। बाकी कहार, बाजदार, भैयाचार। चार दिन के बाद दूल्हन लेकर विल्लेसुर घर लौटे। फिर अपने धनी होने का राज जीते-जी न खुलने दिया।

०००

चोटी की पकड़

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी
महाराज की
पुण्य स्मृति में

—निराला

निवेदन

'चोटी की पकड़' आपके सामने है। स्वदेशी-आन्दोलन की कथा है। लम्बी है, वैसी ही रोचक। पढने पर आपकी समझ मे आ जायगा। युग की चीज बनायी गयी है। जितना हिस्सा इसमे है, कथा का हिसाब उससे समझ मे आ जायगा। इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है। मुमकिन, दूसरी इससे कुछ बड़ी हो। चरित्र इसमे मुन्ना बाँदी का निखरा है। अगले मे प्रभाकर का। इस बड़े उपन्यास को पढ़ियेगा तो ज्ञान और आनन्द वैसे ही बढ़ेंगे।

—'निराला'

और करीने सिखलाये। फिर निवाह के लिए एक अच्छी-खासी जमींदारी लड़की के नाम खरीदकर उनके साथ ब्याह कर दिया। ब्याह पर दामाद साहब का लम्बा कुनबा आ धमका। बुआ इसी मे हैं बहुत निकट की। जब भी बंगाल की प्रतिष्ठित प्रायः सभी ब्राह्मण और कायस्थ पहले के युक्तप्रान्त के रहनेवाले हैं, पर वे बंगाली हो गये हैं; यह जागीरदार-परिवार आदि से युक्तप्रान्तीयता की रक्षा कर रहा है।

आने पर, समधिन-साहबा यानी राजकुमारी की माँ रानी साहबा ने बुआ को बुलाया; अपनी सोलह कहारोंवाली गद्दीदार पालकी भेज दी। साथ वर्दी पहने चार सशस्त्र सिपाही। खिड़की के कब्जे पकड़ने के लिए दोनों बगल दो नौक-रानियाँ। विधवा बुआ विधवा के श्वेत स्वच्छ वस्त्र से गयी। रानी साहबा नयी अट्टालिका में रहती थी। बड़े तख्त पर ऊँची-ऊँची गद्दियाँ बिछी थी। ऊपर स्वच्छ चादर, कितने ही तकिए लगे हुए। सामने ऊँची चौकी पर पीकदान रक्खा हुआ। बगल मे पानदान। विशाल कक्ष। साफ-सुथरा। संगमरमर का फर्श। दीवारों और छत पर अति-सुन्दर चित्रकारी। बीच मे श्वेत प्रस्तर की मेज पर चीनी फूलदानी मे सुगन्धित पुष्प। हाथ से खींचे जानेवाले पंखे की रस्सी, दीवार मे किये छेद से बाहर निकालकर ह्वील पर चढ़ायी हुई। तीन घण्टे दिन और तीन घण्टे रात की ड्यूटी पर चार पंखा-बेयरर लगे हुए। पखा चल रहा है। तख्त की बगल मे एक गद्दीदार चौकी रक्खी हुई है बुआ के बैठने के लिए।

जागीरदार साहब कुलीन हैं। साथ ही राजसी ठाट के धनिक। इनके यहाँ मान्यों की वह मान्यता नही रहती जो दूसरी जगह रहती है। यद्यपि इसका मुख्य कारण घमण्ड है, फिर भी ये अपनी बचत का रास्ता निकाले रहते है। इनका कहना है कि राज्य की मुहर रघुनाथजी के नाम है, हम उनके प्रधान कर्मचारी हैं; हमारे सिर पर केवल रघुनाथजी ही रहते हैं; दूसरे अगर इस राज्य की हद मे हमारे सिर हुए तो वही जैसे इस राज्य के राजा बन गये; इससे रघुनाथजी का अपमान होता है। इस आधार पर जलसो में जागीरदार साहब के मान्यो के आसन उनके पीछे ही रक्खे जाते हैं, हल्के आसनों पर, बगल में भी नही।

आने पर बुआ की सेवा के लिए रानी साहबा ने एक बाँदी भेजी, नाम मुन्ना। रानी साहबा की प्रायः दस दासियो मे एक मुन्ना भी। पाँच-छः साल से नौकर। हाल का ब्याह, खातिरदारी कसरत पर और कुछ इस उद्देश्य से भी कि ऐसा दूसरा नही कर सकता, इतना सुख कही भी नही। मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी बुआ की। उतनी ऊँची नही, पर नाटी भी नही। चालाकी की पुतली। चपल, शोक। श्याम रंग। बड़ी-बड़ी आँखें। बंगाल के लम्बे-लम्बे बाल। विधवा, बदचलन, सहृदय। प्रायः हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका। भेद लेने मे लासानी। कितने ही रहस्यों की जानकार। प्रधान-अप्रधान नायिका, दूती, सखी। रानी साहबा ने जब-जब रण्डी रखने के जवाब मे पति को प्रेमी चुनकर झुकाया, तब-तब मुन्ना ने प्रधान दूती का पाठ अदा किया। उसी से रानी साहबा को खबर मिली, बुआ की नाक कटी है, गाल पर दाँतो के दाग हैं। अनुगामिनी सहचरी बनाने का इतना साधन काफी है। रानी साहबा ने समधिन को बुलाया।

मुन्ना की जवान बंगला है। असल मे इसका नाम है मोना या मनोरमा। बुआ इलाहाबाद की ठेठ देहाती बोलती है। मुन्ना ने अपनी सरल सुबोध बंगला में रानी साहबा से मिलने के करीने कई दफे समझाये, पर बुआ की समझ मे कुछ न आया। फिर बुआ की मान्य के मान्य के सम्बन्ध मे युक्तप्रान्त की बँधी धारणा थी, उसमें परिवर्तन हिन्दूपन से हाथ धोना था। मुन्ना के सश्रद्ध रानी साहबा के उच्चारण से बुआ अपने बड़प्पन को दबाकर खामोश रह जाती थी, सोचती थीं, धर्म के अनुसार रानी साहबा मे और मुन्ना में उनके समक्ष कौन-सा फर्क है ?—जो काम उनके लिए मुन्ना करती है, वही रानी साहबा भी पुण्य के संचय के लिए कर सकती है। जो कुछ उन्होने सीखा, वह है बंगाली ढंग से साड़ी पहनना, मशहरी लगाना, तकिये का सहारा लेना, बंगाली भाजियों को पूर्वापर विधि से खाना। यह भी इसलिए कि उनमे कहा गया था कि उनकी बहू अर्थात् राजकुमारी बिना इसके उनसे मिलेंगी नही, जब वह आयेंगी तब इसी वेश मे रहना होगा, उनके जलपान के लिए ऐसी ही भाजियाँ देनी होंगी, थाली इसी तरह लगायी जायगी; नही तो वह भग जायँगी, एक क्षण के लिए नही ठहर सकतीं।

दो

मुन्ना के बतलाये हुए ढंग से बुआ ने एक सफेद साडी पहनी। विधवा के रजत वेश से पालकी पर बैठी। वहाँ के सभी कुछ उन्हें प्रभावित कर चुके थे, पालकी एक और हुई। कहारो ने पालकी उठायी और अपनी खास बोली से कोलाहल करते हुए बढे। अगल-बगल दो दासियाँ, पीछे मुन्ना। दो सिपाही आगे, दो पीछे। पुरानी अट्टालिका से नयी चार फर्लांग के फासले पर है। पालकी नयी अट्टालिका के अन्दर के उद्यान में आयी। गुलाबों की क्यारियों के बीच से गुजरती हुई खिडकी के विशाल ज़ीने पर लगा दी गयी। सिपाही और कहार हट गये। जिस बाजू लगी, उधर की दासी ने दरवाजा खोला। मुन्ना पानदान लिये हुए सामने आयी और उतरने के लिए कहा। बुआ उतरी।

दूसरी तरफवाली दासी रानी साहबा को खबर देने के लिए रनवास चली गयी थी। रानी साहबा तख्त की गद्दी पर बैठी थी। लापरवाही से, ले आने के लिए कहा। उनकी लड़की, राजकुमारी, बुला ली गयी थी। माता की बगल में बुआवाली चौकी से कुछ हटकर, एक सोफा डलवाकर बैठी थी।

दासी बुआ को लेकर चली, साथ मुन्ना। बुआ पर प्रभाव पडने पर भी मन मे धर्म की ही विजय हुई थी। उनका भतीजा ब्याहा हुआ है जिसके इन्होने पैर पूजे हैं। ये उससे और उसकी माँ से बराबरी का दावा नही कर सकते, बुआ तो उनके इष्टदेवता से भी बढ़कर है।

मुन्ना की जवान बंगला है। असल में इसका नाम है मोना या मनोरमा। बुआ इलाहाबाद की ठेठ देहाती बोलती है। मुन्ना ने अपनी सरल सुबोध बंगला में रानी साहबा से मिलने के करीने कई दफे समझाये, पर बुआ की समझ में कुछ न आया। फिर बुआ की मान्य के मान्य के सम्बन्ध मे युक्तप्रान्त की बँधी धारणा थी, उसमें परिवर्तन हिन्दूपन से हाथ धोना था। मुन्ना के सश्रद्ध रानी साहबा के उच्चारण से बुआ अपने बड़प्पन को दबाकर खामोश रह जाती थीं, सोचती थीं, धर्म के अनुसार रानी साहबा मे और मुन्ना में उनके समक्ष कौन-सा फर्क है?—जो काम उनके लिए मुन्ना करती है, वही रानी साहबा भी पुण्य के संचय के लिए कर सकती हैं। जो कुछ उन्होंने सीखा, वह है बंगाली ढंग से साड़ी पहनना, मशहरी लगाना, तकिये का सहारा लेना, बंगाली भाजियों को पूर्वापर विधि से खाना। यह भी इसलिए कि उनसे कहा गया था कि उनकी वहू अर्थात् राजकुमारी विना इसके उनसे मिलेंगी नही, जब वह आयेंगी तब इसी वेश मे रहना होगा, उनके जलपान के लिए ऐसी ही भाजियाँ देनी होंगी, थाली इसी तरह लगायी जायगी; नही तो वह भग जायँगी, एक क्षण के लिए नही ठहर सकतीं।

दो

मुन्ना के बतलाये हुए ढंग से बुआ ने एक सफेद साडी पहनी। विधवा के रजत वेश से पालकी पर बैठीं। वहाँ के सभी कुछ उन्हें प्रभावित कर चुके थे, पालकी एक ओर हुई। कहारो ने पालकी उठायी और अपनी खास बोली से कोलाहल करते हुए बढ़े। अगल-बगल दो दासियाँ, पीछे मुन्ना। दो सिपाही आगे, दो पीछे। पुरानी अट्टालिका से नयी चार फर्लांग के फासले पर है। पालकी नयी अट्टालिका के अन्दर के उद्यान मे आयी। गुलाबों की क्यारियों के बीच से गुजरती हुई खिड़की के विशाल जीने पर लगा दी गयी। सिपाही और कहार हट गये। जिस बाजू लगी, उधर की दासी ने दरवाजा खोला। मुन्ना पानदान लिये हुए सामने आयी और उतरने के लिए कहा। बुआ उतरी।

दूसरी तरफवाली दासी रानी साहबा को खबर देने के लिए रनवास चली गयी थी। रानी साहबा तख्त की गद्दी पर बैठी थी। लापरवाही से, ले आने के लिए कहा। उनकी लड़की, राजकुमारी, बुला ली गयी थी। माता की बगल में बुआवाली चौकी से कुछ हटकर, एक सोफा डलवाकर बैठी थी।

दासी बुआ को लेकर चली, साथ मुन्ना। बुआ पर प्रभाव पडने पर भी मन में धर्म की ही विजय हुई थी। उनका भतीजा ब्याहा हुआ है जिसके इन्होने पैर पूजे हैं। ये उससे और उसकी माँ से बराबरी का दावा नही कर सकते, बुआ तो उनके इष्टदेवता से भी बढ़कर है।

भाव में तनी हुई बुआ रनवास के भीतर गयीं। वह समझे हुए थीं, समधिन मिलेंगी, भेंट देंगी, आदर से ऊँचे आसन पर बैठालेंगी, तब उससे कुछ नीची जगह पर बैठेंगी; जाति की हैं, जाति की वर्तावबाली बातें जानती हैं, इसीलिए मुन्ना की बातें कुछ समझकर भी अनसुनी कर गयी थीं; सोचा था, यह बंगालिन हमारे रस्मोरवाज क्या जानती है ? पर भीतर पैर रखते ही उनके होश उड़ गये। रानी साहबा पत्थर की मूर्ति की तरह मसनद पर बैठी रहीं। एक नजर उन्होंने बुआ को देख लिया, उनके चेहरे पर सुना हुआ वर्णन मिलाकर चुपचाप बैठी रहीं। राजकुमारी ने आँख ही नहीं उठायी। एक दफे माता को देखकर सिर झुका लिया। मुन्ना ने भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर रानी साहबा को, फिर राजकुमारी को प्रणाम किया। बड़े सम्मान के स्वर से बुआ को परिचय दिया—महारानीजी, राजकुमारीजी।

बुआ पसीने-पसीने हो गयीं। कोई नहीं उठी, उनकी बहू को भी यह सीख नहीं दी गयी। पद की मर्यादा सर हो गयी। चुपचाप दो रुपये निकाले और बहू की निछावर करके मुन्ना को देने के लिए हाथ बढ़ाया। मुन्ना घबराकर उन्हें देखने लगी। लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। यह रानी साहबा का अपमान था।

रानी साहबा देखती रहीं। चौकी की तरफ उँगली उठाकर बंगला में बैठने के लिए कहा।

बुआ को यह और बड़ा अपमान जान पड़ा। आसन नीचा था। उनकी नसों में बिजली दौड़ने लगी। वह द्रुत पद से मसनद के सिरहाने की तरफ गयीं और तकिये के पास बैठकर रानी साहबा की आँख-से-आँख मिलाते हुए कहा, "समधिन, हम वहाँ नहीं बैठेंगे। वह जगह तुम्हारी है। अगर बड़प्पन का इतना बड़ा अभिमान था तो गरीब का लड़का क्यों चुना ?" रानी साहबा का पानी उतर गया। अपमान से बोल बन्द हो गया। क्षमा उनके शास्त्र में न थी। दाँत पीसकर आधी बंगला आधी हिन्दी में कहा, "तुम्हारा नाक पर क्या है, तुम्हारा गाल पर किसका दाग है ?"

"यहीं की तरह औरत पर हुए अपमान के दाग हैं। लेकिन हमारा चेहरा तुम्हारे दामाद से मिलता-जुलता भी है ?—जैसा हमारा, हमारे भाई का, वैसा ही उसका; वह चेहरा भी ब्याह से पहले तुम लोगों को कैसे पसन्द आ गया ?"

रानी साहबा पर जैसे घड़ों पानी पड़ा। राजकुमारी झेंपकर उठकर चल दी। शोर-गुल होते ही कई दासियाँ दौड़ीं। रानी साहबा ने बुआ को उसी वक्त ले जाने की आज्ञा दी।

बुआ दूसरे कमरे में ले जायी गयीं। बाँदियों ने अपनी एक चटाई बिछा दी। बुआ ने वहाँ कोई विचार न किया। बैठ गयीं। रनवास गर्म हो रहा था। राजकुमारी ने अपने पति से शिकायत की—बुआजी असभ्य हैं। दामाद साहब के मन में यह धारणा जड़ पकड़ चुकी थी। उन्होंने बात को दोहराया। अब रानी साहबा भी आ गयीं और अतिशयोक्ति अलंकार का सहारा लिया।—बुआ रानी साहबा पर चढ़ बैठीं, गद्दी का सरहाना दबाकर उनका अपमान किया, अपशब्द कहे, रानी साहबा ने उन्हें अपनी पालकी भेजकर बुलाया था, बैठने के लिए चन्दन की

जडाऊ चौकी रखवायी थी, भूत झाड़ने की तरह एक या दो रुपये लेकर राजकुमारी के सिर पर मुट्ठी घुमाने लगी, फिर मुन्ना दासी को देना चाहा, दासी ने नही लिया, वह कैसे ले सकती थी, फिर तरह-तरह की बातें सुनायीं जो गालियों से बढकर थी। दामाद साहब ने सलाह दी, अब विदा कर देना चाहिए। रानी साहबा इस पर सहमत नही हुईं। कहा—आदमी बनाकर भेजना अच्छा होगा। फिर कहा, जायगी भी कहाँ ?—तुम्हारी सगी बुआ है, अदबकरीने सीख जायगी तो विभा (विभावती राजकुमारी) की मदद किया करेगी। रानी साहबा की सहानुभूति से दामाद साहब ने प्रसन्न होकर सम्मति दी।

एक दूसरे कमरे में रानी साहबा ने मुन्ना को बुलाया और बुआ के सुधार के लिए आवश्यक शिक्षा दी। मुन्ना ने उनसे बढ़कर कहा कि लाख बार समझाने पर भी बुआ ने कहना नही माना। मुन्ना रोज बीसियों दफे उन पर रानी साहबा का बड़प्पन चढाती थी; पर वह सुनी-अनसुनी कर जाती थी। रानी साहबा ने अब के उपदेश के साथ अपने सम्मान से काम लेने के लिए कहा, जैसे स्वयं वह रानी साहबा हो।

इस बार बडी पालकी की जगह साधारण चार कहारोंवाली पालकी आयी। सिपाही और दासियाँ नदारद, सिर्फ मुन्ना। बुआ चुपचाप बैठकर चली आयी।

तीन

ब्याह के बाद जागीरदार राजा राजेन्द्रप्रताप कलकत्ता गये। आवश्यक काम था। जमीदारों की तरफ से गुप्त बुलावा था। सभा थी।

मध्य कलकत्ता मे एक आलीशान कोठी उन्होंने खरीदी थी। ऐशो-इशरत के साधन वहाँ सुलभ थे, राजा-रईस और साहब-सूबो से मिलने का भी सुभीता था, इसलिए साल मे आठ महीने यही रहते थे। परिवार भी रहता था। राजकुमार इस समय वही पढते थे। ये अपनी बहन से बड़े थे, पर अभी ब्याह न हुआ था। यह कोठी और सजी रहती थी।

बंगाल की इस समय की स्थिति उल्लेखनीय है। उन्नीसवी सदी का परार्द्ध बंगाल और बंगालियों के उत्थान का स्वर्णयुग है। यह बीसवी सदी का प्रारम्भ ही था। लार्ड कर्जन भारत के बड़े लाट थे। कलकत्ता राजधानी थी। सारे भारत पर बंगालियों की अँगरेजी का प्रभाव था। संसार-प्रसिद्धि मे भी बंगाली देश में आगे थे। राजा राममोहन राय की प्रतिभा का प्रकाश भर चुका था। प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर का जमाना बीत चुका था। आचार्य केशवचन्द्र सेन विश्वविश्रुत होकर दिवंगत हो चुके थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की अतिमानवीय शक्ति की धाक सारे संसार पर जम चुकी थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

की बंगला, माइकेल मधुसूदनदत्त के पद्य, बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास और गिरीशचन्द्र घोष के नाटक जागरण के लिए सूर्य की किरणों का काम कर रहे थे। घर-घर साहित्य-राजनीति की चर्चा थी। बंगाली अपने को प्रबुद्ध समझने लगे थे। अपमान का जवाब भी देने लगे थे। अखबारों की बाढ़ आ गयी थी। रविन्द्रनाथ के साहित्य का प्रचण्ड सूर्य मध्य आकाश पर आ रहा था। डी. एल. राय की नाटकीय तेजस्विता फैल चली थी। सारे बंगाल पर गौरव छाया हुआ था। परवर्ती दोनो साहित्यिकों से लोगों के हृदयों में अपार आशाएँ बँध रही थीं। दोनो के पद्य कण्ठहार हो रहे थे। जातीय सभा कांग्रेस का भी समादर बढ गया था। उसमें जाति के यथार्थ प्रगति के भी सेवक आ गये थे।

इसी समय लार्ड कर्जन ने बंग-भंग किया। राजनीति के समर्थ आलोचकों ने निश्चय किया कि इसका परिणाम बंगाल के लिए अनर्थकर है। बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त की जड़ मारने के लिए यह चाल चली गयी है। यद्यपि लार्ड कर्जन का मूँछ मुडानेवाला फैशन बंगाल मे जोरों से चल गया था—मिलनेवाले कर्मचारी और जमीदार लाट साहब को खुश करने के लिए दाढी-मूँछों से सफाचट हो रहे थे, फिर भी बंगभंगवाला धक्का सँभाले न सँभला। वे समझे कि चालाक अँगरेज किसी रोज उन्हें उनके अधिकार से उखाड़कर दम लेंगे। चिरस्थायी स्वत्व के मालिक बडे-बड़े जमीदार ही नही मध्यवित्त साधारण जन भी थे। इसलिए यह विभाजन की आग छोटे-बडे सभी के दिलो मे एक साथ जल उठी। कवियों ने सहयोगपूर्वक देश-प्रेम के गीत रचने शुरू किये। संवाद-पत्र प्रकाश्य और गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे। जगह-जगह गुप्त बैठकें होने लगी। कामयाबी के लिए विधेय-अविधेय तरीके अख्तियार किये जाने लगे। संघ-बद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुए लोगो को उत्साहित करने लगे। अँगरेजों के किये अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार की प्रतिज्ञाएँ हुई, लोगो ने खरीदना छोड़ा। साथ ही स्वदेशी के प्रचार के कार्य भी परिणत किये जाने लगे। गाँव-गाँव मे इसके केन्द्र खोले गये। कार्यकर्ता उत्साह से नयी काया मे जान फूंकने लगे।

विज्ञान की उस समय भी हिन्दुस्तानियों के लिए काफी तरक्की हो चुकी थी, पर मोटरो की इतनी भरमार न थी। हवाई जहाज थे ही नही। तब कलकत्ते में बग्घियाँ चलती थी। बाद को मोटरें हो जाने पर भी रईसो का विश्वास था, बग्घी रईसों के अधिक अनुकूल है, इससे आबरू रहती है। राजा साहब ने कई शानदार बग्घियाँ रक्खी थी, कीमती घोडों से अस्तबल भरा था। शराब और वेश्या का खर्च उन दिनों चरम सीमा पर था। मांस, मछली, सब्जी और फलो के गर्म और क्रीम और बर्फदार ठण्ढे इतने प्रकार के भोजन बनते थे कि खाने में अधिकांश का प्रदर्शन मात्र होता था; वे नौकरों के हिस्से मे आकर भी बच जाते थे। फूल और सुगन्धियो का खर्च अब शतांश भी नही रहा। पुरस्कार इतने दिये जाते थे कि एक-एक जगह के दान से नर्तकियो और गवैयो का एक-एक साल का खर्च चल जाता था। आमन्त्रित सभी राजे-रईस व्यवहार मे हजारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अगर स्वार्थ को गहरा धक्का न लगा होता तो ये जमीदार स्वदेशी-आन्दोलन मे कदापि शरीक न हुए होते। इन्होने साथ भी पीठ बचाकर दिया था। सामने

भोग में झुक जाने के लिए युवक-समाज था। प्रेरणा देनेवाले थे राजनैतिक वकील और बैरिस्टर। आज की दृष्टि से वह भावुकता का ही उद्‌गार था। सन् सत्तावन के गदर से महात्मा गांधी के आखिरी राजनीतिक आन्दोलन तक, स्वत्व के स्वार्थ मे, धार्मिक भावना ने ही जनता का रुख फेरा है। इसको आधुनिक आलोचक उत्कृष्ट राजनीतिक महत्त्व न देगा। स्वदेशी आन्दोलन स्थायी स्वत्व के आधार पर चला था। उससे विना घरबार के, जमींदारों के आश्रय मे रहनेवाले, दलित, अधिकांश किसानों को फायदा न था। उनमे हिन्दू भी काफी थे, पर मुसलमानों की संख्या वड़ी थी, जो मुसलमानो के शासनकाल मे, देशों के सुधार के लोभ से या जमीदार हिन्दुओं से वदला चुकाने के अभिप्राय से मुसलमान हो गये थे। वगाल के अव तक के निर्मित साहित्य में इनका कोई स्थान न था, उलटे मुसलमानी प्रभुत्व से वदला चुकाने की नीयत से लिखे गये वंकिम के साहित्य में इनकी मुखालिफत ही हुई थी। शूद्र कही जानेवाली अन्य दलित जातियो का आध्यात्मिक उन्नयन, वैष्णव-धर्म के द्वारा जैसा, श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के द्वारा हुआ था, पर उनकी सामाजिक स्थिति मे कोई प्रतिष्ठा न हुई थी, न साहित्य मे वे मर्यादित हो सके थे। ब्राह्मण-समाज ने काफी उदारता दिखायी थी, आर्य-समाज का भी थोड़ा-वहुत प्रचार हुआ था, पर इनसे व्यापक फलोदय न हो पाया था। ब्राह्म समाज क्रिश्चन होनेवाले वंगालियो के भारतीय-धर्म-रक्षण का एक साधन, एक सुधार होकर रहा। इसमे सम्मिलित होनेवाले अधिकांश विलायत से लौटे उच्च-शिक्षित थे। मुख्य वात यह कि परिस्थितियो की अनुकूलता के विना उचित राष्ट्रीय सगठन नही हो सकता, न हो सका। हिंसात्मक जो भावना स्वतन्त्रता की कुजी के रूप मे प्रचारित हुई, वह संगठनात्मक राष्ट्रीय महत्त्व कम रखती थी। गाधीजी का असहयोग इसी की प्रतिक्रिया है, पर इसकी एकता की जड़ और गहरे पहुँची थी।

अस्तु, इस समय गुप्त सभाओं का जैसा क्रम चला वैसा और उतना सिराजउद्दौला के समय अँगरेजों की मदद के लिए भी नही चला। कुछ ही दिनों में राजों, रईसो और वकील-बैरिस्टरों से मिलने पर, राजा राजेन्द्रप्रताप की समझ में आ गया कि देश को साथ देना चाहिए। चिरस्थायी स्वत्व की रक्षा ही देश की रक्षा है, इस पर उन्हें जरा भी सन्देह नही रहा। वहुत जगह दावतें हुई, वहुत वार प्रतिज्ञाएँ की गयी। वकील और बैरिस्टरो के समझाने से दूसरे-दूसरे जमीदारों की तरह राजा राजेन्द्रप्रताप भी समझे, उन्हे कोई खतरा नही। जिस मदद के लिए वह वात दे चुके है, पुलिस को उसकी खबर नही हो सकती, पुलिस उन्हें पकड़ नही सकती।

दूसरों की तरह राजेन्द्रप्रताप ने भी दावत दी। कोठी सजी। कलकत्ता के और वहाँ आये हुए वंगाल के जमीदार आमन्त्रित हुए। निमन्त्रण-पत्र मे लिखा गया, राजकुमारी के व्याह की दावत है। अच्छे पाचक वुलाये गये। राजभोग पका। विलायत की कीमती शरावें आयी और कलकत्ता की सुप्रसिद्ध गायिका वेश्याएँ। विशाल अहाते मे जमीदारो की वग्घियों का ताँता लग गया। प्रचण्ड रोशनी हुई। आलीशान वैठक मे राजे और जमीदार गद्दियों पर तकियों के सहारे वैठे। शराव

ढलने लगी। गायिकाओं के नृत्य और गीत होने लगे। कुछ ही समय में भोजन का बुलावा हुआ। राजसी ठाट के आसन लगे थे। सोने और चाँदी के वरतनों में भोजन लगाकर लाया गया। सवने प्रशंसा करते हुए भोजन पाया। इशारे से वातचीत होती रही। सव-के-सव एकमत थे। भोजन के वाद थोडी देर तक गाना सुनकर, सभी श्रेणियों के लोगों को इनाम देकर जमीदार लोग अपनी-अपनी कोठियो को रवाने हुए। गायिकाएँ भी गयीं। केवल एक आदमी बैठा रहा। वह कलकत्ते का एक प्रसिद्ध वैरिस्टर है। उस समय कमरे मे कोई न था।

उसने राजेन्द्रप्रताप से कहा, "हमको जगह चाहिए। आप लोगो के पास जगह की कमी नही। वहाँ कार्यकर्ता छिपकर काम करेंगे। आप उनकी निगरानी रख सकते हैं।"

"हाँ।"

"जगह आप लोग देंगे, आदमी हम। आपमे जो कलकत्ते के रहनेवाले हैं, वे अपनी कोठियो मे जगह नही दे सकते। उनसे हम रुपया लेंगे और किराये की कोठियो मे काम करेंगे।"

"हाँ।" राजेन्द्रप्रताप को विश्वास था कि वे दो-चार को क्या वीसियों आदमियो को छिपा दे सकते है। गढ के भीतर पुलिस के आने तक वे आदमी वाहर निकाल दिये जा सकते हैं, माल गहरे तालाव मे फेंकवा दिया जा सकता है। पूर्वपुरुषो से जमीदारो की दुस्साहसिकता की जो वाते वह सुन चुके है और खुद कर चुके है, उनके सामने ये नगण्य हैं।

"सारा देश साथ है।" वैरिस्टर ने कहा, "घवराइयेगा नही। हमारे आदमी पकड जायँगे तो अपने पर ही कुल जिम्मेवारी लेंगे। आपको पकड़ायेंगे नही। कोठी मे भी पकड़े जायँगे तो उनका यही कहना होगा कि वे एकान्त देखकर अपनी इच्छा से गये थे।"

राजा राजेन्द्रप्रताप को विश्वास का वल मिला। वैरिस्टर कहते गये, "किसी तरह की अनहोनी होती दिखे तो आप उन्हें जल्द सूचित कर दें।"

राजा साहव ने सम्मति दी। वैरिस्टर ने कहा, "जो आदमी वहाँ आपसे मिलेगा, वह आज से चौथे दिन तारकनाथ का आदमी कहकर मिलेगा। उसका नाम प्रभाकर है। उसके साथ तीन आदमी और होगे। सामान की व्यवस्था की हुई रहेगी; भीतर ले जाने, ले आने और भोजन-पान का इन्तजाम आप करा दीजियेगा; साथ इस तरह कि भेद न खुले, वहुत विश्वासी आदमी काम मे रहे जिनके जीवन की वागडोर आपके हाथ मे हो। समझते है ?"

"हाँ, हमारा सम्वन्ध तो आपको मालूम है।" राजा साहव मुस्कराये। वैरिस्टर साहव ने कुछ देर तक ऐसी ही वातचीत की, फिर विदा हुए।

चार

राजा राजेन्द्रप्रताप के कोचमैन मुसलमान है। तीन बग्घियाँ और आठ घोड़े कलकत्ता में हैं, कुछ अधिक, राजधानी में। अली एक कोचमैन हैं। इनके पिता लखनऊ में रहते थे, पूर्वज ईरान के रहनेवाले; बाद को शाह वाजिदअली के न रहने पर, मटियाबुर्ज चले आये। शाही खानदान के दरजी। कपड़े अच्छे सीते थे। अली आवारगी-पसन्द थे, सुई नहीं चला सके, घोड़े की लगाम थामी। हिन्दू भी आदमी हैं, यह धर्मानुसार समझ में नहीं आया। हिन्दू की आख्या गुलाम से बढ़कर नही कि! अँगरेजों से लड़ाई में मुसलमान हारे, इसकी वजह हिन्दुओ की बेईमानी है, ऐसे विचार पाले रहे। फिर भी खामोशी से काम करते हुए गुजर करते रहे यानी मालिकों से काम के अलावा दूसरी बात न की। किसी हिन्दू को कभी राज नही दिया, बल्कि लिया, और बड़ी सफाई से, भलमंसाहत के बहाने।

बंगालियों की बढ़ती से अली इस नतीजे पर आये कि बिना अँगरेजी के चूल न बैठेगी। दूर तक पहुँच न थी, पुलिस के मुसलमान दारोगा को राज देने और उनके इशारे पर काम करने-कराने लगे। उन्हें एके की कुंजी मिली। जमीदारी हिन्दुओं की, कारोबार हिन्दुओं का, बड़ी-बड़ी नौकरियो पर हिन्दू, वकील-बैरिस्टर-डाक्टर-प्रोफेसर भी हिन्दू। यही हिन्दू अँगरेजों से मिले और मुसलमानो से दगा की। अली की आँख खुल गयी। यह मिलने का नतीजा है कि चारो तरफ हिन्दू मँडला रहे हैं। सरकार हरएक की है। भूखों मरनेवाले भूखों न मरेंगे अगर सरकार को साथ दिया। सरकार ने बंगाल के दो हिस्से किये हैं, यह मुसलमानो के फायदे के लिए। आये दिन ये जमीनें मुसलमानों की। जमींदारी का यह कानून न रहेगा। नवाबों से सारी मुसलमान रैयत को फायदा नही पहुँचा। नक्शा आँख के सामने आया। बादशाहत से वह दब गया था। कुछ यहाँ सुना, कुछ वहाँ; कुछ अपनी तरफ से सोचा। स्वदेशी का आन्दोलन चल चुका था। बातें मुसलमान और इतरवर्ग के नेता फैला रहे थे। अँगरेजी शासन के प्रारम्भ से ऐसी तोड़वाली बातों का महत्त्व है।

अली को कामयाबी हुई। लड़का पढ़ रहा था, एण्ट्रेन्स मे 2 साल की उम्र मे फेल हुआ, थानेदारी के लिए चुन लिया गया। उन्होने देखा था, उनके राज से थानेदार इन्स्पेक्टर हो गये थे; वह अपने लड़के को राज देने लगे। पहले मालिक की गरदन नापी। सोचा, आसामी बड़ा है, तरक्की लम्बी होगी। आन्दोलन का हाल मालूम था। राजा साहब जहाँ-जहाँ गये थे, लड़के से कहा। कोठी मे जिनकी-जिनकी बग्घी आयी थी बतलाया। मुसलमान कोचमैनो के नाम लिखवाये, भीतरी सूरत से गवाही लेने के लिए। फिर कहा, राजा थियेटर-रोडवाली मशहूर तवायफ एजाज़ के घर जाता है, वह भी कभी-कभी कोठी आती है, कभी अपने वहाँ, बिलासपुर, साथ ले जाता है, वहाँ महीनों ठहरती है।

पुत्र ने गम्भीर होकर कहा, सरकार से बगावत की तो मिट जायगा। खैर राज भी खुल जायगा। आप आराम कीजिए।

अली के लडके का नाम यूसुफ है। पर है बदशक्ल। अली भी शक्ल से ईरानी नही मालूम होते। मुसलमान तोडे कसते है। अली हिन्दुस्तान पर बुखार उतारते है—ऐसा मुल्क है कि हुमा भी चुग्द की शक्ल मे वदल जाता है। फिर फारिस के मशहूर लोगो को अपने खानदान का करार देकर उनके रग और रूप की तारीफ करते है।

यूसुफ ने कसकर डायरी लिखी। फिर मामले मे हाथ लगाने की देर तक सोचते रहे। उनके हलक़े मे न राजा राजेन्द्रप्रताप की कोठी आती थी, न एजाज़ की। वह थाने के वडे थानेदार भी न थे। उनसे वडे जो दो-तीन अफसर थे, कुल-के-कुल बंगाली। वह खिचे। कमिश्नर से मिलने की सोची, पर हिम्मत न हुई। कोई राज सरकार के खिलाफ नही मालूम हुआ। अभी सुवूत भी नही। आसामी वडे-वडे हैं। आप नौकर। धेले की बुलबुल हाथ न लगे और टका हुशकाई पड जाय, पुलिस की आँख मे गिर जाना है।

उन्हें हिम्मत हुई। एजाज मुसलमान है। इससे काम निकल सकता है। फिर कच्चे पड़े। उसका राज किसी बड़े मुसलमान के यहाँ रहता होगा। सीधी बात-चीत करेंगे तो पकड़ जायेंगे। कुछ देर कशमकश मे रहे। फिर रहा नही गया। शिकार हाथ से निकल जायगा। किसी बड़े के कान में वात पड़ी तो अपना वस न रहेगा और नामवरी भी शिकार मे हाँकेवालो की रहेगी। वडा नाजुक वक्त है, सरकार को सुबूत दिलाया जा सका तो रात-भर मे महल खडा हो जायगा।

यूसुफ पिता के कमरे मे गये। अली की आँख न लगी थी। आवाज पर उठे। यूसुफ वैठे, कहा, "उस रण्डी को एक दफा हलक़े मे ले आना है; झावरमल डागा या जौहरी को फाँसिये। उसका मुजरा करायें।"

अली की निगाह वदली। कहा, "अवे उल्लू के पट्ठे, वही ढेर हुआ जहाँ दुश्मन। ये वक्काल वात पर आयेंगे। ये वड़े आदमी है। इनका राज वड़ो मे रहता है। यो पर वँध जाते हैं। भेद खुल जायगा। वात मान, मछुआ वाजार के गुण्डो से काम ले। शिकायत लिखवा, देख, कैसी वेपर की उड़ाते है। उसका भी कुछ राज लिया या खातून समझ वैठा?" अली ने करवट वदली। यूसुफ चले आये।

पाँच

दूसरे दिन कुछ गुण्डो की मदद ली। भले-आदमी वने रहनेवाले दो आदमी फँसे। उन्होने रपोट लिखवायी। कुछ पढे-लिखे थे, पर वायाँ अँगूठा घिसकर गये थे। अँगूठे का निशान लगाया। गुण्डों ने कहा, "हुजूर का काम हो गया, अव चड्ढी गठ गयी।" वाहर निकलकर कहा, "अव, वेटो, साल-भर इनके सिर चढ़े घूमो। फिर यही वँधे या तुम। तुम न बँधोगे। यह फँसेगा नया थानेदार। अव चलो,

शराव पिला दो, अव जल्द इस हलके से कुछ काम लो।" ग़नी ने रुस्तम से कहा, "दाम दे दे। उस्ताद खरीद लेंगे।" रुस्तम ने पाँच रुपये का नोट उस्ताद क़मर को दिया।

कमर को मालूम था, एजाज शरीफ है, शहर मे उसकी इज्जत है, गाने मे लासानी, उसके खाते मे दर्ज है—पहला नाम, इनाम भी देती जाती है हर महीने वीस रुपये। सोचा, अच्छे-खासे रईस की हैसियत उसकी, 400) महीने का अँगरेजी-पढ़ा सिकत्तर रक्खे है, यह थानेदार चपेट मे आयेगा। मामला जैसा भी हो, मालूम हो जायगा। सोचता, लापरवाही से साथियो के साथ वढता हुआ, देशी शराव की दूकान की तरफ मुड़ा और भीतर घुसकर दो आदमियों से दो वोतले खरीदी, तव सस्ती थी। वहाँ से वाजार की तरफ चला।

एजाज, देखते-देखते मशहूर हो गयी। वह एक वड़े तवायफ की वेटी है। शिक्षा कायदे से हुई है। उर्दू, वंगला और अँगरेजी अच्छी जानती है। गाने-वजाने की भी वड़े-वड़े उस्तादो से तालीम मिली है। नये-पुराने दोनो तरह के गाने जानती है। वेजोड़ सुन्दरी। गोराई काफी निखरी हुई। उँगलियाँ, हाथ, पैर, गला, नाक, आँखें, भौहें, सव लम्वी-लम्वी, जैसे चम्पे की कली। पहनावा भी वैसा ही लम्वा। प्रान्त-प्रान्त और देश-देश का पहनावा करनेवाली। उम्र 30 साल की होगी। साल-भर से राजा राजेन्द्रप्रताप की नौकर है। दो हजार महीना लेती है। साथ वाहर भी जाती है और राजधानी भी। राजधानी में उसके लिए अलग वँगला है। कुछ महीनो से राजा साहव ने दूसरी महफिल का गाना रोक दिया है। कलकत्ते में उसकी अपनी आलीशान कोठी है। चारो ओर लान, वगीचा। फौवारे लगे हुए। गुलाव और ऋतु-पुष्पो के पेड़। पत्थर की परियों की नंगी मूर्तियाँ। गाड़ी-वरामदा। नीचे और ऊपर सजी हुई वैठकें। विभिन्न प्रकार के साज। सुन्दर-सुन्दर तैल-चित्र। फाटक पर सन्तरियो का पहरा। दास और दासियाँ।

गाड़ी-वरामदे की ऊपरवाली छत पर फूलो के टव रक्खे हुए हैं। मेज पर दस्तर-खान विछा हुआ है। गुलाव की सजी फूलदानी रक्खी हुई है। गिलास मे रोजेड वर्फ-मिला रक्खा है। अभी लाल फेन नही मिटा। सूरज डूव चुका है, फिर भी उजाला है। सड़क के आदमी देख पड़ते हैं। मन्द-मन्द दखिनाव चल रहा है। एक-एक झोंके से कविता आकर गले लगती है। एजाज वैठी हुई गिलास के फूटते हुए फेन के वुलवुले देख रही है। रसीली आँखो से, मालूम नही कौन-सा विचार लगा हुआ है। एक कनीज खड़ी हुई आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।

इसी समय यूसुफ फाटक पर देख पड़े। एजाज़ ने देखा, फिर आँखें फेर ली। यूसुफ ने एजाज़ को नही देखा। सन्तरी के पास कुछ सिकण्ड के लिए खड़े हुए। मिलना चाहते हैं, कहा। सन्तरी ने सिर हिलाकर भीतर जाने का इशारा किया। यूसुफ निकल गये। पोर्टिको से वरामदे पर गये। कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक वेयरा खड़ा था। आदर से वैठने के लिए कहा। यूसुफ वैठे। वेयरा ने कार्ड माँगा। कार्ड यूसुफ के पास नही था। उन्होंने कहा, सरकारी काम है।

रण्डी सरकारी काम में आ सकती है, कोई वड़ा काम होगा, जो मर्दो का किया हुआ नही पूरा हुआ, सोचता हुआ वह सिकत्तर के कमरे मे गया। "खवर

दी, एक साहब तशरीफ ले आये है," कार्ड माँगने पर कहा, "सरकारी काम है।"

सेक्रेटरी का खास वक्त यही है, शाम के चार से रात के दस तक। इसी वक्त वह आफिस करते हैं। पत्रों के जवाब लिखते है, मिलनेवालो से बातचीत करते हैं। अपने कमरे से उठकर बाहर आये। यूसुफ साहब से हाथ मिलाया। पूछा, "जनाब का नाम ?"

"हाँ, एक है, मगर इस वक्त तो यही कि हम सरकारी।"

सेक्रेटरी कुछ सिकण्ड देखते रहे। पूछा, "क्या हुक्म है ?"

"हम मालिका-मकान से मिलना चाहते है।"

"उस वक्त दूसरा भी कोई होगा ?"

"नही।"

"यह नही हो सकता। आपको अपना कुछ पता देना होगा अगर आप अपना नाम नही बतलाना चाहते। फिर किस सरकारी काम से यहाँ आने की जरूरत गवारा की, फर्माना होगा और मुझसे। मैं उनसे अर्ज करूँगा फिर उनका जवाब आपको सुनाऊँगा।"

"यह ऐसा काम नही।"

"मान लीजिए, वह नौकर है, खातून की हैसियत से रहने की कैद है।"

"आप पहले फर्मा चुके हैं, कोई दूसरे रहेगे तो मैं उनसे बातचीत कर सकता हूँ। फिर कहा, मैं आपसे कुल बातें कह दूँ, आप जवाब ला देंगे अपना नाम या पता बताने के बाद। यह शायद किसी खास दरजे की खातून के बर्ताव मे आता है ?"

"गुस्ताखी मुआफ फर्माएँ। रण्डी का मकान समझकर कितने ही लुच्चे आते हैं। हमे पेशबन्दी रखनी पड़ती है। सरकारी काम की पाबन्दी हमे कुबूल है, लेकिन वह कैसा सरकारी काम है, यह आप उन्ही से कहेगे, मैं उनका सेक्रेटरी हूँ, मुझसे नही; मेरे सामने भी आपको कहना मजूर नही। ऐसी हालत मे मैं आपको लुच्चा न समझकर सरकारी काम से आया हुआ अफसर समझूँ। मैंने कहा, वह नौकर है, खातून की तरह रहती हैं। इस पर भी आपने एक तुर्रा कस दिया। एक भले आदमी की तरह इतना समझने की तकलीफ भी आपको गवारा नही हुई कि जिन्होने मालिका-मकान को नौकर रक्खा है, उन्हें उनकी बेपर्दगी, पसन्द न होगी, दोनों मे नौकरी की शर्तें होंगी।"

"मैं समझा। अफसर को गाली आपने दी। अफसर क्या है, यह आपको अच्छी तरह मालूम होगा। अफसर इस तरह नही आता, न यो जवाब देता है। वह अपनी जगह पर बुलायेगा और नौकरी की कुल शर्तो को तोड़कर खातून साहबा को चलकर मिलना होगा। उस वक्त हम कुछ ऐसी तैयारी ला देंगे कि खातून साहबा उम्र-भर याद रक्खेंगी। हम कोई है और दर्ज होकर आये हैं। लौटकर कुछ लिखेगे और भेजेंगे। आप सिकत्तर हैं, इसलिए मिल सकते हैं, और हम सरकारी काम से आये हैं, इसलिए नही मिल सकते। आपको खौफ है, जैसे हम कोई चाकू लिये हुए हैं और उनकी नाक काट लेंगे।"

यूसुफ की दहाड़ से सेक्रेटरी साहब दबे। कहा, "हमे जैसी हिदायत है, हमने आपसे अर्ज कर दी।"

फिर सँभलकर बोले, "अफसर जब बुलायेंगे, तब लिखकर बुलायेंगे या अपने नाम से आदमी भेजकर। मेरी समझ में नही आता, अफसर का बुलावा खुफिया तौर से कैसे होगा। फिर, जवाब मुख्तार आम मे भी दिया जा सकता है या इन्ही को हाजिरी बजानी पड़ेगी ?"

"आप यह नही समझे कि सरकार मुख्तार आम का पेश होना मंजूर कर भी सकती है और नही भी। आप जैसी बाते कर रहे हैं, इनसे उलझन बढती है। नतीजा साफ है, आपके हक मे कैसा होगा। तैयार रहिए।"

"हम इतना जानते हैं, कई हजार रुपये हम इन्कम-टैक्स देते हैं; सरकार की निगाह मे इसकी इज्जत है। फिर आपको कुल माजरा समझा दिया गया है। एक प्रोविन्शल मेरे साथ भी है। अच्छी बात, अब मैं आपसे समझूंगा। तैयार रहिए। आप अपना भेद नही बताना चाहते, मैं कहता हूँ, वगैर कुछ भेद दिये आप बचकर नही निकल सकते।"

थानेदार घबराये। फिर हिम्मत बाँधकर कहा, "हम जब यहाँ आये, समझिए, रत्ती-रत्ती हाल मालूम करके। हम अन्धे नही। सच, आपके मकान का ठाट आपकी हैसियत बयान कर रहा है। मगर हमारी बात मानियेगा तभी फायदा उठाइयेगा, सरकार के यहाँ नेक-नामी लिखी जायगी।"

"जब तक हमें इसका गुमाँ भी न होगा कि आप कौन हैं, हम आपके साथ लगे-लगाये रहेगे। उधर हमारे पैर तभी उठ सकते हैं जब हमे कुछ राज मिल जायगा।"

"इस तरह से मिलने एक ही महकमे के आदमी आते है। नाम वह कभी नहीं बतायेंगे, सिर्फ काम बतला जायेंगे। कर दिया तो नेक-नामी, न किया या धोखा दिया तो इसकी सजा है। समझिए —हम-पुली···।"

"आप जो काम बतला जायँगे, उसका हासिल मालूम करने के लिए आप ही जायँगे या कोई दूसरे ?"

"हमी आयँगे; मुमकिन, और आदमी हमारे साथ हों। बाद को, गिरह पड़ गयी तो बड़े साहब भी आ सकते हैं।"

सेक्रेटरी उठकर अपने कमरे में गया। दिन, तारीख, मास, साल, समय और पुली के नाम से कही हुई उस आदमी की कुल बातें उसकी शक्ल के वर्णन के साथ लिख लीं। एक सिपाही को बुलाकर कहा, "तुम दो-तीन छिपे तौर से इस आदमी का हाल मालूम करो, पूरा पता ला सके तो इनाम मिलेगा। आदमी बरामदे में बैठा है। कोई छेड़ न करना।"

फिर बाईजी के पास खबर भेजी कि जरूरी काम से मिलना है। एजाज़ ने बुला भेजा। सिकत्तर साहब गये। उसने मेज की बगलवाली कुर्सी पर बैठाला। सिकत्तर बैठकर एक-एक करके कुल बाते संक्षेप मे सुना गये।

एजाज़ कुछ देर तक सोचती रही। फिर पूरे इतमीनान से कहा, "सिकत्तर साहब, एक राज़ और लीजिए। कहिए, वह बातचीत करने के लिए तैयार हैं अगर उस बातचीत मे राजा साहब का नाम नही आया। गुलाबबाड़ी मे एक मेज और दो कुर्सियाँ डलवा दीजिए।"

नौकर से कहकर सिकत्तर यूसुफ के पास आये। कहा, "बाईजी आपसे बात-

चीत करेंगी, शर्त एक रहेगी, आप राजा साहब के बारे में कोई बात न उठायेंगे।"

"हम किसी शर्त पर बातचीत न करेंगे," यूसुफ ने पुतलियाँ पलटकर कहा।

सिकत्तर फिर एजाज के पास गये। सुनकर एजाज ने कहा, "आप समझे ?—उन्ही की गरदन नापी जायगी। हमारा और इनका कहना लिख लीजियेगा। हम नीचे चलते हैं। लिखकर सभ्यता से उन्हें भेज दीजिए; गुलशन ले आयेगी। आदमियों से कह दीजियेगा, होशियारी रक्खे।"

एजाज गुलाबबाडी मे आकर बैठी। सिकत्तर ने लिखकर यूसुफ से आकर कहा, "सरकार की फतह रही। गुलाबबाडी मे हैं। तशरीफ ले चलिए।" गुलशन की तरफ हाथ उठाकर कहा, "यह ले जायगी।"

गुलशन यूसुफ को ले चली। गुलाबबाडी मे एजाज ने नसीम को कीमती साड़ी पहनाकर बैठाला था। बगीचे की शोभा देखते हुए यूसुफ चले। अँधेरा हो आया था। कुछ दूर एक गैस की बत्ती जल रही थी।

छह

यूसुफ फतहयाब थे—उनकी शर्तें कुबूल कर ली गयी। गुरूर मे कदम उठ रहे थे। गुलशन गुलाबबाड़ी में ले गयी। नसीम की तरफ उँगली उठाकर कहा, "आप।"

नसीम उठकर खडी हो गयी। बडी अदा से कहा, "आदाब अर्ज।"

यूसुफ बहुत खुश हुए। जबाब मे हाथ उठाया, वह हाथ जैसे सरकार का हो।

नसीम ने पूछा, "हुजूर का मिजाज अच्छा ?"

"खैरियत है।" थानेदार साहब ने जवाब दिया।

कुर्सी की तरफ उँगली का हल्का इशारा करके नसीम ने कहा, "हुजूर की कुर्सी।"

थानेदार साहब संजीदगी से बैठे। नसीम भी बैठी। बैठते हुए कहा, "हम हुक्म की तामील करनेवाले!"

थानेदार साहब बहुत खुश हुए। सोचा, रंग चढ़ गया; बाजी हाथ है। इधर-उधर देखा। गुलशन हट गयी थी।

"आप एजाज बाई है ?" थानेदार ने पूछा।

"हुक्म।"

"काफी अरसा हुआ। दूसरा काम है। वक्त ज्यादा नही।" नसीम खामोश रही। थानेदार को सन्देह नही हुआ। वह सुन्दरी और खानदानी दिख रही थी। बातचीत साफ।

"आपकी शिकायत है।"

नसीम आँखें फाड़कर देखने लगी।

"दोस्त और दुश्मन सबके होते हैं। सरकार तहकीकात कर रही है। वक्त पर दूध और पानी अलग कर देगी।"

नसीम ने ललित स्वर से कहा, "क्या ही अच्छा हो कि इसके पूरे भेद से हम भी वाकिफ हो जायें।"

"यह हमारे हाथ की बात नहीं। खुद हम इसके भेद से वाकिफ नहीं। पर एक सूरत हम ऐसी बतायेंगे कि शिकायत भी रफा हो जायगी और सरकार के मददगार दोस्तों मे नाम दर्ज हो जायगा।"

"मेहरबानी।" नसीम ने विजयी स्वर से कहा।

"मैं मुसलमान हूँ। दूसरी शिरकत मजहबी है।"

नसीम गम्भीर हो गयी। कुर्सी पर हाथ समेटकर बैठी।

"आजकल जमींदारों और कुछ हिन्दुओं ने सरकार के खिलाफ गुटबन्दी की है। जिस जमीदार से आपके तअल्लुकात है, इस पर सरकार को शुभा है। इसका भेद मालूम होना चाहिए। इससे सरकार की मदद भी होगी और कौम की खिदमत भी। सरकार की मदद इस तरह कि आपके जरिये दुश्मन का राज सरकार को मिलेगा और कौम की ख़िदमत इस तरह की सुदेशी का बवेला जो हिन्दुओ ने मचा रक्खा है, यह जड़ से उखड जायगा। मुसलमान रैयत को फायदे के बदले नुकसान है अगर हिन्दुओं को कामयाबी हुई। सरकार ने बंगाल के दो हिस्से इस उसूल से किये हैं कि मुसलमान रैयत को तकलीफ है; मौरूसी बन्दोबस्तवाली 99 हर सदी जमीनों पर हिन्दुओं का दखल है; यह आगे चलकर न रहेगा। इससे मुसलमानो की रोटियों का सवाल हल होता है। आपके दोस्ताने के बर्ताव से दुश्मनों की की हुई शिकायत का असर जाता रहेगा, उल्टे फायदा उठाइयेगा।"

"आपकी सलाह नेक।" नसीम ने दोस्ती की आवाज में कहा।

"आदाब अर्ज।" थानेदार साहब उठकर खड़े हो गये, "अब मै चलता हूँ। सीन याद रखियेगा। जो शख्स कहे, उसे अपना आदमी समझियेगा। उसे और कोई राज न दीजिए। सिर्फ कहिए, 'फँस गया' या 'नही फँसा।' पूरी बातें मैं ही मालूम करूँगा। मैं तीन और तीन कहूँगा। आप वाकिफ-हाल है। सहूलियत से काम लेना है। हमारे आप लोगों से गहरे तअल्लुकात रहते है।"

"पान-सिगरेट शौक फर्माते हैं?" थानेदार साहब चल पड़े थे, खड़े हो गये। नसीम ने सोने के पानदान से निकालकर पान दिये और डिब्बे से सिगरेट। सामने दियासलाई जलायी। थानेदार साहब ने आँखें भरकर देखा। दियासलाई के गुल होते जैसे दिल मे अँधेरा छा गया।

सात

तीसरे दिन राजा साहब की चलने की तैयारी हुई। एजाज़ को भी चलना था। उससे बातचीत हो चुकी थी। उसने तैयारी कर ली। इस बार नसीम और सिकत्तर को यही छोड़ा। नसीम को कुल बातें लिखवा दी। एक नकल अपने पास रक्खी। थोड़ा-सा सामान और गुलशन को लेकर जेट्टी के लिए गाडी पर बैठी। राजा साहब के साथ कुल सहूलियतें है। खुशी-खुशी चल दी। आदमियों से थाने-दार साहब को भेद नही मालूम हो सका। फाटक के बाहर रास्ते पर भेस बदले हुए पुलिस के सिपाही थे, कुछ और आदमी। थानेदार निकलकर उल्टे रास्ते चले। काफी दूर निकल गये। फिर एक-एक छँटने लगे। थानेदार रेलवे-स्टेशन से डाय-मण्ड हारबर की तरफ रवाना हुए।

जेट्टी से राजा साहब का स्टीमर लगा हुआ था। आने-जाने के सुभीते के लिए उन्होने खरीदा था। अच्छा-खासा स्टीमर, दो-मंजिला। नीचे सामान लद चुका था। सिपाही, खानसामे, बावू, पाचक और खिदमतगार आ चुके थे। डेक की एक बगल लोहे के चूल्हो पर खाना पक रहा था। जाफरान और गर्म मसाले की खुशबू आ रही थी। ऊपरवाले डेक की सीढी पर सशस्त्र पहरा लग चुका था। केबिन मे और जहाज के सामने ऊपरवाले डेक पर ऊँचे गद्दे बिछ गये थे। अभी राजा साहब नहीं आये। एजाज की गाडी आयी। गुलशन ने उतरकर गाड़ी का दरवाजा खोला और कब्जा पकडा; सहारे के लिए बाँह की रेलिंग बन गयी। एजाज़ उतरी। लोगो की आँखें जम गयीं। रूप से हृदय भर गया। आज का पहनावा मोरपखी है। साडी का वही रंग, वही बूटे, फरमाइश से तैयार की हुई। जमीन सुनहरे तारो की। सिर के कुछ बाल मोर की चोटी की तरह उठे हुए; हर डाँडी पर हीरे की कनियो के साथ नीलम बँधा हुआ। पैरों मे कामदार मोती-जडी जूतियाँ। उतरकर एजाज़ मोर की ही चाल से चली। जेट्टी की एक बगल पुलिस का सिपाही खडा था। सलाम किया। जेट्टी और नीचेवाले डेक पर राजा के लोग खडे थे। देखकर खुश हुए, पर मुँह फेरकर दूसरे को सुनाकर गाली दी। एजाज दूर थी। चलती हुई पास आयी। लोगो ने रास्ता निकाल दिया। डेक पर जाने की काठ की सीढी लगा दी। उस डेक से दूसरे तले की सीढी पर वह चढने लगी। सिपाही ने रानी साहबा की सशस्त्र सलामी दी। हाथ उठाकर, एजाज़ ऊपर गयी। गुलशन ने पूछा, "कहाँ रहियेगा ?"

"केबिन मे, जब तक राजा नही आते।"

"लोग अड़े हैं, कुछ उनका भी खयाल···?" कहते हुए गुलशन ने केबिन का दरवाजा खोला।

"अभी साड़ी और पहनावा देख रहे है," कहती हुई एजाज़ केबिन में चली गयी, "जब आदमी को देखेंगे, तब तू ही ठहरेगी। इस पहनावे से तो नही घिसटते ?" एजाज़ ने गुलशन की साडी का छोर खीचा। गुलशन मुस्करा दी। "अच्छा चलो, केबिन के सामनेवाली कुर्सी पर बैठो जरा देर।"

"मैं कहती हूँ, राजा साहब के आने पर डेक पर महफिल लगेगी।"

"तू राजा साहब बन जा, मैं शीशा और प्याली ले लूँ।"

गुलशन भग गयी। दूसरी तरफ से बाहर निकली और कुर्सी पर बैठ गयी।

कोच-बावस की बगल में बैठे सिपाही ने पेटियाँ उठवाकर एजाज़ के केबिन में लगवा दीं। चलते वक्त की सलामी दी। एजाज़ ने गुलशन से बीस रुपये ले लेने के लिए कहा। 5) खुद ले, 5) कोचमैन और साईस को दे, 5) डेक के पहरेदार को, 5) पुलिस के सिपाही को।

सिपाही के चले जाने पर गुलशन को भेजकर राजा साहब के एक खिदमदगार से मालूम किया, राजा साहब और पुलिस के सिपाहियों को क्या इनाम मिला।

जेट्टी पर जहाज के ठहरने का तीन मिनट समय रह गया, राजा साहब की गाडी आयी। सिपाहियो और नौकरों पर अदबी सन्नाटा छा गया। रफ्तार के बढ़ने पर भी शोरोगुल का नाम न रहा। शान के कदम उठाते हुए जेट्टी से गुजरकर राजा साहब ने डेक पर चढ़नेवाला पीतल का चिकना डण्डा पकडा। एक बगल, साथ आये हुए सशस्त्र अर्दली और सीढ़ी के पहरेदार ने खड़े होकर बन्दूक की सलामी दी। राजा साहब सीढ़ी से चढ़े। ऊपर के डेक पर, जहाँ सीढ़ी खत्म होती है, एजाज़ खड़ी थी। उसके पीछे गुलशन। एजाज़ ने ललित सलाम किया। राजा साहब ने हथेली थाम ली। दोनों साथ-साथ सामने बिस्तर की ओर बढ़े। गद्दे पर पहले एजाज़ ने पैर रक्खा। दोनों तकिये लेकर बैठे। राजा साहब अतृप्त आँखो से एजाज़ का खुलता हुआ रूप और पहनावा देखते रहे। जरा देर के लिए सेक्रेटरी आये। राजा साहब ने पुलिस के लिए कहकर जहाज खोल देने की आज्ञा दी।

जेट्टी से बँधी हुई जहाज की मोटी रस्सियाँ और लोहे की साँकलें खोली गयी। जहाज घूमा। फिर हुगली नदी से होकर दक्षिण की ओर चला। ऊपर के पीछेवाले हिस्से मे सेक्रेटरी, कुछ कर्मचारी और ऊँचे पदवाले सिपाहियो के अफसर बठे। एजाज़ हुगली मे बँधे हुए अँगरेज, फ्रेंच, जर्मन और अमेरिकन बड़े-बड़े जहाज देख रही थी, और उनसे होनेवाले विशाल व्यापार पर अन्दाजा लगा रही थी। मधुर दखिनाव के तेज झोके लग रहे थे। दिल को कोई रह-रहकर गुदगुदा रहा था। जहाज फोर्ट विलियम कि ा के पास आया। किनारे लड़ाई के दो जहाज बँधे थे। इनकी बनावट दूसरी तरह की थी। रंग पानी से मिलता हुआ। एजाज़ ने चाव से इन जहाजों को देखा। एक नजर हाईकोर्ट की विशाल इमारत पर डाली। एडेन गार्डेन की याद आयी, यहाँ हवाखोरी के लिए वह बहुत आ चुकी है। यह एक शिकारगाह भी है। शाम को शहर के रईस बड़ी संख्या में आते हैं, टहलते है और बैण्ड सुनते है। जहाज तेजी से बढ़ने लगा।

राजा साहब ने घण्टी बजायी। एक बेयरा आया।

"लाल पानी," राजा साहब ने बेयरा से कहा।

बेयरा शेम्पेन की बोतल, बर्फ, छोटा टम्बलर और पेग ट्रे पर लाकर रख गया। गुलशन एजाज़ की बगल में बैठकर टम्बलर मे बर्फ और शेम्पेन मिलाने लगी। पाचक ब्राह्मण कटलेट्, चाप और कबाब चाँदी की तश्तरियों पर रख गया। कहार ट्रे पर ढक्कनदार चाँदी के गिलासों मे पानी ले आया। रखकर तौलिया

लेकर खड़ा रहा। गुलशन ने दो पेग भरे। एक हाथ में रक्खा, एक वढाकर एजाज़ को दिया। एजाज़ ने पेग चूमकर राजा साहव के हाथ मे दिया, फिर अपना लिया। गुड्लक् हुआ। दोनो पीने लगे।

प्राय: एक डजन पेग थे। ये पिया पेग एक ही बैठक में नही इस्तेमाल करते। गुलशन तीसरा और चौथा पेग तैयार करने लगी। पेग ख़त्म करके राजा साहव ने हाथ वढाया। वेयरा ने पकड लिया। एजाज़ ने भी वढाया।

गुलशन ने तीसरा दौर तैयार करके, चाँदी की पेग रखनेवाली रिकाव मे लगाकर दोनो के वीच में रख दिया। दोनों, मौसम, गंगा, शिवपुर के वागीचे, हवा आदि का जिक्र करते हुए, साथ-साथ नाश्ता करने लगे।

दूसरा दौर भी समाप्त हुआ; तीसरा भी हुआ। नशे का प्रभाव वढ़ने लगा। दोनों के हाथ धुला दिये गये। गिलोरी और सिगरेट की तश्तरियो को छोडकर नौकर और कुल चीजें उठा ले गये। फिर केविन के पास के पर्दे, आड़ के लिए खोलकर, रेलिंग के डण्डो के साथ वाँधने लगे। क़ीमती हारमोनियम लाकर रख दिया। गुलशन को छोडकर और सव वाहर निकल गये।

"कुछ सुनने की तवीयत हो रही है।" राजा साहव ने प्रेम मे कहा।

एजाज़ ने गुलशन की तरफ देखा। गुलशन ने पीकदान वढाया। पान थूककर एजाज़ ने कहा, "तेज हवा है। आवाज उड़ जायगी।" कहकर हारमोनियम खोला।

"तुम्हारा गाना है, हारमोनियम हो, पियानो या सितार-इसराज, छाकर रहेगा।" राजा साहव ने सहृदय स्वर से वढावा दिया। एजाज़ हिली।

पर्दे पर उँगली रक्खी। कहा, "मयकशी के वाद आवाज पर कावू नही रहता।" कहकर स्वर निकाला। राजा साहव तद्‌गतेनमनसा ध्यानावस्थित हुए।

एजाज़ की मधुर आवाज निकली। जहाज-भर के लोग, नीचे और ऊपर के, कान लगाये रहे। गाना शुरू हुआ—

> "हर एक वात प' कहते हो तुम कि तू क्या है,
> तुम्ही कहो कि यह अन्दाज़ेगुफ्तगू क्या है?
> जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा,
> कुरेदते हो जो अव राख जुस्तजू क्या है?
> रगों मे दौडते फिरने के हम नही क़ायल,
> जव आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है?"

लोगों पर सच्चा जादू चला। सभी ने दिल दे दिया, वही दिल जो हाथ से छुटकर मजवूती से हाथ पकडता है। छोटे-वडे सभी उसके भक्त हो गये। कोयला झोंकनेवाले एक झुक्की झोककर नीचे से डेक पर चढ आये। श्रम को हलका कर लिया। सोचा, वह कौन-सा स्वर है जो दिल पर अपनी पूरी-पूरी छाप लगा देता है? खड़े लोगों मे क्षण-भर के लिए विपमता नही आयी; किसी वडप्पन के कारण या पैसा होने की वजह गायिका का कण्ठ इतना मधुर है, यह वे नही सोच सके; विरोध का क्षण ही मिट गया। उन पक्तियो के लेखक महाकवि ग़ालिव के समय के सताये हुए और गानेवाली एजाज़ समय की संस्तुत, फिर भी दोनो मे साम्य!

यह किसी अधिकार की बात न होगी। अधिकार से वस्तु, विषय या बात इतनी सुन्दर नहीं बनती, ऐसी पूरी नहीं उतरती। यह वह अधिकार है जहाँ अधिकार ढीला है।

विलासी राजा एकटक उस सच्चे रूप और स्वर को देखते-समझते रहे। कुछ देर एजाज़ ने दम लिया। निगाह उठायी। भरा पेग उठाकर राजा साहब को दिया। खुद एक लौंग दबायी। दो कश खींचकर पीकदान मे डाल दी और हारमोनियम सँभाला।

एक ठुमरी गायी—

"जाने दे मोको सुनो सजनवा,
काहे करत तुम नित नित मोसन रार,
नहीं, नही मानूँगी तिहार।
छेड़ करत, नही मानत देखो री सखि,
मेरी सुनै ना,
बिन्दा करत अब नित नित मोसन रार,
नही, नहीं मानूँगी तिहार।"

अभी दुपहर नहीं हुई। भैरवी का वक्त पार नही हुआ। श्रीश राजा साहब को गम्भीर, और चलते हुए जहाज के सिवा कोई आवाज न आती हुई देखकर एजाज़ समझ गयी—लोग कान लगाये हुए हैं। वह खुशी से भर गयी।

एजाज़ ने छेड़ा—

"यामिनी न येते जागाले ना केन
वेला होल मरि लाजे।
शरमे जडित चरणे केमने
चलिब पथेरि माझे।

आलोक-परशे मरमे मरिया
हेर लो शेफालि पड़िछे झरिया
कोनो मते आछे पराण धरिया
कामिनी शिथिल साजे।

निविया वांचिल निशार प्रदीप
ऊषार वातास लागि,
नयनेर शशी गगनेर कोने
लुकाय शरण मागि,

पाखी डाकि बले गेल विभावरी,
वधू चले जले लइया गागरी,
आमिओ आकुल कवरी आवरि
केमने याइब काजे।"

रवीन्द्रनाथ का गीत; कलकत्ता का आधुनिक फैशन एजाज़ ने सच्चा अदा किया—वही उच्चारण, वही अँगरेजियत। राजा साहब पर और आधुनिक शिक्षित बंगालियों पर इसी स्कूल का सबसे अधिक प्रभाव है, रवीन्द्रनाथ के गानों में स्वर का सबसे अधिक मार्जन मिलता है। राजा साहब की आँखों के सामने गंगा के शुभ्र फेन की तरह गीत का अस्तित्व तैरने लगा।

एजाज़ ने हारमोनियम हटा दिया। एक पेग और उठाकर राजा साहब को दिया, एक खुद लिया।

शराब, बातचीत और गाने के बीच एजाज देखती जाती है, मटियाबुर्ज पार हुआ—शाह वाजिद अली का कारागार, तेल का केन्द्र बजबज पार हुआ, उलूबेड़िया पार हुई, कितनी ही मिलें निकल गयीं, जिनका अधिकांश मुनाफा विदेशियों के हाथ जाता है। एजाज़ अँगरेजी जानती है, संवाद-पत्र पढ़ती है, दूर निष्कर्ष तक आसानी से पहुँच जाती है, सम्पादक की टिप्पणी पर टिप्पणी लगा सकती है।

गुलशन राजा साहब को सिगरेट और पान देती जाती है। गाना बन्द करके एजाज ने सिगरेट के लिए उँगली बढ़ायी। गुलशन ने हीरे की पाइप में सिगरेट लगा दिया। एजाज़ पीने लगी।

"तुम्हारे नहाने, भोजन और आराम करने का वक्त हुआ।" राजा साहब ने कहा।

"पूजा करने की बात छोड़ दी?" एजाज़ ने बड़ी-बड़ी आँखें मिलायीं।

"वह दिल में होती रह गयी।"

"उसने मिला भी दिया।"

राजा खामोश हो गये। एजाज़ ने कहा, "तुम उठो। नहाना मत। तवालिया गर्म पानी से निचोड़कर बदन पोंछवा डालो, धोती बदल दो। शराब पर नहाना!"

राजा साहब उठ गये। एजाज़ बैठी हुई, नदी की शुभ्र शोभा, श्याम तटभूमि देखती रही।

आठ

पुरानी कोठी के सिपाहियों के अफसर जमादार जटाशंकर सिंहद्वार पर रहते हैं। पलटन में हवलदार थे। ब्रह्मा की लड़ाई के समय नाम कटा लिया। जवान अच्छे तगड़े। नौकरी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आये। निशाना अच्छा लगाते हैं। राजा ने रख लिया। खुशामद करने में कमाल हासिल, तरक्की कर गये।

कोठी के सामने पुराना फव्वारा है। अब नहीं चलता। चारों तरफ से पक्का हौज। दीवार पर बैठे थे। मुन्ना गुज़री।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। मुन्ना ने छींटा जमाया, "एक घोड़ा फेर रही

हूँ ।"

"वाह रे मेरे सवार ! कौन घोड़ा ?"

"एक हिन्दुस्तानी घोड़ा है ।"

जमादार जटाशकर झेपे । गुस्सा आया । पर सँभलकर कहा, "और घोड़ी वंगाली है ?"

मुन्ना को भी बुरा लगा । वदलकर कहा, "जव हमसे बातचीत करो, रानी समझकर करो ।"

जटाशंकर सकपका गये । क्रोध में आकर कहा, "क्या कहा ?"

"कह रही हूँ, तुम्हारी नौकरी नही रहेगी । पहले रानीजी की सलामी दो ।" तिनककर मुन्ना ने कहा ।

जटाशंकर ने रानीजी की सलामी दी । फिर ताव मे आये । कहा, "मै राजा हूँ, राजा की सलामी दे ।"

"तुम गँवार हो," मुन्ना ने कहा, "मै रानी हूँ, रानी; रानी राजा को सलामी देती है ? जवाव में चूमती हैं । तुम मुझको चूमो ।"

जटाशंकर ने सोचा, 'रानी और राजा का खेल कर रही है ।' प्रेम वढ़ गया । चूमने के लिए मुँह वढ़ाया कि गाल पर मुन्ना का चाँटा पड़ा । जटाशंकर चौंककर हाथ-भर उछल गया । साथ ही मुन्ना ने कहा, "रानी का तुम्हारे लिए यही जवाव होगा । रही वात राजा को सलामी देने की; तुम्हे मालूम होना चाहिए कि हम सिपाही नहीं; हम प्रणाम करते है ।" मुन्ना ने हाथ जोडकर प्रणाम किया, कहा, "इस तरह; अव तुमसे फिर कहती हूँ, मेरे साथ रानीजी का मान है, उन्होने दिया है, इसको अँगरेजी मे आनर कहते है; राजा ने तुमको मान नही दिया, तुम अपनी तरफ से राजा का मान लेते हो । रानी का मान पहले तुमसे लिया जायगा । हम जव आयेंगे, तुम उठकर खड़े हो जाओगे और हाथ जोड़कर रानीजी की जय कहोगे । तभी हम रानीजी का आनर वहाँ चढ़ा सकेंगे ।"

"कहाँ ?"

"वही जहाँ हम काम करते है ।"

"हम रानीजी से पूछ लें ।"

"और किस रानीजी से तुम पूछोगे ? रानी का मान है यहाँ, तुमको यह वतलाया जा चुका है, वहाँ तुम जाओगे, दासी से कहोगे, खवर भेजोगे, तुमको जवाव नही मिलेगा, विना मान की रानी जवाव क्या देंगी ? तुम इतना नही समझते, रानीजी का मान दूसरी के साथ तभी बाँधा जाता है जव कोई उनका पानी उतारता है । जहाँ हम काम करते है, वहाँ की उस औरत ने रानीजी का मान घटाया है, उसका मान घटाया जायगा । तुमसे यह भेद वतला दिया गया । अव वताओ, तुम साथ दोगे, या नही ।"

"रानीजी के मान वढ़ाने मे क्यो साथ नही देंगे ?"

"अच्छा, अव रानीजी का मान हम रानीजी को देते हैं । अव हम हम है । अव हमको तुम चाहो तो चूम लो ।"

जटाशंकर फिर चूमने के लिए लपके । पकड़कर चूमने लगे, तो मुन्ना ने उनके

होंठो के भीतर जीभ चला दी और कहा, "तुमने हमारा थूक चाटा। हमारी जात कहार की है। हम गढ-भर मे कहेंगे। तुम कौन बाँभन हो ?"

जटाशंकर सूख गये। सोचा, 'यह कुल चकमा उनकी जाति मारने के लिए था। कल से कोई पानी नही पियेगा।' बहुत डरे। देवता की याद आयी कि उन्होने न बचाया। सोचा, ब्रह्मा की लडाई मे काम आ गये होते तो अच्छा होता।

मुन्ना टकटकी बाँधे हुए पं. जटाशंकर मिश्र के बदलते हुए मनोभाव देखती रही। पण्डितजी ब्रह्मा की लडाई मे नहीं मरे, इसलिए डरे। कहा, "तू मुझे अपना गुलाम समझ, जो कहेगी, करूँगा; थूक चाटने को कहे तो चाटूंगा, मगर किसी से कह मत।"

मुन्ना की रग-रग में घृणा भर गयी। समझ गयी, यह "आदमी प्रणयी नही हो सकता। यह धोखा देगा। इसको उतारकर रखना चाहिए।" खुलकर कहा, "तुम जब तक हमारी बात मानोगे, हम किसी से नही कहेगे।"

हाथ जोडकर जटाशंकर ने कहा, "मंजूर।"

"हमारे यहाँ" मुन्ना ने कहा, "घोडा-घोडी दोनों को घोड़ा कहते है। उसी को हम फेर रहे है, यही कहा था। कारण भी समझा दिया।"

प्रसन्न होकर जटाशंकर ने कहा, "हाँ, अब समझ मे आ गया।"

"तो उस घोडी का अपमान करने के लिए एक घोडा चाहिए।"

"हाँ।"

"वह घोड़ा तुम बनोगे या मैं ?"

जटाशंकर फिर जगे। आँखें लाल हुई देखकर मुन्ना ने कहा, "गाल पर पड़े तमाचेवाली बात कहूँ या होठो के अन्दर गयी जीभवाली ?"

जटाशंकर फिर ठण्डे हो गये।

मुन्ना ने कहा, "हम इसी तरह घोडा फेरते है, उसको भी फेरते हैं, तुमको भी। बोलो, घोड़ा बनोगे ?"

"बनना ही पड़ेगा।"

"दो तीन रोज लगातार उसी तरह हाथ जोडकर रानीजी की जय कहोगे। तीसरे दिन अन्दर के बागीचेवाले तालाब मे दिन के दस बजे जब वह नहाने जायँगी, तब···समझे ?"

"अन्दर के बगीचे में मर्द के जाने की मुमानियत है।"

"तो, उसको तुम्हारे पास भेज दें ?"

जमादार जटाशंकर बहुत हैरान हुए। कहा, "अच्छा, जायँगे।"

मुन्ना ने कहा, "जमादार, तभी तुमको मालूम होगा। हम तुमको नमस्कार करते है, तुम्हारी सेवा करते हैं, पर तुमको खुश नही कर पाते, हमारे छूने से तुम्हारी जाती मारी जाती है। तुम हमे चूमोगे, इससे कुछ नही होगा, पर हम तुम्हे चूमेगे, इससे तुम्हारा धर्म जाता रहेगा। कोई चूमना ऐसा भी है जिसमें दोनो के होंठ न मिलें ? अच्छा, तुम भी ब्राह्मण हो, यह भी ब्राह्मण है; तुम इसके पास जाओगे तो तुमको मालूम होगा कि तुमसे यह और कितनी बड़ी ब्राह्मण है। उस दिन रानीजी के सामने इसका तेज देखकर दासियाँ हैरान हो गयी।"

जटाशंकर ने कहा, "अच्छा मुन्ना, मेरी स्त्री गुजर गयी है। तू मेरी स्त्री, और यही मैं तुझे समझूंगा। जा, तू गढ-भर में कह दे कि मेरा-तेरा थूक एक हो गया।"

मुन्ना खिल गयी। "यह मर्द है, जमादार, तुम मेरे मर्द। मैं कुछ समझकर तुम्हारे पास आयी थी। औरत का प्यार जल्द समझ मे नहीं आता। मैं भी वेवा हूँ, वेवा ही यहाँ दासी बनकर आ पाती है। मै तुम्हारी दासी, तुम्हें मैं अपना ही रक्खूंगी। जैसा कहा है, वैसा करो; तालाब मे जाओ; मैं दूसरा पेंच लड़ाऊँगी। तुम्हारा एक अपमान होगा; सह जाओ। इस औरत के लिए भगवान् हैं। यह नेक है।"

नौ

राजा राजेन्द्रप्रताप राजधानी में एजाज़ के साथ रह रहे है। उसी रोज आ गये।

गढ़ के वाहर एक वड़े तालाब के वीच में टापू की तरह सुन्दर वँगला है। चारो तरफ से लोहे की मोटी-मोटी छड़ें गाड़कर पुल की तरह सुन्दर रेलिंगदार रास्ते वनाये गये हैं। तालाव के किनारे-किनारे चारों रास्तों के प्रवेश पर ड्योढ़ियाँ बनी हुई है, वहाँ पहरे लगते है। वाहर, दूर तक सुन्दर राहे, दूव जमायी हुई, तरह-तरह के सीजनल और खुशबूदार फूल, क्यारियाँ, कुंज, बागीचे, चमन। कटीले तारों से अहाता घिरा हुआ; तारो पर वेल चढ़ायी हुई। हवा भी सदा-वहार, हर झोकें से सुगन्ध आती हुई। तालाव का जल स्वच्छ, स्फटिक के चूर्ण की तरह। बँगले का फर्श संगमारवर का, डबल दरवाजे—एक काठ का, एक शीशेदार, रेशमी परदे लगे हुए। वैठक के फर्श पर वहुमूल्य कारपेट विछा हुआ। कीमती बाजे, पियानो, हारमोनियम, फलूट, क्लेरिअनेट, वायलिन्, सितार, सुरवहार, मृदंग, तवले, जोड़ी आदि यथास्थान रक्खे हुए। वेशकीमत कौच, सोफे, चीनी फूलदानी मे सज्जित फूलों की मेजों के किनारे, एक-एक वगल लगे हुए। वीच में गद्दी विछी हुई, गाव लगे हुए। रात में वत्तियों का तेज प्रकाश। चाँद और तारों के साथ प्रकाश का विम्व पानी मे चमकता, चकाचौंध लगाता हुआ।

चारों तरफ से विशाल वरामदा, हर तरफ की राह से एक ही प्रकार का। हर वरामदे के भीतर वैठक एक ही प्रकार की, सजावट भिन्न-भिन्न। दो एजाज के अधिकार में है, दो राजा साहव के। और भी कमरे है। एजाज़ की वैठकें रोज नये परदों से सजायी जाती है; सूती, रेशमी, मखमली झालरदार; हरे, नीले, जर्द, वसन्ती, वैगनी, लाल, गुलावी, हल्के और गहरे रंग के; कभी सफेद। कोच और सोफों पर भी वैसा ही गिलाफ वदलता हुआ। फूलदानियों में उसी रंग के फूलों की अधिकता? एजाज़ के वदन पर उसी रंग के पत्थरों के जेवर। उसी रंग की साड़ी,

सलवार-कुर्ता या पाजामा-दुपट्टा।

राजा साहब अपनी बैठक में बैठे हुऐ है। दिलावर सिंह पहले से तैनात किया हुआ था, आया। कहा, "प्रभाकर आ गये।"

जागीरदार साहब ने कहा, "ये सब तुम्हारे तरफदार हैं। इनसे भी काम लिया गया है। पुलिस के जिन लोगो ने तुम लोगो को गिरफ्तार करना चाहा था, बाद को शिनाख्त न हो पाने की वजह—(तुमने दाढी मुड़वा ली थी और रामफल का मुसलमानी नाम रख लिया गया था—रूप भी कैसा बनाया गया।)—थाने से उनका तबादला हो गया था, इन्होंने उन्हे खोजकर निकाला और पूरी खबर ली। अब इन्हें छिपा रखना है। दीवार को भी पता न चले। पुलिस पकड़ना चाहती है। ये पकड गये तो बच न पाओगे।"

दिलावर ने नम्रता से कहा, "हुजूर का जैसा हुक्म, किया जायगा।"

'पुराने गढ के पीछे ठहराओ। खुद दोमजिले पर रहो। रसद ले जाया करो, इन्हे पकाया-खिलाया करो; रामफल को साथ रखना। दूसरा काम तुम लोगो से न लिया जायगा। चोर-दरवाजे की ताली ले जाओ। वे जब बाहर निकलना चाहे, उसी से निकाल दिया करो, रात के 12 से चार के अन्दर। जब कहे तब खोलकर भीतर ले आने को पहले से तैयार रहा करो, एक सेकण्ड की देर न हो। उनका काम न देखना, हम खुद देख लेंगे। खाना अच्छा पकाया करना, मछली-मांस भी। हमारी रसोई मे दो-तीन भाजियाँ पकती हुई देख लो।"

"जो हुक्म हुजूर।"

"ऐसा करो, अगर ये भी तुमको फँसाना चाहे तो न फँसा पायें। अब तो तुम्हारी दाढी बढ गयी है। रामफल की मूँछें भी बढ गयी होगी। यहाँ से चलकर बहल जाओ। रामफल का मियाँवाला रूप तुम बना लो और तुम्हारा ठाकुरवाला वह। नाम भी बदल लो। उसको अपने नाम से पुकारना और उसी को ले जाने के लिए भेजना। हम कभी-कभी तुम लोगो से मिला करेंगे।"

'जो हुक्म।" दिलावर ने प्रणाम किया। राजा साहब की ओर मुँह किये हुए पिछले-कदम हटा। तालाब के पश्चिमवाले रास्ते से बाहर निकलकर गढ़ की तरफ चला, दूसरी ड्योढी से घुसकर रामफल से मिलने के लिए। प्रभाकर के साथी बाजार मे है। वह ड्योढी के आगन्तुक-आगार मे बैठा है। कभी निकलकर पान खाने के लिए बाहर चला जाता है। पैनी नजर से इधर-उधर देख लेता है।

राज्य की क्रिया का ढंग सब स्थानों मे एक-सा है। सब जगह एक ही प्रकार के नारकीय नाटक, षड्यन्त्र, अत्याचार किये जाते हैं। सब जगह रैयत की नाक में दम रहता है। चारे का प्रबन्ध ही सत्यानाश का कारण बनता है। अत्याचार से बचने की पुकार ही अत्याचार को न्योता भेजती है। जमीदार हो, तअल्लुकेदार; राजा हो या महाराज; कृपा कभी अकारण नही करता। जिस कारण से करता है, वह इसकी जड़ मजबूत करने के लिए, मुनाफे की निगाह से, दूने से बढी हुई होनी चाहिए। उसका कोप भी साधारण उत्पात या प्रतिकार के जवाब में असाधारण परिणाम तक पहुँचता है। सारे राज्य मे उसके खास आदमियो का जाल फैला रहता है। वह और उसके कर्मचारी प्रायः दुश्चरित्र होते हैं, लोभी, निकम्मे, दगा-

बाज। फैले हुए आदमी प्रजाजनों की सुन्दरी बहू-बेटियों, विरोधी कार्रवाइयों, संघटनों और पुलिस की मदद से जमीदार के आदमियों पर किये गये अत्याचारों की खबर देनेवाले होते है। निर्दोष युवतियों की इज्जत जाती है, रिश्वत मे रुपये लिये जाते हैं, काम मे आराम चलता है, वचन देकर रैयत से पीठ फेर ली जाती है, बहाना बना लिया जाता है। पुलिस भी साथ ली जाती है। कभी चढ़ा-ऊपरी की प्रगति मे दोनों अपने-अपने हथियारों के प्रयोग करते रहते है।

किसी गाँव मे मुसलमानों की संख्या है। त्योहार है। गोकुशी वर्जित है; पर बकरा महँगा पड़ा, गोकुशी की ताल हुई। आदमी से खबर मिली। एक रोज पहले, रात को पचास आदमी भेज दिये गये। कुछ मुखियो को उन्होने मार गिराया।

कोई बड़ा मालगुजार है। किसी कारण पटरी न बैठी, लड़ गया। ताका जाने लगा। शाम को उसकी लड़की तालाब के लिए निकली। अँधेरे मे पकडकर खेत मे ले जायी गयी या दूसरे मददगार के खाली कमरे में कैद कर रक्खी गयी। दूसरे-दूसरे आदमी दाढ़ी लगाकर या मूँछें मुड़वाकर चढ़ा दिये गये—ज्यादातर मुसलमानी चेहरे से। उन्होने कुकर्म किया। उसके फोटो लिये गये। तीन-चार रोज बाद लड़की घर के पास छोड़ दी गयी। एक फोटो आदमी के गाँव मे, दूसरी थाने मे डाक से भेजवा दी गयी। नाम अण्टशण्ट लिख दिये गये—चढ़नेवालों के; लड़की के बाप का सही नाम। गाँव और पुलिस की निगाह मे दोनों गिर गये। गाँव का भी आदमी पुलिस का, उसके पास दूसरी तस्वीर, पुलिस के पास दूसरी। बाप से पूछा जाने लगा। उस पर घड़ों पानी पड़ा। गाँववालो ने खान-पान छोड दिया।

किसी प्रजा ने खिलाफ गवाही दी। उसका घर सीर के नक्शे में आ जाता है। कभी उसके खानदानवाले पास की जमीन बटाई मे लिये हुए थे। गुमाश्ते को कुछ रुपये देकर एक हिस्सा दबाकर घर बना लिया था। इस फेल का उल्टा नतीजा हुआ। रात-ही-रात सैकड़ो आदमी लगा दिये गये। घर ढहा दिया। लकड़ी, बाँस, पैरा उठा ले गये। गोड़कर घर की जगह गड्ढा बना दिया। नक्शे मे वह जगह सीर में है।

किसी ने लगान नही दिया। वह गरीब है। विश्वास दिलाकर बुलाया गया कि सरकार से अपना दुख रोये। आने पर अँधेरी कोठरी मे ले जाया गया। वहाँ ऐसी मार पड़ी कि उसका दम निकल गया। लाश उठाकर पुराने तालाब के दलदल में गाड़ दी गयी। गाँव के गुमाश्ते ने कुबूल ही न किया कि वह गढ़ में ले जाया गया था। कुछ लोग ऐसे भी निकले जो पिटते समय उसको बाजार मे उलटे कई कोस के फासले पर देखा था।

बच-बचकर पुलिस से भी झपाटे चलते है। थानेदार ने इन्स्पेक्टर और डी. एस. पी. आदि की मदद से प्रजाजनो को किसी मामले में खिलाफ खडा किया, खूब दाँव-पेंच लड़े, राजा का पाया कमजोर पड़ा, समझौते की बातचीत हुई, रिश्वत की लम्बी रकम माँगी गयी, एक उचित ठहराव हुआ। काँटा निकाल फेंका गया। पर दिल की लगी खटकती रही। दूसरा मामला उठा। थानेदार फाँस दिये गये।

बलात्कार साबित हुआ। एस. पी. और डी. एस. पी. की सिफारिश बदनामी के डर से न पहुँच सकी। तहकीकात का अच्छा नतीजा न निकला। थानेदार को सजा हो गयी। नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

गरमी निकालने के लिए डी. एस. पी. या एस. पी. ने बुलाया। राजा ने मुख्तारआम या मैनेजर को भेज दिया। कमजोरी से कभी बात न दबी, डी. एस. पी. ने पूछा, "राजा नही आये।" मुख्तारआम ने कहा, "इजलास मे तो मैं ही हुजूर के सामने हाजिर होता हूँ," या मैनेजर ने कहा, "आपकी सेवा के लिए हम लोग तो है ही।" उस दफे खामोशी रही। दोबारा बदला चुकाया गया। पहले कुछ प्रजाओ की दस्तखतशुदा शिकायतें की गयी। ऊँचे कर्मचारियों को दिखाया गया। कहा गया कि राजा पर सरकार का शासन नही, थाने मे थोड़े लोग रहते है, राजा के लोग उनको डरवाये रहते है, राजा बदचलन है, रैयत की इज्जत बिगाडता है, पुलिस की सच्ची तहकीकात नही होने देता, पुलिस को अधिकार के साथ काम करने दिया जाय तो रास्ते पर आ जाय। हुक्म लेकर दरबार का चकमा दिया गया। राजा गये। पर दरबार से शिकायत करनेवाले लोगों की ही शिरकत रही। राजा को कुर्सी भी न दी गयी। लाट साहब से शिरकत करनेवाले डी. एस. पी. भी खडे रहे। लिखी शिकायतो के आधार पर कुछ भला-बुरा कहा, कुछ नसीहत दी। डी. एस. पी. साहब की तारीफ करते रहे। जिन शिकायतो का आधार लिया गया था, उनमें राजा का हाथ न था, फलतः चेहरे पर सियाही न फिरी, कलेजा न धड़का।

दरबार समाप्त हो जाने पर उन्होंने लाट साहब को लिखा कि दरबार के नाम पर उनके साथ डी. एस. पी. ने ऐसा-ऐसा बर्ताव किया, वहाँ कुछ प्रजाजन थे, वे उन्हे पहचानते नही—किनके थे, कौन थे। उनके आदमी घुसने नही दिये गये। जो बातें डी. एस. पी. ने कहीं, उनका तात्पर्य वह नही समझे। वे ऐसी-ऐसी बातें थी। पुलिस मे नौकर होनेवाले ये साधारण लोग रिश्वत लेकर देश को उजाड़े दे रहे है। इसका व्यक्तिगत सम्बन्ध ही है। पुलिस के दाँत यहाँ तक डूबे हुए हैं कि नियत आमदनीवाली प्रजा झूठे मामले में रिश्वत देकर राजस्व नही दे पाती। यह एक-दो की सख्या मे नही, सैकडो की सख्या मे, जमीदारों के 25 थानो मे प्रतिमास होता है। नतीजा यह हुआ है कि जाल मे फँसायी गयी प्रजा रिश्वत से पैर छुड़ाकर फिर राजस्व नही दे पाती। यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जमीदार को राजस्व न मिलने पर वह कर्ज लेकर सरकार को देगा या न दे पायेगा। इस परिणाम से भी उन्हे गुजरना पड़ा है। सरकार से इसका प्रतिकार होना चाहिए।

जब इस मामले को लेकर राजा राजेन्द्रप्रताप कलकत्ता थे, डी. एस. पी. की बुरी हालत कर दी गयी। वह हिन्दू थे। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या से दिलचस्पी रखते थे। इसी समय एक आदमी गया। मुसलमानों के गाँव, शमशेरपुर, मे रहा। बात-चीत की। मुसलमानों को उनका स्वार्थ समझाया। कहा, वह उनका अपना आदमी है। उन्हें गोकुशी नही करने दी जाती, यह उन पर ज्यादती की जाती है। जिले के वकील नूर मुहम्मद साहब का नाम लेकर कहा, काम पड़ने पर वह बगैर मेहनताना

लिये हुए लड़ेंगे। फिर कलकत्ते के इमाम साहब का नाम लिया, कहा कि उनका हुक्म है, मुसलमान अपने हक से बाज न आयें। एटर्नी अब्दुल हक़ का नाम लेकर कहा, वह हाईकोर्ट मे मुफ्त लड़ेंगे और हिन्दोस्तान-भर मे यह आग लगेगी। वे सिर्फ एक दरख्वास्त दे दें कि बकरीद को वे गोकुशी करेंगे, उन्हें इजाजत मिले। सरकार को इजाजत देनी पड़ेगी। अगर हिन्दू होने की वजह से डी. एस. पी. मदद न करे तो उसको इसका मजा चखा दो। थोड़ी-सी मदद हम भी दूसरे मौजे के भाइयों को भेजकर करेंगे। रात के वक्त बदला चुकाना। पीछे कदम न पड़े।

फिर वह सज्जन कस्बे मे आये। वहाँ दाढ़ी-मूँछें मुड़ायी। फिर डी. एस. पी. साहब से मिले। कहा, अधिकारियो के कर्मचारी है। पास के अधिकारी अच्छे जमींदार है। खास बात के बहाने एकान्त निकालकर कहा, "अधिकारी हुजूर की सेवा करते आ रहे है। अबके शमशेरपुर में बड़ा जोश है। बकरीद को गोकुशी होनेवाली है। मुसलमान चिल्ला-चिल्लाकर कहते है, गोकुशी करेगे और हुजूर के सामने करेंगे। हिन्दुओ के धार्मिक प्राणों को दुःख होता है। माँ, मझले बाबू की बहू, उन्ही के पास नक्द ज्यादा है, बहुत दुखी हैं। जबसे सुना है, पानी एक घूंट नही पिया।" कहकर आँखो मे आँसू लाने लगे। मुझे घर बुलाकर कहा, "रामचरण, तुम हुजूर के कचहरी मे जाओ; हम लोगों का कौन-सा अपराध है कि ऐसा होनेवाला है? ऐसा तो कभी नही हुआ। हुजूर हिन्दू हैं। हुजूर के रहते···।"

"सुनो, तुम्हारा क्या नाम है?" साहब दुचित्ते थे, सजग होकर पूछा।

"रामचरण, हुजूर!"

"रामचरण कौन?"

"रामचरण अधिकारी, हुजूर! हम सब एक ही हैं।"

"तुम हमारे आदमी हो?"

"हुजूर, मैं हुजूर के गुलाम का गुलाम।"

"तुम्हारी मालिका को बहुत डर है?"

"हुजूर, अन्न-पानी छोड़ रक्खा है।"

"तो अबके शमशेरपुर के मुसलमान गोकुशी नही कर पायेगे। पर ··"

डी. एस. पी. गरीब घर के है। पढ़ने मे प्रतिभाशाली थे। आर्थिक कष्टो से छुटपन से लड़ रहे हैं। कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "हम देखेंगे, तुम्हारी मालकिन कितना खर्च कर सकती हैं।"

"हुजूर, बहुत।"

डी. एस. पी. ने सोचा, साँप भी मर जायगा, लाठी भी न टूटेगी। अभी उनको गोकुशी की कोई सूचना न मिली थी। कहा, "अच्छा, परसों मिलना।"

रामचरण ने कहा, "हुजूर, उसी गांव मे मिलूंगा। देखें मुसलमान, हिन्दुओ में दम है या नही। है! मालकिन का अन्न-जल छूटा हुआ है। पहले हुजूर के इकबाल से खिलाऊँ-पिलाऊँ।"

"तो कितना?"

"हुजूर कुछ अन्दाजा?"

"पाँच—"

रामचरण ने झुककर सलाम किया। "वही कैम्प मे हुजूर के सामने—" कहकर चला।

"पाँच है—समझे ?"

"हुजूर, खिलाना-पिलाना है पक्का रहा।" कहकर रामचरण सलाम करके भगा।

दो-तीन दिन मे डी. एस. पी. समझे, रामचरण की बात सही थी। बकरीद के दिन आ गये। गोकुशी रोकी। जोश बढ़ा। रामचरण से मिलने की आशा से थानेदार और सिपाहियो को घटनास्थल पर बढा दिया। इधर दुर्घटना हो गयी। उनकी एक ज्ञानेन्द्रिय विकृत कर दी गयी।

यह सब राजा के कर्मचारी और सिपाहियो का काम था, पर कुछ पता न चला। पुलिस बहुत लज्जित हुई। बात जिले-भर में फैली। डी. एस. पी. की नौकरी गयी।

दस

पहले दिन। मुन्ना ने सिपाही की आँख बचाकर जमादार को आने की सूचना दी और आड मे जहाँ बातचीत की थी, रास्ता छोड़कर उसी तरफ चली। जमादार ड्योढी मे कुर्सी पर बैठे थे। सिपाही खजाने के पास पहरे पर खड़ा था। सुबह का वक्त। सूरज की मीठी किरनें शबनम के फर्श पर जोत का समन्दर लहरा रही थी। नीचे से पत्तियो की हरियाली अपना रंग उभारती हुई। रंगीन फूल झूमते हुए, मुन्ना सूरज की तरफ रुख किये हुई खड़ी रही। जमादार गये, हाथ जोड़कर कहा, "रानीजी जय हो !"

मुस्कराती हुई मुन्ना चल दी। पहले पहरेदार को पार किया, दूसरे को किया, तीसरे को देखकर रुकी। दूसरी मंजिल पर, वहाँ एकान्त था। पहरेदार भी खासा पट्ठा, पठान। नाम भी रुस्तम। यह पहरा बुआ के वास के पास लगता था। कुछ आगे पिछवाडेवाला जीना, हमेशा थोड़ा प्रकाश। अन्दर महल की कितनी ही दालानें, दूसरे-दूसरे महलो मे, उस जीने की तरफ गयी थी। मुन्ना रुस्तम के सामने खड़ी हो गयी। रुस्तम कुछ देर तक खड़ा हुआ देखता रहा। फिर पूछा, "क्या है ?"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मुन्ना ने पूछा।

"रुस्तम।"

"मैं रानीजी के पास से आती हूँ, तुम्हें मालूम है ?"

"हाँ।"

"तुम तरक्की चाहते हो ?"

"इसी के लिए नौकरी करता हूँ।"

"मेरी बात मानो, रानीजी का काम करो। कौन-सी तरक्की चाहते हो ?"

"जमादारी।"

"बाद को मालूम होगा। यह बात किसी से कहना मत। कहो, नहीं कहूँगा।"

"नहीं कहूँगा।"

"यह जमादार कैसा आदमी है ?"

"अच्छा।"

"अच्छा आदमी है, तो क्या जमादारी करोगे ? कहो, बुरा है।"

"हमारा अफसर।"

"तुमको जगह अफसर की कहाँ से मिलेगी ? इसी आदमी की जगह तुमको दी जायगी। समझकर कहो, चाहिए या नहीं ?"

"चाहिए।" आवाज गिर गयी।

मुन्ना एक कदम बढ़ी। कहा, "कहो, रानीजी से कुल बातें कही जायँ।"

खुश होकर रुस्तम ने कहा, "रानीजी से कुल बाते कही जायँ।"

"अच्छा, तलवार निकालकर कसम खाओ, कहो, हम रानीजी का साथ देंगे।"

रुस्तम तन गया। तलवार निकालकर कसम खायी।

मुन्ना ने कहा, "तलवार हमे दे दो।"

इधर-उधर देखकर रुस्तम ने तलवार दे दी।

मुन्ना ने तलवार लेकर सलामी दी। कहा, "यह जमादार के साथ रानी और राजा की सलामी है। अब तुम जमादार से छुट गये। कहो, हाँ।"

"हाँ।"

"यह लो अपनी तलवार।" रुस्तम को तलवार दे दी। कहा, "जैसी जमादार को सलामी मैंने दी वैसी मुझे रानी कहकर तुम दो।"

रुस्तम ने वैसा ही किया। मुन्ना ने कहा, "तुम पास हो गये। याद रहे अब कल काम की बात बतलाऊँगी और परसों काला चोर पकड़ाऊँगी। मुझे रानी समझना। जब जिसको रानी समझने के लिए कहूँ, समझोगे। बाद को देखोगे, तुम्हारी मुराद पूरी हो गयी। मतलब गठ गया।"

रुस्तम खुश हो गया। मुन्ना बुआ के कमरे में गयी।

बुआ बैठी थी, मुन्ना सामने खड़ी हुई। कहा, "खड़ी हो जाओ।" बुआ बैठी रही।

मुन्ना ने कहा, "खड़ी हो जा।"

बुआ के आँसू आ गये, खड़ी हो गयी। मुन्ना ने कहा, "इधर आओ।"

बुआ चली, मुन्ना बरामदे की तरफ बढ़ी। पहुँचकर कहा, "मैं जो पहले थी, अब वह नहीं। अब तुम्हारे लिए पहले मैं रानी हूँ। फिर तुम्हारा काम करनेवाली। पर काम मैं दरअसल रानीजी का करती हूँ। बात तुम्हारी समझ में आयी ?"

बुआ सहमी। आँखें फाड़कर मुन्ना को देखने लगी।

मुन्ना ने कहा, "हाथ जोड़कर हमको नमस्कार करो।"

बुआ की त्योरियाँ चढ़ी। मुन्ना ने कहा, "नमस्कार करो, नही तो सिपाही बुलाऊँगी।"

बुआ ने कहा, "हमारे भतीजे को बुला दो। हम घर चले जायेंगे।"

मुन्ना ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हारा भतीजा राजा का दामाद है, अपनी स्त्री से सुन चुका है। समझ गया है, राजा का क्या सम्मान है। गांठ बांधो, वह तुममें नहीं मिल सकता। जाना चाहती हो तो तभी जा पाओगी जब रानी को सम्मान मिल जायगा। तुमने सिखाने पर भी बात नही मानी। दासी का तुमने अपमान कराया, तुमको नही मालूम। हाथ जोड़ो, हम रानी हैं।"

बुआ फिर भी खामोश रही। मुन्ना ने कहा, "यह काम हम तुमसे ले लेंगे। हाथ जोड़ो, नही तो सिपाही बुलायेंगे। वह जबरदस्ती जोड़ायेगा।"

बुआ ने हथेलियाँ जोड़ी।

मुन्ना ने कहा, "सिर से लगाओ।"

बुआ ने सिर से लगायी।

मुन्ना ने कहा, "दो दफे और।"

बुआ ने दो दफे और प्रणाम किया और वहीं गिर गयी।

मुन्ना दासी का काम करने लगी। पानी ले आयी, मुँह में छींटे लगाये, फिर पंखा झलती रही। एक अरसे के बाद बुआ होश में आयी। लाज और नफरत में आँखें न मिला सकी। मुन्ना ने कहा, "तुम्हारी मौसी को समझाया जा चुका है, वे बैठी हैं। तुम इतना समझो कि तुम्हारी निगाह में हम जितने छोटे हैं, रानी की निगाह में तुम और छोटी हो। जब तक राह पर नही आती रानी तुम्हारा पीछा नही छोड़ेगी। कहो, रानी जैसा-जैसा कहेंगी, करना मंजूर ?"

बेदम होकर बुआ ने कहा, "मंजूर है।"

"तुमको तीन रोज तक इसी तरह प्रणाम करना होगा। अगर इन्कार किया तो सख्ती होगी।"

लाचार होकर बुआ ने स्वीकार किया।

मुन्ना ने कहा, "दूसरे दिन तुमको सखी की तरह बागीचा दिखाने ले जायेंगे। तुमने देखा है, पर तुमको बागीचे के पेड़ों के नाम नही मालूम। बाद को एक साथ नहायेंगे। तीसरे दिन क्या होगा, यह तुमसे बागीचे में कहेंगे। जब हमारी-तुम्हारी पटरी बैठ जायगी, तभी तुम्हे मालूम होगा, असलीयत क्या है। तुम्हारी दासी अब चुन्नी है। वह आती होगी।"

ग्यारह

दिलावर रामफल के पास गया। अपने जीवन मे उसको बड़ी ग्लानि हुई। बचाव नही। नसों से जैसे देह, वह दुनिया के जाल से बँधा हुआ है और सिर्फ दस रुपये महीने के लिए। जान की बाजी लगाये फिर रहा है। कही से छुटकारा नही। जहाँ तक निगाह जाती है, यही जाल बिछा हुआ है। लुभानेवाली जितनी चीजे हैं, सभी खून मे रँगी हुई।

जितने सिपाही है, सबके जोड़े मिलाये हुए। बाहरवाले नही पहचान सकते। एक तरह के तीन-चार भी। उन्हीं की तरह यह इमारत, जमीदारी, हीरे-मोती, जवाहरात, चमक-दमक, रूप-रंग—कुल बनावटी। इनकी असली सूरत कुछ और है। यह स्वर्ग दिखता हुआ दृश्य नरक है। ये राजे-महाराजे राक्षस। ये देवी-देवता पत्थर के, काठ के, मिट्टी के।"

रामफल बैठा हुआ था। दिलावर ने कहा, "चलो, बदलो।"

"कैसे ? क्या बात है ?" जितना ही विश्वास करके रामफल ने देखा, उतनी ही अविश्वासवाली जहरीली ज्योति आँखों से निकली।

"अब तुम हम, हम तुम। हमारी जैसी दाढी रक्खो। चलो, एक देवता आये है. कोई साधु है, ले आना है, दामाद की तरह रखना है। खास राजा की बात है, दीवार भी न सुने। वह भी उस काल-कोठरी में कभी-कभी दर्शन देंगे। जल्द चलो।"

'क्या बात है ?"

"चल जल्द। बात तो दुनिया-भर की जानता है।"

रामफल उठा। दोनों राजा की ओर मे रक्खे गये सिपाहियो के नाई की ओर चले।

नाई फुरसत मे था। कहा, "पालागो, रामफल महाराज, राम-राम दिलावर साहब।"

रामफल ने आशीर्वाद दिया। दिलावर ने राम-राम की।

रामफल ने कहा, "दाढी बहुत बढ गयी है, खुजला रही है, इसके बराबर कर दो, मूँछें भी। किनारे छाँट दो।"

"वाह, महाराज," नाई ने कहा, "हम समझे, आप शोक बुझाते हुए पितरों को भूल गये ! लेकिन परमात्मा की कृपा है। बैठ जाइए। धन्य हूँ मैं।"

रामफल बैठे। नाई ने दिलावर की जैसी दाढ़ी-मूँछें बना दी। फिर दिलावर से पूछा, "आपका, साहब, कौन-सा फैशन होगा। आजकल तो कर्जन फैशन की चाल है।"

"वह, काम पूरा होने पर, सराध मे जैसे। इसने काम अधूरा छोड़ रक्खा है। इसकी जैसी थी, वैसी ही बना दो। अभी दाढ़ी के बाल कुछ छोटे हैं, खैर नोकदार बना दो। नाक के नीचेवाले बाल सफाचट कर दो।"

नाई गम्भीर हो गया। दिलावर बैठे। रामफल तल्लीन होकर शीशा देखते

रहे।

वाल वन जाने पर दोनो तालाव में स्नान करने गये। दिलावर ने लुंगी पहनी। दोनों चले। वाहर के फाटक पर प्रभाकर वैठा हुआ ऊव रहा था। दिलावर ने रामफल को दिखाया, कहा, आप है। रास्ते मे उसने अच्छी तरह समझा दिया था।

उसकी वात प्रभाकर ने नही सुनी। दिलावर के रूप मे रामफल को देखकर उसको धुकचा लगा। पर उसको अपने काम से काम था। दिलावर ने कह दिया था कि उसी का नाम वतलायेगा।

रामफल ने प्रभाकर को वाहर वुलाया। कहा, "चलिए, आप लोगो को दूकान मे अच्छी तरह भोजन करा दे। रात को ले चलेंगे। अभी रास्ता साफ नहीं है। वहाँ आप लोगो की जगह दुरुस्त की जायगी। वैठने-लेटने के पलँग-विस्तर-मशहरी, मेज-कुर्सी आदि लाने-लगाने पड़ेगे। तव तक चलिए, वाजार की सैर कीजिए।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"हमारा नाम है दिलावर।"

वाजार मे राजा की ही व्यवस्था थी। सामान वही रक्खा था। आदमी इधर-उधर टहलते थे। प्रभाकर को देखकर सव इकट्ठे हो गये।

एक दर्जी ने पूछा, "सिपाहीजी, आप कौन है ?"

दिलावर ने कहा, "उस्ताद हैं, जैसे आप खलीफा।"

"गवैये है ?" एक दूसरे ने पूछा।

"हाँ नचनिये भी हैं, आजकल तो तवले का बोलवाला है। वह आ गयी है न ? विरादरों की आमदरफ्त हो चली है। रात को ठनकेगा।"

खलीफा झेंपे। पर वड़ो का प्रभाव रखते थे, खामोशी से रख लिया।

दिलावर, प्रभाकर और उसके साथियो को लेकर एक दूकान मे गया। इच्छा-नुसार भोजन कराया। जिस घर मे सामान था; वहाँ विश्राम के लिए ले जाकर पूछा, "वावू, आपका कौन-कौन-सा सामान है, हमे दिखा दीजिए। हम वक्त पर उठवा ले जायेंगे।"

दूसरे कमरे मे सामान वन्द था। ताली जिसके पास थी, वह आदमी वाहर था। प्रभाकर जानता था। कहा, "सामान की कोई चिन्ता नही, जव चलेंगे, सामान भी लिवाते चलेंगे।"

दिलावर-नामधारी को टोह न मिली कि कैसा आदमी है, कैसा सामान है।

बारह

दूसरे दिन। जमादार जटाशंकर कुर्सी पर वैठे तम्वाकू मल रहे थे। रुस्तम पहरा वदलने के लिए आया। जमादार को उसने देखा, पर मुँह फेरकर चल दिया,

सलामी नही दी ।

जमादार ने पुकारा, "रुस्तम !"

रुस्तम का कलेजा धड़का । पर हिम्मत बाँधी और खडा हो गया ।

"रुस्तम, क्या गलती की ?" जमादार ने गम्भीर होकर पूछा ।

रुस्तम का पारा चढ़ गया । गुस्से से कहा, "हम इसका जवाब देंगे इसी कुर्सी पर बैठकर ।" यह कहकर रुस्तम चला ।

जमादार ने खजाने के सिपाही से कहा, "इसको पकड़ लो ।"

तलवार निकालकर खजाने का सिपाही बढा । रुस्तम को जैसे किसी ने बाँध लिया ।

जमादार ने कहा, "तुम कितना बडा कसूर कर रहे हो, तुम्हारी समझ मे आ रहा है ? अभी मुआफी है । फिर उधर नही, इधर से निकल जाना होगा और हमेशा के लिए ।"

रुस्तम के जी मे आ रहा था, भगकर मालखाने के पहरे पर चला जाय और दो रोज किसी तरह गुजार दे, लेकिन पैर नही उठ रहे थे ।

जमादार ने कहा, "इधर आओ ।"

रुस्तम ने देखा, कदम जमादार की ही तरफ उठ रहा है, दूसरी तरफ नही । वह चला ।

जमादार अपनी कोठरी में गये । रुस्तम भी पीछे-पीछे ।

"जमादार, मुसलमान हूँ, लेकिन पैर पकड़ता हूँ । मै ऐसा आदमी नही था । मुझसे छल किया गया ।"

"किसने किया ?"

रुस्तम की जबान बन्द हो गयी । होंठो पर उँगली रखकर इशारे से समझाया कि बोल नही फूट रहा ।

जमादार ने कहा, "अच्छा, लो राजा को और बोलो ।"

रुस्तम पर जैसे कूड़ा पड़ा । एक चीख निकली ।

जमादार ने कहा, "अच्छा, तुम खजाने के पहरे में रहो, खजाने का पहरा हम मालखाने भेज देंगे ।"

"जमादार, खाना-खराब न करो । हमारी तरक्की होनेवाली है ।"

"कैसी ?"

"हमको जमादारी मिलेगी ।"

"अरे बेवकूफ, तेरी नौकरी जायगी ।"

रुस्तम घबराया । जमादार ने कहा, "जब तुम्हारी तरक्की होगी, सिफारिश हम करेंगे, तरक्की राजा देंगे ।"

"रानीजी देनेवाली हैं, उनका एक काम करना है ।"

"रानीजी किसी राज-काज में दस्तन्दाजी कर सकती हैं ? राज्य की मुहर पर उनका नाम भी है ?"

रुस्तम को मालूम हुआ, वह नौकरी भी गयी । कहा, "जमादार, गरीब आदमी हूँ, पेट से न मारियेगा ।"

"कुल बातें बता दो। किसने तुमसे कहा ?"

मुन्ना के स्मरणमात्र से रुस्तम के सिर पर माया-जाल छा गया। फिर न बोल सका, जैसे उसकी सत्ता ही गायब हो गयी।

जमादार ने पूछा, "कुछ इशारा ?"

"व···रोज···।"

"अच्छा तुम अपने पहरे पर जाओ, तुमको कुछ नही होगा अगर तुम सिपाही रहोगे।"

थोदी देर बाद मुन्ना आयी। जटाशंकर का जी मरोड़ खाकर रह गया। मुन्ना को उसी किनारे देखकर उठे, गये और हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"जमादार, कभी मत भूलिए कि मुन्ना छिनी है, यहाँ रानी है। बातें जाती हैं। हम भी भला-बुरा करते-कराते है। राजा रहेंगे तो रानी भी रहेगी, नहीं तो रण्डी रहेगी। जो रानी का सम्मान रण्डी को दिलाता है, वह राजा नही, भँड़वा है। तुम्हारी स्त्री रानी मे है, रण्डी मे नही। वहाँ जाओगे, तो रण्डी को राज दोगे। राजा अब राजा नही क्योंकि उसकी रानी कहाँ है ?"

जमादार को अक्षर-अक्षर सत्य जान पडा। पर घबराये कि राजा की तौहीन हुई। सोचा, रुस्तम इससे कह आया। कहा, "क्या वह चला गया ?"

"वह कौन ?" मुन्ना ने डाँटकर पूछा।

जमादार सहम गये। उस पर उनका सम्मान न चढ़ा। मुन्ना समझ गयी कि उसका आनर पकडा गया। चलने को हुई तो मालूम हुआ, जमादार से जुड़ गयी है। कहा, "राजा से पूछ सकते हो कि रण्डी को रानी का सम्मान क्यो दिया जाता है ? हम कह चुके कि रानी का मान छिना है। वह मान रानी का आदमी छीनेगा तभी रानी रानी है। फिर दूसरा सँवारेगा। जब ऐसा होगा, रानी के तरफदार रानी को मान देते फिरेंगे। अब वह रानी का आदमी है, इसलिए राजा का भी है। तुम्हारा सम्मान रानी के आदमी ने नहीं किया, मैंने किया। तुम कल वचन दे चुके थे, आज पाल न सके। हमने कह दिया था थोड़ा-सा अपमान सह जाओ; पर तुम नही मान सके। तुम मर्द नही इतर हो। तुमने हमारा आदमी बिगाड दिया। हम तुमसे पूछते है, रानी का अपमान तुम करोगे। तुमने देखा है रानी को ? बोलो, नहीं तो ठोंकती हूँ अभी लौटकर। तुमसे कहा कि तुम दर्ज हो गये। रानी की डायरी मे तुम लिख गये कि रानी का अपमान किया। आज तुम राजा से कहोगे तो क्या होगा ? हम कल लिखा चुके।"

जमादार का थूक सूख गया। कहा, "हमसे खता हुई।"

"यह बताओ, इस रण्डी को देखा है या नही ?"

"देखा है।"

"सलामी दी ?"

"हाँ, दी।"

"वह किसकी सलामी है ?"

"रानीजी की।"

"वह रानी है ?"

"नही।"

"तुम इस राजा के बच्चे से पूछ सकते हो कि रानी की सलामी इसको क्यों दी जाती है ?"

जमादार चुप रहे।

"यही तलवार राजा को मारने के काम में खोल सकते हो ?"

"नही।"

"लेकिन कोई अगर उस पर चढ़ जाय और राजा कहे—?"

"रानी पर ?"

"जिसके पास हम रहते है, यहाँ नहीं, वहाँ।"

जमादार का सिर झुक गया।

"इसी को मान कहते है। यह मान मर्द ने छीन लिया है। यह सिपाही जो मान देता है, वही मान उस सिपाही को दो और अपनी ड्योढी पर; नही तो समझ जाओ कुल बातो के साथ पहले ही पेश किये जाओगे।"

जमादार का सिर न उठा। मुन्ना ने फिर कहा, "बोलो, क्या मंजूर है ?"

"ड्योढ़ी पर एक दूसरा सिपाही भी रहता है, वह देखेगा।"

"हर सिपाही से तुम्हारी तौहीन करायी जायगी, जूते लगाये जायँगे और निकालकर बाहर कर दिये जाओगे।"

जमादार के आँसू आ गये। कहा, "मजूर है।"

मुन्ना चली, पीछे-पीछे जमादार। समझ गये कि खिड़की के रास्ते निकलकर रुस्तम इससे कह आया। भेद खुल जाने पर क्या होगा, सोचकर घबराये। चारा न था। चारों तरफ से गसे हुए थे। ड्योढी पर मुन्ना खड़ी हो गयी। कहा, खडे रहो।

सिपाही अपने जमादार की बेइज्जती देखकर हुक्म पाने के लिए देखता रह गया। मुन्ना ने सिपाही से पूछा, "यह कौन है ?"

सिपाही जैसे बीच से टूट गया। तलवार की मूठ के लिए हाथ बढाया, पर हाथ बँध गया।

मुन्ना ने डाँटकर पूछा, "यह कौन है ?"

सिपाही ने कहना चाहा, 'जमादार', पर जीभ ऐंठ गयी। मुन्ना ने कहा, "रानीजी की सलामी लाओ।"

जमादार ने हाथ का इशारा किया। सिपाही ने तलवार निकालकर रानीजी की सलामी दी। सिपाही को मालूम हुआ, एक नया जोश उसमे भर गया।

मुन्ना ने कहा, "यह बदमाश है। इसने रानीजी की तौहीन की।"

सिपाही क्रोध से जमादार को देखने लगा।

मुन्ना ने कहा, "सिपाही, कुछ मत बोलो, रानीजी मुआफ करना भी जानती है। अभी देखो और समझो।"

मुन्ना मालखाने मे रुस्तम के पास गयी। कहा, "तुम्हारी तौहीन हुई इसलिए आज ही तुम जमादार बनाये जाओगे। अपनी वर्दी उतारो।" सिपाही ने उतार दी। मुन्ना ने वर्दी पहनी। कहा, "चलो।" सिपाही डरा। पर हिम्मत बाँधकर

चला। दोनों नीचे खजाने के पहरे पर आये। मुन्ना को देखकर सिपाही और जमादार दोनों घबराये जैसे राज्य उलट गया हो। मुन्ना ने तलवार को सलामी दी, कहा, "यह रानीजी की सलामी," फिर जमादार की सलामी दी, कहा, "यह जमादार की सलामी।"

फिर खजाने के सिपाही से कहा, "अब इसको देखो।" रुस्तम की तरफ उँगली उठायी। रुस्तम काला पड़ गया था, झुका हुआ टूटा जा रहा था जैसे कोई बोझ सँभाला न सँभलता हो।

मुन्ना ने कहा, "यही पाप है रानीजी पर चढ़ाया हुआ। इसी को मारना है।"

फिर कहा, "सिपाही अब यह है, वर्दी वहाँ मिलेगी।"

रुस्तम पूरी शक्ति से लिपटकर खड़ा हो गया।

खजाने के सिपाही से मुन्ना ने कहा, "जब तक यह पाप नही मारा जाता, यह बात किसी से न कहना। कहने पर अच्छा न होगा।"

रुस्तम को तलवार देकर मुन्ना ने कहा, "यह शक्ति लो और पहरे पर चलो, हम आते हैं। अभी रानीजी का काम बाकी है। रानीजी की निगाह मे अब तुम्हीं जमादार हो।"

रुस्तम ने तलवार ले ली और चला गया। मुन्ना ने जमादार को देखकर कहा, "सिपाही, इधर आओ।"

जमादार ने कहा, "हद हो गयी।" खजाने के सिपाही की त्योरियाँ चढी। पर कुछ कहते न बना। मुन्ना ने कहा, "वह सिपाही ही था। उसकी भी तौहीन हुई। तुम भी कुछ कर चुके होगे। रानीजी कुछ नही, क्यों?"

"इधर आओ," कहकर मुन्ना आगे बढ़ी। जमादार पीछे-पीछे चले। दूसरी मंजिल केसदरवाले जीने के पास मुन्ना ने जमादार से कहा, "घण्टे-भर बाद बागीचे मे आओ। छिपे रहना वह औरत इस मुसलमान के बच्चे से फँसी है। देख लो। साथ गवाह भी लेते आना इसी सिपाही को। खजाने का सदर फाटक बन्द कर देना, यहाँ कौन है? लेकिन कुछ कहना मत। तुम नहानेवाली सीढ़ी की दीवार की बगल मे छिपे रहना और अपने आदमी को उसी तरफ के आम के पेड पर चढा देना। तुम पहले आना। उस आदमी को आधे घण्टे बाद उतरने को कहना।"

मालखाने में आकर रुस्तम से कहा, "यहाँ तो कोई आता-जाता नही। यह जमादार इस औरत से फँसा है। यह नहाने जायगी। नहाते वक्त मुझे भेज देगी। तभी दोनों अपना काम करेंगे। मै तुझे भेजूंगी। लेकिन गवाह ले जाना तम्बूवाले पहरेदार को। खिड़की के पास उसको छिपा देना। वह कुछ कहे नही। फैसला रानीजी करेंगी। वह गवाही देगा। जमादार लौटेगा तो वह देखेगा ही। खिडकी से आवाज दे देना, देख लिया।"

"बिना देखे?"

"अरे गधा बाद को तो देखेगा। निकलेगा कहाँ से? और राह नही। तम्बूवाले को समझा देना।"

मुन्ना ने आधे घण्टे तक विश्राम किया। फिर प्रणाम लेकर बुआ को पीछे लगाकर वागीचे चली। बुआ का दो ही रोज की कवायद मे इतना बुरा हाल हुआ कि सिर पर जैसे मनों का बोझ लद गया हो; जैसे गन्दे पनाले से नहलायी गयी हो। रिश्ते का गौरव कही गायब हो गया। मौसी का पहले ही अपमान हो चुका था, आज्ञा मिल चुकी थी कि जवान खोलने पर मठा डालकर सिर घुटाकर गधे पर चढ़ाकर निकाल दी जायगी और साथ-साथ जीवन-चरित जनता को सुनाया जाता रहेगा; वह कैसी थी; यह मालूम हो चुका है। अगर खामोश रही तो समझ में आ जायगा कि अपमान उनका नही, उनके दुश्मन का हुआ है।

बुआ मुन्ना के साथ कोठी से उतरकर वागीचे गयी। धूप प्रखर हो गयी है, फिर भी सुहानी है। तरह-तरह की चिड़ियाँ चहक रही हैं। रंगविरंगी सुरीली आवाजवाली; भँवरे, सुए, रुकमिनें, बुलबुल, पीली गलारें, कोयलें, पपीहे, कौए। स्वच्छ जलवाले विशाल सरोवर पर राजहंस तैरते हुए। कही-कहीं बगले ताक लगाये बैठे हुए। गिलहरियाँ टहनी से टहनी पर उछलती हुई। धीमी-धीमी हवा चल रही है जैसे साक्षात् कविता वह रही हो। सरोवर पर हल्की-हल्की लहरियाँ उठती हुई उस किनारे से इस किनारे आ रही हैं।

चारो ओर विशाल उद्यान 13-14 हाथ की ऊँची चारदीवार से घिरा हुआ। सरोवर और चारदीवार के किनारे नारियल के पेड़। बीच मे, अलग-अलग, निम्बू, नारंगी, सन्तरे, सुपारी, अनानास, लीची, आम, जामुन, गुलावजामुन, कटहल, वडहर, वादाम, हड़वहेड, आँवले, अनार, शरीफे, शहतूत, फालसे, अमरूद आदि फलो के पेड एक-एक घेरे मे लगे हुए। कितने फूले हुए, कितने पकते हुए, कितनों मे बौर, कितने खाली। एक तरफ फूलों का वागीचा उजडा हुआ क्योंकि अव रनवास यहाँ नही। कही जंगली पेडों के झाड़। वीच-वीच वेला, जुही, गुलाव, गन्धराज, नेवाडी, चमेली, कुन्द आदि उगे हुए जीने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए आज भी फूलो के अर्घ्य दे रहे है। पक्की सुथरी राहो पर वर्षा की काई जमी हुई है। कटीले झाड़ उग रहे है। एक तरफ चारदीवार में दरवाजा है। इस तरफ से भी ताला लगा है, उस तरफ से भी। इस तरफ की ताली जमादार के पास है, उस तरफ की माली के पास।

जिस तरफ जमादार को छिपने के लिए कहा था, उस तरफ मुन्ना नही गयी। कहा, "आज चलो, इधर का वागीचा देख लो। एक रोज मे पूरा देखा न देख जायगा।"

हवा के मन्द-मन्द झोके लग रहे है। दुःख के बाद सुख का अनुभव हुआ। मुन्ना ने पूछा, "कैसी हवा है?"

"वहुत अच्छी।"

"दिल इसी तरह खुला रक्खा करो। कोई दिलदार मिल जाय इस वक्त तो?"

"धत्, ऐसा नही कहा जाता ।"

"अच्छा, सखी, हमसे गलती हुई । पर हमारा-तुम्हारा तो हँसी-मजाक का ही रिश्ता है ?"

"हाँ, है ।"

बुआ की आवाज क्षीण होकर निकली ।

"अगर हमारा अपमान हो तो क्या वह तुम्हारा भी है ?"

बुआ भीतर से जल गयी । उस जलन को दबाकर कहा, "हाँ, है ।"

"हमारा इतना अपमान होता है कि हम किसी को सिर पर नही रख सकते । बाद को सखी बनाकर, हंसाकर, रिझाकर समझा देते हैं कि हम सखी है और ऐसी ।"

"हमारे भाग ।" बुआ ने नम्रता से कहा ।

"देखो, यह नारियल का पेड है । सरोवर के चारो ओर पहले इसी की कतार है । फिर उस किनारे से है । दोनों कतारो मे नारियल की बीसियो किस्मे है । कच्चे नारियल को डाव कहते है । इसका पानी तुमने पिया है ।"

"हमारे यहाँ यह पेड़ नही होता ।"

मुन्ना आगे वढी । कहा, "यह देखो, ये अनानास के झाड़ है ।"

"अनानास क्या है ?"

"यह लीची है ।"

"हां, हमारे यहां आती है ।"

मुन्ना जल्दी कर रही थी । कहा, "यह शरीफा है ।"

"यह भी हमारे यहाँ नही होता ।"

"ये सुपारी के पेड़ है । वह देखो, सुपारी फली है ।"

बुआ खुश हो गयी । मुन्ना बढ़ती गयी ।

"यह वादाम का पेड़ है ।"

"वही जो ठण्ढाई मे पडता है ?"

मुन्ना ठण्ढाई नही जानती थी । बढ़ती गयी । कहा, "यह गुलावजामुन है ।"

"कौन ? जो बाजार में बिकता है ?"

"तो क्या आसमान पर बिकता है ?"

"वह तो मिठाई है ।"

मुन्ना रुकी । गुलावजामुन कोई मिठाई है, यह उसको नही मालूम था । गुस्से मे आकर कहा, "जैसा-जैसा सिखाते हैं, वैसा सीखो । सही है कि गुलावजामुन कोई मिठाई हो, पर यह फल है । कुल पेड़ तुम्हें दिखायेंगे, नाम बतायेंगे, याद करके सीख लो । तुम्हे जो मिठाइयाँ जल-पान के लिए दी जाती है, उनमे कभी गुलावजामुन आयी ?"

"हाँ, रोज आती है ।"

"तुम्हे कुल किस्मों के नाम मालूम हैं ?"

"नही ।"

"गुलावजामुन कौन-सी है ?"

"काली-काली।"

"उसको यहाँ पान्तोआ कहते है।"

"वह हमारे वहाँ की-ऐसी नहीं।"

"यहाँ छेने की मिठाई बनती है। तुम्हारे उधर मैं जा चुकी हूँ। वहाँ की मिठाई इन लोगों को कम पसन्द है। यहाँ घर का दूध, घर का छेना है, और होशियार हलवाई नौकर है, यही बनाता है, यही का घी। तुम कभी त्योरी न चढ़ाया करो। यह इतना बड़ा बागीचा है। इसमे सैकड़ों किस्मो के फल है। तुम्हे आम, जामुन, अमरूद जैसे थोड़े ही फलों की पहचान है। यह रानीजी की सास और पहले की रानियो का बागीचा है। इनका बागीचा और बड़ा है, पेड़ जैसे हीरे और नीलम-जडे पत्थरो पर खड़े हों, उनके थालों की नयी कारीगरी है। फलो की भी सैकडो किस्में हैं। तुम जहाँ गयी थी, वहाँ रानीजी का शयनागार नही। वहाँ बेशकीमत हजारों जिन्सें है। तुम्हें दस साल में भी कुल नाम न याद होगे। जो बड़ी अनुचरी हैं, वह जानती हैं। 15 साल से कम की नौकरीवाली दासी का यह पद नही होता। वह जमादार की तरह दासियों से काम लेती है। तुम्हें नही मालूम कि बड़प्पन यहाँ नामों की जानकारी से है। रानीजी हजारों चीजो के नाम जानती हैं। कभी इनके मुँह न लगना। अब नहा लो। धोती घाट से सौ गज के फासले पर उतारकर डाल दो और आधे घण्टे तक नहाओ। फिर निकलकर बिना किसी की परवा किये ऊपर चली आओ। तुम्हे तुम्हारा प्यार मिलेगा। तुम्हें इसकी ख्वाहिश है। शरमाओ नही। डटी खड़ी रहना। साड़ी बिना लिये चली आना। हमे दूसरा काम है। खबरदार हुक्म की तामील सीखो। बाद को समझ मे आयेगा कि रानीजी कितनी अपनी हैं। उनका भी हाल मालूम होगा। सिर चढ़ाचढ़ी तब न होगी जब दोनों एक। उधर जाओ।"

मुन्ना बिजली की तरह मालखाने मे गयी और रुस्तम से कहा। रुस्तम तम्बू के पहरेवाले के साथ तैयार हो गया और ज़ीने से जल्द-जल्द उतरकर अपनी जगह पर, खिड़की के दरवाजे पर गया। उसका साथी एक अँधेरी कोठरी मे छिप रहा। रुस्तम अवसर ताक रहा था। खजाने का सिपाही राजाराम आम के पेड़ पर घने पत्तोंवाली डाल के बीच में बैठा देख रहा था।

रुस्तम के जाने के साथ मौसी को बुआ के शयनागारमे भेजकर और जब तक बुआ न आयें वहीं रहने के लिए कहकर मुन्ना खजाने की तरफ बढ़ी। पैर की चाप सँभालकर दौड़ी। ज़ीने से उतरकर देखा, फाटक बन्द है। कमर से एक ताली निकाली, जिसे सन्दूक की ताली बताया गया था उसको देखा। गुच्छे की तालियों से उसका बाहरवाला ताला खोला, फिर अपनी ताली से भीतरवाला। खोलकर देखा, नोटों के बण्डल थे। कुल-के-कुल बाहर निकालकर डाल लिये। नोट नम्बरी भी थे और दस-पाँच रुपयेवाले भी। जल्द-जल्द सन्दूक बन्द कर दिया। तालियों का गुच्छा खूँटी से लटका दिया और अपनी ताली कमर की मुर्री मे लपेट ली। नोटो के बण्डल ज़ीने के तलेवाली अँधेरी कोठरी मे डाल दिये। भगी हुई ऊपर गयी। बुआ के बरामदे से देखा, वह नहाकर निकल रही थी। जैसा कहा था, वैसी ही थीं।

रुस्तम तके हुए था। इसी समय निकलकर कुछ कदम बढ़ा और चिल्लाकर कहा, "चोर पकड़ लिया।"

बुआ की लाज दूर हो गयी। वह तनकर खडी हो गयी।

रुस्तम आवाज लगाकर भगा हुआ कोठरी मे घुस गया। मुन्ना दूसरी मंजिल की खिडकी के पास खडी होकर चली आने के लिए हथेली का इशारा करने लगी। बुआ चली।

राजाराम पेड से देख रहा था। मुलुकक्कर जमादार ने भी देखा था। बुआ के जाने के कुछ अरसे के बाद जमादार और राजाराम चले। इनसे पहले मुन्ना ने नीचे उतरकर रुस्तम को आवाज लगायी, अगर वहाँ हो। उसके आने पर कहा, "खजाने में चलकर बैठो और जमादार के आने पर कहो—हमारी जमादारी का हुक्म है, तुम बदमाश हो। हमारी जगह पर जाओ।"

चौदह

जमादार जटाशंकर और राजाराम जब खजाने को लौट रहेथे, तब आँगन सेदेखा कि फाटक खुला हुआ है और कुर्सी पर रुस्तम बैठा हुआ है। जमादार को बुरा लगा। राजाराम की भी भवें चढ़ गयी। रुस्तम जानकारी को निगाह से देखता हुआ मुस्कराता रहा; जमादार पास आये तो डाँटकर कहा, "तुम बदमाश हो, रानीजी ने तुम्हे बरखास्त किया है। अब हम जमादार है। हमको उसी तरह सलाम करो और हमारे पहरे पर रहोगे। इसी वक्त चले जाओ, आँख से ओझल हो जाओ।" रुस्तम कुर्सी पर बैठा हुआ आराम से टाँगें हिलाने लगा। मुसलमान की पूरी शान मे आकर कहा, "अब तुमको मालूम होगा कि सिपाही पर क्या आफत गुजरती है जब वह अफसर और जमादार को सलाम करता है।"

जमादार के मुँह मे जैसे ताला पड गया। वह हक्के-बक्के हो गये।

"उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।" राजाराम ने डपटकर कहा। "उठ, नही तो ठोकता हूँ अभी।"

"तू नीम-बदमाश है, इसका साथी है, वहाँ तू क्यो गया?"

"तुझको पकड़ने। मैं गवाह हूँ।"

"तू गवाह है, बदमाश, नंगी नहा रही थी, तब तू देख रहा था या नही? और बहुत कुछ किया है, तुम दोनों ने।"

"हमको सब मालूम है।" नेपथ्य से मुन्ना ने कहा।

"तो फिर अब तुम्ही फैसला कर दो।" जमादार ने काँपते हुए कहा। मुन्ना चुप हो गयी। रुस्तम ने कुर्सी नही छोड़ी।

"बदमाश कही का। फैसला कर दो!"

राजाराम कुर्सी के पास आ गया, "उठता है या नहीं ?"

तुराब तम्बू का पहरेदार था। दोमंजिले की खिड़की से नीचे को देखते हुए कहा, "खबरदार, राजाराम, मैं भी गवाह हूँ। तुम दोनों बदमाश हो। जमादार-रुस्तम पकड़नेवाले है। मैं उनके साथ था।"

"तुम यहाँ से क्यों गये ?" राजाराम ने पूछा।

"तुम यहाँ से क्यों गये ?" तुराब ने डाँटा।

"हम बदमाश पकडने गये।"

"बदमाश पकड़ने नही गये, बदमाशी करने गये। उस बागीचे के अन्दर मर्द के जाने का हुक्म नही, यह सबको मालूम है। तुम गये। जमादार-रुस्तम भीतर नही गये।"

इसी समय मुन्ना आ गयी। कहा, "रानीजी का फैसला सबको मंजूर होगा।"

सबने समस्वर से कहा, "हाँ, होगा।"

मुन्ना ने कहा, "राजाराम आपस में लड़ो नही, अपना काम करो।" फिर जमादार से कहा, "जटाशंकर, इधर आओ।"

जटाशंकर को उसी जगह ले गयी जहाँ पहली बातचीत हुई थी। रुस्तम मुस्कराता हुआ बैठा रहा। तुराब ने कहा, "भाई, आपकी किस्मत खुल गयी। हमारा ही पहला सलाम है।" रुस्तम ने टाँगें हिलाते हुए कहा, "हमको याद रहेगा।" राजाराम ने जमादार को डिसमिस हुआ जानकर पहरे की वर्दी पहनते और तलवार बाँधते हुए कहा, "लेकिन जमादार का कोई कसूर नही।"

"जमादार तो हम हैं," रुस्तम ने स्वर चढ़ाकर कहा, "हमारा कौन-सा कसूर है ?"

अड़गड़े में पहुँचकर मुन्ना ने कहा, "जटाशंकर, क्या तुम अब भी हमको चाहते हो ?"

जटाशंकर राँड़ की तरह रोने लगे।

"एक बात," मुन्ना ने कहा, "तुम मुझे चाहते हो या जमादारी ?"

"अरी, बड़ी बेइज्जती हुई; हमारी जमादारी रहने दे।"

"अब तुम समझे, हम समझ जाते है, कौन कैसा है। तुम हमारी तरह उतर नही सकते, यह तुम्हारा खयाल था; मगर तुम इतना उतर जाओगे कि यहाँ जमना दुश्वार होगा। जब किसी को पकड़ो तब उसी को पकड़े रहो, यह कायदा है। तुम समझे थे, मैं तुम्हारी रखेली की तरह रहूँगी; अपनी स्त्री बनाकर तुम मुझको खुश किये रहोगे। मैं जैसी औरत हूँ, मैं तुम्हे रखवाले की ही तरह रख सकती हूँ; मगर राजा ही बनाये रहती। यह न समझना कि मैं गरीब हूँ। मैंने कहा, मैं रानी हूँ। तुम्हारा यह खयाल कि एक औरत को रखेली बनाकर रहनेवाला वैसा ही ब्राह्मण है जैसे तुम, बिलकुल गलत है। हमारे दिल मे ब्राह्मण का सम्मान है, पर चैतन्यदेव-जैसे ब्राह्मण का, जो बाद को वैष्णव हो गये, और सबको अपनी तरह का आदर दिया। मैं वैष्णव हूँ। तुम पर मुझे प्यार नही होता, दया आती है। तुम इतने बड़े मूर्ख हो कि अपनी तरफ से कुछ समझ नही सकते। खजाने का जो जमादार होगा,

कुछ दिनों में उसकी जान की आफत आयेगी।"

जमादार काँपे। आँखों से तरह-तरह की शंकाएँ, भय, उद्वेग, पाप, अत्याचार, क्षुद्रता, हृदयहीनता आदि निकल पड़ी। राज लेने के लिए मित्र बनने की कोशिश करते हुए कहा, "क्यो ?"

"तुम हमारे आदमी हो।"

जमादार की जान चोटी पर आ गयी। कहा, "अब जो कुछ भी हो, हम हुजूर के आदमी है।"

"अब तुम समझे। अच्छा बताओ, अगर खजाने का रुपया चुरा गया हो ?"

जटाशंकर को जान पड़ा, वज्र टूटा; धड़ाम से गिर पड़े, "अब सही-सही मरा। —मुझको भगा दो। दया करो, दया करो, देवी, कही का नही रहा।"

"यही रुपया तुमको देना चाहती हूँ, लेकिन तुमको हमारी जाति और हमारी दासता लेनी पड़ेगी।"

"हमको रुपया नही चाहिए।" तनकर जटाशंकर ने कहा।

"यही तुम्हारा बड़प्पन है। हम इसी को प्यार करते है। मेरे प्यारे, मुझे चूम लो।" मुन्ना ने जीभ लपलपायी।

जटाशंकर को जान पड़ा, काल है। खजाने की चोरी की बात सोचते हुए तनकर सिपाहियाने स्वर से कहा, "गलत बात है; खजाने की चोरी नहीं हो सकती।"

"क्यो ?"

"अब तू ही बता," कहकर फिर उन्होने एक कड़ी निगाह गाड़ी।

"यह जो जमादार बना है, इसी ने चुरवाया है, यह रानी का प्यारा है।"

"झूठ बात, हम रपोट करेंगे।"

"क्यो रपोट करोगे ?"

"यही, तू जो कुछ कहती है।"

"तुमको और तुम्हारे पहरेदार को ये दूसरे पहरेदार पकड़े हुए हैं कि तुम लोग बदमाश हो। मैं इसकी गवाही गुजार दूँगी। तुम ठोके जाओगे, नौकरी से भी हाथ धोओगे।"

"हम कहेंगे, खजाना चुराने का इसने जाल किया है। हमसे पहले ऐसा-ऐसा कह चुकी है।"

"खजाना चुरा गया है, तुम्हें इसका क्या पता ? अगर न चुरा गया हो—?"

जमादार ने करुण दृष्टि से देखा। मुन्ना ने कहा, "अच्छा लाख-दो लाख दे दिये जायँ तो तुम क्या करो ?"

"हम खजाने मे रखा देंगे।"

"कैसे ?"

जमादार फिर हक्के-बक्के हुए।

मुन्ना ने कहा, "जमादारी चाहते हो तो चलो, बैठो, लेकिन याद रक्खो, जिस दिन खजानची आयेगा, उस दिन तुम्हारा कोई कर्म बाकी न रहेगा। बात मानोगे तो बचे-बचाये चले जाओगे। चोरी और छिनाले का भेद तब तक नही खुल सकता

जब तक रानी का मान वापस नहीं आ जाता।"

"रुस्तम की वर्दी पहनकर रुस्तम की जगह पहरा दो और रुस्तम को जमादार मानो।" कहकर मुन्ना नये गढ़ की तरफ चली।

जमादार जटाशंकर खजाने आये। वहाँ से मालखाने गये। रुस्तम की वर्दी पहनी। बाकी रहा थोड़ा समय पहरा देने लगे।

पहरा बदला। दूसरे सिपाही आये। बात फैली कि रुस्तम जमादार हो गया। रानीजी ने बनाया है। जमादार और राजाराम बदमाशी से पकड़े गये हैं।

जटाशंकर मुँह दिखाने लायक न रह गये। कुछ सिपाही बराबरी का दावा करने लगे और उन्हीं के दिल से कसूरवार करार देने लगे।

राजाराम भी मुरझाया था। फुर्सत के वक्त एकान्त में जमादार से बातचीत करता हुआ राज लेने लगा, "जमादार, बड़ा अपमान हुआ। अब तुम सिपाही हो, रुस्तम जमादार। हुक्म राजा का नहीं। माजरा समझ में नहीं आता।"

जमादार ने पूछा, "तुमको क्या जान पड़ता है?"

"या तो तुम फँसे थे, इस औरत ने झूठमूठ हमको भी फँसाया या बुआ की तौहीन की गयी और करनेवाला मुसलमान, इसमें राजा की राय हरगिज नहीं मालूम देती। बुआ राजा की मान्य की मान्य हैं।"

"इसके बाद इस मुसलमान का हाल क्या होता है, देखना। राजा एक मुसलमान तवायफ लिये ही पड़े रहते हैं। इनके यहाँ बस इतना ही सम्बन्ध है। रानी का हाथ है, ऐसा हमारा विचार है। यह भी सम्भव है कि खजाने की चोरी रानी ने करायी है। बोलो मत, इसमें बड़ा भारी भेद है। किसी को मालूम नहीं हो सका। रुस्तम का आगे चलकर बुरा हाल होगा। तुमको हम दूसरी जगह बदलने की कोशिश करेंगे।"

बात आग की तरह फैली।

पन्द्रह

बाप से यूसुफ को एजाज का राज मिल चुका था। जब एजाज कलकत्ता रहती थी, मोदाबख्श खजानची तनख्वाह के रुपये लेकर कलकत्तेवाली कोठी में ठहरता था और वहीं से तनख्वाह चुकाकर रसीद लेता था; एजाज को डाकखाने के जरिये रुपये नहीं भेजे जाते थे; अली को यह खबर थी। उन्होंने लड़के को भेद बतलाया था।

इधर, राजा का रानी के पास आना-जाना घटा कि दासियों, लूनियों और तरफदारों से पता लगवाना शुरू हुआ। मोदाबख्श इस पते पर आ गये। ऐसे कई और। रानी के तरफदारों की बातें मामूली खजानची मोदाबख्श, लालन और

रानी के प्रेम मे न काट सके; जाल मे कुञ्जी डाल दी। प्रेम की कहानी बहुत-कुछ पहली-जैसी, इसलिए घटना और दुर्घटना का वयान रोक लिया गया।

इसी समय उनके भाग्य के आकाश पर दूसरा तारा चमका। एजाज के मकान से चलकर यूसुफ राजधानी आये और बाजार मे ठहरे। भेस बदले हुए थे। प्रभाकर को देखकर चौंके; दूकान मे एक जाकेट सिला रहे थे। शाम के बाद से प्रभाकर का पता न चला।

मैनेजर ने बुलाया है, एक अजनवी आदमी से कहलाकर राह पर मिले और मैनेजर ने भेजा है, कहकर भाव ताड़ने लगे। खजानची की कुञ्जी हाथ से छूट चुकी थी, कलेजा धड़का। डरकर सँभले।

"हम आपका भला कर सकते हैं," यूसुफ ने कहा।

खोदावख्श रानी की मैत्री की ताकत से आगन्तुक को देखते रहे।

"आपका राज विगड़ा है, मान जाइए।" यूसुफ ने कहा।

खोदावख्श का दिल वैठ गया। मैनेजर उससे बड़ा है; कुछ गड़बड़ मालूम हुई हो, सोचकर दहले। उठा कि कह दें, पर सँभाल लिया।

यूसुफ ने कहा, "आपको अब मैनेजर के पास न जाना होगा, हमी उनकी मारफत आपसे मिलने आये है। उनसे हमारा हाल मालूम करने की हिमाकत न कीजिएगा। हम सरकारी। आप हमसे फायदा उठा सकते है ? फिर हम भी मुसलमान हैं।"

खजानची को वहुत खुशी न हुई, क्योकि एक फायदा अभी पूरा-पूरा नही उठा पाये थे। फिर भी, यह सोचकर कि आगे क्या आनेवाला है और खुदगर्ज अपनी ओर से फायदे मे ला रहा है, वात सुन लेनी चाहिए।

यूसुफ जानते थे, कहकर भी राज निकाला जाता है; अगले सवाल से काम हासिल होगा। कहा, "हमे आपसे राज मिलता रहना चाहिए। हम आपकी निजी उलझनो की मदद करेंगे।"

खोदावख्श को जी मिला। पूछा, "जनाव का निजी और भी कुछ अगर मालूम किया जा सके ?"

"वाद को, जव गठ जाय। आप समझे, हम कोई ?"

"माजरा क्या है ?"

"वह यह कि एजाज़ से सरकार की तरफ की सिखायी औरत भेजकर यह मालूम करना है कि क्या हालात है; वस। अपनी तरफ से आप भी पता लगायें कि सरकार के खिलाफ क्या कार्रवाई है। मुसलमान और नीची-कौमवाले हिन्दू मिट्टी मे मिल जायँगे। आप याद रखिए। पहले किसी नीची-कौमवाले को फँसाइए।"

खजानची को जँच गयी। फड़ककर कहा, "कुछ पता भी आपका···"

"अभी नही। अस्सलाम वालेकुम्। खयाल मे रक्खें।"

"वालेकुम्।"

प्रभाकर वैठा था। यूसुफ ने अतिथि-भवन की वैठक में झाँका। कहा, "आपसे मिलने के लिए मैनेजर साहब खड़े है।"

प्रभाकर चौका। देखकर चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर ठहरकर यूसुफ भीतर

चलकर कुर्सी पर बैठे। कहा, "मैं उनका नौकर नही। खड़ हैं, कहा, कह दिया, अब आप समझें।"

प्रभाकर ने रीढ सीधी की और बैठा हुआ टुकुर-टुकुर देखता रहा।

दिलावर बाहर पहरेदार के पास बैठा था। यूसुफ को घुसते हुए देखा कि गारद से एक आदमी बुला लाया और लगा दिया। यूसुफ की निगाह चूक गयी।

"जनाब का दौलतखाना ?" यूसुफ ने पूछा।

"जनाब का शुभ नाम ?" प्रभाकर ने पूछा।

"नाचीज हुजूर की खिदमत मे।" यूसुफ ने जवाब दिया।

"रहमदिली ?" प्रभाकर ने मुस्कराकर कहा।

"रहमदिली—अलअमाँ।" यूसुफ ने दोहराकर दोस्ती जतायी।

प्रभाकर दबा। उभरकर पूछा, "किस अन्दाज से है ?"

"सिर्फ दोस्ती।"

प्रभाकर ने हाथ बढ़ाया।

"यों नही।" यूसुफ ने बड़प्पन रक्खा, "आप कैसे तशरीफ ले आये ?"

"यह तो आपको मालूम हो चुका है।"

"कहाँ ?"

"यह भी मालूम होगा।"

"कुछ भी नही बदला हुआ नजर आया ?"

"आपका मतलब ?"

"मैंने कहा, कुछ आपसे हल हो।"

"आप तो जवाब नही देते।"

प्रभाकर चुप हो गया।

"आप बड़े सयाने। पर खुलकर रहेगा।"

प्रभाकर को ताव आया, पर सँभाल लिया।

इसी समय दिलावर घुसा। यूसुफ के पीछे आदमी लगा रहा।

"चलिए।" दिलावर ने प्रभाकर से कहा।

प्रभाकर चले।

दिलावर ने यूसुफ से पूछा, "जनाब का कहाँ से आना हुआ ?"

"मैनेजर साहब के कहने से।" यूसुफ साथ-साथ चले।

दिलावर कुछ न बोला। प्रभाकर और दिलावर मुड़कर एजाज़वाले महल की तरफ चले, यूसुफ दूसरी तरफ से अपने डेरे की ओर।

यहाँ थाना है, यह पहले से जानते थे। दिल में कोई धड़कन न थी।

पीछे लगा आदमी आँख बचाकर चला। यूसुफ ताड़ न पाये, दिल में खटक न थी। आदमी ने यूसुफ की कोठरी का पता लगा लिया।

सोलह

कमरे मे सनलाइट जल रही थी। राजा साहब अपनी बैठक में थे। मसन्द लगी हुई। गाव-तकिये पडे हुए। एक तकिये का सहारा लिये हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि बेयरा सिपाही से खबर लेकर गया। कहा, प्रभाकर बाबू आये हुए है। राजा साहब ने आदरपूर्वक ले आने के लिए कहा। दिलावर बाहर रास्ते के पहरे पर रह गया, प्रभाकर उसी पुलनुमा राह से सरोवर की कोठी को चले। कोठी मे पहुँचकर राजा साहब का कमरा, अन्दर जाने के लिए, बेयरा ने प्रभाकर को दिखा दिया। प्रभाकर गये। राजा ने उठकर स्वागत किया और नवयुवक को पास बैठा लिया। स्नेह से कहा, "हम आपसे उम्र मे···"

प्रभाकर सिर झुकाये रहे।

"बडी जिम्मेवारी है।" राजा साहब ने स्वगत कहा।

प्रभाकर स्थिर भाव से बैठे रहे।

"आपका प्रबन्ध हो गया है। आप वहाँ चलकर रह सकते है।"

प्रभाकर को साहस से प्रसन्नता हुई।

"आप तो हमारे गवैये के रूप मे है।"

"गा लेता हूँ।" प्रभाकर ने सीधे स्वर से कहा।

"कुछ पान ?"

"जी नही।"

"भोजन तो कीजिएगा ?"

"जी हाँ।"

"मांस-मछली ?"

"हां।"

"आप कुछ सुनिए और कुछ सुनाइए।"

राजा साहब ने एजाज के आने के लिए खबर भेजी, साजिन्दे भी बुला लाने को कहा। फिर प्रभाकर से गप लड़ाने लगे।

समय पर साजिन्दे आ गये। एजाज़ भी तैयार हो गयी। साज बाहर से मिलाकर लाये गये। प्रभाकर देखते रहे।

प्रभाकर को राजा साहब नाप न सके, कितना गहरा है।

एजाज़ तैयार होकर आयी। राजा साहब को सलाम किया और बगल में एक तकिया लेकर बैठ गयी। प्रभाकर को देखा, फिर देखा, फिर चुपचाप राजा साहब से पूछा, "आपकी तारीफ ?"

उसी फिसफिसाहट से राजा साहब ने जवाब दिया, "आपके खानदान के। गवैये है। देखा जाय, कैसे हैं ?"

"तगड़े जान पड़ते हैं।"

"शिक्षित हैं।"

"यहाँ कैसे ?" एजाज़ को शक हुआ।

"गायेंगे, रहेगे। जब चाहेंगे, चले जायेंगे।"

एजाज़ को राजा साहब की बात का विश्वास न हुआ, उनके स्वर मे ऐसा ही, कटता हुआ आदमी मिला। खामोश हो गयी। एक दफे कमर सीधी की, फिर एकटक देखती हुई बैठी रही।

प्रभाकर ने मुद्रा को और अच्छी तरह देखा, दिल में गाँठ ली।

साजिन्दे नौकर, रह-रहकर एक नजर राजा साहब को देख लेते थे।

राजा साहब की कठिन अवस्था हुई। न एजाज को गाने के लिए कह सकते थे—अविश्वास की ऐसी प्रतिक्रिया हुई, न प्रभाकर को, प्रभाकर का गुरुत्व ऐसा गालिब था।

उन्होंने नौकर रखने के भाव को काफी मुलायम करके एजाज़ को देखा। एजाज ने अनुभव किया कि वह दब गयी। बड़ा बुरा लगा। अपने से घृणा हुई। पर दबाकर, सैकडों पेच कसने और सुलझानेवाली मुसकान से प्रभाकर को देखकर कहा, "जनाब ही क्यो न श्रीगणेश करें ?"

प्रभाकर समझा। नम्रता से स्वीकार कर लिया। पूछा, "क्या गाऊँ ?"

"जो जी में आये, कोई ऊँचे-अंगवाली।"

तानपूरा स्वर भरने लगा। एजाज़ के गले से मिलाया हुआ।

राजा साहब ने कहा, "आपके स्वर मे नही मिला। दिक्कत हो तो अभी ठहर जाइए।"

एजाज़ कुछ और दबी। प्रभाकर ने कहा, "चल जायगा। घटा लूँगा।"

"अच्छा, मैं ही बिसमिल्लाह करती हूँ।" एजाज़ मसनद के बीच मे आ गयी। दिल को चोट लग चुकी। पूरा-पूरा व्यवसायवाला रुख लेकर बैठी। साजिन्दे खुश होकर अनुपम रूप देखने लगे। प्रभाकर ने भी देखा, जैसे पत्थर को देख रहा हो। एजाज़ की हार्दिक सहानुभूति उस क्षण कलाकार प्रभाकर के लिए हुई। भरकर, राजा साहब से बदली हुई, एजाज़ ने अलाप ली।

प्रभाकर मुग्ध हो गया। चुपचाप बैठा खयाल सुनता रहा। तानो की तरहें दिल मे समा गयीं। साजिन्दे काम करते हुए प्रभाकर को देख लेते थे। राजा साहब निर्भीक कद्रदाँ की तरह बैठे रहे।

खयाल गाकर एजाज़ हट गयी। इसका मतलब था, अब नही गायेगी। राजा साहब समझकर खामोश रहे। साजिन्दे उसको कुछ कह नही सकते थे। प्रभाकर आगन्तुक।

एजाज़ पहले की तरह राजा साहब की बगल में नहीं बैठी। गाने के लिए प्रभाकर का जी उठ नही रहा था। फिर भी रस्म पूरी करनी थी। शिक्षित घराने का शिक्षित युवक सुकण्ठ और संगीतज्ञ था। ढर्रा छोडकर उसने धमार गाया। काफी जमी। राजा साहब उछल पडे।

एजाज़ समझ गयी, यह पेशेदार गवैया नहीं। इसका राज लेना चाहिए, दिल में बाँधा। डटी बैठी रही। कलकत्तेवाली, सरकार के आदमी से हुई, बातचीत याद आयी। धीरज हुआ। पर राजा की तरफ से सदा के लिए पेट मे पानी पड़ गया।

राजा साहब ने देखा, प्रभाकर की तारीफ से एजाज़ का दिल छोटा नहीं पडा।

वह और बढ़कर बोले, "अभी आप थके-माँदे आये हैं।"

"अच्छा, कहाँ से ?" एजाज़ ने पूछा।

"क्यों, साहब ?" राजा साहब ने प्रभाकर को देखा।

"वर्धमान से।" प्रभाकर ने कहा।

"जनाब का नाम ?" एजाज़ ने पूछा।

"प्रभाकर।"

"उस्ताद है ?"

प्रभाकर ने साधारण नमस्कार किया।

"अरे भाई, बोस साहब बैरिस्टर हैं, उनके भाई है। आये हैं।"

एजाज़ और दूर तक गाँठ गयी, "कुछ रोज रहेगे, यानी बहुत कुछ सुनने को मिलेगा। राजा साहब का दरबार है।" खिलखिलाकर हँसी।

आज के बर्ताव से एजाज़ को इच्छा हुई, दूसरे दिन कलकत्ता रवाना हो जाय और नौकरी छोड़ दे, मगर बडा रहस्यमय रूप सामने देखा, जिसको खानदानी पढ़ी-लिखी वेश्या छोड़कर न भगेगी; आखिरी दम तक सुलझायेगी।

सत्रह

राजा साहब ने देखा कि एजाज़ का मिजाज उखडा-उखड़ा है, उन्होंने साजिन्दों को रुखसत कर दिया। प्रभाकर को भोजन कराना था, इसलिए बैठाले रहे। काट कुछ गहरा चल गया था; यानी एजाज़ को राजा साहब चाहते थे, पर दिल देकर नही; अगर दिल देकर भी कहें तो भेद बतलाते हुए नही। सिर्फ कला-प्रेम था या रूप और स्वर का प्रेम जो रुपये से मिलता है। यही हाल एजाज़ का। उसके पास धन था, रूप और स्वर भी, पर तारीफ न थी, यह दूसरो से मिलती थी, और उन्ही लोगो से जो रूप, स्वर और यौवन खरीद सकते हैं। षोडशी होकर जिस समूह मे वह चक्कर काटती थी, वह कैसा था, आज प्रभाकर को देखकर उसकी समझ मे आया। वह बडप्पन कितना बडा छुटपन है, राजा साहब के बर्ताव से परिचित हुआ। प्रभाकर को न देखने पर वह समझ न पाती कि आदमी की असलियत क्या है। आजकल जैसे उस छुटपनवाले बडप्पन से उसका छुटकारा न था। आज के परिवर्तन के साथ प्रभाकर का प्रकाश उसके दिल में घर करता गया। खेल और मजाक दिल नही। किसी को बनाना और किसी को बिगाड़ना दिलगीरी नही, सौदा है। जो कुछ भी अब तक उसने किया वह एक बचत थी। असलियत क्या थी, कहाँ थी, वह नही समझ पायी। आज भी नही समझी। सिर्फ उसे दिल नही माना। टूटी जा रही थी। असलियत असलियत मे मिल गयी। प्रभाकर की जैसी शालीनता उसने किसी में नहीं देखी। जो बातचीत सुन चुकी है, उससे

अगर इस आदमी का तअल्लुक है तो गजब है यह आदमी—'स्वदेशी !'

एजाज रहस्य मालूम करने के लिए उतावली हो गयी। प्रभाकर ने जो गाना गाया, उसमें प्रदर्शन न था, किसी की परवा नहीं, फिर भी किसी से नफरत नही। यह अच्छा गाना जानता है, पर अच्छों का प्रभाव नही रखता। गाने के सम्बन्ध में चढ़ी रहकर भी एजाज़ चढ़ी न रह सकी। राजा साहब से जो दुराव हुआ था, वह उनके प्रभाकर के लिए हुए प्रेम के कारण था। अब वह एक हार बनकर रह गया। उसको खुशी हुई—'एक कुंजी उसके पास भी है।'

अपमान को भूलकर उसने राजा साहब से कहा, बडा रूखा-रूखा लग रहा है—"मयकशी ?"

"क्या बुरा ?"

राजा साहब जो बाजी लगा चुके थे, वह प्रभाकर को बाहर का आदमी नही समझ सकती थी।

एजाज़ का इशारा मिलते ही गुलशनशीशा और पैमाना ले आयी। उसी तरह ढालकर एजाज को दिया। एजाज ने राजा साहब को। प्रभाकर के लिए लेमनेड आया। एक प्याला पिलाकर दूसरा भरा, तीसरा भरा। राजा साहब खाली करते गये। एजाज़ भी साथ देती गयी। पूरा नशा आ गया। भोजन की थाली आने लगी। तीनो भोजन करने लगे।

"प्रभाकर बाबू से तो गहरे तअल्लुकात है।"

"हाँ।" राजा साहब ने कहा।

"हमारे कौन-कौन से फायदे आपसे है, हमें मालूम हो तो हम भी साथ हो जायँ। बात हम तीनों की है। हमारी मदद काम कर सकती है।"

"इसमें क्या शक।"

प्रभाकर ने मधुर स्वर से पूछा, "आपके जमीदारी है ?"

राजा साहब को प्रश्न बहुत अच्छा लगा। वह स्वयं इतना साधारण प्रश्न नही कर सकते थे।

एजाज को जवाब देते हुए झेंप हुई। कहा, "अब हमे आप लोगों के सवाल का जवाब देना पडता है। पहले हमी जवाब लेते थे। आते-जाते हमीं पहले बोलते थे। हिन्दू जवाब देते थे।"

"इसी डर से हमने हुजूर से बातचीत नही की कि हुजूर खुद पूछें।" राजा साहब ने चुटकी लेते हुए कहा।

"ऐसी बात का हमे कोई खयाल न था !"

"कुछ तो होगा ही।" राजा साहब डटे रहे।

"वह बहुत अनुकूल नही।"

"हमारे ?"

"हाँ।"

"आपके ?"

"राज देते रहे तो सरकारी तौर से हो सकती है।"

"राज तो आपने हमे दे दिया।"

एजाज़ प्रभाकर को देखती रही। प्रभाकर ने कहा, "अब हमारा फर्ज है, हम आपकी सेवा करें। अभी इतना ही कि हम स्वदेशी।"

"इस राज से हमारी सरकार के यहाँ कद्र बढ़ सकती है।"

राजा साहब की आँख झप गयीं—'इससे दिल का हाल नहीं कहा।'

एजाज़ प्रभाकर से सुनने के लिए बैठी रही। प्रभाकर ने कहा, "मैं स्वदेशी का सक्रिय हूँ। सूत, चरखा, करघा, कपड़े तथा ग्रामीण वस्तुओं के प्रचलन का बीड़ा उठाया है। काम करता हूँ। राजा साहब की सहानुभूति है।"

"जमीदार छोटे-मोटे हम भी हैं। आपसे हमारा स्वार्थ है, हम समझते है। हमारे यहाँ एक डाट लगा दी गयी है। हमसे आपका उपकार हो सकता है। कुछ राज हमें काम करने के लिए दीजियेगा।"

राजा साहब बहुत खुश हुए। कहा, "हमारा एक ही रास्ता है।"

"हम बाते आपसे नही कर सकते, आज्ञा है। आपने जो कुछ कहा है, उसका कुछ प्रमाण भी हमे चाहिए। यहाँ हम कपडे के केन्द्र मजबूत करेंगे। व्यवसाय बढ़ायेंगे। आपको अर्थ और अनर्थ के सम्बन्ध मे काफी जानकारी है।"

"उस तरफ से तो कुछ मिलेगा नही।" एजाज़ ने कहा।

"इस तरफ का भी कुछ न जाना चाहिए। इतना खयाल रखिए, उनके आने के दिन की बातचीत मिल जानी चाहिए।"

"मिलेगी। जमीदार तो हम भी है, इतना काफी है। कोई दूसरी मदद ?"

"क्या पार्टी को दस्तखत करके नाम दे सकती हैं ?"

"यह सोचूंगी, शायद नही। पहले की बात होती तो हिम्मत बाँधकर देखती।"

"पुलिस या खुफिया का राज यहाँ का है या कलकत्ता का ?"

"कलकत्ता का।"

"एक आदमी यहाँ आया है, आपको बता रहा हूँ।" प्रभाकर ने यूसुफ के चेहरे का वर्णन किया।

"ऐसा ही आदमी वह भी था। पहले-ही-पहल आया था।" एजाज़ ने कहा।

"आपको यह आदमी कहाँ मिला ?"

"गेस्ट-हौस मे।"

"किसी दूसरे ने भी देखा ?"

"हाँ, उसने देखा जो हमारे साथ है।"

एजाज़ ने बडी-बडी आँखे निकाली।

राजा साहब ने खिदमतगार को भेजा। कुछ ही अरसे मे दिलावर आया। भीतर बुलाकर राजा साहब ने पूछा, "आपके पीछे किसी को देखा ?"

"राज मिल गया है। बाजार मे ठहरा है। बाहर का आदमी है।"

"जहाँ-जहाँ जाय, आदमी लगा रक्खो, देखे रहे, मालूम कर ले, असली कौन है।"

"जो हुक्म।" कहकर दिलावर बैठक छोडकर चला।

"हमारे लिए अच्छा होगा, अगर आप कलकत्ता चली जायें, आप इस तरह हमारी ज्यादा मदद कर सकती है। यह आदमी आपके कारण आया है। क्या

राजा साहव यह वतलायेंगे कि हमारा राज किसी को उनसे नही मिला।"

"नहीं, नही मिला। इनसे हम कहते, लेकिन दूसरे की बात है, इसलिए नही कहा।"

"हमें इसका दु.ख नहीं।" एजाज़ दृढ हुई।

"हमारी क़िस्मत।" प्रभाकर ने कहा, "यह आदमी आपके लिए (एजाज़ की ओर उँगली उठाकर) आया है। यहाँ इसका कोई आदमी होगा। मुझसे मैनेजर का नाम लिया,, मगर मैनेजर से इसकी जान-पहचान भी न होगी।"

राजा साहव सीधे होकर वैठे। प्रभाकर कहता गया, "जिस तरह भी हो, आप-लोगों मे किसी से कोई आदमी मिलेगा। अब होशियारी से चलना है।"

राजा साहव चौंके।

"इसलिए कुछ रोज जाने की बात न करें। लेकिन जाना बहुत जरूरी है। नसीम यहाँ नही। इस मामले की वही मुखिया है।"

"यानी ?" प्रभाकर ने पूछा।

"अभी हमारी चड्ढी नही गठी। यह राज बाद को। आपका अस्ली नाम प्रभाकर है ?"

"मैं प्रभाकर हूँ। और मैं कुछ नहीं जानता।"

"आप कलकत्ते में मुझसे मिलेंगे ?"

"प्रभाकर ही आपसे मिलेगा।"

राजा साहव को ताल कटती हुई-सी जान पड़ी। हृदय मे कोई रो उठा, मगर वैठे रहे।

प्रभाकर ने विदा माँगी। देर हो गयी। उसके साथी अभी छूटे हुए थे। रहने के लिए उन्होंने सम्भवत: दूसरा कमरा दूसरे मकान मे लिया हो। एक तरह से पकडा जाना ही समझना चाहिए। प्रभाकर सोचकर वहुत घवराया।

राजा साहव ने पालकी मँगा दी। प्रभाकर बैठे। राजा साहब ने अतिथि-भवन मे रखने की आज्ञा दी। दूसरे दिन सवेरे जगह पर भेजने के लिए कहा। दिलावर ने सुन लिया। प्रभाकर ने कहा, "मैं पता लेकर ही जाऊँगा। ये मेरी पूरी मदद करें। ऐसी आज्ञा दीजिए।"

राजा साहव ने दिलावर को वुलाकर हुक्म दे दिया।

एजाज के मन से संसार का प्रकट सत्य दूर हो गया। कल्पनादर्श मे रहने की आकांक्षा हुई। प्रभाकर का ऐसा व्यक्तित्व लगा जैसा कभी न देखा हो। इसके साथ जिन्दगी का खेल है, खिलाफ मौत का सामाँ।

अट्ठारह

रुस्तम बहुत खुश थे कि रानी साहबा ने उन्हें जमादारी दी। जटाशंकर जान बचाने के लिए रुस्तम की जगह पहरा दे रहे थे। राजाराम रहस्य का भेद न पाकर खामोश हो गया। दूसरे पहरेदारों ने सुना और रुस्तम के तरफदार हो गये। जटाशंकर यह उडाये हुए थे कि वे शौकिया सिपाही का काम नही कर रहे। जल्द रुस्तम पर आफत आती है और ऐसी कि सँभाली न सँभलेगी। तीनों पहरों के सिपाही जो मौके पर नही थे, तरह-तरह की दीवार उठाते और ढहाते रहे।

सुबह का वक्त। रुस्तम कुर्सी पर बैठे थे। मुन्ना आयी। राजाराम के सामने कहा, "रानीजी की सलामी दो।"

रुस्तम झेंपा। बोला, "रानीजी यहाँ कहाँ हैं ?"

राजाराम तनकर देखने लगा। तम्बू के उसी सिपाही को पुकारकर कहा, "देख लो, जमादार का हाल।"

मालखाने से जमादार जटाशंकर भी तद्‌गतेन मनसा देखने लगे।

मुन्ना ने कहा, "सलामी नही देते तो जमादारी से बरखास्त किये जाओगे।"

रुस्तम घबराया। उठकर झेंपकर सलामी दी। देखकर मुन्ना ने कहा, "एक दिन मे तुम्हारी चर्बी बढ़ गयी। जमादारी के लिए तुमने कहा था, जमादारी तुमको दी गयी। लेकिन तनख्वाह तुम्हारी वही रहेगी।"

राजाराम और तम्बूवाला सिपाही हँसा। तम्बूवाले ने कहा, "जमादार साहब ने इतनी मिहनत से चोर पकड़ा, जमादारी मिली, लेकिन अब तो कुछ और ही बात जान पड़ती है।"

मुन्ना ने कहा, "रानीजी की इच्छा। जमादार जटाशंकर को उन्होने सिपाही बना दिया, लेकिन तनख्वाह वही रक्खी। आज हुक्म हुआ है, जमादार को 20) का इनाम मिले, क्योंकि काम बहुत अच्छा किया।"

राजाराम ने अपनी तरफ से समझा और खुश होकर दोमंजिले के मालखानेवाले पहरेदार जमादार जटाशंकर को, जो आँगन की ओर खड़े थे, आवाज लगाकर, कहा, "जमादार, कैसा सच्चा फैसला आया है!" तम्बूवाला, रुस्तम का तरफदार, कुछ न समझा। आवाज बैठाकर कहा, "बड़े आदमी का फैसला बड़े आदमी जानें।"

"अगर सही मानी मे तरक्की चाहते हो तो चलो उठकर।" मुन्ना ने कहा। रुस्तम उठकर चला। ज़ीने पर मुन्ना ने कहा, "अगर खजाने मे उसी वक्त चोरी हो गयी हो तो छाँट दिये जाओगे या बचोगे ?"

रुस्तम उछलकर सहम गया, "ऐं!"

"रानी के हथकण्डे हैं, कुछ समझता भी है ? जैसा-जैसा कहा जाय, कर।" कहकर मुन्ना ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर दिया। शरमाकर रुस्तम ने ले लिया, कहा, "बस ?"

मुन्ना ने कहा, "काम तुम्हारा चार आने का भी नही। जब काम पसन्द

आयेगा, तव। यह तुम्त्रा-फेरी किसलिए हो रही है, यह न तुम जानते हो, न हम। यह सिर्फ रानीजी को मालूम है। चलो, अभी तुमसे वहुत काम है। अपनी वर्दी पहनो, अव तुम फिर सिपाही के सिपाही।"

जमादार जटाशंकर ने वर्दी उतार दी। रुस्तम ने खीस निपोड़कर पहनते हुए कहा, "जमादार, जो कुछ भी आपने किया, आप समझे; जमादारी मे आपसे हमने सलामी ली, इसका ख्याल न करें, मुआफ कर दें।"

जमादार खुश हो गये। कहा, "यह राजा-रानी का खेल है। कभी घोड़े पर चढ़ना पड़ता है, कभी गधे पर।"

मुन्ना ने कहा, "चलो।" कुछ आगे वढकर तीस रुपये दिये। कहा, "दस राजाराम को दो और बीस तुम लो। रानीजी ने इनाम दिया है।"

रुपये लेकर जटाशंकर ने कहा, "लेकिन वहाँ ताला टूट गया होगा, तो क्या होगा?"

"देखो, जमादार, तुम्हारे पास वचत है, तुम्हारे पास एक ही कुंजी रहती है। दूसरी कुंजी कहाँ से आयी, खजानची से पूछोगे तो नौकरी जायगी। खजानची भी क्या जाने? वह खजाने का ताला तोड़वायेगा? जिनका रुपया है, वे ऐसे निकालें या वैसे; किसी का क्या?"

"यह भी ठीक है।"

"चुपचाप वैठे रहो। अव चढ़ाई होगी।"

"चढ़ाई क्या?"

"रानीजी की विजय।"

"उनकी तो विजय ही है।"

उन्नीस

मुन्ना खजानची खोदावख्श के यहाँ गयी। दूसरी औरत से खजानची का तअल्लुक कराकर, दूसरे मर्द से रिश्वत दिलाकर, 'एक औरत से उसका तअल्लुक हो गया है' उसकी वीवी से कहकर लड़ाकर, बिगड़ाकर, राजा साहव के नकली दस्तखत से इम्प्रेस्ट से रुपया निकलवाकर, गवाह तैयार करके मुन्ना ने खजानची को कही का न रक्खा था। उसको पुरस्कार भी मिलता था। इन कामों मे रानी साहवा का हाथ था। धीरे-धीरे रानी का प्रेम घनीभूत किया गया। दो-एक वार रात को कोठी में वुलाकर खिलाया-पिलाया गया। खजानची की कल्पना दूर तक चढ़ गयी। रानी का चरित्र जैसा था, उससे उन्हें जल्द सफल होकर राज्य करने मे अविश्वास न रहा।

कुंजी देते हुए मुन्ना ने कहा, "रानी साहवा ने कहा है, अव तुम यहाँ तक आ

गये।" कहकर उसने अपनी छाती पर हाथ रक्खा।

खोदावख्श खुश होकर बोले, "मेहरवानी!"

मुन्ना ने कहा, "आप आज ही जाइए और हिसाब लगाकर मुझे बताइयेगा, मैं राह पर पीपल के नीचे मिलूंगी, कितना रुपया निकाला गया। आपको तो मालूम है, काम दूसरे से कराया जाता है, हिसाव दूसरे से लिया जाता है। जिसने रुपया निकाला वह खा नहीं गया, मालूम हो जायगा। फिर उसी तरह बिल बनाकर जरूरी लिखकर सही करा लीजिए। रानी साहबा वह बिल देखकर वापस कर देंगी। अकौण्टेण्ट के पास बाद को भेज दीजिए। काम हो जाने पर इनाम मिलेगा।"

कहकर मुन्ना लौटी। खजानची देखते रहे। सोचते रहे। उनसे नोटोंवाले सन्दूक की कुंजी ली गयी थी। अन्दाजन दो लाख रुपया था। सोचकर कांपे। दो लाख रुपये का जाल। इम्प्रेस्ट से हजार-पाँच सौ रुपये निकाल लेना बड़ी बात नहीं। अकौण्टेण्ट को शक नहीं होता। दो-दो लाख का बिल! इतना रुपया तो मालगुजारी के वक्त ही जाता है।

मुन्ना ने यह रुपयेवाला जाल अपनी तरफ से किया था। रानी साहबा को इसकी खबर न थी। बुआ को झुकाने के लिए उन्होंने आज्ञा दी थी कि किसी सिपाही या जमादार से फँसा दी जायँ, कुजी उनके हाथ मे रहे; लेकिन मुन्ना ने लम्बा हाथ मारा।

खजानची ग्यारह बजे के करीब आये। जटाशंकर बैठे थे। खजाने में उस समय राजाराम का पहरा बदल चुका था। रामरतन था। उसने बहुत तरह की बातें सुनी थीं। पर वह आदी था। खड़ा रहा। खजानची ने वही सन्दूक खोला। सन्दूक मे एक भी नोट न था। सन्दूक का बीजक निकालकर देखा, दो लाख तेरह हजार के नोट थे।

जटाशंकर तके हुए थे। रामरतन पहरे पर टहल रहा था। क्या हो रहा है, क्या नहीं, इसकी उसको खबर न थी। खजानची ने चुपचाप बीजक निकालकर जेब में किया और सन्दूक में ताली लगायी, फिर बाहरवाला ताला लगाया। जटाशंकर फाटक की आड़ से साधारण भाव से देख रहे थे। सिपाही चौंका, पर सँभलकर टहलने लगा।

खजानची ताला लगाकर चले। पीछे-पीछे जटाशंकर हो लिये। खजानची घबराये हुए थे। जटाशंकर के लिए इतना काफी था। अभी तक कोई पकड़ उन्हे न मिली थी। खजाने से कुछ दूर निकल जाने पर खजानची ने उन्हें देखा, घबराहट को दबाकर पूछा, "क्यो जमादार, क्या बात है?"

जटाशकर ने जवाब नहीं दिया। खजानची की जेब पकड ली। "हाथ-पैर हिलाये कि उठाकर दे मारा और हड्डी-हड्डी अलग कर दी।" गरजकर कहा।

"यहाँ तुम्हारा क्या है?"

"यहाँ हमारी रोटियाँ हैं और आपकी भी।"

"हम पर हाथ उठाने का नतीजा मालूम होगा?"

"बहुत अच्छी तरह।"

"जबान हिलायी तो..."

"चुप रहिए।"

"हम वही जिन्होंने रानों के नीचे रक्खा और सदियों। यहाँ कुछ ऐसा ही।"

जटाशंकर फौजी आदमी थे। धोखे-पर-धोखा खा चुके थे। ताव आ गया। चाहा कि उठाकर पटक दें। लेकिन सँभल गये। कहा, "खजानजी साहब, हमको यही हुक्म है। आप तो अब वही है। सलाम।"

खजानजी ने कहा, "रा···"

"हुजूर, निकालनेवाले तो हमी हैं। यह फर्द हमको दे दीजिए।"

"उन्हीं का हुक्म ?"

"हुजूर! लेकिन उससे न कहियेगा, और आगेवाली कार्रवाई पहले हमसे। यहाँ भी तो एक कुंजी रहती है ?"

"हाँ, हाँ, ठीक है। यह लो।" खजानची ने बीजक दे दिया। देना नही चाहते थे, हाथ काँपा। पर काँटा ऐसा ही था। सोचा, 'रुपये इसी ने निकाले हैं। दो आदमियों के सामने कहला लेना है।'

जटाशंकर ने बीजक लेकर कहा, "इसकी बात उससे मत कहियेगा, नही तो हम पकड़ जायँगे। उससे यह मालूम कीजिए कि कहाँ रक्खा है ? आपसे कहे देते हैं कि निकालकर हमने दिये।"

"तो वे पहुँच गये।"

"कितने लिखे है ? बताइए, नही तो हमे पकड़ना पड़ेगा।"

"दो लाख तेरह हजार। जमादार, बहुत नाजुक मामला है। भेद न खुले। तुम्हें भी मिलेगा।"

"आगेवाली लीपापोती भी हमे मालूम होनी चाहिए। रुपया रक्खा कहाँ है, पूछ लीजियेगा, नही तो हम पुछवायेंगे। कल हुजूर इसी वक्त खजाने में तशरीफ ले आने की मिहरबानी करें, नही तो रा—-के पास मामला दायर होगा। खूब खयाल रहे (बीजक दिखाकर) इसका हाल किसी से कहियेगा तो बचियेगा नही। हमी-आप तक इसका भेद है।"

"यह तै रहा। लेकिन तुम भी इसका जिक्र न करना।"

"हुजूर का मामला, जिक्र किससे किया जायगा ?"

जमादार राजा को सम्बोधन कर रहे थे, खोदाबख्श अपने को समझते थे। सलाम करके जमादार वापस आये, खजानची आगे बढ़े। पीपल के चबूतरे पर मुन्ना बैठी थी। देखकर मुसकराती हुई सामने आयी। "कितनी है ?" होंठ रँगकर पूछा।

"पाँच लाख।" खजानची ने छूटते ही कहा।

मुन्ना ने अंक मन मे दोहराये।

"तो जल्द बिल तैयार हो जाना चाहिए। राजा साहब के दस्तखत बनाकर अकौण्टेण्ट के पास पहुँचा दिया जाना चाहिए।"

खजानची मन मे कुढ़ा। सोचा, इस बेवकूफ को कौन समझाये, दो-दो, ढाई-ढाई लाख रुपये, ज्यादा रुपये होने पर छिपा रखने के सिवा, सीधे रास्ते से हज्म नही किये जा सकते। वे राजा की निगाह पर आयेंगे। बिल जाली बना लिया जा सकता है, पर खर्च का मेमो राजा की नजर से गुजरेगा। इम्प्रेस्ट का रुपया एक

साथ मेमो बनकर निकलता है घर के खर्च के लिए। उसमें हजार-पाँच सौ साल-छः महीने मे निकाल लिया जा सकता है। उसके बिल सही होकर अकौण्टेण्ट के पास भेजे जाते है तो कैश-लेजर कर लिया जाता है, उसका अलग से मेमो में उल्लेख नही आता।

खुलकर खजानची ने कहा, "अच्छी बात है," फिर पूछा, "रुपये रानी साहबा के पास पहुँच गये?"

"उसी वक्त," स्वर को मुलायम करके मुन्ना ने कहा, "नही तो रक्खे कहाँ जायेंगे?"

"बिल बनाकर अकौण्टेण्ट के पास भेजने के लिए क्या रानी साहबा ने हुक्म दिया है?"

"हमसे सवाल करने के क्या मानी? हम जैसा सुनते हैं, वैसा कहते है।"

"अच्छा तो उसी तरह बिल भेज देंगे।" खजानची को अँधेरा दिखा। वह रास्ता काटकर चले।

मुन्ना को जान पडा, कुछ बिगड़ गया। कुछ अप्रतिभ हुई। मगर फिर चेतन होकर कहा, "आप इतना नही समझते जब लोहे के सन्दूक से नोट गायब हो सकते हैं, तब बाकी कार्रवाई भी हो सकती है।"

"कैसे?"

"जैसे आपसे कुंजी ली गयी।"

"वैसे ही मेमो पर राजा के दस्तखत करा लिये जायेंगे और पांच लाख रुपये के खर्च पर?"

"जहाँ पाँच लाख की चोरी होती है, वहाँ एक लाख की कम-से-कम रिश्वत होगी, और इस रकम से काम न हो, ऐसा काम अभी संसार में नही रचा गया।"

"यह तो हम समझे, लेकिन मेमो पर राजा के दस्तखत कैसे होंगे?"

"मेमो क्या है?"

"जिस पर बिल के रुपये लिखे जाते है।"

"राजा की सही हो जाने पर ये रुपये दर्ज कर दिये जायेंगे।"

खजानची खुश हो गये। कहा, "हाँ, ऐसा हो सकता है। लेकिन वहाँ भी लगाव होगा।"

"राज्य रानी का भी है, लगाव सबसे है, जो उनका काम करेंगे, उन पर वे मिहरबान रहेंगी।"

"अच्छी बात है; अब कुल कार्रवाई कर ली जायेगी, लेकिन अकौण्टेण्ट समझ जायेंगे।"

"कौन समझेगा, कौन नही, इसकी चिन्ता व्यर्थ है।"

"यह भी ठीक। हमे क्या मालूम, कौन-कौन नेक नजर पर हैं।"

मुन्ना खजानची की नुकीली दाढ़ी देखती रही। खजानची ने खुश होकर रास्ता पकड़ा।

यूसुफ के पीछे तीन आदमी लगाये गये। होटल में यूसुफ ने कलकत्ते के एक मित्र का पता लिखाया था। रात को प्रभाकर अपने मित्रों की तलाश मे बाजार में गये। पालकी के अन्दर बैठे रहे। पालकी के दरवाजे बन्द। दिलावर ने साथियो के साथ यूसुफ का पता ला दिया। बाजार के लोगो पर राजा के लोगों का प्रभाव था। जिस कमरे में सामान था, उसमे प्रभाकर के साथी नही मिले। प्रभाकर लौटे। अतिथिशाला के कमरे में आकर पूछा, "बाजार में रहने के कितने होटल हैं?"

दिलावर ने कहा, "सिर्फ तीन।"

"और कोई रहने की जगह है?"

"और रण्डियों के मकान हैं।"

निश्चय करके प्रभाकर ने पूछा, "क्या नाम इस आदमी ने लिखाया है?"

"शेख नज़ीर।"

कलकत्ते का पता दिलावर ने लिखा लिया था। प्रभाकर ने कहा, "सावधानी से इस आदमी का पीछा किया जाना जरूरी है। वहाँ तीन आदमी जायँ। एक पहले ही उस पते पर पहुँचे। साथ वकील और पुलिस का अच्छा आदमी, कम-से-कम इन्सपेक्टर होना चाहिए। हम चिट्ठी देंगे, वकील आदमी ले लेगा। इस पते का आदमी अगर यह नहीं, तो वह मिलेगा। इसके पहुँचने के पहले वहाँ पहुँचना चाहिए। यह भी बाद को वहाँ जायगा, और यह कहेगा कि वह स्वीकार कर ले कि वह यहाँ आया। तुम समझे?"

"हाँ, लेकिन अगर कहकर आया होगा तो सब-का-सब गुड-गोबर हो जायगा। बड़ा नीचा देखना होगा। वह इसी का नाम बतलायेगा, या नही मिलेगा। यह सरकारी आदमी है, वह भी होगा। इस तरह न बनेगा। अभी आप कच्चे है, बाबू। हम होटलवाले से कह आये हैं, कल वह इनसे इनके एक रिश्तेदार का नाम पूछेगा, अपने मन से पूछेगा, जैसे साले का नाम या मामू का या मौसी का। इन्हें जवाब देना होगा, अगर जवाब न दिया तो कहा जायगा कि ये राजा के सुपुर्द किये जायँगे। ये गलत नाम बतलायेंगे। इस तरह यही गवाही पक्की हो जायगी। फिर कलकत्ते का हाल मालूम कर लेंगे। राजा भी सरकार के हैं। अगर उन्होंने बात न मानी तो इनसे इतने सवाल किये जायँगे कि होश फाख्ता हो जायँगे।"

दिलावर की बातों से प्रभाकर को खुशी हुई। सिर झुका लिया। कहा, "आप लोगों से बहुत कुछ सीखना बाकी है।" मन मे कहा, 'काम उस तरह भी पक्का था, झूठ से कहाँ बचाव है?'

"बाबू, आपकी शराफत के हम कायल हो गये। आप हमें अपने आदमी मालूम होते है। हमीं आपके साथ रहेंगे। छोटी-सी तनख्वाह में ऐसी गिरह लगानी पड़ती है, नही तो लोग बिना शहद लगाये राजा को चाट जायँ। अब आप आराम कीजिए।"

प्रभाकर लेटे। रात का तीसरा पहर बीत रहा था।

सवेरे होटलवाले ने यूसुफ से एक रिश्तेदार का नाम पूछा। यूसुफ चौकन्ने हुए। मगर मामला तूल पकड़ जायगा सोचकर अपने रिश्तेदार का नाम बतलाया। होटलवाले ने यूसुफ के दस्तखत कराये। यूसुफ ने बिगाड़कर दस्तखत कर दिये। फिर कलकत्तेवाले जहाज के लिए रवाना हुए। खबर लेकर उनके पीछे तीन आदमी लगे। बहुत से यात्री थे। उन्हें मालूम नही हो सका, कौन उनकी गरदन नाप रहा है।

कलकत्ते मे उतरने के साथ उन्होने अपने नाम के साथ जो पता लिखा था, उस पर पहुँचने के लिए एक आदमी तीर की तरह छुटा। पहले दरजे की बग्घी किराये की की और जल्द चलने के लिए कहा। उसके दो साथी, रास्ते पर यूसुफ को तीसरे दरजे की टूटी बग्घी ठहराते हुए देखकर, पूछताछ करने लगे, "कहाँ जाना है—जनाब कहाँ से तशरीफ ले आये ?" मतलब जवाब लेना नही, रोके रहना था। यूसुफ सस्ते भाव चढना चाहते थे, जल्दबाजी नही की। एक बग्घीवाले से तै न हुआ दूसरे के पास चले।

आगन्तुको ने स्थान का नाम न सुना था। ज़रा देर करके आये थे। वे दूसरे के पास गये, साथ-साथ यह भी गये।

यूसुफ ने कहा, "तालतला ?"

"हाँ, बाबू।" बग्घीवाले ने जवाब दिया।

"क्या लोगे ?"

"डेढ रुपया।"

"वह क्या है थोडी दूर पर। डेढ रुपया बहुत है। ठीक-ठीक बतलाओ।"

"अरे साहब, हम भी साथ हो जायँगे, क्या बुरा है ? तै कर लीजिए। आप बडे आदमी हैं। पीछे बैठिए। हम आगे, पिछौडे रहेगे। आधा आप दीजिए, आधा हम।"

बात यूसुफ को जँच गयी। पूछा, "आप लोग भी वही चलेंगे ?"

"जी हाँ," एक ने कहा, "कुछ दूर और चलना है। पैदल चले जायँगे।"

"कहाँ से आ रहे है ?"

"उलूबडिया से।"

एक साथी मुसलमान था। यूसुफ मान गये। गाड़ी तै की। सवा रुपये की ठहरी। तीनों बैठे। मुसलमान दोस्त असल मे हिन्दू था, फ्रेंचकट दाढी रखाये हुए। चुपचाप बैठ रहे। गाडी चलती गयी।

पहले के गये हुए आदमी ने राज़ ले लिया। यूसुफ उससे कहकर नही गये। बतलाने जा रहे थे। राज़ लेकर और यह कहकर, "आप फँसाये गये है अपने किसी दोस्त से, उन्होने अपने नाम की जगह आपका नाम लिखाया है और किसी मामले मे फँस गये है; अगर आप हमारे पूछने का राज़ उन्हें न दीजियेगा, वे कहाँ गये थे, क्यो गये थे, किससे-किससे मिले थे, आगे का क्या इरादा है, उनसे दोस्त की हैसियत से मालूम करके हमें बतला दीजियेगा, तो बच जाइयेगा, कुछ फायदा भी होगा, वे कोई हों, एक आदमी है, अपने को पहले बचायेंगे, सरकारी आदमी खास तौर से आपको फँसा देंगे और खुद पर मारकर अलग हो जायँगे। याद

रखियेगा। हम आपसे फिर मिलेंगे।" यह कहकर वह आदमी अलग हो गया। दूर चलकर खड़ा हुआ। वातचीत हो चुकी थी कि यह आदमी अगर उधर जायगा तो पीछा करनेवाले साथी दो घण्टे के अन्दर उस जगह पहुँच जायँगे। यह साथी दो घण्टे तक प्रतीक्षा करेगा। यह पढा-लिखा मुसलमान था।

यूसुफ तालतल्ले पहुँचे। गाड़ी रोकी। दोनों साथी आधा दाम देकर उतर पड़े और सलाम-वालेकुम् करके चल दिये। तीसरा साथी प्रतीक्षा कर रहा था। तपाक से मिला। पूछा, "वह कहाँ है ?"

"साथ आया है।" एक ने कहा।

"राज़ मिल गया।"

"फँस जायगा ?"

"अव इसको कौन छोडता है ?"

"यहाँ जड़ जमानी पड़ेगी ?" एक ने पूछा।

"मानी वात है।" उस मुसलमान साथी ने कहा।

"गुंजाइश है ?"

"वहुत।" पहलेवाले ने कहा।

"तुम्हारी किस्मत खुल गयी।"

"मुमकिन, गहरी रकम हाथ आये।"

इक्कीस

"भाई नजीर !" यूसुफ ने पुकारा।

नजीर वैठे थे। अभी ही फुर्सत मिली थी। सोच रहे थे। कहनेवाले आदमी की वात पक्की मालूम हो रही थी। घवराये भी थे। ग़रीव थे। यूसुफ की दोस्ती से फायदा न हुआ था। कटने की ठान ली। आवाज पहचानकर उठे। दिल से नफरत थी, मगर मुस्कराहट से होंठ रँग लिये। थानेदार की निगाह से निगाह भी नीची रखी।

"अस्सलामवालेकुम्।"

"वालेकुम् अस्सलाम।"

"भाई, तुम्हारा नाम एक जगह लिखाया है।"

"किस जगह ?"

"तुम पुलिस से राज़ लेने लगे।"

"क्या हमसे पूछा गया ?"

"यह वातचीत तो पहले हो चुकी है।"

"इसका यह मतलव नहीं कि हम खुदा के लिए मुसलमान न रह जायँ।"

"इस दफे के लिए मान जाओ।"

"आप पूरा-पूरा हाल वयान कीजिए, वरना···"

"वरना ?"

"हाँ।"

"वरना आप सरकार से वदला चुका लेंगे।"

"नही चुकवा लूँगा।"

"तुम तो वहुत विगडे।"

"वात भी कोई वनायी ?"

"वात तो वनायी ?"

"वातें वनाते हैं।"

"अच्छा तो जो जी मे आये कर लो।" कहकर थानेदार साहव ने नकली ठहाका लगाया।

"मैं मजाक नही कर रहा।"

थानेदार साहव गर्म पड़े। कहा, "ऐसा भी होगा कि हम तुम्हारा दिल देख रहे हो और अस्लियत कुछ हो ही नही।"

"मुमकिन।" नजीर के स्वर में निवेदन न था।

"अच्छा तो आखिरी वात। अगर आप नही माने तो आज ही आपका चालान करा दूँगा।"

नजीर घवराये। कहा, "हमारी वात और हमे मालूम भी न हो, क्या तमाशा है।"

"अच्छा तो आप तैयार रहिए।"

"आप भी तैयार रहिए।"

थानेदार घवराये। अजीजी से कहा, "पुलिस राज़ दे देती है तो उसका वल घट जाता है। काम हासिल नही होता। आप मान जाइयेगा तो वक्त पर मीठा फल खाने को मिलेगा। नही माने तो हाथ मलते रह जाइयेगा।"

"पर हमें मालूम कर लेना है।"

यूसुफ हार गये। कहा, "हम एक जगह गये थे, जहाँ आपका नाम हमने लिखाया है।" फिर न वताया।

"कहाँ गये थे ?"

यूसुफ ने एक दूसरी जगह का नाम वताया। कहा, "सरकारी काम था।"

"आप ऐसा कहते है तो हमारी छाती दूनी हो जाती है। फिर ?"

"फिर और कुछ नही। यह याद रहे कि तुम्हारे मामू के तीन लड़के है, यह भी लिखाया है।"

"मेरे तो मामू ही नही। खुदा के फजल से अव्वाजान के सालियाँ चार थी, साला एक भी नही।"

"आपको हम वचाये हुए है, यह आप समझे या नही ?"

"हाँ, यह तो है।"

"और आप नही गये, यह भी साबित है।"

"हाँ, यह भी।"

"आपको जिल्लत गवारा करनी पड़ी, इसका हमको अफसोस है।"

नजीर सिर झुकाये खड़े रहे। यूसुफ गाड़ी खड़ी करके आये थे। उधर को चले। विचार में नजीर को सलाम करने की याद न रही।

गाड़ी तै करके यूसुफ बैठे। गाड़ी चली। कुछ दूर पर एक दूसरी गाड़ी किराये पर ली हुई थी। कुछ फासले से पीछे लगी वह भी चली।

यूसुफ के चले जाने पर नजीर के पास वही पहला आदमी गया। बुलाकर पूछा। नजीर ने दीन भाव से कहा कि यूसुफ की उनसे तनातनी हो गयी है, उन्होने बतलाया नही, जो कुछ कहा—यह-वह करके, वह थानेदार है, उनसे जान-पहचान है, दूर के रिश्ते मे आते है।

आगन्तुक ने कहा, "आप हमारे आदमी है। इन्होने आपको फँसा दिया है। हम आपको बचा लेंगे। कुछ रुपये भी देंगे। बाद को काम निकलने पर और मदद करेंगे। अभी आप एक चिट्ठी लिख दीजिए कि आपका यह नाम है, यह वल्दियत, इतने मामू है, और इसके इतने लड़के—यह यह।"

नजीर ने, बात पक्की है, सोचा। गरीब थे। रुपये मिल रहे थे। दावात-कलम लेकर कुल बातें सामने लिख दी।

आगन्तुक ने उन्हें पच्चीस रुपये दिये। नजीर हर तरह से उसके आदमी बन गये। यूसुफ का पूरा-पूरा हाल आगन्तुक को मालूम हो गया—वह कहाँ रहते है, उनके वालिद क्या करते है, आजकल क्या रुख है, किस कार्रवाई मे लगे हैं।

आगन्तुक वहाँ से राजा की कोठी आया। उसके साथी भी आये। उन्होने घर का पता और बाप का नाम मालूम कर लिया था। सामने के पानवाले ने बतलाया था, दोनों जगहो की बातें मिल गयी। लोग खुशी-खुशी टहलते रहे। अली को देखा। अली ने पूछताछ शुरू की। लोगो ने कहा, "बर्दवान से आये हैं।"

अली ने पूछा, "बर्दवान मे सुदेशी का आन्दोलन कैसा है?"

"कौन सुदेशी?" एक ने पूछा।

"यही जो सरकार के खिलाफ बमबाजी हो रही है।"

"आप अखबार तो पढ़ते होगे?"

"हाँ, हमने कहा···"

दूसने ने कहा, "बमवाले है।"

"कौन?" अली ने कहा, "हमारे साहबजादे थानेदार है।"

तीसरे ने कहा, "हमारे मामू के साले के ससुर इन्स्पेक्टर है।"

बाईस

प्रभाकर को जहाँ रखा है, उसी कोठी का पिछला हिस्सा है। दूसरी तरफ बुआ रहती थी। प्रभाकर के दोमजिले की छत, दूसरे छोर तक, बरगद और पीपल की डालो से छायादार है। भीतर, कोठो मे, अँधेरा। इतना प्रकाश कि काम कुल हो। खुली तरफ खिड़कीवाला बाग। दूसरे किनारे मर्दो के लिए बड़ा जलाशय, गहरा, मछलियो की खान। किनारे नारियलो की कतार। दूसरी पर, आम, जामुन, कटहल, लीची, नारंगी, शहतूत, फालसा, बादाम, रक्तचन्दन आदि के पेड। कही-कही गुलचीनी, गन्धराज, अशोक, हीग, अनार, गुलाबजामुन, योजनगन्धा।

खुली हवादार खिडकियो के एक बगल पलँग बिछा है, मशहरी लगी है। एक बडी मेज लगी है; काठ की; मगर अच्छी, कई कुर्सियाँ चारो ओर से रक्खी है। दो आलमारियाँ है जिनमे सामान, कपड़े और किताबें है। भीतर, दूसरी खमसार के रूप, बड़ी बैठक है। बत्ती से ही उजाला होता है। वहाँ प्रभाकर साथियो के साथ काम करता है। बैठक की दूसरी दीवार अकेली है, बडी खिडकियाँ लगी है, खोल दी जायँ तो गुप्त कार्य दिखे, लेकिन पेड़ो की घनी छाँह है। फिर भी काम चल जाय, दिये जलाने की दिक्कत न रहे, पर, डाल पर चढ़े अजनबी से दिख जाने की शंका, प्रभाकर खिड़कियाँ बन्द रखता है। ज़ीने की तरफ के पहरे से, एक दूसरे आँगन के बरामदे से आने-जाने का रास्ता है। प्रभाकर के कमरे के छोर से तालाब को निकलने का एक बाहरी ज़ीना है। पहले नीचे और ऊपर के दरवाजो में ताले पडे रहते थे; लोहे के पात जड़े बाहरवाले और काठ के भीतरवाले मे। यह उसका एकान्त रास्ता है। घिर जाने पर पहरेवाले ज़ीने से उतरने का दूसरा रास्ता है, फिर कई तरफ फूटी दालानें, आँगन से आँगन को चलनेवाली है।

वास निर्जन। निकलने और पैठने की राहे प्रभाकर देख चुका। सरोवर के दूसरी ओर मर्दाना बाग है, जिसमे तीन हजार पेड। गढ़ की दीवार के दूसरी तरफ गाँव का रास्ता। निर्जन और भी राहें है। इससे वह एक रोज बाहर के लिए निकल चुका है। रासपुर, बड़ा गाँव, केन्द्र है, चर्खे और करघे का काम होता है, जनता और जुलाहो मे प्रचार भी। सभी कमकरो का दिल बढ़ा हुआ। स्वदेशी-प्रचार के गीत गाते हुए। काम करते हुए। प्रभाकर का व्याख्यान हुआ। निरीक्षक-जैसे गये थे। बहुत-से दूसरे केन्द्र गये। फिर कलकत्ता चलने का बहाना बनाकर लौटे और रात को अपने प्रासाद-वास पर आये।

बंगाल और सारे देश मे आन्दोलन की चर्चा है। सैकड़ों कर्मी प्रान्त मे फैले हुए। संगठन और व्याख्यान और काम करते चले। विदेशी का बहिष्कार जोरो पर। जगह-जगह 'युगान्तर' की छिपकर बाते। सुरेन्द्रनाथ और विपिनचन्द्र के व्याख्यानो की तारीफ। अखबार रँगे हुए। वन्देमातरम् का पहला समस्वर आकाश को चीरता हुआ। गीत; भिन्न कवियो-गायको के भी संगठन, काम; दिन-रात काम; एक लगन।

प्रभाकर नहाने चला। सरोवर पर पक्के घाट है, लम्बान की दोनों पंक्तियों के बीचोबीच दूसरा घाट निकट है। एकान्त रहता है। कोठी के पिछले छोर से दूसरी तरफवाला घाट निकट पड़ता है। प्रभाकर उसी मे नहाता है। कोठी के सदर फाटक की वगल में सरोवर का राजघाट है। उसमे लोग आते-जाते है। दोनों घाटो के चारो ओर मौलसिरी के पेड़ लगे है और काफी पुराने हो चुके है। वड़ी घनी छाया है। वैसी ही ठण्डक भी।

प्रभाकर ने डुवकियाँ लगाकर स्नान किया। भीगे अँगोछे से वदन मला। हाथ-पैर रगड़े। कुल्ले किये। कुछ तैरा, कुछ खेला। इधर-उधर के दृश्य देखे, पानी से भीगी पलको से कैसे दिखते है। फिर निकलकर धोती वदली और निचोड़कर, गीली धोती और तौलिया लेकर चला।

तेईस

खजानची खोदावख्श, मुन्ना और जटाशंकर के पेट मे पानी था। तीनों ने वचत सोची। तीनो के हाथ मे पकड़ है।

जटाशंकर से मिलने का वक्त आया। खजानची कलकत्ता और राजधानी एक किये हुए है।

दुपहर का समय। किरणों की जवानी है। हरियाली का निखार। मुन्ना कोठी की वगलवाले रास्ते से गुजर रही है। रुपया रक्खा है, दूर से निगरानी रखती है। कई दफे वह अँधेरी कोठरी देखती है। सदर की तरफवाले घाट की वगल से, किनारे-किनारे जो सडक दूसरे घाट को जाती है, उसी पर टहलती हुई। प्रभाकर को दूसरे किनारे से कोठी की तरफ चलते, फिर कोठी के भीतर चले जाते देखा। पेडों की आड है और सिंहद्वार से दूर है। अन्दर-महलवाली दासी के लिए कोठी के दूसरे किनारे तक वढ़ जाना, अन्देशे के वक्त, स्वाभाविक है। उसकी प्रभाकर पर नजर पडी कि तेजी आयी। चौकन्नी हुई। अपने में पूछा। किसी को उधर से जाते नही देखा। वहाँ जीना है, नही मालूम। कभी गयी नही। कोठी का उधर-वाला हिस्सा नहीं दिखा। प्रभाकर को किनारे से भीतर जाते देखा।

खजानची अभी नही आया। आयेगा, कुछ ठहरकर चलेगी, राह पर मिलेगी। पूछना और काम लेना है। छिपी भी है, देखती भी है। यहाँ से सिंहद्वार और वह रास्ता नहीं देख पड़ता। अनुमान है, वक्त पर लौट पड़ेगी। सजग है—खजानची लौट न जाय।

खजानची वेचैन है। घटना घट चुकी। वीजक जमादार के हाथ पड़ा। परदा फाश हुआ। वँध गये। सरकारी आदमी की शरण ली। काम कर रखने की ठानी। एजाज से वातचीत करानी है। राज़ लेना है। निचले वर्ग की औरत से मदद

चाहिए। मुन्ना आँख के सामने आयी। सहारा मिला। आखिरी हिम्मत बाँधी कि इस जाल से छूट जायें। सरकार की शिरकत के ख्याल ने पाया जमाया।

जटाशंकर से मिलना आवश्यक है, खजानची यथासमय आये। खजाने की तिजोरियाँ खोलीं, बीजक देखे। जटाशंकर भी खड़े हुए देखते रहे। चपरासी के सन्दूक बन्द करने पर खजानची से जटाशकर ने पूछा, "ठीक है ?"

"ठीक है।" गम्भीर अप्रसन्नता से खजानची ने कहा। जटाशंकर सिपाही की गवाही तैयार कर रहे है। दोस्ती रही। लेकिन बीजक छिन गया है। बस नही। फँसे हैं। बचकर चले।

जमादार काम ले गये, खजानची से उतरते-उतरते न सहा गया। कहा, "जमादार, क्या यह गवाही अलग से पेश होगी ?"

सिपाही समझ गया। पूछा, "कैसी गवाही ?" बातें इधर-उधर सुन चुका था। खजाने की बातचीत ने जड़ जमा दी। खजानची के सामने सिपाही ने कहा, "मैं समझ गया।"

तेज पड़कर खजानची ने कहा, "नही सुना ? हमने कहा, ठीक है।"

"बादवाली बातें भी ?" सिपाही ने फिर सवाल किया।

जमादार ने कहा, "हम सधे होते तो पूछते क्यों ? सवाल मत करो।"

मगर सिपाही का भूत न उतरा, शंका-समाधान न हुआ। छुटकारा भी न था।

खजानची ने निकलते हुए धीरज दिया, सब लोग एक ही राह से गुजरेंगे। जहाँ आपकी गवाही होगी, वहाँ हम भी होगे।

सिपाही खड़ा रहा। जमादार और खजानची साथ निकले। रास्ते-रास्ते निकल गये। सिंहद्वारवाले घाट से कुछ फासले पर एक कुंज मे बातचीत करने लगे। मुन्ना ने देखा। छिपकर बातचीत सुनने के लिए, रास्ते के किनारे की मेहदी की बेड़ों से बचती हुई पास पहुँची। खजानची से मिलने का मुकाम कुछ आगे है। जटाशंकर की नाडी छुट रही थी। पूछा, "क्या खबर है ?"

खजानची ने कहा, "अभी दो रोज मत बोलो।"

"तब तो हमारी नौकरी चली जायगी।"

"तब और नही बचेगी। पहले की बातें भी हमसे बताओ।"

"आप यह बताइए कि आगे की कार्रवाई क्या होगी ?" जटाशंकर ने पूछा।

मुन्ना समझ गयी, इन दोनो का मेल मिल चुका है। कारण समझ मे न आया। जमादार के रपोट करने के विचार से डरी। पर जमी बैठी रही।

"अभी कुछ नही कहा जा सकता, जमादार।" खजानची ने लाचार होकर कहा।

"अब हमारे मान की बात नही।"

"जमादार, सिर्फ इस कोठे का धान उस कोठे गया है। दबा जाओ।"

"दबा कहाँ से जायँ ?"

जमादार रपोट न कर दे, इस डर से मुन्ना निकली। मिलने की ठानी। मेंहदी के किनारे से सड़क पर आ गयी।

एकाएक उसके पहुँचने पर दोनों त्रस्त हुए। उसने कहा, सिपाही की ओर से

मेरी गवाही होगी।

खजानची सकपका गया। जटाशंकर अपने बीजक की ढाल से तलवार झेल जाने को तैयार था। मुन्ना ने कहा, "मेरा हाल दोनों को मालूम है। हम तीनों का मिलना था। क्योंकि रानीजी हैं। रानी और राजा मिल गये। रुपया हमी लोगों में है, हमी लोगों का है। मिल्लत से चलना है. क्योंकि हमको बचना है। सिपाही को हम समझा लेंगे। क्या कहते हो जमादार ?"

जमादार का बीजक-बल घट रहा था। चुपचाप खडे थे।

मुन्ना ने सोचा, परदा फाश हुआ तो बुरी हालत होगी, रिश्वत दे दी जायगी तो अभी मामला दबा रहेगा। कहा, "रानीजी जल्द आजकल में रुपया देनेवाली हैं। आप लोग रानी के तरफदार रहिए। यह काम इसीलिए किया गया है। राजा के कान में बात पड़ जायगी तो बाँसों पानी चढ़ेगा। मामला बहुत बढ़ेगा। नौकरियाँ जायेंगी। पुलिस के हाथ गया तो सजा की नौबत आयेगी। हमी लोग बँधेंगे। रानी और राजा को कुछ नही होगा। संगठन रहेगा तो मजे में चले चलेंगे, क्या कहते हैं ?"

"इससे अच्छी और कौन-सी बात है ?"

जटाशंकर ने भी खजानची की बात दुहरायी।

मुन्ना ने कहा, "जमादार, अब तुम चलो, उस सिपाही से मैं बातचीत कर लूंगी। यह बात हम तीनों की रही। रानी साहबा से तुम मिल नही सकते।"

जमादार चलने को न हुए, फिर कुछ कहना चाहा, मुन्ना ने बीच में खुलकर कहा, "अब चलो जल्द, यह मालूम नही— ये रानी साहबा के क्या है और होगे ?"

जटाशंकर चले। रास्ते पर सोचा, 'राजा को बीजक लेकर न दिखाये। पहले का हाल कहना होगा; नहीं मालूम, मामला पल्टा खाय। जाने दिया जाय।'

चौबीस

खजानची और मुन्ना पीपल के पास गये। खजानची ने गम्भीर होकर कहा, "जब कि हमने काम कर दिया है, एक काम हमारा तुम कर दो या रकम वापस करो। अब बात दो की नही रही।"

मुन्ना, "कौन-सा काम है ?"

"पहले हम बता दें, तुम्हारा-हमारा फायदा कहाँ है। हमको नहीं मालूम, रुपयों का तुमने क्या किया। यह बता सकते हैं कि जिनकी वजह इतना रुपया निकाल सकती हो, उनसे सरकार बड़ी है, वहाँ से और फायदा उठा सकती हो। अगर हमारी बात पर न आयी, तो मजबूरन यह राज सरकारी आदमी को देना होगा। नहीं तो बचत नहीं। जिसके पास रुपया है, चोर साबित होगा। सरकार

आसानी से पता लगा लेगी, रुपया रानी के पास है या नही। अगर न निकला तो तुम्हारा क्या हाल होगा, समझ लो। इस मामले को लेकर सरकार के पास हमारे जाने के यही माने होते है कि हमारा कुसूर नही, ताली चुरायी गयी।"

"यह कौन कहता है कि नही चुरायी गयी, कहो मैं भी कहूँ, हाँ, लेकिन मैंने चुरायी, यह तुम्हे कैसे मालूम हुआ ? कैसे कहोगे, फलाँ ने चुरायी ? सुनो, तिजोडी के फिर मे खुलने का सुबूत गुजर चुका है। इतने उड़ाके न बनो। तुम नप चुके। मेरी के मानी, रानी की पकड है, और तुम्हारी—बचत के लिए सरकार की। क्या रानी अपना सत्यानाश करा लेंगी ? तुमसे पहले यहाँ दगेगी। यही रहना है। इस आग से सारा खानदान जल जायगा। फिर, माने रहने पर, वह हासिल हो सकता है। रुपये खैर मिलेंगे ही। काम भी सँवार दिया जा सकता है।"

"यह सही है, पर तुम्हारी भी पैठ होगी, और ऐसी जो हममे नही हो सकती। सरकार की तरफ से उधर की बाते तुम्ही से ली जायँगी। तुमारे सीधे तअल्लुकात होगे। सिर्फ यह कि यह काम हमसे सुनकर तुम्हे करना है, फिर हम सरकार के आदमी से तुम्हारा हाल कहेंगे : वहाँ का कोई तुमस पूछेगा। सम्बन्ध हो जायगा।"

"इस तरह सम्बन्ध नही होता। वह कौन-सा काम है ?"

"एजाज़ से कुछ पूछना है।"

"हाँ !"

"हमारा फायदा है। यह तुम्हारी समझ में आ जाय तो गुल खिल जाय। तुमसे तुम्हारे आदमी उठेंगे। तुम्हें यहाँ से कहाँ तक वढना है। जमीदार तुम्हारे-हमारे आदमी नही। हम मुसलमान पहले ऐसे थे जैसे अँगरेज। अब रैयत की रैयत है। माली हालत हमारी-तुम्हारी एक है। सरकार बगाल के दो टुकड़े कर रही है। इसमे तुमको हमको फायदा होगा यहाँ—जमीदार की जड हिलेगी, यानी रैयत को फायदा होगा। इस काम मे सरकार की मदद करनी है।"

मुन्ना पर असर पड़ा। जिससे जाति-भर का भला हो वह काम सरकार ही कर सकती है। जाति-प्रथा की सतायी मुन्ना का कलेजा डोला। जब्त किये खड़ी रही, चपल अपढ औरत। फँसकर कहाँ तक बहती है, देखने की उमंग आयी। पूछा, "एजाज़ से क्या पूछना है ?"

"एजाज से आजकल मे मिलकर पूछ लो, क्या हालात है ? लौटकर जवाव दे जाओ।"

मुन्ना सहमत हुई। खजानची मन में सोचता हुआ वढ़ा कि रुपये रानी को दिये गये या नही।

डाल के सैकड़ों हाथों ने मुन्ना पर फल रक्खे। चली जा रही थी, पराग झरे, भौंरे गूंजे। तरह-तरह की चिड़ियों की सुरीली चहक सुन पड़ी। दुपहर के सन्नाटे के साथ मौसम की मिठास। फिर प्रभाकर याद आया। दूर से घुसते देखा है। कोठी मे रहता है। कौन है ? मुन्ना धीरे-धीरे वही चली। कोठी की बगल से जानेवाला रास्ता सुनसान रहता है। आदमी इक्के-दुक्के। मुन्ना ज़ीने के पास खड़ी हुई। जहाँ से आये थे वहाँ के लिए अनुमान किया, और घाट की तरफ चली नजर उठाकर इस हिस्से की बनावट देखती हुई। बुआवाले बाग के सामने दोमंजिला है। निकलने का दूसरा ज़ीना है। बाग में जाने का ज़ीना नही। उसी राह जाना पड़ता है। नीचेवाली मंजिल मे पुरानी चीजें कुफ्ल में रक्खी है। कोई राह नही। एक अँधेरी कोठरी है, एक तरफ का दरवाजा टूटा है। उसको बाग का हिस्सा समझ सकते हैं। तालाब के किनारे की कोठी उसने नहीं देखी; यों बहुत-सा हिस्सा नही देखा। बगीचे की तरफ खुले कमरों को देखकर लौटी। उसको जान पड़ा, सुनसान दिखता है। रहने की आहट नही मिलती।

रहस्य से मुस्कराकर सिंहद्वार लौटी। जमादार बैठे थे। मुन्ना को सुनाकर कहा, "देखो, रघुनाथजी की क्या इच्छा है।"

"हम अभी आते हैं।" मुन्ना ने कहा, "बस, आज रानीजी का बदला चुका लिया जाय।"

"कैसे ?" षड्यन्त्रवाले की आवाज से पूछा।

"अभी आती हूँ, उसको चाहते तो नही ?"

जमादार सन्न हो गये। मुन्ना ने ज़रा रुककर पूछा, "हम हों या वह ?"

"तुमको कौन पाता है ? तुम्हारी चल रही है।"

"फिर उसकी तरफ लपकना मत।"

"अच्छा, चली आ।"

मुन्ना घूमी, "सिपाही भगता नही, जीत की जगह है लेता है। हमारी हो, तो अपनी गरदन नपाये देते हैं।" ड्योढी की ओट में खड़े जटाशंकर ने कहा।

प्रेम की आँखों मुन्ना ने देखा।

"हम राह देख रहे थे। बता दो, कितने की चोरी हुई ?"

"पाँच लाख की।"

"गलत है।"

मुन्ना ने जटाशंकर को देखा। जटाशंकर हाथ पकड़कर कागजात के कमरे में ले गये। देर तक बातचीत की। हाल समझकर रुपये बताकर बीजक दे दिया। दोनो के गहरे सम्बन्ध हो गये।

छब्बीस

मुन्ना की निगाह नीली हो गयी, चाल ढीली। चलकर महलवाले भीतरी तालाब में अच्छी तरह स्नान किया। गीली धोती से निकलकर बुआ के कमरे मे गयी। एक बज चुका था। चुन्नी फर्श पर चटाई बिछाकर दुपहर की नीद ले रही थी। मुन्ना की थाली चूल्हे पर रक्खी हुई। भोजन करके चटाई बिछाकर लेटी। आँख लग गयी।

जब उठी, चुन्नी काम कर रही थी। बुआ लेटी हुई थी। बगल की दूसरी कोठरी मे मौसी बैठी हुई खाने का मसाला तैयार कर रही थीं।

मुन्ना कुछ नोट ले आयी। बरामदे पर गिने। दस और पाँच रुपये के पहचानती थी। ये थोड़े थे। जटाशंकर को एकान्त मे बुला ले गयी और कहा, "आज ही सिपाही इकट्ठे कर लेने है, बाजार चले जाओ, पुलिस के साफेवाला कपड़ा खरीद लो। सबको सिपाहियों की तरह पेश करना है कि बाहर के पहरेवाले न पहचान पायें। पहले रानी का बदला। राजा से एक जवाब तलब करा लूं, फिर खजांची की खबर लूं।"

"उससे क्यो तन गयी?"

"कट गया। फिर फाँसा। मैं फँसी। इसका काम करना है। मगर अकेली रही तो इसको अपने रास्ते न ला पाऊँगी। तुम्हारी मदद पार कर सकती है। तुम हमारा हाथ न छोडो, तुमसे दिल टूट चुका था। मगर तुमने, डराकर भी बाँध लिया। इस मामले में हम अकेले थे, अब दो-दो हैं। भेद किसी दिन खुलेगा, जब तक बच निकलना है, या पुख्ता सूरत निकाल लेनी है। तुम हमसे मिले, खजांची से भी, हमारा खजाची का यही हाल। हम एक-दूसरे को फँसाना भी चाहते है। खजांची सरकार की मदद लेगा।"

"पहले हमको भेद बतला दिया होता?"

"तो न उधर का फँसना होता, न इधर का।"

"अब तो सारा संसार फँस गया।"

"नही तो मतलब नहीं गठ रहा था।"

"रुपये रानीजी के पास नही, यह टेढ़ा है।"

"टेढा हो, सीधा, बचत न थी अगर तुम बीजक रख लेते।"

"कहो, बचत के लिए दे दिया।"

"नही, मर्दानगी के लिए।"

मुन्ना बुआ के पास गयी। बुलाकर बाग ले गयी। सूरज नही डूबा। पेड़ों पर सुनहली किरणों का राज है। तेज हवा बह रही है। बुआ का शानदार आँचल उड़ रहा है। मुन्ना सिपाही या फौजी हिन्दुस्तानी औरत की तरह दोनों खूँट कमर में खोंसे हुए है। अनानास के झाड़ की बगल में मौलसिरी का बड़ा पेड़ है, तने के चारों ओर कमर-भर ऊँचा पक्का गोल चबूतरा बँधा हुआ है। दायीं ओर कुछ दूर तालाब, पीछे और बायीं ओर ऊँची चारदीवार, सामने कोठी; वही जगह जहाँ प्रभाकर रहता है। मुन्ना देर तक बैठी हुई बरामदे पर आँख गडाये हुए बुआ को फूल-पत्तियों की बातचीत में बहलाये रही। प्रभाकर के बरामदे पर एक चिड़िया न दिखी। बुआ से उसने कहा, "कैसा समय है?"

"बहुत अच्छा।"

"क्या चाहता है जी?"

"बहुत कुछ।"

"सबसे पहले क्या?"

"हमको लाज लगती है। हमारा जी कुछ नही चाहता। जब भाग फूट गया, तब चाह कैसी?"

"यह तो हमारे लिए भी है। लेकिन न जाने क्यों, चाहना पड़ा, भाग को जगाना पड़ा।"

बुआ का ब्राह्मणत्व जोर मारने को था, मगर सँभल गयी। कहा, "जैसा कहा जाता है, वैसा करती ही हूँ।"

"हमको रानीजी की हैसियत से कहना पड़ता है। तुम यह समझ चुकी कि पीछा नही छूटता। तुमको ऐसा करना चाहिए कि पीछा छुड़ाकर मर्द भगे।"

"अच्छा नहीं जान पड़ता। परमात्मा के घर जाना है। जी को बेपर्दगी पसन्द नहीं। लाज बडी चीज है। दूसरा जबर्दस्ती खोलता है तो बचाव की जगह रहती है।"

"तुमने दिल दे दिया। यह दिल मर्द को न दो। लेने लगोगी तो मालूम होगा कि वह तुम्हारा नहीं। या तो वह तुम पर है या तुम उस पर। आज तक मर्द को ही तुमने अपने ऊपर पाया होगा। अब उल्टा नजर आयेगा। बचत की और जगह मिलेगी। मर्द झुका रहेगा।"

बुआ को बल मिला। पूछा, "क्या मर्द के पीछे लगना होगा?"

"हाँ, और वह इतना बडा मर्द है कि यहाँ उससे बड़ा मर्द नही।"

"वह कौन है?"

"वह राजा है। वही यह अपमान कराता है। आज तुमको रानी का सम्मान दिया जायगा। साथ सिपाही रहेंगे। यह न समझना कि तुम रानी नही, बुआ हो। कभी यह न जाहिर करना कि किसी मतलब से तुम गयी हो। तुम्हारे साथ सब पुलिस के सिपाही रहेंगे। खूब याद रहे, कहना, मैं रानी। तुमको कोई पहचान न

पायेगा। मैं साथ रहूँगी, लेकिन दूर। जो सिपाही बहुत पास रहेगा, उसको अपना जिगरी मत समझना।"

"हमको डर लगता है।"

"हम कई आदमी साथ रहेंगे। डर की कोई बात नहीं। कहो, क्या कहोगी।"

"मैं रानी।"

"हाँ।"

सन्ध्या की छाया पड़ने लगी। मुन्ना ने बरामदे की तरफ देखा, कोई नही देख पड़ा। बुआ को साथ लेकर लौटी। हवा और सुहानी हो गयी। बुआ को पहले शंका थी, मगर हृदय के कपाट जैसे खुल गये; जान पड़ा, संसार में धर्म का रहस्य कुछ नही—सब ढोंग है।

बुआ को टहलने के लिए छत पर छोड़कर मुन्ना सिपाही के पास गयी और उस तरफ जाने के लिए कहा।

सिपाही ने कहा, "वह देख, बरामदे का दरवाजा बन्द है। वहाँ, माल की निगरानी करनेवाला जाता है।"

"वहाँ कोई रहता नही ?"

"नही।"

"तुमको और कुछ मालूम हुआ ?"

"हाँ, जमादार ने सबको हाजिर रहने के लिए कहा है, और यह खबर है कि रानीजी ने इनाम भेजा है, सब सिपाही इस कोठी के आ जायँगे, तब दिया जायगा।"

अट्ठाईस

रात आठ का समय होगा। प्रमोदवाले कमरे में राजा साहब बैठे है। कुल दरवाजे और झरोखे खुले है बड़े-बड़े। सनलाइट का प्रकाश। तेजी से, लेकिन बड़ी सुहानी होकर हवा आती हुई। दूर तक सरोवर और आकाश दिखता हुआ। सरोवर में बत्तियों की जोतवाले कमल बिम्बित। कहीं-कही हवा से होता लहरों का नाच दिखता हुआ। चारो ओर साहित्य, संगीत, कला और सौन्दर्य का जादू। साजिन्दे बैठे हैं। कान के बाहर से साज चढाकर बजाने की आँख देख रहे हैं। बेबसी से बचने की उम्मीद भी है। प्याले चल चुके है। फर्श पर बिछी ऊँची गद्दी पर एजाज़ और राजा बैठे है। एक बगल प्रभाकर है। नीचे कालीन बिछी चद्दर पर साजिन्दे।

राजा साहब ने एजाज़ से पूछा, एजाज ने सम्मति दी। साजिन्दो ने अपने-अपने साज़ पर हाथ रक्खा। एजाज ने गाया—

"ज़ाहिद, शराबेनाज से जब तक वज़ू न हो,
काबिल नमाज पढ़ने के मसजिद में तू न हो।
पहलू से दिल जुदा हो तो कुछ ग़म नहीं मुझे,
ऐ दर्दे-दिल जुदा मेरे पहलू से तू न हो।
वह गुमशुदा हूँ मैं कि अगर चाहूँ देखना,
आइना मे भी शक्ल मेरी रूबरू न हो।
शाखें उसी की हैं यही जड़ है फ़साद की,
पहलू मे दिल न हो तो कोई आरजू न हो।
मसजिद मे मैंने शेख को छेड़ा यह कहके आज
मय लाऊँ मैकदे से जो आवे-वज़ू न हो।
सारी दमक-चमक तो इन्ही मोतियों से है,
आँसू न हों तो इश्क में कुछ आबरू न हो।"

फिर गाया—

"बाजी कहूँ बैरन, बिखभरी सवत बाँसुरी
अधर-मधुर ध्वनि नेक सुरन सों
कूक-कूक तड़पाय, सखी री, वाकी
गाँस फाँस जिय हूक। छन आँगन, छन
चढ़त अटा पर, कर मल-मल
पछितात सेज पर,
बैरन सवत सताये चॉद,
रह-रहके तान नयी फूंक।"

ठुमरी का रंग जमा। राजा साहब ने प्रभाकर से गाने का अनुरोध किया। प्रभाकर ने गाया—

"प्रथम मान ओंकार।
देव मान महादेव,
विद्या मान सरस्वती
नदी मान गंगा।
गीत तो संगीत मान,
संगीत के अक्षर मान,
वाद मान मृदंग,
निरतय मान रम्भा।
कहें मियाँ तानसेन,
सुनो हो गोपाल लाल,
दिन को इक सूरज मान,
रैन मान चन्दा।"

प्रभाकर के गाने के भाप पर तूफान उठा। एजाज़ की गायिका हिली। स्वदेशी आन्दोलन मे आज की धनिक और श्रमिक की जैसी समस्या न थी; पर आन्दोलन को असफल करने के लिए यह समस्या लगायी गयी थी। प्रभाकर विचार करता

था तब तक साहित्य द्वारा रूस के जन-आन्दोलन की खबरें आने लगी थीं। जमींदार मुसलमान स्वदेशी के तरफदार थे; इसलिए मुसलमान रैयत बहुत बिगाड़ नहीं पैदा कर सकी। पुराणों का राज्य समाज में तब और प्रबल था, बादशाहत का लहजा नहीं बिगड़ा था। प्रभाकर सोचता हुआ बैठा रहा। गाने की तरंग उठकर जैसे निकल गयी। एजाज उसकी गम्भीर मुद्रा से प्रभावित हुई। राजा साहब भी खामोश बैठे रहे। देशप्रेम जगा था। रोशनी, पश्चिम का चालित। स्वामी विवेकानन्द की वाणी लोगों में वह जीवनी ले आयी, खासतौर से युवकों में, जिससे आदर्श के पीछे आदमी जगकर लगता है। प्रभाकर राजनीति में इसी का प्रतीक था। धैर्य से बैठा रहा।

इशारा पाकर साजिन्दे चले। प्रभाकर उठने को था कि खिलावर भीतर आया; राजा साहब के कान में कान लगाया। खबर राजनीतिक है। राजा साहब ने प्रभाकर के सामने पेश करने के लिए कहा। खिलावर उछल पड़ा। कलकत्तावाले सबूत दिखाये—वह कागज, नजीर के नाम से यूसुफ का आकर ठहरना, बातचीत करना, होटल में गलत नाम लिखाना।

एजाज ने हुलिया पूछा। आदमियों ने बताया। एजाज खामोश हो गयी।

प्रभाकर आग्रह-धैर्य से सुनता रहा। राजा साहब ने धन्यवाद देकर सबको विदा किया। इनाम की घोषणा की।

राजा राजेन्द्रप्रताप ने प्रभाकर से पूछा, "आपका क्या अन्दाज है?"

"चर है, सरकारी।"

"अब हमको एक छन की देर नहीं करनी। कलकत्ता रवाना हो जाना है। बँध गया। हमारे पास भी मसाला है। यह वही आदमी है।" एजाज ने कहा।

"लिखा प्रमाण हमको दीजिए।" प्रभाकर ने कहा।

राजा साहब ने कहा, "नहीं, हमीं रखेंगे, बैरिस्टर साहब से सलाह लेंगे, इस तरह आपका भी हाथ हो गया।"

"तो हमें भी आपके साथ या कुछ पीछे, या दूसरे रास्ते से चलना चाहिए।"

"आप परसों या और दो रोज बाद आइए।"

प्रभाकर शान्त भाव से उठा और कहा, "अच्छा, तो आज्ञा दीजिए।"

राजा साहब ने नमस्कार किया।

उन्तीस

मुन्ना ने देखा, दस बज गये। सिपाहियों को 20)-20) रुपये इनाम दिया था। बाजार से कपड़ा आ गया था। टुकड़े काटकर साफे बना लिये। रानी के अपमान का प्रभाव सब पर है। सब चाहते हैं, राजा ऐसा न करें कि उनके रहते एजाज

को रक्खें।

डण्डे सबके हाथ में, पुलिसवाले नहीं, मिर्जापुरी। चमरौधे की नोक देखते, सिंहद्वार की बत्ती के इधर-उधर टहल रहे हैं।

रुस्तम को सिखा दिया। चलने और पहुँचने का रास्ता और समय मुकर्रर कर दिया। पहरे की दो तलवारें निकलवा ली। रुस्तम को दी। एक बुआ के बाँधकर ले चलने के लिए, एक खुद बांधे रहने के लिए। एकान्त में दो घण्टे तक रहना है, कहकर ध्वनि में समझा दिया, और विश्वास बँधा दिया कि बुआ को उसने समझा दिया है।

बुआ उसकी बात पर आ चुकी थी, एक सत्य, एक न-जाना दबाव, एक तड़प थी जिससे उनके पैर उठे। ढाढ़स बँधा, मुन्ना मिलेगी। कुछ बिगड़ने न पायेगा, अगर वे खुद न बिगाड़ बैठी।

बुआ को सबसे पहले मुन्ना ने खिड़की से निकाला। सिपाहियों को यह बात नही मालूम। रुस्तम कोठी की खिड़की की दूसरी तरफ खड़ा राह देख रहा था। दोनों कन्धो पर पेटी से बँधी म्यान के साथ दो तलवारें लिये था। मुन्ना ने बुआ को रुस्तम के हवाले किया और लौटी। मन में ब्राह्मणों के सत्यानाश का दरवाजा खोला।

बुआ शरमायी। मुन्ना को देखकर एक दफे जैसे बल खा गयी। सँभलकर निगाह बदली और रुस्तम के साथ चल दी।

मुन्ना मुस्करायी। जमादार के पास आयी। सिपाहियो को मिठाई और पूरी और दस-दस बीड़े पान बांध लेने के लिए बाजार भेजा। दो घण्टे का वक्त निकाला। जमादार को एकान्त मे लेकर बातचीत करने लगेगी।

तीस

रुस्तम बुआ को लेकर चला। रात के दस के बाद का समय। गढ़ सुनसान। मर्दाना बाग से चला। बुआ को शंका हुई। फिर मिट गयी।

"देखती हो दो तलवारें हैं?" रुस्तम ने प्रेमी गले से पूछा।

"हाँ," शरमाकर बुआ ने कहा।

"एक तुमको बाँधनी है।"

"हाँ।"

"बाँधना आता है?"

"नहीं।"

"हमी बाँधेंगे। सुना है?"

"हाँ।"

"इसका मतलब समझ मे आया।"

बुआ लजा गयीं। सामने आमो के पेड़ थे। रुस्तम बढ़ा। एक की झुकी डाल पर दोनों तलवारें टाँग दी।

"यहाँ सिर्फ हम हैं और तुम।"

बुआ शरमायी। रुस्तम का पुरुष पूरी शक्ति पर था। कहा, "उस रोज नहा-कर तुम जैसी निकली, वैसा ही हो जाना है।"

बुआ का हाथ रुका। जी ऊबा।

रुस्तम ने पूछा, "तालाब मे और लोग थे, वे क्यों थे ?"

"हमको नही मालूम।"

आवाज से रुस्तम समझ गया कि जमादार का कहना दुरुस्त; वे फँसाये गये, अपनी तबियत से नही गये।

घबराया कि इनका धर्म बिगाड़ा तो बुरा हाल न हो; फिर सोचा, मुन्ना का इशारा कुछ ऐसा ही है।

कहा, "हम वे हैं जिनके बहुत-सी बीवियाँ होती है ?"

"यह हमारे यहाँ नही ?"

"तुमको आज हमारी बीवी बनना होगा।"

"मैं बीवी नही बनती।"

"तुमने उससे कुछ कहा, उसकी बात मानी ?"

"जबरदस्ती कहलाने से कोई कहना है या मानना।"

"लेकिन हमारे साथ के लिए तुम बात हार चुकी हो।"

"मैं बात नही हारी।"

"यह तलवार कैसे बाँधी जायगी ? कमर नापनी पडेगी या नही ? इससे कुछ समझ मे नही आया ? राजे से बातचीत हँसी-खेल है ? हम बगल मे रहेंगे, इससे तुमको इशारा कर दिया गया, तुम्हारी मंजूरी ले ली गयी, इतनी दूर तुम निकल-कर आ गयी। यहाँ हम पकड़ जायँगे, तो कोई क्या कहेगा ? ये दोनो इतनी रात को यहाँ क्या करते थे, क्यो आये थे, इनका आपस मे क्या रिश्ता है ? हम तभी बच सकते है जब मियाँ-बीवी—तुम रानी, हम राजा। वहाँ तुमसे क्या कहलाया जाना है ?"

बुआ झेंपी, मगर यह झेंप मंजूरी नही।

"हम तुम्हारी कमर नापें ?"

"हे भगवान् !" बुआ अन्तरात्मा मे रोयी।

"कौन हो तुम ?" रुस्तम के पास पहुँचकर किसी ने पूछा। भरी आवाज।

रुस्तम डाल की ओर बढ़ा और मूठ पकड़कर तलवार निकाल ली—"सुअर, कौन है तू ?" पूछा।

तलवार के निकलते ही पिस्तौल की आवाज हुई, मगर आदमी के निशाने पर नही; मर्द का गला गरजा, "भग यहाँ से, या रख तलवार, नही तो खाता है गोली।"

रुस्तम भगा। बागीचे में पहले का जैसा सन्नाटा छा गया।

प्रभाकर डेरे पर आ रहा था। यही उसका रास्ता था। आते हुए देखा। वुआ से पूछा, "आप कौन हैं?"

घबराहट के मारे वुआ का वोल वन्द हो गया, प्रभाकर खड़ा रहा। धैर्य देकर पूछा, "आप कौन हैं?"

"हम वुआ।" लड़की के स्वर से, रक्षा पाने के लिए, वुआ ने कहा।

देर अनुचित है सोचकर प्रभाकर ने कहा, "बचना है तो हमारे साथ आइए।"

"यह तलवार ले लूं।"

तलवार एक ओर है, समझकर प्रभाकर चौंका। कुछ समझ में न आया। कहा, "हमारी निगाह मे अब तलवार का जमाना नही रहा। जिनकी तलवार होगी, वे ले लेंगे। यहाँ इस आदमी के अलावा और कोई था?"

"और कोई नही।"

"यह कहाँ से तुमको ले आया?"

"मुन्ना ने इसके साथ कर दिया था और वहुत से काम करने के लिए कहे थे।"

"किसके खिलाफ?"

"राजा के।"

"आदमी किनके?"

"राजा के।"

"तरफदारी किनकी?"

"रानी की।"

"अच्छा।" प्रभाकर मुस्कराया।

"आपको रहना मंजूर है या हमारे साथ चलना?"

"हम एक छन इस नरकपुरी में नही रहना चाहते।"

"हमारे साथ आइए।"

प्रभाकर वढ़ा। वुआ पीछे हो ली। तालाब के किनारे वुआ को खड़ा किया। दो एक सवाल और पूछे। समझ की निगाह उठायी और अपने जीने की ओर चला।

कोठी पर कमरे मे गया। दो साथियों को वुलाया। कहा, "वाहर एक औरत है। ललित, उसको लेकर वेलपुर जाओ। हम दो-तीन दिन में आते है। महराजिन वताना। भेद न देना। वाहरवालों से मिलाना मत। काम किये कराये जाना। इसको भी लगाये रहना। मामला रंग पकड़ रहा है। यहाँ से आजकल में वोरिया-वधना समेटना है। प्रकाश ताली लगाकर चले आयेंगे। गढ़ की चारदीवार मे वहुत से दरवाजे हैं। हमारे की ताली दूसरे के पास भी है या नही, सही-सही नहीं मालूम।"

साथियों को लेकर प्रभाकर नीचे उतरा। चिन्ता की हल्की रेखा मन पर। वुआ के पास पहुँचकर कहा, "इस आदमी के साथ चली जाओ, यह जैसा कहे करो। कोई हाथ नहीं उठायेगा। वाद को जहाँ कहियेगा पहुँचा देगा।" वुआ को जान पड़ा, एक अपना आदमी, जिसको औरत अपना आदमी कह सकती है, वोला। वे सहमत हुईं।

प्रकाश ताली लेकर चला।

इकत्तीस

रुस्तम के जैसे पर लग गये, ऐसा भगा। फेर से दिल धड़का, पैर उठते गये। खेत से भगे सिपाही की तरह सिंहद्वार मे घुसा। वात रही, हथियार नही डाला। हाँफ रहा था। जैसे दम निकल रहा है। 3-4 सिपाही वाजार गये थे, वाकी हैं। मुन्ना भी है।

रुस्तम को देखकर लोग चकराये। मुन्ना की आँख चढ़ गयी। पूछा, "क्या है रुस्तम ?"

रुस्तम वोल न पाया।

रुस्तम के घवराये हुए हाँफते रहने पर सिपाहियो को उतना आश्चर्य न हुआ जितना तलवार लिये रहने पर।

जटाशकर का काठ मे पैर पड़ा। धीरज उनके स्वभाव मे है। वैठे देखते रहे।

रुस्तम ने आधा घण्टा लिया। मुँह धोया गया, कुल्ले कराये गये, सिर पर पानी के छीटे मारे गये, पंखा झला गया।

रुस्तम ने कहा, "देव है। आदमी ऐसा नही होता। गढ़ के अन्दर ऐसा आदमी !"

लोग कुछ नही समझे। ऐसे आदमी के वारे मे किसी ने नही सुना, नही देखा।

मुन्ना ने कहा, "हम पूछकर वताते हैं।" रुस्तम को वुलाकर ले चली।

एकान्त मे पूछा, "क्या हुआ ?"

रुस्तम ने कहा, "एक आदमी मिला। मैं भगा, नही तो गोली का शिकार हो गया होता।"

मुन्ना को नहाकर लौटी सूरत याद आयी। पूछा, "कैसा है ?"

रुस्तम ने एक वावू का हुलिया वतलाया।

"वुआ का क्या हुआ ?"

"हमको उसी की कार्रवाई मालूम होती है।"

मुन्ना को विश्वास हो गया।

ठहरकर पूछा, "वुआ क्या उस आदमी के साथ रह गयी ?"

"हाँ।" रुस्तम ने कहा।

मुन्ना ने तीन सिपाही लिये। रुस्तम से घटनास्थल ले चलने के लिए कहा।

लोग चले। जहाँ घटना हुई थी वहाँ अँधेरा है। रुस्तम ने डाल देखी। दो म्यान और एक तलवार लटक रही है। वुआ का निशान नहीं।

मुन्ना तुरन्त घूमी। जहाँ प्रभाकर का जीना है, चली। आदमी भी साथ।

तव तक प्रकाश ताली लगाकर लौट चुका था। लोगो ने जीने के दरवाजे सिपाही की हैसियत से आवाजें लगायी। कोई न वोला।

कोठी घूमकर मालखाने के पहरे से जाना चाहा, दरवाजे वन्द मिले। खुलते ही नही।

एक दफे पुलिस की याद आयी। खजांची बैठा न रहेगा, सोचा। राजा से रानी के वदले की वात गयी, वल जाता रहा।

रुपये निकालने गयी। पाँच रुपये और दस रुपये के नोटों के वण्डल दो-दो करके निकाल सके, इस तरह रक्खे थे। एक हजार के करीव नोट निकाले और 50)-50) रुपये सिपाहियों को और दिये। वाकी जमादार को।

नोटोवाली तिजोड़ी वाहर गडवा दी।

वत्तीस

घटना क्या, अनहोनी हो गयी। मुन्ना को खजांची का डर था। जमादार भी वचत चाहते थे। इसी से उलझते गये। वेधडक वढ़े। फँसे सिपाहियो ने रानी का पल्ला पकड़ा। निगाह धर्म पर थी। तिजोड़ी के गाड़े जाने पर सिपाहियों की नसें ढीली पड़ी। एक ने डूवते स्वर से कहा, रानी से राजा का सितारा वुलन्द है। मुन्ना ने कहा, "गयी, चलते ठोकर लगी, ईट दूसरे की रक्खी है, वह रानी का ही आदमी है, नादानी कर रहा है; न इधर का होगा न उधर का। मुमकिन, वदला चुकाने को रानी ने दूसरा हथियार चलाया हो। धीरज छोड़ने की वात नही; कल-परसों तक आज का अँधेरा न रहेगा। अगर कहो कि इसके लिए सजा होगी, तो काँटा न लगेगा। सव लोग वाल-वाल वच जायेंगे। रुपये भी मिलेंगे। अभी साँस काफी है।"

सिपाही खुश हो गये। सवको अपनी-अपनी जगह जाने के लिए मुन्ना ने कहा। कहा, "रानी का हाल मालूम हो तो जी में जी आये।" यह कहकर रात-ही-रात नयी कोठी की तरफ चली।

जहाँ दासियाँ सोती हैं, वही घुसकर, एक वगल लेट रही। नीद नही आयी। दूसरे को वहलाने से अपना जी नही मानता। तरह-तरह की उधेड़-वुन से रात कटी। पौ फटी कि उठकर वुआ के महल के लिए चली। नयी कोठी में शोर था कि सूरज की किरन के साथ जहाज खुल जायगा। जागीरदार साहव कलकत्ता रवाना हो रहे है। मुन्ना ने एक कहार को तैनात किया कि जागीरदार साहव के साथ कौन-कौन जाता है, देख आये, रानीजी का हुक्म है।

कहार मुस्कराया। कहा, "वे तो जायेंगी ही।"

"कौन ?"

"कौन हैं जो गाती है ?"

"और कौन-कौन जाता है; खासतौर से यह देखना, कौन-कौन औरत जाती है; उसके साथ एक ही वाँदी है, और भी कोई यहाँ की वाँदी जाती है या नही। रानी साहवा इनाम देंगी। समझ गया ?"

"रानी साहबा अभी तक चाहती हैं। मैंने अरई कहारिन को छोड़ दिया, कहा, तेरी शक्ल उससे मिलती है। उसने कह दिया। वह एक पन्दरही नही बोली। अरई के लिए माफी मँगा ली, तब दम लिया। सो भी तब जब अबकी तनख्वाह से गुच्छी-करनफूल बनवा देने का कौल करा लिया।" कहकर मटरू हँसा। अपनापे से पूछा, "मुन्ना, तेरी कैसी कटती है ?"

"फिर तो नहीं माफी माँगेगा ?"

"मैंने कहा जात की है, कहीं बैठ जा, या बैठा ले। राम दोहाई, आँख झप जाती है जब देखता हूँ, तेरे लिए बारोमहीने कातिक हैं। सिपाही कुत्ते-जैसे पीछे लगे रहते हैं। बहँगी में तीन-तीन को लादकर फेंकूं।"

"अच्छा चला जा। देखें, कितनी जानकारी रखता है। इनाम मे एक थान के दाम मिलेंगे; मगर पक्की खबर दे।"

मटरू खुश होकर जहाज घाट की ओर चला।

राज का ही जहाज है। मटरू जानता है। आदमियो मे सबसे दबा, कहार। पहचानकर सबने राह दे दी। उस वक्त तक राजा या एजाज का आना नही हुआ था। मटरू सारा जहाज घूम आया। फिर एक किनारे खड़ा हुआ।

आधे घण्टे के अन्दर एजाज़ की पालकी आयी। एजाज किनारे उतरकर काठ की सीढ़ी से जहाज पर गयी—इनाम भेजा।

राजा की सवारी आयी। शान से चढ़े। लोग चढ़ने लगे। जहाज खुला।

मटरू ने एक-एक को देखा। रह जानेवाले लोगों के साथ लौटा। एक पहर दिन चढ़ चुका था।

लौटकर मुन्ना से एक-एक बात कही। और पुरस्कार के लिए लाचार निगाहो से देखकर मुस्कराया।

मुन्ना समझ गयी। सवाद से खुश होकर पीपलवाले चबूतरे के पास दुपहर ढलते बुलाया। मटरू मानकर खुले दिल से दूसरे काम को चला। मुन्ना पुरानी कोठी चली।

तैंतीस

प्रभाकर सचेत हो गया। मौका देखकर बचा हुआ मसाला पानी मे फेंक दिया और प्रकाश को दिन होने पर पास के केन्द्र भेज दिया। दो आदमी और रहे और प्रभाकर। देख-रेख के लिए दिलावर और दो नौकर हैं, जिनके बाहर के मानी छत से है। श्री रघुनाथजीवाली छत से, जल भरनेवाले कहारों से, दिलावर पानी चढ़वा लेता है। उसी ज़ीने से दिन रहते-रहते नौकर और पाचक एक दफा बाहर की हवा खा आते है।

मुन्ना जमादार से मिली। जमादार के होश फाख्ता थे। राजा को बुआ के गायब होने की खबर नहीं दी गयी।

मुन्ना को देखने पर साथी का बल मिला। रास्ता निकालने की सोची। पूछा, "क्या इरादा है?"

मुन्ना ने कहा, "बुआ लापता है, यह सबसे खतरनाक है।"

"क्या तअज्जुब, रुस्तम ने उड़ा दिया हो।" जमादार ने कहा।

"हो सकता है, मगर बात झूठी भी हो सकती है। पहले पता लगा लेना चाहिए। एक बात जँचती है। उधर एक आदमी रहता है। वह कोठी में ही रहता है। वह कौन है, उसका हाथ हो सकता है।"

"हाँ," जमादार सँभले, "राजा का गुप्त रूप है, यह रामफल से सुना है। उन लोगों की आमदरफ़्त दूसरी है। वहाँ पुजारीजी का हाथ है।"

"तुमको यह नहीं मालूम, रहनेवाला काला है या गोरा है?"

जमा.—"या एक है या तीन, नहीं।"

मुन्ना—"एक दूसरी शाख है?"

जमा.— "हाँ।"

मुन्ना—"माई के लाल बहुत है।"

जमा.—"अब बचना कठिन है।"

मुन्ना—"जहाँ तक हो आँट पर न चढ़ो।"

जमा.—"कैंची काटती हो?"

मुन्ना—"हमारे ही साथ सती होना है।"

जमा.—"तभी तो कहा, कैंची काटती है।"

मुन्ना—"बस, अब साथ न छोड़ो। अगर भगें तो साथ।"

जमा.—"रास्ता और क्या है? इतनी बड़ी चोरी के बाद गाँव में क्या मुँह दिखावेंगे और क्या पुलिस के हाथ बचेंगे?"

मुन्ना—"हमारा प्रेम ही ऐसा है। पति को खा गयी।"

जमा.—"हमारा ही कौन कमजोर है?"

मुन्ना—"इस आदमी का पता लगाना है। जमादार अब ताक़त बाहर की आ गयी है। खतरा बहुत है। हमारे पास धन है, लेकिन इसको इस रूप में हटाकर हम बहुत दिन खा नहीं पायेंगे। सहारा लेना है। कुछ मददगार बनाने है।"

जमा.—"हाँ।"

मुन्ना—"राजा का रवाना होना मतलब से खाली नहीं।"

जमा.—"कुछ लगाया?"

मुन्ना—"खजांची की तरफ की कोई कार्रवाई होगी। इसका भी, जिसके लिए मैं कह रहा हूँ, कोई हाथ हो सकता है।"

जमा.—"हमारी हैसियत तो इतनी ही है। पहले तो यह कि नम्बरी नोट चलाये नहीं चलेंगे। दूसरे, इतना रुपया हज्म करनेवाला हमारा पेट नहीं।"

मुन्ना—"मगर रुपयो के साथ अब जान पर ही खेलना है, यानी जान रहते रुपये न जायँ, और जायँ तो हम दुनिया भी दूर तक देख लें। इतने रुपयों से इतना

भेद खुल सकता है। सिर्फ पकड़ में नही आना।"

जमा.—"अब हमको बयान बदल देना है।"

मुन्ना—"हाँ, तभी बचाव है।"

जमा.—"सन्दूक गाड दिया गया। ताली फेंक दी गयी। बीजक अपने पास है ही। उसमे लिखा है! क्यों री, तू इतनी भी बंगला नही पढ़ी कि मालूम हो जाय कि कितने-कितने के नोट है?"

मुन्ना—"यह मालूम हो जायगा। दम कहाँ मिला? मगर खर्च बहुत होगा।"

चौंतीस

कहार से बातें मालूम करके, इनाम देकर, मुन्ना पिछली तरफवाले घाट पर चलकर बैठी। मन में खलबली थी। बुआ का पता नही चला। जल्द कोई कार्रवाई होगी, दिल कह रहा था। धडकन त्यों-त्यों बढ रही थी। बचाव की सूरत नजर आती थी और कुछ देर बाद मिट जाती थी। मुन्ना ने देखा, किरनों मे कई हाथ पानी के नीचे मछलियाँ दिख रही है। फिर देखा, पास की डालवाले पत्तो की रेखाएँ गिनी जाती है। दूसरी तरफ आँख उठायी, घने बागीचे मे छिपने लायक अँधेरा नही। सबकुछ खुल गया है। अपने भविष्य पर डरी।

इसी समय देखा, जीने का दरवाजा खुला, एक युवक निकला, जीना बन्द किया और घाट की तरफ चला। उसकी शान्ति में घबराहट नही, बडी दृढता है। एक ऐसा संकल्प है जो आप पूरा हो चुका है। जवानी की वह चपलता नही जो औरत को डिगा देती है, बल्कि वह जो साथ लेकर ऊपर चढ जाती है, और जहाँ तक औरत की ताकत है वहाँ तक चढ़ाकर अपने पैरों खड़ा करके, और चढ जाती है। चरित्र के पतन से बचकर और भले कामो की तरफ रुख फेरती है। मुन्ना को जान पड़ा, उसका हृदय खुल गया। वह निर्दोष है। यह युवक उसको इस अवस्था मे सदा रख सकता है। दिल की बातें उससे कह देने के लिए उतावली हो गयी।

जैसे-जैसे प्रभाकर पास आता गया, मुन्ना के बुरे कृत्य भी जो नीची तह के किये हुए थे—उसके ऊँचा उठने के कारण छुटे हुए, काई की तरह सिमटकर पास आते गये। प्रभाकर की चाल के धक्के से निकलते गये। मुन्ना जैसे बदल गयी प्रभाकर से मिलने के लिए। जो मुन्ना होगी उसके बुरे संस्कार छुटने लगे।

वह अपने स्वरूप मे आयी। अभी तक प्रभाकर की नजर नही पड़ी। अपने काम की बातें सोच रहा था।

हवा चल रही थी। पेडों की पत्तियाँ और डालें हिल रही थी। चिड़ियाँ उड़ रही थी। सरोवर पर लहरें उठ रही थी। उन पर किरनें चमक रही थी।

प्रभाकर आया। बायी तरफ एक औरत की छाँह देखी। उसने घाट के फर्श पर सिर टेककर प्रणाम किया। प्रभाकर ने विचारशील आँखें उठाकर देखा। पूछा, "कौन हो ?"

"मैं मुन्ना हूँ।"

"क्या काम है ?"

"मैं रानी साहबा की दासी हूँ।"

प्रभाकर स्थिर हो गया। सोचा, कोई काम है। पूछा, "फिर ?"

"आप कौन है, यह मालूम हो जाना चाहिए।"

"यह राजा साहब से मालूम हो जायगा।"

"वे तो चले गये है।"

"फिर लौट सकते हैं, या जहाँ गये है, वहाँ से।"

"आपके दिल में रानी साहबा की जगह है ?"

"क्या है ?"

"आप जानते है, राजा साहब के साथ रानी साहबा नही !"

प्रभाकर दुखी हुए।

मुन्ना को मौका मिला। कहा, "रानी साहबा आपके लिए कुछ नही कर सकती अगर आप उनकी सहायता करें ?"

प्रभाकर पेंच मे पड़े। काट न चला। सहानुभूति आयी। दिल कमजोर पडा। कहा, "हमारा काम दूसरा है।"

"वह कौन-सा ?"

"क्या तुम और रानी साहबा उसमे हो ?"

"हाँ, हम हर तरह आपके साथ होंगे।"

"हमको दोनों की सहानुभूति चाहिए।"

"रानी साहबा धन और जन से आपकी मदद कर सकती है।"

"विश्वास है। रानी साहबा से हमारी बातचीत हो सकती है ?"

"हाँ।"

"मगर आज होनी चाहिए।"

"हाँ, आपसे शाम को यही मिलूँगी। आपको मालूम है, रानीजी के लिए दूसरे से बातचीत करना मना है।"

"हाँ।"

"मगर काँटा निकालने के लिए मिलेंगी।"

प्रभाकर कुछ न बोले। एजाज़ का स्वभाव उन्हें पसन्द है। रानी साहबा कैसी हैं, देखना चाहते हैं। उनका काम केवल मर्दों के हाथ से ज्यादा औरतों के साथ से बढेगा। स्वदेशी का, देशप्रेम का जितना प्रचार होगा, देशवासियों का कल्याण है।

"रानी साहबा पढी-लिखी है ?"

"जी हाँ।"

"सुन्दरी भी है ?"

मुन्ना मुस्करायी। कहा, "हाँ, बहुत।"

"राजा साहब को व्यसन होगा। गाती भी हैं?"

"जी हाँ।"

"काँटा निकल जायगा। राजा साहब जिस रास्ते के पथिक है, रानी साहबा भी उसकी होगी, तो मेल स्वाभाविक है।

"वह कौन-सा रास्ता? क्या हम लोग उस रास्ते आपके पीछे चल सकते है?"

"पहले तुम्ही लोगो का काम है। यों फायदा नही कि जमीदारी जमीदार की रहे : मगर यो है कि तुम अपने आदमियो के साथ रहो, अपना फायदा अपने हाथों उठाओ। इसमे दूसरे तुमको बहका सकते है, बहकाते होगे। बाजी हाथ आने पर, हम खुद जीने की सूरत निकाल लेंगे। अच्छा, बताओ, यहाँ कोई औरत रहती थी जो लापता है?"

मुन्ना घबरायी। प्रभाकर आँख गड़ाये थे। झूठ नही निकली, कहा, "जी हाँ।"

"वह कौन है?"

"वह कुमारीजी की फूफी-सास है। आपको मालूम है, वे कहाँ है?"

"हम नही कह सकते। मगर बचा दे सकते हैं। पुलिस के हाथ बुरा हाल होगा।"

मुन्ना ने पैर पकड़ लिये। कहा, "आप बचा सकते है। आपका काम करूँगी।"

प्रभा मुस्कराते रहे। कहा, "अच्छा नहाते है, शाम को आना। घबराना मत। हमारा काम, तुम्हारा काम है। अब चलो।"

मुन्ना खुश होकर चली। जान पड़ा, भगवान ने बचा लिया।

प्रभाकर नहाने लगे।

पैंतीस

जमादार सूख रहे थे, चोरी खुलेगी, बहाना नही बन रहा। घबराये जो कलंक नही लगा, लगेगा, जेल होगी; बाप-दादों का नाम डूबेगा। राजा गये; दूसरी आफत रहेगी।

इसी समय मुन्ना मिली। जमादार ने देखा, उसमे स्फूर्ति है। उनकी बाँछें खिल गयी, सोचा, बचत निकल आयी।

मुन्ना ने अलग बुलाया। वे चले। दोनों घाट की चारदीवार की आड़ मे एक मौलसिरी की छाँह मे बैठे।

मुन्ना ने कहा, "अब किनारा साफ नजर आ रहा है।"

"क्या बात है?" जमादार ने पूछा।

"एक महात्मा मिले हैं, उनसे आशा बँध रही है।"

"कहीं धोखा तो नही ?"

"नही, सिर्फ तुम्हारा विचार है कि कहीं नीचा न दिखा दो। नही तो, लड़की साफ वैठेगी।"

"कैसे ?"

"पहले बताओ, तुम हमारे साथ रहोगे या नहीं।"

"हमने तो वीजक तक दे दिया।"

"ठीक है। वात यह, हम दूसरी चाल चलेगे।"

"क्या ?"

"रानी को दूसरी तरह हाथ में करना है। पहला वार खाली गया। वह राह कट गयी, अच्छा हुआ। वह सूझ खजानची की थी, अपनी भी। अव लाठी भी न टूटेगी और साँप भी मरेगा।"

"समझ मे नहीं आया।"

"जमादार, वहुत गहरी वातें है। एकाएक समझ में न आयेंगी। खजानची का साथ किसी सरकारी आदमी से है। खजानची की मार्फत एजाज़ से राज लेना चाहता है और हमारे राजा साहव का। राजा साहव सरकार के खिलाफ फँस जायँगे; क्योकि वे रास्ता बतानेवाले हमारे नये गुरुदेव के मददगार है और गुरुदेव सरकार के खिलाफ कार्रवाई करनेवालों में हैं। स्वदेशी का जो आन्दोलन चला है, गुरुदेव उसमे हैं। सरकार चाहती है, वंगाल के दो टुकड़े कर दे। जमीदार ऐसा नही चाहते। उनको डर है कि स्थायी वन्दोवस्त फिर न रह जायगा। इसका देश मे आन्दोलन है। सरकार के लोगों का कहना है, स्थायी वन्दोवस्त न रहने पर इतर जनों को फायदा पहुँचेगा, मुसलमान जनता सरकार के पक्ष में की जा रही है। असली वात इतनी है। हम लोग वहुत काफी वातचीत सुन चुके हैं। सच जो कुछ भी हो, मगर गुरुदेव की वात का असर पड़ता है। उन पर अपने आप विश्वास हो जाता है। वड़े अद्भुत आदमी है। इतर जन ही हम लोग हैं। हम लोग भी सहानुभूति और अधिकार चाहते हैं। यह हमको सरकार से तव मिलेगा, जव हम सरकार की जड़ मजवूती से पकड़ेंगे। मगर हमको रहना तुम्ही लोगो मे है।"

"हमारे जो कुछ था, हम दे चुके।"

"हाँ, मगर समाज से डरते हो; हम समाज की वात कहते हैं।"

"भीमसेन ने हिडिम्वा से व्याह किया, महाभारत मे है, तो किसने उनको जाति से निकालकर वाहर कर दिया ?"

"मगर हिडिम्वा के अधिकार वैसे न रहे होगे जैसे द्रोपदी के।"

"अधिकार वैसे ही थे, भेद यह रह गया था कि एक राक्षस की वेटी रही, दूसरी क्षत्रिय की। क्या वाप भी वदल गये ?"

मुन्ना गम्भीर हो गयी। कहा, "वुआ का पता इनको मालूम है। रुस्तम शायद इन्ही की वातें करता था।"

जमादार जर्द पड़े। कहा, "कुल भेद खुला ? वुआ ने एक-एक गाँठ सुलझायी होगी।"

"सम्भव । ताल पर चलना है। नही, गिरेंगे । बुआ राजा के साथ न थी। बचाव का मिलकर बचकर रास्ता निकालना है।"

"बुरा हुआ। सरकार के खिलाफ है तो जरूर बचकर रहना है। हम भी पकडा सकते है अगर पकड़ मे हैं।"

"हाँ, मगर नही। राजा ने रक्खा है तो मिल जाना चाहिए।"

"हाँ।"

"राजा खिलाफ न हो तो खिलाफ गवाही देते अकेले हो जायँगे, मगर खजानची का एक गरोह है, हम उसमे है, बचत है।"

"हाँ।"

"ये इसी कोठी में रहते है, तुमको मालूम था ?"

"नही।"

"राजा ने तुमसे छिपाया है। कोई होगा, जिसको देख-रेख सौंपी गयी। यहाँ रहना मायने रखता है।"

"हाँ।"

"फिर साथ होते अडचन नही। रानी का उपकार करेंगे। कारण साथ है। राजा को ये मिला दे सकते है।"

"हाँ।"

"आदमी सज्जन है। रानी से मिलाना है। बातचीत सुननी है। अगर रानी से किसी की मार्फत बातचीत करायी तो मैं हूँगी; खुद की तो सुनूँगी। बहाना है।"

"हाँ।"

"इनका भेद मिलेगा, आगे भी मिलता रहेगा। इनको काम के लिए धन चाहिए। मै मदद करूँगी। इस तरह इनका बाजू पकड़े रहना है। पूरी जानकारी हासिल होगी। जैसे अँधेरे मे हूँ। तुमने लम्बी दुनिया देखी है।"

"हमारा देश छः सौ मील है।"

"तुम जगह देखना चाहो, चलो दिखा दूँ। रानी के पास ले चलते वक्त दूर से देख लेना छिपकर।"

छत्तीस

चार का समय, दिन का पिछला पहर। रानी साहबा की फूलदानियो में ताजे फूल दोबारा रक्खे गये। हार आ गये केले के पत्ते मे लपेटे हुए। बर्फ-क्रीम-फल तश्तरियो मे नाश्ते के लिए आ गये। दक्खिनवाले बडे बरामदे मे छप्परखाट पर थी। दखिनाव तेज चल रहा था। इक्की-दुक्की दासी घूम जाती थी। दोपहर के आराम के बाद गद्दी से उठकर काठ के जीने से रानी साहबा उतरी और चन्दन की

चौकी पर बैठी, जिस पर बढ़िया कालीन बिछा था। मुन्ना आयी। बाहर की आज्ञावाहिनी दासी से कह आयी थी, कोई न आये।

मुन्ना को देखकर रानी साहबा ने सहृदयता से पूछा, "क्या खबर है ?"

मुन्ना ने प्रणाम करके दूसरे एकान्तवाले कमरे मे बुलाया, जहाँ प्रायः रानी साहबा रहती थी। वे उठकर चली। एक मखमल की गद्दीवाली कुर्सी पर बैठी। मुन्ना को स्टूल लेकर बैठने के लिए कहा। मुन्ना पखा यहाँ चलाने के लिए बाहर आज्ञा दे आयी, फिर स्टूल लेकर बैठी। प्रसन्न है, रानी ने गौर से देखा। दिल में गम है, मुन्ना ताड़ रही थी। राजा साहब के लिए जगह है।

सँभलकर कहा, "हुजूर के दर्शन हुए। यहाँ एक भले आदमी टिके है। राजा साहब टिका गये है। पुरानी कोठी मे रहते है। दूसरों की आँख बचायी जाती है। और भी उनके साथी हो, सम्भव है। आज पता चला है। बातचीत की है। राजा साहब गये, अब वे भी जायँगे। सच्चे और अच्छे पढ़े-लिखे आदमी है। अभी नौजवान है। तेजस्वी हैं। क्यों हैं, क्या हैं, यह हुजूर को और मालूम होगा। मैं समझती हूँ, उनसे काम निकल सकता है।"

"हमारे मनीजर के इतने पढ़े होंगे ?"

"हाँ, जान ऐसा ही पड़ता है।"

"मनीजर को बुलाना होगा।"

"हुजूर, मैं मनीजर साहब की मार्फत बातचीत कराने का बीड़ा नहीं लेती। जब राजा साहब के खास है, तब मनीजर साहब मे बातचीत नही भी कर सकते।"

"फिर क्या सलाह है ?"

"आपका भला हो सकता है।"

"अच्छा, कब बुलाना ठीक होगा ?"

"शाम के वक्त, दीयाबत्ती हो जाने पर।"

"बुला लेना। यहाँ से कलकत्ता जायगे ?"

"सरकार !"

"एजाज़वालो में है ?"

"नही, यही आपको जान लेना है।"

"अच्छी बात है।"

"पालकी बड़ी ले जाने का विचार है।"

"ले जा।"

मुन्ना आज्ञा मिलने पर बाहर निकली। कहारों को बड़ी पालकी ले चलने के लिए कहा। खास रानीजीवाली। कहारों ने तैयारी की। मुन्ना साथ पुरानी कोठी की तरफ चली। कहारो को अचम्भा हुआ। मगर चलते हुए सोचते रहे, रानी साहबा वहाँ कहाँ मरी। तालाब की बगल पालकी रखाकर मुन्ना ने कहारों को हट जाने के लिए कहा। कहारो ने वैसा ही किया। दिल से उमड़ रहे थे जैसे कोई बात पकड़ी हो, कलंक पकडा हो। प्रभाकर तालाब के घाट पर बैठे थे। मुन्ना गयी, और पालकी चलने के लिए रक्खी है, कहा। प्रभाकर सन्ध्या की सुगन्ध के भीतर से चले। मुन्ना कुछ देर फिर उनकी चाल देखती रही।

सैंतीस

आमों की राह से होते हुए गुलाबजामुन के बाग के भीतर से मुन्ना पालकी ले चली। कई दफे आते-जाते थक चुकी थी। उमंग थी। एक नयी दुनिया पर पैर रखना है। लोगों को देखने और पहचानने की नयी आँख मिल रही है।

खिडकी पर कहारों और पहरेदार को हटाकर दरवाजा खोलकर प्रभाकर को ले गयी। पंखे से समझ गयी, रानी साहबा उसी बैठके मे हैं। बड़ेवाले में ले गयी।

प्रभाकर ने देखा, एजाजवाले बँगले से यह आलीशान और खुशनुमा है। बड़ी बैठक है। छप्परखाट बड़ी, मेजें बड़ी। आईने बड़े, फूलदानियाँ बड़ी। दरवाजे बड़े। झूलें बडी। सनलाइट की बत्तियाँ भी बडी। अधिक प्रकाश, अधिक स्निग्धता, अधिक ऐश्वर्य, अधिक सजावट। संगमरमर का फर्श, खुला हुआ, हिन्दूपन के चिह्न। दीवारों और छतों पर अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी।

प्रभाकर को चाँदी की कुर्सी पर बैठालकर पास एक सोने के डण्डेवाली गद्दीदार कुर्सी रख दी। प्रभाकर साधारण दृष्टि मे बडप्पन लिये हुए देखता रहा। मुन्ना रानी साहबा के कमरे मे गयी। हाथ जोड़कर खबर दी।

रानी साहबा ने हार पहना देने के लिए कहा। फिर दूसरी दासी से घण्टे-भर मे भोजन ले आने के लिए कहा।

हार पहनाकर मुन्ना ने कहा, "रानीजी आ रही है।" जूतियों की मधुर चटक सुन पडी। प्रभाकर ने देखा, एक सुश्री सुन्दरी आ रही थी। समझकर कि रानी है, उठकर खड़े हो गये। हाथ जोड़े। रानी साहबा ने म्लान नमस्कार किया। अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गयी। मेहमानदारी के विचार से आँचल गले मे डाल लिया था।

प्रभाकर की ऐसी कुर्सी थी कि सनलाइट का प्रकाश मुँह पर पड़ता था। रानी साहबा मुँह देखकर बहुत खुश हुई।

हवा के साथ बाहर के बागीचे से फूलों की खुशबू आ रही थी। उनके आने पर उस बैठक में पंखा चलने लगा।

"आपका शुभ नाम ?" रानी ने पूछा।

"जी, मुझको प्रभाकर कहते हैं।"

"आप यहाँ हैं, हमको न मालूम था। कितने दिनों से हैं ?"

"यह आप राजा साहब से···" प्रभाकर सहज लाज से झेंपे।

"आपका इधर राजा साहब के बँगले जाना नही हुआ ?"

"जा चुका हूँ।"

"उसको देखा होगा ?"

"जी, हाँ।"

रानीजी को एक धक्का लगा। सँभालने लगी। कहा, "हम मँज गये है। उससे भी मिले ?"

"जी, हाँ, मिले।"

रानी साहबा झेंपी। कहा, "बाजार का अच्छा माल है। राजा साहब खरीदेंगे तो अच्छा देखकर।"

प्रभाकर खामोश रहे। जब्त करते रहे। कहा, "आदमी की पहचान मुश्किल है।"

"हाँ।" रानी साहबा ने कहा, "हमने देखा है, कलकत्ते मे, मगर फूटी आँख। तारीफ थी। उससे क्या काम ?"

"तरफदार बनाना।"

"आप दमदार है। गला बतलाता है। पहले किसी से बातचीत ऐसी ही मिल्लतवाली रहेगी, फिर, दिल मे जम गया तो फायदे की सोची।"

शराफत-भरे बड़प्पन से प्रभाकर सिर झुकाये रहे। हल्का मजाक किया, "राजा साहब को चाहिए था, पहले आपसे मिलाते।"

"हम खुद मिल लिये। राजा साहब का कुसूर हट गया।"

"जी।"

रानी साहबा ने पूछा, "आप सिगरेट-पान शौक फरमाते है ?"

"पान खा लूँगा।"

मुन्ना एक बगल खड़ी थी। रानी साहबा ने देखा, वह गिलौरीवाली तश्तरी उठा लायी। प्रभाकर के सामने मेज पर रख दी। प्रभाकर ने पान खाये। मुन्ना हटकर अपनी जगह खड़ी हो गयी।

"आप कब तक कलकत्ता रवाना होंगे ?" रानी साहबा ने पूछा।

"दो ही दिन मे, अभी समय का निश्चय नही किया। जरूरी काम है।"

"कैसा काम आपके सिपुर्द है, क्या आप बतलायेंगे ?"

"अभी नही। काम आपके फायदे का है।"

"आपकी हम क्या मदद कर सकते हैं ?"

"सहयोग।"

"यह तो यों भी है। आप हमारे घर है। आपको नही मालूम, हम ऐसी हालत में आपके दोस्त रहेंगे या दुश्मन।"

"सही।"

"आपकी हमारी बातचीत पक्की, मगर राजा साहबसे हमारा भेद न खुले।"

"हम ऐसा काम नहीं करते। भेद एक ही है हमारा। उससे आपको फायदा होगा तो होगा। आप अपनी परिचारिका से समझ लें, जो हमको ले आयी है। फिर हमारे काम से, जो हर तरह नेकचलनी का है, आप मददगार हों; राजा साहब भी हैं; आपकी और उनकी पटरी इस तरह बैठ जायगी।"

"मदद की सूरत क्या हो ?"

"आपके यहाँ हमारे केन्द्र है, देशी कारोबार बढ़ाने के; आप महिला होने के कारण उनकी स्वामिनी; गृहलक्ष्मी शब्द का उपयोग आप ही लोगों के लिए होता है; आप उसकी चारुता बढ़ाने, प्रसार करने मे सहायता करें। देश में विदेशी व्यापारियों के कारण अपना व्यवसाय नही रह गया। हम उन्ही के दिये कपड़े से

अपनी लाज ढकते हैं; उन्ही के आईने से मुँह देखते है; उन्ही के सेण्ट, पौडर, लेवेन्डर, क्रीम लगाते हैं; उन्ही के जूते पहनते है; उन्ही की दियासलाई से आग जलाते है। ब्राह्मण की आग गयी; क्षत्रिय का वीर्य गया; वैश्य का व्यापार चौपट हुआ। यह सब हमको लेना है। इसी के रास्ते हम हैं। वगमंग एक उपलक्ष्य है। दूसरे प्रान्त अभी वहुत जाग्रत नही, यों कांग्रेस मे सभी हैं, यह स्वदेशीवाला भाव हमको घर-घर फैलाना है। आप गृहलक्ष्मी तभी है। इस समय रानी होकर भी दासी हैं। आपके घर की तलाशी ली जायगी तो अधिकांश माल विदेशी होगा। आप इसी मे हमारी मदद करें। आपकी सहानुभूति भी हमारे लिए वहुत है।"

मुन्ना खुश हो गयी। रानी साहवा दासी हैं, उसको वहुत अच्छा लगा। उसमे रानी का सही स्वत्व आया। वह तन गयी।

प्रभाकर कहते गये, "और यही से इस उलझन का खातमा नही हो जाता।" अर्थशास्त्र की उलझनदार वड़ी-वड़ी वातें है, दूसरे मुल्को से हमारे क्या सम्वन्ध रह गये है, हम कितने फायदे और कितने घाटे में रहते है, वैंक क्या है, कारोवार की क्या दशा है, यह सव एक मुद्दत की पढ़ाई के वाद समझ मे आता है। राज्य और राजस्व विगड़ा हुआ है। इस प्रकार कभी हमारा उत्थान नही हो सकता। जाति की नसो मे राजनीतिक खून दौड़ाकर एक राजनीतिक जातीयता लाने में कितना श्रम चाहिए, इसका अनुमान आप लगा सकती हैं। मैं आपका एक ऐसा ही सेवक हूँ।"

रानी साहवा को जान पड़ा, उनका पहला अस्तित्व स्वप्न हो गया है। दूसरा जीवन से उवलता हुआ। देखा, वे मुन्ना से छोटी पड़ गयी हैं। मगर उनको वुरा नही लग रहा। हृदय के वन्द-वन्द खुल गये हैं। मुन्ना खड़ी मुस्करा रही है।

रानी साहवा ने कहा, "हम आपसे सहमत है। आप जैसा कहेगे, हम करेंगे।"

प्रभाकर सोचते रहे। कहा, "इसकी मार्फत हम खवर भेजेंगे और भेजते रहेंगे।" मुन्ना की तरफ इशारा किया। और कहते गये, "हरएक की अपनी सुविधा होती है। दूसरे की आज्ञा वह अपनी सुविधा को छोड़कर नही मान सकता या मान सकती। इसका अनुभव महीने-दो महीने साथ रहने पर हो जाता है। फिर हमारे वहुत तरह के काम है, कौन किस योग्य, इसकी पहचान की जाती है।"

"आप इसकी मार्फत खवर भेज दीजियेगा, और काम वढाते रहियेगा। आज यही भोजन कीजिए। काफी वक्त हो गया। आपको अपनी जगह जाना है।" यह कहकर रानी साहवा उठी और अपने पहलेवाले कमरे मे गयी। प्रभाकर ने उठकर विदा किया। पाचक थाली एक मेज से लगा गया था।

हाथ-मुँह धुलाकर भोजन से निवृत्त करके मुन्ना प्रभाकर को उसी तरह उनकी कोठी पर भेज गयी। उनकी आज्ञा भी मिली।

प्रभाकर वहुत काम न कर सके। कुछ किया और कुछ वरवाद कर दिया। भेद खुल जाने की शंका से इसी रात रवाना हो जाने की सोची। मुन्ना को कह दिया कि अच्छा हो अगर रानी साहबा के साथ या अकेली कलकत्ते मे राजा साहब की कोठी पर मिले। घनिष्ठता के लिए पास रहना जरूरी है। अगर दल मे आने की इच्छा होगी तो कर्मियों के साथ, अनेकानेक गृहकार्य करने के लिए आ सकती है। मुन्ना ने कलकत्ते मे मिलने के लिए कहा।

प्रभाकर आज ही रात रहे लोगो को लेकर वेलपुर रवाना हो गये। रहा-सहा व्यवहारवाला सामान कलकत्तेवाली राजा की कोठी मे ले जाने के लिए समझा दिया। रात प्रभात होते मुकाम पर पहुँच गये।

पौ फटते पहुँचे। बुआ जग गयी थी। स्नान से निवृत्त हो चुकी थी, दिन-भर घर से वाहर न निकलती थी। एक साधारण जमीदार ने जगह दी थी। बाँस के घेरे में मिट्टी लगाकर दीवार बनाकर छा लिया गया था। तीन-चार कोठरियाँ थी, तीन-चार चारपाइयाँ और चरखे-करघे आदि। बुआ भोजन पकाती थीं। कर्मी वस्त्र-वयन आदि करते थे। काम जितना था, जोश उससे सैकडो गुना अधिक। हिन्दू और जमीदारी प्रथा से फँसी जनता साथ थी। जितना अभाव था, पूर्ति उससे वहुत कम। चारों ओर पूर्ति का मन्त्रोच्चार था। लोगों में भक्ति थी। इससे बुआ का स्वास्थ्य अच्छा रहा। लोगों को एक सहारा मिला। राज लेनेवाले जमी-दार को भी यह पता न हुआ कि एक औरत आयी है।

किरण फूटी। प्रभाकर हाथ-पैर धोकर वैठे थे। दूसरे साथी भी बैठे थे। दरवाजा वन्द था। बुआ प्रभाकर को प्रणाम करने आयी। आँखो मे भक्ति और उच्छ्वास, काम की एक रेखा। मुख पर प्राची का पहला प्रकाश। प्रभाकर देखकर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बुआ ने भी किया। प्रभाकर ने पूछा, "कैसी रहीं?"

बुआ ने इशारे से समझाया, "अच्छी तरह।" अभी वे बंगला वोल नही सकती। थोड़ी-थोड़ी समझ लेती है। यहाँ आने पर उनका मन बिलकुल वदल गया। वहाँ के प्रभाव का दवाव जाता रहा। ललित ने कहा, "थोड़ी-सी चाय पिला सकती हैं?"

बुआ चूल्हा जलानेवाली थी। चलकर जलाया। कर्मी चाय पीते है। सामान है। पानी उवालने लगीं। आधे घण्टे में वढ़िया चाय वनाकर प्यालों में ले आयी। तश्तरी मे सुपाड़ी, लौग, इलायची, सौफ, जवाइन, मुखशुद्धि के लिए। लोग मुँह धो चुके थे। चाय पी, लौंग-सुपाड़ी खायी। काम की वातचीत करने लगे, कितना कपड़ा महीने मे वनकर कलकत्ता जाता है, कितना काम वढाया जा सकता है, लोगो की सहानुभूति कैसी है, अधिक संख्या में लोग व्यापार के लिए तैयार है या नही। जवाव मिला, जमीदार आये थे, दरवाजे पर वैठे थे, कहते थे, सरकारी लोग खल-मण्डल करते हैं; कारोवार चलने नही देना चाहते; डरवाते हैं, जड़समेत उखाड़-

कर फेंक देंगे; सजा कर देंगे; बदमाशी के अड्डे है, कहते हैं।

प्रभाकर ने कहा, "मिलों का मुक़ाबला है, मुश्किल मुकाम है; मिलवाले जमीदारों की तरह इस आन्दोलन में शरीक नही, सरकार को उनकी तरफदारी प्राप्त है; दलाल है ये लोग; विघ्न डालेंगे; देहात के बाजारों में इनका माल आता है; ज्यादातर विदेशी माल है; दूकानदारो को ये लोग बाँधे हैं; माल खपाते हैं; विदेशी बनियों का भी सरकार पर प्रभाव है; वे ज्यादती करने की प्रेरणा देते होंगे; बडी मुश्किलो का सामना है। देश के इन गधों से ईश्वर पार लगाये।

बुआ सुन रही थी। प्रभाकर से सहानुभूति थी।

ललित ने पूछा, "मछली पका सकती है? आज प्रभाकर बाबू को यहाँ के जमीदार के तालाब से पकड़कर खिलायी जाय, हम लोग भी खायें, हम बता देंगे, या हमी बनायेंगे।"

बुआ ने कहा, "बाद को बना देंगे, हमारे घर मे लोग मछली खाते थे। खास तरह की हो तो बता देना।"

ललित एक साथी लेकर मछली की तलाश मे गया। बुआ ने आलू-परवल के भाजे, डालना, रसेदार, शकरकन्द की इमली और शकरवाली तरकारियाँ पकायीं, दाल बनायी, भात बनाया; कुल बंगाली प्रकार जैसा बताया गया था। दुपहर तक भोजन तैयार हो गया। मछली भी आयी थी, भोजन एक किनारे रखकर उसको भी बना दिया। आसन बिछाये। गिलासों मे पानी रक्खा। पत्तलें लगायी। कटोरियो मे दाल रक्खी; मिट्टी के प्यालों मे रसेदार तरकारी और मछली। फिर सबको खिलाया। प्रभाकर बुआ के काम से बहुत प्रसन्न हुए। देहात निरापद नही, खासतौर से जब यह तैयारी हो रही है।

दूसरे दिन बचकर बुआ को लेकर वे कलकत्ता रवाना हुए। कुछ दूर चलकर नाव किराये पर की, फिर रेल पकडी।

उन्तालीस

यूसुफ छनके। पिता से कुल हाल कहा। अली स्वदेशी के मामले से, राजो के कलकत्तेवाले कोचमैनो से मिले, उनमे किसी का लड़का थानेदार न हुआ था, अली को इज्जत से बैठाला। सच-झूठ हाल सुनाकर आन्दोलन मे सरकार की मदद के लिए अली ने उनको उभाडा। उन्होंने साथ देने को कहा और अली के गरोह में आ गये। खिलाफ कार्रवाई मे भेद देने का इरादा पक्का कर लिया। कुल काम कर चले।

इसी लगाव से अली ने एजाज़ के घर एक कोचमैन भेजा। नोटबुक के अनुसार 'सीन' कहने के लिए कहा और क्या जवाब मिलता है, खामोशी से लौटकर सुनाने

के लिए समझाया। गरोह की पहचान के लिए दूसरे-दूसरे राजों के दो कोचमैन भेजे, ताकि हिम्मत बँधी रहे, यों सरकारी आदमी को कोई खतरा नहीं, यह भी कहा। लोग गये आगे-पीछे रहे। एजाज़ की कोठी देखी। बागीचे देखे। दरवान से वातचीत की। 'सीन' कहा। नसीम को मालूम हुआ। एजाज आ गयी थी। समझकर कह दिया, "फँस गया।" लौटकर लोगों ने अली से कहा। अली बहुत खुश हुए। यूसुफ से कहा।

यूसुफ को जान मिली। कुछ अरसा किया, फिर गये। खुशी और कामयाबी का दरिया वह रहा था। तरह-तरह की भवरें उठ रही थी। दिल में गड़ गया कि एक नाका तोड़ लिया, इसी रास्ते चले चलेंगे। बग्घी किराये की। दो आदमियों को बैठालकर चले। डोर लगी थी। बढ़िया-बढ़िया स्क्वायर और रास्ते पार करती बग्घी चली, बढ़िया-बढ़िया मकान। एक बढ़िया फाटकदार बँगलानुमा प्रासाद मे बग्घी गयी। यूसुफ को उतारकर रास्ते पर खड़ी हुई। यूसुफ दरवान से कहकर गेस्टरूम मे बैठे। सेक्रेटरी आये। देखकर-पहचान गये। यूसुफ ने कहा, "तीन और तीन।"

सेक्रेटरी मुस्कराकर दबे-पाँव एजाज़ के पास गये। एजाज़ मेज पर थी, खतकितावत कर रही थीं। सेक्रेटरी को देखकर मुखातिब हुईं। सेक्रेटरी ने 'तीन और तीन' के साथ आये आदमी का परिचय भी दिया।

एजाज़ ने कहा, "आप अपने नोटबुक मे दर्ज कर लीजिए। कुछ मेरा भी हिसाब है। यहाँ के सुबूत जहाँ तक है, लिये रहिए। वकील की मार्फत भेजियेगा। कुर्सी डलवा दीजिए।" सेक्रेटरी गये। एजाज़ ने नसीम को अपने पाजामे-दुपट्टे से भेजा। कामदार जूतियाँ। सिखला भी दिया। यों नसीम भी भेद लेना जानती थी।

नीचे सेक्रेटरी की बगलवाले कमरे मे कुर्सियाँ डाली गयी। वह आकर बैठी। यूसुफ से चलने के लिए कहा गया। वे गये। नसीम ने उठकर सलाम किया। फूलदानी की बगल से, कुर्सी पर बैठने के लिए हाथ बढ़ाया। यूसुफ ने बैठे देखा यह वही हैं। पूछा, "मिजाज अच्छा ?"

"जी, हाँ।"

"हमको पूरी जानकारी चाहिए।"

"हम अपना भी हिसाब रखेंगे।"

"इससे सरकार की तरफ से बहुत फायदा न होगा। क्योकि खैरख्वाही की सिफारिश पहले हमारी ली जायगी। यह एक तरह की कमजोरी है और इससे सरकार के कान खड़े होते हैं। आपकी तबियत, जैसा आप चाहें, करें।"

काले कारनामे

एक

सावन का महीना आँख पर तरी बरसा रहा। खेत लहालोट है, हरे-भरे ज्वार, अरहर, उडद, सन, मक्का और धान लहरा रहे हैं। आम, जामुन के दूर तक फैले हुए बागीचे फल दे चुके है, इस समय विश्राम की साँस ले रहे हैं। चिड़ियों के पर भीगे हुए हैं। फडकाकर पानी झाड़ लेती है और मधुर-मधुर चहकती हुई, इस पेड़ से उस पेड़ पर उड़ जाती हैं; नीचे टिड्डे जैसे कीड़ों पर नजर रखती हुई बुलबुल, गलार, पिडकी, रुकमिन, सतमैये, कोयल, पपीहा, कबूतर और बरसात की बगले की जातवाली अनेक प्रकार की चिड़ियाँ तालाब के किनारे के ऊँचे पीपल और इमली के पेड़ पर बसेरा लिए हुए। ताल पर सिंघाडे की बेल फैलती हुई। लडके अखाडे कूदते हुए। औरतें काम-काज से घर और बाहर आती-जाती हुईं। गाँव में चहल-पहल। हिंडोले पडे हुए। लड़कियाँ झूलती हुईं। कजली, सावन, बारहमासी गाती हुईं। मर्द रात को रोज होते हुए आल्हे की कड़ियाँ गाते कन्धे पर लट्ठ रखे तम्बाकू ठोंकते हुए आते-जाते हुए। गलियारे में पानी भरा हुआ। मेड़ के ऊपर से लोगों की निकली हुई पगडण्डी, वह भी पानी बरस जाने से बिछलहर। कुएँ पर पनिहारियों का जमघट।

जमीदार रामराखन के पक्के मकान से खेत, बाग और पेड़ आदि के दृश्य दिखते हैं। गाँव के उत्तरी निकास पर खासा-अच्छा पक्का मकान। घर में लोगों की खासी-अच्छी संख्या। कहते हैं, इस मकान मे ब्याह करते साधारण परिवार भी घबराता है। जो औरत रोटी करने के लिए चौके में जाती है, उसको दिन-भर लग जाता है। जो पिसान पीसती है उनको रोज पाँच पसेरी से भी ज्यादा पीसना पड़ता है। जिनकी पानी भरने की बारी आती है उनको एक-एक वक्त पचीसों घड़े पानी खीचना पडता है। जिनके हवाले गोबर उठाने और गाय-भैंस दुहने का काम रहता है, उनको भी दुहकर कण्डा पाथकर आते-आते दुपहर हो जाती है। दो नौकर कुट्टी काटने और चारा-पानी करने से फुरसत नही पाते। लड़के चरवाहे बागों मे ढोर ले जानेवाले अलग हैं। घर-भर गजी-गाढ़े से रहते हैं। मगर गाँव में इज्जत है। सबसे बड़े जमींदार है।

मनोहर पड़ोस के एक गाँव का रहनेवाला विद्यार्थी है। भरा अच्छा बदन, गठा हुआ। इस जमीदार घराने से उसकी रिश्तेदारी है। जमीदार साहब को उसकी फूफी ब्याही हुई हैं। अपने गाँव राजपुर से वह जमीदार के गाँव सरायन रोज शाम

के वक्त जोर करने के लिए पहलवान रामसिंह के अखाड़े जाता है। वहीं अहीरों से तीन पसेरी का दूध तै कर लिया है; जोर करने के बाद शक्कर मिलाकर सेर-डेढ़ सेर पी लेता है और शाम की वियारी उसी रिश्तेदारी मे करके सो जाता है। चार बजे उठकर गॉव चला आता है और कुछ पढकर स्नान-भोजन करके पास के संस्कृत पाठशाले चला जाता है। आचार्य कक्षा के दूसरे साल का विद्यार्थी है।

मनोहर के पिता वम्बई मे एक सेठ के यहाँ नौकर है। साधारण अच्छी आमदनी है। घर मे खेती-बारी होती है, बैल है, गाय-भैसें है, गाड़ी है, और स्नेहशीला महिलाएँ है। गाँव के लोग इनको भलेमानुस कहते हैं।

आज अखाड़े जाते हुए पहलवान रामसिंह के पड़ोसी पटियैत से चार आँखें हुई। शीलवान मनोहर को उन्होने चंग पर चढ़ाया। कहा, "जोर कराने जा रहे हो!"

मनोहर ने कोई जवाब न दिया। बरसात का कीचड बचाकर ऊँची पगडण्डी से निकलने को हुआ कि पड़ोसी ने खखारकर कहा, "वह हमारा मकान है, गलियारा भी हमारा है, गाँव में जो शोहरत है वह कही, हाँ, वदन जैसा गठीला है और रेख-उठान उम्र, हमको विश्वास है, इस ठाकुर को जोर करा देते होगे।"

मनोहर फिर भी सब पी गया। लजीले डग आगे रखने को हुआ कि पड़ोसी ने फिर आवाज कसी, "अच्छे भलेमानुस हो! आदमी तो आदमी मकान उठाये लिये जा रहे हो! अरे हम जमीदार के भी मान्य है, जवाब दे जाओ, नही तो हम उन्ही से समझेगे।" मनोहर ने कहा, "हम तो जोर करने आते है, आपकी बात सच होती तो इन्ही को हमारे गाँव जाना होता।" पड़ोसी ने कहा, "हमको मालूम है, तुम्हारे गाँव मे छाया अखाडा नही है, इसलिए यहाँ तक पैज भरते हो। हमारा नाम है लीलाराम।"

मनोहर सन्न हो गया। कुछ समझ न सका। पैर वढ़ाये गया। पड़ोसी कुछ दूर हो गया। आवाज दी, 'तो फिर तुमको अपने ही घर समझ गये न, (एक बुरी मुद्रा दिखाते हुए) हकीकत समझ मे आ जायेगी, हम पीठ नही लगवाते।"

मनोहर को आश्चर्य हुआ। मगर समझकर भी तरह दे गया। कुछ दिल धड़का, टेढ़ी खीर सीधी नही हुई। चुपचाप अखाड़े पहुँचकर लँगोटा बाँधा और नाली मे दण्ड करने लगा। सौ-डेढ सौ दण्डें की कि उस्तादजी नहाकर आ गये। लालटेन जलाकर अखाड़े के छप्पर मे बँधी रस्सी के साथ बाँध दी गयी। चौदह-पन्द्रह साल-वाले लड़के अखाड़ा गोड़ चुके थे, छप्पर की थूनिया पकड़े हुए बैठक कर रहे थे। दो-तीन लड़के उसी गाँव के, उनसे कुछ बडे, मगर मनोहर से उन्नीस, जोर करने के लिए आ गये।

उस्ताद ने लँगोटा बाँधा। पहले गाँव के बड़े लड़कों को लड़ाया। छोटे लड़के एक दूसरे से अखाडे के किनारे-किनारे लडते रहे। अखीर मे उस्ताद ने मनोहर को बुलाया। मनोहर तगडा है। लड़ता भी अच्छा है। बम्बई जाता है तो बड़े पहलवान से जोर करता है। कई दाँव रवाँ हैं। उस्ताद सम्हले रहते है। मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो-तीन को करा सकते हैं। दस्ती, उतार, लोकान, पट, ढाक,

कलाजंग, घिस्से आदि दाँव चले और कटे। ताकत मे भी रामसिंह वीस थे। मनोहर को जोर कराकर हरे होने लगे।

ठण्डे होकर लोगों ने अखाड़ा विदा किया। मनोहर दूकान से आधा पाव शक्कर लेकर अहीर के घर गया। दुपट्टे में शक्कर रखकर दूसरे लोटे में दूध छान लिया और वहीं वैठे-वैठे पी गया; फिर रोज की तरह अहीर से पानी मँगवाकर दोनों लोटे धोकर दे दिये और जमीदार की हवेली के सामने पीपल के तलेवाले चवूतरे पर वैठकर पुरवैया के झोके लेता रहा। अव तक रात एक पहर हो आयी थी।

मनोहर को यहाँ कुश्ती के लिए आते अभी बहुत दिन नही हुए। माजरा यह है कि वह वम्वई में पिता के पास रह रहा था। संस्कृत वही पढ़ता था। मगर खाने-पीने का आराम रहने पर भी वम्वई का पानी उसको उतना अच्छा नही लगा। घरवाले साल-छः महीने के लिए बम्बई रह आते थे, मगर दिल घर पर ही लगा रहता था। मनोहर का गाँव ऐसी जगह है, जहाँ से कस्वे की संस्कृत पाठशाला नजदीक है। घर मे रहने का भी सुभीता है, इसलिए उसके पिता ने और घरवालों ने उसका घर रहना ही अच्छा समझा। रामसिंह से उसकी मुलाकात यों हुई कि निर्वाह के लिए रामसिंह कपड़े की दूकान करते थे; कस्वे के वाजार गाड़ी पर लादकर कपड़े ले गये थे। गाँव के जमीदार के लड़के मनराखन ने कुश्ती के शौकीन मनोहर से दूर से रामसिंह को दिखाते हुए कहा, "अपने यहाँ के यह सवसे अच्छे पहलवान हैं, जोर करना चाहो तो इनसे वातचीत कर लो, फिर हम भी अच्छी तरह दाँव-पेंच सिखाने के लिए कह देंगे। हमारे रिश्तेदार होते हैं।"

मनोहर सीधे स्वभाव का रेख-उठान युवक, रामसिंह के पास मुस्कराता हुआ गया और जोर करने की वातचीत छेड़ी। सुनकर रामसिंह देखते रहे और तोलकर रहा, "अच्छी बात है आया करो।" इसके वाद मनराखन एकान्त में मिला और अपनी जमीदारी का राज कहकर जैसे अपनी रक्षणशीलता रामसिंह को दी। रामसिंह ने मुस्कराकर राज लेते हुए कहा, "अच्छी वात है, मगर हमारे गाँव का हिसाव है।"

मनराखन ने कहा, "आप लोगों का हिसाव ठाकुरो के सिवा दूसरे जमींदार क्या लेंगे! देख लिया जायगा। असामी मोटा है। जमीदार की निगाह न रही तो किसी रोज सर हो सकता है। यों, सर किये रहिए।"

रामसिंह का राज गाँव में एक पड़ोसी जमींदार के यहाँ था, मगर गाँव-भर के छोटे जमींदारो का राज मनोहर के रिश्तेदारों के यहाँ रहता था। सरकारी मालगुजारी इन्ही की सवसे ज्यादा थी।

मनोहर के आने पर पहले-पहल किसी ने कोई छेड़छाड़ नही की, जैसे कुछ होता हुआ भी न हो रहा हो। दो-एक रोज वाद बातो-ही-बातों रामसिंह ने अपने राज का इजहार किया। दूसरे जमीदार का माथा ठनका। उसने कहा, "तुम हमराज हो, किसी को जो तुम्हारा रिश्तेदार नहीं, अगर लो तो हमसे पूछकर, क्योंकि ऐसा ही सरकार और जमींदार का कायदा है। जिस गाँव के यह हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा। रात आठ-नौ बजे के वाद जब यह आपके यहाँ से

चले जाते हैं तब कहाँ जाते हैं, क्या करते है, किसी को नहीं मालूम। अगर कोई चोरी-डाका हो जाय तो क्या तुम इसके जिम्मेदार होगे ?"

रामसिंह ने कहा, "यहाँ वह जो तुमसे भी बड़े जमींदार है, इनके रिश्तेदार है। वही रात को रहते हैं। सवेरे गांव जाते है। हमको इतना ही मालूम है। इनके गाँव के जमीदार हमारे रिश्तेदार है। राज हमारा ठाकुरो का। सिर चढ़कर बात-चीत की तो हजारों घोड़े मुतवावेंगे।"

इस तरह बातचीत बढते-बढते बढ गयी और गांव-भर में तरह-तरह का रंग चढने और उतरने लगा। मनोहर के रिश्तेदार ने गम्भीर होकर सुन लिया। लोगों की सलाह उनको पसन्द आयी। रामसिह चने होकर भाड कैसे फोड सकते हैं, उनके जमीदार की यह शिकायत उनको सही मालूम हुई। उन्होने मतलब बैठा लिया कि किस रास्ते गुजरा जाय, गांव के मामले मे रामसिह की मदद दूसरे गांव से कैसे पहुँच सकती है।

मनोहर चबूतरे पर बैठा हवा ले रहा था। हवेली की चौपाल से चबूतरा देख पडता है। जमीदार मनोहर के फूफा साहब उठकर चले। मनोहर के पास आकर बैठे। पहले मन लेते रहे, बहलाते रहे। यह मालूम होने पर कि मनोहर बच्चा है और रामसिह को उस्ताद की निगाह से देखता है, उन्होने कहा, "बच्चा! देहात का हिसाब-किताब तुमको कम मालूम है। जमी का जाल बिछा है। जो जमीं तुम्हारी नही उस पर पैर रखने का भी हक तुमको नही, अगर उसका जमीदार किसी सूरत मे तुम्हारा रखवाला नही। सरकार को एक जवाब जमीदारी के अन्दर के किसी कारनामे के लिए देना पडता है। तुम जिस गांव से आये हो, तुम्हारे साथ उस गाँव का राज भी आता है। उस गाँव के जमीदार का राज इस गांव का जमी-दार रियाया की हैसियत से न लेगा। जो तुम्हारे पहलवान है वह तुम्हारे नौकर नही, तुम खुद उनके यहाँ लड़ने आते हो यानी उनके मातहत हो। ऐसा होने पर जमीदार के साथ का उनका रिश्ता जाता रहता है। बर्ताव मे बल पडता है। जमी-दार से वह एक रैयत की हैसियत से नही पेश आ सकते। रैयत के तौर पर वह तुमको पेश करते हैं। लेकिन जमीदार तुमको नही ले सकता, क्योंकि तुम्हारे साथ हमारा हिसाब है, और हम जमीदार की तौहीन होने से हर तरह बचायेंगे। गर्ज यह कि हमारे रिश्तेदार की हैसियत से तुम वहाँ जा सकते हो, मगर यहाँ के जमी-दार के आदमी बनकर। कल अपने जमीदार से कहकर आना कि हम उनके आदमी हैं हमारा नाम लेकर, तब तुम्हारी समझ मे बात आ जायगी। इस गाँव मे हमारे आदमी को अपने आदमी करार नही दे सकते और जमीदार के आदमी को नहीं लडायेंगे तो क्या गुजरेगी यह उनके आगे आयेगा।"

फिर हँसते हुए दूसरी बातचीत करने लगे। मनोहर ने सुना, उन्होंने मन-ही-मन कहा, ठाकुर बहक गये।

कुछ देर बाद जमीदार साहब उठकर चले गये। मनोहर विचार मे पड गया। उसको नया विषय मिला, नया रास्ता जिसमे वह कभी नही गुजरा। उसको गाँव के जमीदार की बातें याद आयी, बाद को बाजार मे मिलने का दृश्य एक बार फिर आँखों पर घूम गया, हकीकत बड़ी भयावनी लगने लगी। हाथ-पैर ढीले हो चले।

उसने कभी नही सोचा, जमीदार की जात ब्रह्म-राक्षस से बढ़कर है जिससे पीछा कभी नही छूटता। क्षण-भर में उसके मन की दशा बदल गयी। पूरा-पूरा ज्ञान इस सम्बन्ध का पा लेने के लिए उकताने लगा। इतनी भाप भर गयी कि दूसरे ही दिन बम्बई रवाना हो जाने की सोचने लगा।

कुछ देर बाद एक आदमी बुलाने के लिए आया। मनोहर खाना खाने चला। घर के गैर लोगों को बाहर निकालकर उसकी फूफी आज खुद थाली परोसकर बैठीं।

मनोहर हाथ-पैर धोकर, कुल्ले करके थाली पर बैठा। उसकी फूफी ने मुस्कराकर कहा, "क्यों रे, तू पागल है! तुझको यहाँ लड़ना था तो हमसे कहता? रामसिंह आँखें क्या चढ़ाने लगा! ले-देकर एक जोड़ी बैल, एक गाड़ी और एक-दो गाँठ कपड़ा! जैसा कहा, कल वैसा कर। अभी तक हम लोग चुप थे। लड़का है, खिलवाड़ है। कल सही हाल मालूम हो जायगा। इसके बाद, जब यहाँ से जायगा; गाँव के डाँड़ तक हमारा राज, उधर उनका।"

मनोहर को सारी रात बेचैनी रही। पड़ा तारे गिनता रहा। बहुत दूर तक अक्ल चलती नही थी। फिर भी जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाता रहा। जब ठण्डी हवा लगती थी, सोचता था, दुनिया में लोग एक-दूसरे से इस तरह क्यों नहीं मिलते कि छोटे-बड़े का भेद-भाव भूल जाय, एक-दूसरे के गले-लगे दोस्त हों, गर्दन नापनेवाले दुश्मन नही। माजरा जैसा रंग पकड़ रहा है, आखिर तक किसी की जान से गुजरकर रहेगा।

लेटे कुछ देर हुई कि एक नौकर आया। उसने कहा, "गाँव में किसी चिड़िया को यह हाल न मालूम हो। जमीदार से कह आना-दूसरे गाँव का हमारा राज हमारे रिश्तेदार के यहाँ है। यहाँ मालिक के छोटे भाई आपसे मिलेंगे। जैसा-जैसा कहें करते जाइयेगा।" यह कहकर वह चला गया।

मनोहर फिर करवटें बदलने लगा। पुरवाई के झोंके कभी-कभी झाड़ियों की खुशबू से लदे मस्त करते हुए आने लगे। आल्हा की धुन सुन पड़ने लगी। साथ ढोलक बज रही थी। कुछ देर बाद मनोहर अपनी उधेड़-बुन में आ गया। जैसे भूल-भुलैयों में पड़ गया हो, निकलने का रास्ता न पा रहा हो। जी उकताने लगा। आँखों पर रात पार हो गयी। पौ फटने की सूरत नजर आयी। वह उठकर गाँव को चला।

दो

जब घर आया तब भी चक्कियाँ चल रही थीं। ढोर नही छूटे थे। पनहारिनें पानी को नही निकली थी। गाँव के बाहर एकाध स्यार तब भी चक्कर काट रहे थे।

घरों के दरवाजे नही खुले थे। मनोहर रात-भर का जगा था। किसी को आवाज नही दी। चौपाल की खाली चारपाई डालकर लेट गया। देखते-देखते आँख लग गयी। आज पाठशाला जाने की उतावली न थी। घर की तरफ से न निश्चय था, न अनिश्चय। वम्वई जायगा या घर रहेगा, फैसला न कर सका था।

घर के लोगो ने उठकर उसको लेटा हुआ देखा, तो जगाया नही। उसकी अम्मा को कुछ झझक हुई, मगर वह भी जगने तक मुँह दवाये रही। दिन का काम, पीसना, भैंस लगाना, कण्डे पाथना, पानी भरना, रोटी करना आदि होता रहा। कभी-कभी मनोहर के सोते रहने पर फब्तियाँ चलती रही। जव जगा तब दुपहर थी। नीद के आ जाने से वदन हल्का हो गया। जंगल गया और दातोन के लिए नीम का एक गोजाह लेकर लौटा। फिर डोल, लोटा, डोर और धोती लेकर पक्के कुएँ को चला। नहा-धोकर घर लौटा, मकान के भीतर देवता को प्रणाम करने गया, कुछ देर वैठा माला जपता रहा, फिर चन्दन लगाये हुए लौटा और चौके को गया। उसकी माता ने थाली परोस दी और वैठी मक्खियाँ उड़ाती रही। जव आधा भोजन कर चुका, एक गिलास पानी पी लिया, तव उसकी माता ने पूछा, "क्यो भैया, आज आते ही सो गये? पाठशाला नही गये।"

मनोहर ने जवाव दिया, "कुछ ऐसा ही पेंच पड़ गया है। तुमसे कहूँगा। वड़ी वात नही, एक वतंगड है।"

माँ मुँह देखती रही। आग्रह आँख से फूटकर निकल रहा था। मनोहर ने भोजन समाप्त किया। हाथ-मुँह धोये, कुल्ले किये। माॅ ताक पर थी, इसलिए घर की खिड़की से गोड़े की तरफ गया, इशारे से माँ को वुलाकर।

उधर चारो तरफ से चारदीवार बीच मे तीन-चार नीम के पेड़ है, छाया किये हुए। दो एक चारपाइयाँ पड़ी है। औरतो के विश्राम की जगह है। वाहर से कोई देख नही सकता। जैसे छोटा नीम का एक वागीचा हो। एक तरफ एक कुआँ है। पानी खारा होने के कारण चौका-टहल और नहाने-धोने के ही काम में लाया जाता है। खुली जगह होने के कारण पुरवाई के विरामपूर्ण झोके आ रहे हैं। नीमों पर चिड़ियों की चहक दिन-भर सुन पडती है।

मनोहर पड़ी हुई चारपाई पर वैठ गया। माँ भी एक किनारे आकर वैठी। सशकित दृष्टि से माँ को देखता हुआ कुल हाल मनोहर धीरे-धीरे वयान कर गया। माँ ने कहा, "ब्राहर की वात है, घर के पुरखे यहाँ है नही, इसलिए ननदोईजी का कहना ही करना चाहिए।"

मनोहर ने कहा, "अम्मा! वात यह वड़ी पेचीदी जान पड़ती है। हम किसी अधिकार के आदमी हो, हमारे रक्षण के कोई नियम हो, उनका पालन होना जरूरी है, इस बात से इसका विरोध जाहिर होता है। ऐसी ही वात वम्वई में गुजरी, जिसके कारण हम लोगो को यहाँ चला आना पड़ा। किराये के जिस मकान में रहिए, किराया देते रहने पर भी जैसे अपना कोई स्वत्व न हो। पिताजी जहाँ नौकर है, वहाँ माह-माह काम करने और तनख्वाह लेने के अलावा उनकी व्यक्तिगत कोई जिम्मेवारी नही। स्वत्वाधिकार सेठ भी है जिनके वे नौकर है। किराये के मकान मे स्वत्वाधिकार जमीदार का है जिसका वह मकान है। हमारा

समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज हो रहा है, और यह ब्राह्मणत्व ! इस पर भी तरह-तरह से नीचा देखने की नौबत आती है। अव इतर जन सिर उठाने लगे है। हमारी अवमानना समाज की उन्नति का पहला साधन हो रही है। दूसरे हमारा ब्राह्मणत्व हमारी एक छोटी-सी पहिचान के सिवा, एक छोटे-से दायरे मे आ जाने के सिवा कोई ताकत नही रखता—दूसरे प्रान्तों मे हम शूद्रों से भी वदतर समझे जाते है। आपको मालूम हो कि मकान-मालिक के इतर विचार के कारण हमने सिर उठाया था, जिससे नीचा देखना पड़ा। समाज मे उसकी ब्र ह्मण के लिए हुई मान्यता उसके पुरोहित के हक में गयी थी। हम जैस ब्राह्मण हीन रहे हो। जाति की आँखों मे जातिगत अभिमान नही रहा। इस तरह आदमी लगा-कर दूसरे का स्वत्व खीचना आदमी का अपमान है जिससे हमको सिर उठाना पडा। तुमको भी कितना नीचा दिखाया जव उसने अपनी जुवान से अपनी ब्राह्मणी लगाकर कहा, हमारे घर में पूजा-दान के समय इन्ही का मान है, तुम्हारा नहीं; तुम कौन हो कौन नही, हमको क्या ज्ञान ? उस मकान मे रहकर वेइज्जती सिर किये रहने से वाज आये। मकान छोड़कर चले आये। यहाँ वही माजरा है। अव अगर फिर किसी कारण से हमको गाँव छोड़कर वम्वई जाना पडा तो हम कौन-सा मुँह लेकर जायेंगे।"

माता ने सुन लिया। देखते-देखते उनके हृदय की सिंहनी जैसे ऊपर को छलाँग मारी, उनका सिर तमाम आदमियो के ऊपर उठ गया। वडे ही स्नेह तथा गम्भीरता के स्वर से उन्होने कहा, "वेटा, मुझको विश्वास है कि तू मेरे दूध की लाज रखेगा और इन कामो की तह तक पहुँचकर इनकी जजीर तोडने के काम आयेगा। अभी तो कच्चा वच्चा है। इन तमाम लांछनों को चुपचाप सिर उठाये हुए तैयार होता कि एक वक्त तू इनकी जड़ें काटे। दूसरा कोई चारा नही। हम एक मुद्दत से यह कसाले झेल रहे है। माँ से वेटे को वरासत मे जो वातें मिलती हैं, वे हमारे कौम की गर्दन झुका देनेवाली है। मुसलमानी जमाने से जो अपमान होते आये है, वेटे, तू अभी वच्चा है, मुझसे कहने-लायक नही, सिर्फ तैयार होता जा कि माँ के सपूत का जवाव दे—वे वाते दुधारी तलवार है, मत समझ कि तेरी माँ, तेरी वहन एक धर्म के रिश्ता के सिवा और कुछ रखती है। मजवूरी के सिवा मरदों के हाथों उनके और भी जो अपमान होते हैं वे सैकड़ो विच्छुओ के डंक मारने से ज्यादा जलनेवाले और जहरीले है। मरदों की आँख के नीचे उनके अपमान हुए है और मरदों के हाथ-पैर नही चले। हम पीढियाँ लिख रखते है। हमारी माँ का कहना था सौ पीढ़ियाँ वीत चुकी है; यह तेंतालीसवीं पीढ़ी के वाद। हम उसको भगवान को अर्पण कर देते हैं और वाकी पीढियाँ चलती हुई वाँधे रहती है। यही कामना दिन-रात रहती है कि नारियो का अपमान है, हे भगवान्, वदला चुकाओ। सिर्फ वदले की आग धधकती है।"

मनोहर चुपचाप सुनता रहा। कहा, "माँ मैं, तुम्हारा योग्य-पुत्र होने की कोशिश करूँगा।"

कहकर वह उठ खड़ा हुआ और वाहर चला गया।

तीन

गाँव में चारों तरफ हरियाली-ही-हरियाली है। अरहर और ज्वार के पेड़ इतने बडे हो गये हैं कि उनसे तमाम खेत हरे-भरे नजर आते है। धान भी दूसरो की हरियाली से होड कर रहे है। सन की तो वात ही नहीं। पौधे मुट्ठी-भर रोज बढते है। सबसे ज्यादा ऊँचे वही दिख रहे है। वागो मे घास भी घुटना छूने लगी है। गाँव के लडको की डोर फूट के खेतो मे लगी है, जिनकी ककडियाँ उतरकर आने लगी है। क्षण-भर मे चारा-पानी हो जाता है। सीचने की कही चिन्ता नही। मकान छाये-छोपे जा चुके है। किसान आराम की साँस ले रहे है। वडे-वडे आदमियों की चौपालो मे दो-दो, चार-चार, छः-छः आदमी बैठते हैं। वाजरे की खेती कौन-कौन करेंगे इसकी वातचीत हो रही है। जमीदार का मकान चापलूसी का अड्डा है। मनराखन खासे अच्छे पलँग पर कालीन विछाये वैठा हुआ है, सटक पी रहा है। कुछ फासले पर साधारण-सी नंगी चारपाई पर सिपाही वैठा है, सरहाने के सहारे लट्ठ रखे हुए। कुछ किसान जो साधारण जातियो के है, चौपाल के चवूतरे पर छप्पर के नीचे उकड़ूँ वैठे हुए है। आशा है, मालिक पी चुकें तो वे लोग भी चिलम पियें। चापलूसी में एक-दूसरे से तेज पड रहे है। वड़े मालिक वैठके मे आराम कर रहे है। मनोहर दरवाजे की नीम की छाँह से गुजरता हुआ चौपाल पहुँचा। जिस चारपाई पर सिपाही वैठा था उस पर वैठने को हुआ। जमीदार का सिपाही सरहाने की तरफ सरक गया। वैठने के साथ मनोहर का कलेजा भी जैसे वैठ गया। मनराखन ने उसको सिर्फ ऊँचे से जैसे एक दफे देख लिया और धीरे-से सटक गुडगुड़ा दी। सिपाही को हिम्मत हुई वह सरहाने की तरफ सरक गया, मुस्कराया और मनोहर को देखकर कहा, आओ वैठो। रोज-रोज का अभिवादन गाँव के जमींदारी प्रकरण मे नही भी रहता।

मनोहर ने देखा, हिम्मत वँधकर भी ढीली पड जाती है। ऐसा वंधान है जो उखाडा नही उखडता। आज इतनी ही देर के आवेश में उसकी निगाह में वह ताकत आ गयी है जो हर एक की सूरत का जिन देख लेती है और समझ जाती है कि यह आदमी जान-वूझकर कमजोरी का शिकार बना हुआ। यह उस समय की वात है जव देश मे राजनीतिक संस्थाएँ प्रवल नहीं थीं। सरकार के यहाँ रियाया की तरफ से जवाव देनेवाले जमीदार ही थे।

सिपाही ने मुस्कराकर पूछा, "आज दुपहर-दुपहर कैसे आये! ऐसे वक्त, गाँव मे कभी तुम्हारी चिड़िया भी नही दिखी।"

मनोहर ने कहा, "पाठशाला नही गये। मनराखन से कुछ काम है।" सिपाही ने रोक लिया, "काम की वात करते हो तो हमसे पूछो। हम इनके पिता से करेंगे! खेल-कूदवाली बात हो तो इनसे करो। पहलवानी यह करते नही, जरूरत पड़ेगी तो हाँ, दो-चार पहलवान ला देंगे। यह इनका पानी चढ़ा रहने के सिवा उतर न जायगा।"

कहकर सिपाही हाथ मे अपनी लाठी उठाकर उसकी वँधी राखी खोलने लगा

कि फिर सुधारकर बाँध दे ।

लागन बोल मनोहर को चुभा । उसने कहा, "विजयसिंह, हम तुम्हारे पास नही आये और चारपाई में पाँयते ही बैठे है और अभी तक वह जमाना नही आया कि हम लोगो से तुम हाथ बाँधे हुए न पेश आओ ।"

विजयसिंह भी नौजवान है । तन्दुरुस्ती वैसी अच्छी नहीं । जमींदार का सिपाही, लत लुच्चई की पड़ी हुई । जवानी में जैसे चूसा आम हो । मनोहर की तन्दुरुस्ती से खार खाता था । आज मौके पर पाकर बुखार उतारा । मनराखन अमीरजादे की तरह सटक पीता हुआ कृपा की दृष्टि से रह-रहकर मनोहर को देख लेता था ।

पहले जो हिम्मत पस्त हुई थी बगावत मे बदल गयी, मगर सँभालकर उसने सिपाही से लाठी ले ली । ढीली पकड़ी लाठी विजय के हाथ से निकल गयी । उसको अपने क्रोध के कारण डर हुआ । साथ ही चीख निकली, "अरे अपमान कर डाला !"

इन्द्रमन लोध उन बैठे आदमियो में था । बिना कहे उससे नही रहा गया । उसने कहा, "मालिक, तुम तो हवा से बिगडते हो !" इन्द्रमन को जलन थी । सिपाही ने उसकी बहन की अस्मत बिगाड़ी थी । रोटी पड़ने के डर से उसने किसी से कहा नही । जहर के घूंट पीकर रह गया । आज एक मौका हाथ आया ।

विजयसिंह इसको ताड़े बिना न रहा । मगर तरह देकर बात बनायी । कहा, "सावन का अन्धा हो रहा है ? हरियाली झूमती है ! लाठी जमीदार की, यह देख, हाथ खाली है," कहकर अपने हाथ दिखाये और हुक्म दिया, "झपटकर छीन लाठी ।"

इन्द्रमन की कुल नसें ढीली पड़ गयी । दूसरी सवारी गठी देखी । मनोहर से कहा, "रखिए महाराज, लाठी उधर, जिनकी है । इनके लिए, जब यह अपने आये है, एक लौंडा काफी है, तुम्हारी इनकी हाथी और मेढ़े की जोड है ।"

मनोहर लाठी लिये ही रहा । मनराखन इन्द्रमन की बात पर जगे । आँखें तरेरकर कहा, "तुम्हारे लिए ठाकुर ही है, कायदे के खिलाफ कैसे बोलते हो ?"

इन्द्रमन ने कहा, "और जो यह पाँयते बैठे हुए हैं, यह कौन है । इनको तो विजयसिंह ने बेबात-की-बात मे ले-दे डाला ।" मनराखन उठकर खड़े हो गये । कहा, "सूद बिना जूतो के सीधा न होगा ।" कहकर ताव में आकर लतखोरे तक लपककर जो जूता उठाया वह इन्द्रमन ही का था ।

इन्द्रमन ने कहा, "मालिक, ए, राम के हाथ ऐसा फैसला है । यह जूता हमारा है ।"

मनोहर उठकर खड़ा हो गया । मनराखन से कहा, "चलाओगे तो पहले हमी को लगेगा, इसको डाल दो ।"

मनराखन ने जूता डाल दिया ।

मनोहर ने कहा, "यह लो अपनी लाठी ।" मनराखन ने लाठी ले ली । मनोहर कहता गया, "गाँव के जमीदार का राज आप लोगो के यहाँ रहा । बाहर का हमारे रिश्तेदारों के यहाँ । उस रोज की बाजारवाली बात न भूलो । तुम्हारी अगर वहाँ

तक विसात हो तो अपनी कर गुजरना। हमारा वहाँ का हिसाव यहाँ के जमींदार के साथ नही रहा।"

उस वीर के सामने मनराखन की हिम्मत पस्त हो गयी। जैसे किसी ने नजर वाँध दी। मनोहर उतरकर सीधे घर चला।

"वड़ा बुरा रवैया है भैया, ठहर जाओ, हम लोग भी चलते हैं," कहते हुए किसान भी अपने-अपने जूते पहनकर चौपाल छोडकर चल दिये। क्षण-भर मे जैसे समाँ वदल गया। मनराखन और विजयसिह के मुँह पर मक्खियों ने कई चक्कर मारे।

चार

मनोहर की नसो में तनाव आ गया था, परन्तु भगवान के भीतरवाले कमरे में वैठ अपने को शान्त कर लिया, और समय से पहले तीसरे पहर के ढलते-ढलते अपना लँगोटा-जाँघियाँ लेकर अपनी फूफी के घर के लिए रवाना हो गया। कुछ गर्मी आँख मे थी, वह उसके चरित्र और स्वास्थ्य के कारण भी, वह सिर दवाये हुए भरसक निगाह नीचे से निकाल रहा था। चलते हुए भीटो को वायें छोडा। नाला मिला जिसका पानी वह चुका था। उससे निकल लोमडी दूसरी झाड़ी की ओर भगी जाती दिखी। देखा, गर्मी के हरे-भरे जवासो के पौधे पानी के पड़ने पर झुलस चुके थे। उनके वीच से हरी घास ने सिर उठाया था। कुछ आगे वढा, तो कमर तक वढ़ी मंजूर से एक चौगडा लोमडी के घुसते ही निकलकर भागा और कूदता हुआ वगल की दूसरी झाडी मे जा छिपा। मनोहर कदम वढ़ाता गया। कुछ आगे उसके फूफा का एक वाग मिला। उस गाँव मे उनके दो-ढाई सौ वीघे वागात हैं। यह वाग भरा है। फिर भी रीएँ और ववूल के पेड़ अधिक हैं। गाँव की जमीदार से हर-तीसरे साल हजारो के खदरी पेड़ उसके फूफा जमीदार साहव वेचते हैं, जिनमे सौ पचास रुपये के किसानो के भी पेड़ पड जाते हैं। गाँव के किनारे का पक्का ताल और संकटेश्वर महादेव का शिवाला मिला। यह भी उसके फूफा लोगो की कृतियाँ हैं।

आगे गाँव आया। गलियारे से होते हुए मनोहर अपने फूफा की हवेली की तरफ चला। पहले ही रामसिह के मुहल्लेवाली राह छोड दी थी। घर पहुँचकर फूफी, फूफा, फूफा के भाई और उनकी स्त्री आदि गुरुजनो के पैर छुए। फिर दरवाजे की वड़ी चौपाल मे आकर चारपाई डालकर वैठा। उसके फूफा के छोटे भाई राम-शंकर हैं। गाँव का कुल हाल इसने उनसे कहा। राज चला देने के इरादे से वह उस को लेकर एक काछी के यहाँ गये जो उनका किसान है। रामशंकरजी ने मनोहर से कहा, "यहाँ जितने हमारे किसान हैं, सव हमीं-हम हैं। तुम यही समझो, यही

तुम्हारे रिश्तेदार और जमींदार हैं।"

मनोहर पीता गया।

रामशंकर ने आवाज दी। काछिन बैलो को सानी दे रही थी, हाथ मे खली और भूसा लपेटे बाहर निकल आयी।

रामशंकरजी ने उसके गुप्त अंग की ओर उँगली उठाकर कहा, "यह तुम्हारी फूफी है और जमींदारिन, इनके सरपरस्त है सरकार, कहो हाँ।"

मनोहर ने कहा, "हाँ।" मगर सिमिटकर रह गया।

रामशंकरजी ने दूसरा दृश्य जो उनका असली है, दिखाया। कहा, "काछिन भउजी, वही आज फिर दे जाओ। यह तुम्हारे भतीजे है, इनका कुछ आदर-स्वागत करना है।"

काछिन ने कहा, "ऐ, अभी तो वतियाँ है। जब बढ़ेंगी तब देंगी। करेले की बेल तो उजाड़ दी गयी। पहले की लगायी थी। कुछ मिर्चे होगे और कुछ ककड़ी की वतियाँ। कोंहडा भी अब नहीं रहा, और इस साल हमने कुछ लगाया नही।"

रामशंकर ने कहा, "मसालेदार ककड़ी की जैसी तरकारी दूसरी नही होती, वही दे जाना।"

मनोहर ने देखा, यह इनका असली रूप है। कुछ कहा नहीं, पीछे लगा उनके साथ चला गया। रास्ते मे उन्होने कहा, "यह राज है। अब तुम हमारे आदमी हो। रामसिंह के यहाँ खबर भेज दी जायगी। वह हाथ जोड़कर पहले पालागन करेंगे, तुम आशीर्वाद दोगे, फिर वह तुमको लड़ायेंगे। अपना उस्तादवाला राज तुम पर रखेंगे। जब लौटकर आओगे तब रामसिंह का राज हमारे राज मे रहेगा। यह वर्ताव है। इसके बिना चलन नहीं चलता। जमीदार राजा है। उसका हिसाब पहले। सरकार के यहाँ उसका कहना। यह नेकमाश को बदमाश करार दे सकता है। सरकार उसकी बात मानेगी। बदमाश की निगरानी वह अपने जिम्मे ले सकता है। सरकार को उस पर विश्वास है। सरकार से समझौता उसी का होता है, इसलिए मुख्यत: तुम्हारे सिर दो हैं, सरकार और जमीदार। इसको कभी न भूलो। यह लकड़ी हाथ से गयी कि दुनिया में कहीं भी थाह न मिलेगी। अब आओ, अपना काम देखो।"

पाँच

रामसिह बैठे थे। पक्के गोले से कस्बे को गाड़ी ले जाते हुए बरसात में और सहूलियत थी। देहात के लोग घोड़ों पर सामान लादकर आते थे, गाड़ियाँ बन्द रहती थीं। लिहाजा माल बाजार मे कम पहुँचता था। रामसिह गाड़ी ले जाते थे, माल अधिक विकता था। आजकल लालोलाल है। खोये की बर्फियाँ बनवा ली है, जल-

पान होता है और ठण्डाई मे पच्चीस बादाम और पड़ने लगे हैं। घी आधा पाव और खाने लगे हैं। सबमे बडी सहूलियत यह हुई कि मनोहर-जैसा शागिद ! क्या चढ़े फिरने का घोडा मिला है। गाँव मे कई जगह गरदन उठाकर गाल बजा चुके है। इसी का पानी चढा है। लोग किस-किस मनोवृत्ति के होते है, इसका फैसला बड़े-बड़े दार्शनिक नही कर पाये। एक पहलू से उसकी अच्छाई साबित होती है तो दूसरे से बुराई। जिस हद तक रामसिंह को भला आदमी कह सकते हैं, उसी तक बुरा भी। गर्ज कथा है। रूह निकालना पाठक या दर्शक का काम है। आखीर तक एक हासिल होगा ही। अगर किसी गुमराह को समझ की कमी के कारण कुछ-का-कुछ सूझ जाय तो वह एक उपन्यास का ही प्रकरण होगा जैसा कि होता जा रहा है।

ठण्डाई के चढते हुरे नशे मे रामसिंह आँखें खोल-मूँद रहे थे कि जमीदार का सिपाही लट्ठ का बँधा गूला जमीन पर दे-मारकर रामसिंह के साधारण जमींदार को साथ लिये बोला, "देखिए ठाकुर साहब, राज जमीदार का भतीजा जमीदार का, आपकी मातहत (रामसिंह के जमीदार को इशारे से बताते हुए) आ रहा है, लडाइयेगा, भला-बुरा जो कहना हो, आपकी मार्फत कहियेगा। लड़का है, जैसा उनका, वैसा ही आपका। चोट न लगे, ख्याल रखिए। सलाम।"

सिपाही चला गया। रामसिंह ने फिर एक बार आँखें खोलीं और मूँदी। उनके जमीदार ने ललकारकर पूछा, "ज्यादा चढ़ गयी क्या ?"

रामसिंह ने लापरवाही से फिर आँखें खोली और मूँदी, और तख्त की एक बगल थपकी मारकर बताते हुए कहा, "आओ, बैठ जाओ।"

जमीदार यमुना प्रसाद बैठ गये। बड़े जमीदार की झेंप उतारने के लिए कहा, "ये शान है।"

रामसिंह ने भी झेंप उतारी। कहा, "कहो तो हम भी जवाब भेज दें।"

छोटे जमीदार के बाजी हाथ आयी। कहा, "बस हमारे दरवाजे चले चलो, बात हम यहाँ न लेंगे, नही, कहो; यह जमीदार की चौपाल है।"

रामसिंह की फिर घिग्घी बँधी। दबकर मंजूर कर लिया। सोचा, यहाँ से वहाँ तक चलकर व्यर्थ मिहनत करनी है। हम मानेंगे तो यह जी न छोडेगा।

जमकर जमीदार ने कहा, "कहो, सिपाही तो हमारे हैं नहीं, दो सौ बीघे के पट्टीदार हैं। मगर गुल खिलेगा। कुछ हमारी भी नजर ?"

रामसिंह कुछ और बैठे, यह जमीदार महाशय भी ब्राह्मण थे। रूढ़ि ऐसी कि घूम-फिरकर उसी पर आना था। सोचा, वह भी कौन, काम आये, न आये, दूर का रिश्ता, फिर भी ठाकुर है, पानी गहरे का आया तो देख लिया जायगा, जिले का भी राजसी ठाट हमारा ही है। बोले, "क्या हम इनके घर इनको बुलाने गये ?"

जमीदार ने कहा, "यह तो हम पूछेंगे, यह तो जमीदाराना है, अपने ढंग से चलो, जैसे रिपोर्ट कर रहे हो। यही तो विगाड़ की बुनियाद है।"

रामसिंह ने काँखकर कहा, "अब और तो हमसे नही उतारा जाता।"

जमींदार ने कहा, "तुम अपनी तरफ से कैसे दूसरे आदमी को बिना जमीदार की सलाह रात के वक्त लड़ने के लिए बुला लाओगे ?"

रामसिह ने कहा, "जब इतनी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती तब हम और क्या समझावे ? अगर इससे काम चल जाय तो अच्छी बात, नहीं तो जैसे गांव दूसरे जमीदार का राज लिया है, वैसे ही यह लो (हाथ उठाकर खाली मुट्ठी खोलते हुए), यह भी वैसा ही राज है।"

जमीदार ने कहा, "तुम किसी जमींदार का राज यों नही दे सकते। यह राज जितैला है। अगर ऐसा ही करना है तो उस जमीदार को बुला लाओ। तुमसे अदा करते नही बनता।"

रामसिह तैश में आ गये। कहा, "अच्छा तो जाओ।"

जमीदार भी गर्म पड़ा। पूछा, "जगह किसकी है ?"

रामसिह को जवाब देते पहाड़ जान पड़ा। खुद उठकर चलने को हुए।

जमीदार ने कहा, "हमारी बैठक ही से जा रहे हो न ?"

रामसिह को ताव आ गया। जमीदार को पकड़कर उठा लिया, और पास ही के उनके मकान के पास लाकर चौपाल के पास पड़ी चारपाई पर डाल दिया और कहा, "अब तो हो न अपनी चारपाई पर !"

जमीदार को बहुत ही बुरा लगा कि पूछता ही जा रहा है, चड्ढी ही गाँठे हुए है। रुख फेरकर कहा, "इसका जवाब ही मिलेगा।"

रामसिह नशे मे थे ही, ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे—

जिनकी माता ना हरजाई, उनकी बार-बार बलि जाय।
जिनकी माता कायर जन्मे, उनको रोते रात सिराया।
जनम हुआ है छत्री घर तो ज्वानी जूझे खेत अघाया।
जनम हुआ है कायर घर तो बैठे घर अमरौती खाय।

मनोहर समय पर जोर करने के लिए गया। उसको मालूम हुआ, अखाड़ा नही लगेगा। वह लौट आया। मन्दिर के चबूतरे पर कसरत करके दूध पीकर आराम करने लगा। दस-ग्यारह बजे बियारी के वक्त तक जमीदार से बातचीत होती रही। उसकी जबानी यह मालूम करके कि अखाड़ा नही लगा, जमीदार चौंके। उनको यह हाल मिल चुका था कि बाजार मे मनराखन की मार्फत मनोहर की रामसिह से भेंट हुई थी। उन्होने कमर से पच्चीस रुपये निकालकर मनोहर को दिये और कहा, "सबेरे रेल से तुम अपने बाप के पास चले जाओ, मकान मे हम खबर भिजवा देंगे, देख-रेख किये रहेंगे, यह मामला तूल पकड़ेगा।" मनोहर ने मंजूर कर लिया। कहा, "किसी कारण मेरी कही की गैरहाजिरी किसी को खटके तो भी आप समझा दीजियेगा, कोई चिन्ता न करें, मै अम्मा की बात भी पूरी करने के प्रयत्न मे हूँ।"

जमीदार ने इसका सम्बन्ध भी अपने अनुकूल लगाया।

रार्मासह के पास कोई आदमी न था। वह मील-भर के फासले के गाँव राजपुर पैदल चले गये। आल्हे की कड़ी खत्म होने के बाद उनका जी डरा कि कही नीचा न देख जाना पड़े। घर मे कह गये थे कि अखाडा नही लगेगा।

गाँव मे पूछने पर मालूम हुआ, मनराखन तीतर को दीमक चुगवा रहे है। पूछते-पूछते वह बागो के उस पारवाले किनारे की बाड़ियों मे मिलते हुए दीमक के ठिकाने पर गये। मनराखन से बातचीत हुई। जमीदार की आदत जैसी, मनराखन बदगी-सलाम के बाद खामोश रहा। रार्मासह ने ठकुराई चाल से प्रश्न किया, "कहो, मनोहर के क्या हाल हैं?"

मनराखन ने खानदानी मित्रता के नाते जवाब दिया, "वह तो गुण्डा जान पड़ता है।"

रार्मासह—"हमको कुछ खास बातें मनोहर की बतला दो।"

मनराखन—"उस्ताद, हमारा ऐसे ही आदमियों से काम रहता है। टेढ़ी लकडी ही हम सीधा किया करते हैं। राज हम और कुछ नही देते। क्योकि गाँव के भलेमानुस है, टेढ़े पड़े, घुमाये-फिराये गये, फिर सीधे हो गये। जमीदार की यह रोज की कवायद है।"

रार्मासह—"हम इसलिए भी आये थे कि तुम्हारा राज है, तो चले चलो, बुला लो, अभी गया न होगा, हम तुमको तुम्हारा राज दे दें। फिर किसी दूसरे जरिये हमारे यहाँ आवेंगे तो यह सबूत काफी है कि तुम्हारी मार्फत वह आये थे।"

मनराखन ने समझने की कोशिश की, क्योंकि दुपहर में मनोहर ने उससे कहा था, 'गाँव के बाहर का राज हमारे रिश्तेदारो का है।' रार्मासह के आने का कारण भी उसकी समझ मे आ गया कि वहाँ के जमीदारो मे खटपट हो गयी है। वह खामोश रहा। रार्मासह को उससे कुछ झिझक हुई। कहा, "व्यवहार वह जो न छूटे। दाँव वह जो वक्त पर काम दे। इतने दिनों से हम उसको लड़ा रहे हैं इसके लिए भरोसा तुम्हारा था।"

मनराखन—"चलो, सिपाही भेजकर बुलवा लेते है, और कह देते हैं कि तुमको इनके यहाँ लड़ने के लिए जाना है तो इनकी मर्जी के मुआफिक ही रहना होगा, नही तो अपना रास्ता नापो।"

मेड़ के किनारे उकड़ू बैठे तीतर चराते हुए मनराखन ने पिंजड़े मे तीतर को ले लिया और झूमता हुआ गाँव को चला, साथ मे रार्मासह।

मनराखन के दरवाजे, बैठक जमी। अभी सूरज डूबा न था। सिपाही को हेचखाया समझकर मनराखन ने एक किसान को बुला लाने के लिए भेजा। तब तक व्यवहार की इधर-उधर की बातें होती रही जो कोरी बातें है। किसान ने लौटकर खबर दी, मनोहर घर में नही है।

रार्मासह चलने को हुए। कहा, "जमीदार का मामला है, भाई पीठ बचाये रहना। हमारी पीठ लगी तो तुम्हारी भी लगी।"

मनराखन ने बढ़ावा देकर कहा, "इस मामले में उस्ताद को छूनेवाला कोई नहीं। कोई ऊँची-नीची बात गुजरी तो साले को बँधवाकर भिजवा दूंगा, खातिर जमा रहे।"

रामसिंह को प्रबोध हुआ। कहा, "अब सूर्य अस्त होने को है, चलना चाहिए। बड़ा बुरा हाल हो रहा है, और इसी बात को लेकर। बैठे-ठाले एक बला गले लगी।"

मनराखन ने फिर ढाढ़स बँधाया, "एक चड्ढी गँठवाते है बहुत जल्द। जब उन्होंने हमारा राज नहीं माना, तो हमारा अपमान कर चुके। यह है कि अब आगे से होशियार रहना चाहिए कि इस आदमी की पैठ न हो।"

मेहमानदारी बढ़ाने की गरज से मनराखन ने एक पासी को बुलाया और गाँव के किनारे तक छोड़ आने की आज्ञा दी। रामसिंह ने इसको राजसी सम्मान समझा। उनको यह न मालूम था कि यह पासी बदमाश है। सीना ताने चले चले।

ठण्ढाई छानकर यमुना दो-तीन और आदमियों के साथ उसी सीधे जंगल मे गये। निवट चुके थे कि रामसिंह को बागों के भीतर से एक आदमी के साथ आते हुए देखा। पड़ोस के गाँव का पासी वहीं खड़ा हो गया। रामसिंह से दबंग गले से कहा, "अब चले जाओ ठाकुर।" लोगों ने यह भी सुना। रामसिंह अपने रास्ते चले गये। घर पहुँचकर दरवाजा बन्द कर लिया और लड़को को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दें कि अखाड़ा न लगेगा।

सात

मनोहर से मिलकर बातचीत करने से पहले जमीदार रामराखन का एक और निश्चय हुआ, जब चौपाल में वह बैठे थे, दिया-बत्ती को घण्टे-भर हो चुका था, यमुनाप्रसाद आये, कहा, "पहलवान ने जमीदार को मानते हुए भी नहीं माना, खास तौर से आपके बारे में।" रामराखन ने कहा, "हम-तुम एक ही है।" यमुनाप्रसाद ने जवाब दिया, "हम अकेले पड़ते है और गाँव के मामले में तुमको बड़ा मानते ही हैं, और तुम्हारी मदद भी हमको दरकार होगी। तुम बात दो तो कुछ खा-पी लिया जाय, और इस सिर चढ़े को जमीन भी दिखा दी जाय मगर अकेले हैं।"

रामराखन ने आहिस्ते-से पूछा, "वह पेंच भी बता दो जिस पर चढा है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "जब तुम्हारी पुकार होगी, तुम खुद कुल समाचार सुन लोगे।"

यमुनाप्रसाद ने फिर बड़े जमीदार को समझाते हुए कहा, "भाई देखो, आये तुम हो, हमारा आदमी अब भी हमारा आदमी है। वह तुम्हारा आदमी है, लेकिन

इस मामले में तुमसे कट चुका है। उसके खिलाफ कोई कार्रवाई करो तो हमसे जरूर पूछ लो। साथ तभी पूरा। नहीं, तो दाँव खाली जायगा। गाँव के और दस आदमियों का दबाव होगा, तुम कुछ कहोगे, हम कुछ कहेंगे।"

यमुनाप्रसाद ने फिर दबकर कहा, "हमारी कोई शान जमींदारवाली न रही?"

रामराखन ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "जो हाल तुम्हारा है, वही हमारा भी। जिले के दूसरे बड़े जमींदार के सामने हमारी भी कोई हकीकत नहीं गोकि हमारे सीधे तअल्लुक हैं। ऐसी बात पड़ी तो वह हमसे बातें लेगा। जमींदारी के मामले में सवालों का जवाब देने के लिए जब जिले से दो ही एक आदमी खड़े होंगे तब कई मानों में हम नहीं आ सकते। लिहाजा बात हमसे कर लो तो बल न पड़ेगा, बल्कि बल बढ़ेगा।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "आज मार्के का गठना गठा है। हम देवीप्रसाद और शिवकुमार जंगल गये थे, उस वक्त पहलवान राजपुर के बदमाश बहादुर के साथ चले आ रहे थे। हमसे बातचीत होने के बाद ही जान पड़ता है वह राजपुर गये थे। वहाँ के जमींदारों से कुछ भला-बुरा कहा होगा। उनका बदमाश पासी साथ लेकर आये। दोनों साथियो ने पासी को देखा है। इतने से कोई मामला गाँठ दिया जायगा तो गठ जायगा।"

रामराखन की लार टपकी। कहा, "इधर दो-चार हजार इकट्ठे कर लिये होंगे। चलता है तो जैसे धरती धमकती है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "हाँ, पाँचों घी में है। आजकल दूनी खुराक है। कड़खे ही बोलता है।"

रामराखन ने कहा, "तो मौका न चूकना चाहिए। तुम्हारा कोई आदमी भी है?"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "शिवकुमार को तैयार कर लिया जाय, इसने देखा भी है, मुद्दई हो जाय। हम दोनों गवाही में रहेंगे। एक गवाह को वह जानता है। एक तैयार कर लिया जा सकता है अगर हम गवाही न देना चाहेंगे।"

रामराखन ने कहा, "शिवकुमार कमजोर है। वादी कुछ मालदार होना चाहिए। अच्छा सुनो, तुम्हारे हलक़े मे मिश्रजी रहते हैं। हमारे मान्य हैं और लक्ष्मी की कृपा भी है। तुम चले जाओ, उनको बुला लाओ। तब तक हम मनोहर को समझा लेंगे, क्योंकि पेशबन्दी जरूरी है।"

यमुनाप्रसाद माधव मिश्र को बुलाने के लिए गये। रामराखन मकान के अन्दर अपने घर में गये और चबूतरे पर कसरत करते हुए मनोहर को बुला भेजा। पिछले अंक में लिखी हुई बातें मनोहर से करके अपने पलँग पर आ गये। आधे घण्टे के अन्दर यमुनाप्रसाद मिश्रजी को लेकर जमींदार साहब कमरे मे दाखिल हुए। इन तीनों के सिवा वहाँ और कोई न था।

रामराखन ने आदर से मिश्रजी को बैठाया। सम्मान से उभरते हुए भी, जमींदार-श्रेणी को मिश्रजी काल जैसा देखते हैं। दुनियावी कामकाज मे उनकी मान्यता काम नहीं करती और अगर जमींदार के इशारे पर न चलें तो गाँव में

महीने-भर भी गुजर न हो, ताजीरात हिन्द के किसी दफे के शिकार हों और जेल की हवा खायें। कई दफे इसी मान्यता के कारण जाते-जाते बचे। ऊँचे दर्जे के ब्राह्मणत्व का ख्याल नही किया। किसी भी मामले में नही लड़ता। उसका हकदार मिश्र घराना भगवान तो क्या शैतान के सामने भी झूठ नहीं कह सकता, यह भावना उठ गयी है, जैसे एक गाड़ी लीक-लीक चली जा रही हो, यह हाल है। मरजाद के कारण उनको कोई फायदा नहीं पहुँचता। जमीदार दवाने के काम में उनसे हर तरह की मदद लिया करते हैं। वुलावे के साथ उनके होश हिरन हो गये, मगर चीं-चिपड न की। रामराखन के नाम से कुछ हिम्मत हुई; साथ चले आये।

रामराखन पहले यमुनाप्रसाद को एकान्त मे ले गये। कहा, "आधी रात लोगों की आँख वचाकर अपनी सीढ़ी इनको दे देना, वाहर दीवार मे लगी छोड़ देंगे और तीन-चार वजे के करीव चोरों का हल्ला मच: देंगे।"

लौटकर उन्होंने मिश्रजी से कहा, "मिश्रजी, जमीदार के कार्य ही टेढ़े हैं। लेकिन मण्डप के नीचे थानेदार और डिप्टी क्या, कमिश्नर के वाप भी पैर नहीं रख सकते और यह मान नहीं पा सकते जो आपको मिलता है। आप खातिर जमा रखिए। जमीदार का साथ करनेवाला, जमीदार का आदमी, सरकार के खास आदमियों में है; उसका वाल-वाँका भी नही हो सकता; कहने के मुआफिक पाँच सौ कम-से-कम वताइयेगा, वल्कि और ज्यादा। सन्दूक के ताले-वाले तोड़ रखियेगा।"

मिश्रजी अनुभवी आदमी, मुस्कराये। पूछा, "किसी की शक्ल का वयान तो नहीं देना?"

रामराखन हँसे। कहा, "मिश्रजी जमीदार पर भी एक हाथ रखते हैं।"

स्नेह से कहा, "जाँघें दोनों अपनी है; यह उधर गयी तो लाज गयी, वह उधर गयी तो भी लाज गयी। आप तो जानते हैं वदमाश फँसाना और उसकी निगरानी रखना हमारा काम हैं; लिहाजा कहिएगा कि हट्टा-कट्टा आदमी था। कुछ और भी थे। अँधेरा पाख है; कुछ साफ नही दिखा।"

आठ

लौटते-लौटते माधव मिश्र ने अन्दाजा लगा लिया कि इशारा किसकी तरफ हो सकता है। यमुनाप्रसाद ने वनावटी स्वरों को सहज वनाकर कहा, "सरकार का काम सरकार ही जाने।"

माधव मिश्र मन मसोसकर रह गये। जानते थे कि गाँव के चौकीदार सधे है, इन्ही के जोतदार हैं। सिपाही, थानेदार भी इनके दरवाजे उतरते हैं।

जब घर के पास आये, यमुनाप्रसाद ने कहा, "रात बारह बजे आकर हमारी सीढी उठा ले जाना, हम इसी जगह डाल देंगे। कह देंगे कि घर चू रहा था, मिट्टी लगाने के लिए सीढी निकाली थी। दिन-भर मिट्टी दबायी गयी थी। तुम यह न कहना कि सीढ़ी तुम ले गये हो। सिर्फ शोर मचाना।"

कहकर राम-राम करने लगे और दुबककर घर घुसते हुए भक्तिपूर्वक सुना गये, सरकार का काम सरकार ही जाने। मिश्रजी भलमनसाहत के कारण मंजूर करते हुए दुबककर सोलह आने मे एक आने रह गये। अपना जी लिये हुए घर गये और औरतो को समझाया, "कही दीवार न सुन ले, सरकारी काम है, पिछली रात चिल्लाना है। आधी रात को हम बाहर जायेंगे और लौट आयेंगे। नही तो मरजाद न रहेगी। और बहुत कुछ करना होगा; लो, समझाये देते है।"

एक कोठरी का ताला खोल दिया। बक्सो के ताले तोड़ डाले। भीतर का सामान उठाकर दूसरी जगह हिफाजत से रख दिया।

लौटकर औरतो से कहा, "ए बातें है। नही तो मरजाद न रहेगी। कैद भुगतना होगा, और भी बेइज्जती हो वह थोडी।"

घर मे त्रास का वातावरण फैला। सिसकते हुए भी सबके मुँह बँधे रहे। इस परिवार मे रोटियाँ शाम को ही खा ली जाती है, जिससे चिराग का तेल बचे। साधारण मजे मे है। प्रतिष्ठा झूठी पड़ जाने पर भी बचाये रहने की सूरत मे रहते है।

लडके सो चुके थे। औरते मसान-सी जगती रही। दस बजा, ग्यारह बजा, बारह बजा।

माधव मिश्र दबे-पैर उठे और आवाज न हो, आहट न मिले, ऐसी सावधानी से दरवाजा खोला और बाहर निकले। जमीदार की दीवार की बगल रखी हुई सीढी उठा ली और उसी कोठरी के सीधे पिछवाडे लगा दी। फिर वैसे ही दबे पैर लौटकर लेटे। सारी रात साँसत मे पार हुई। चार बजे के करीब जोर का रोना-पीटना शुरू हुआ। पडोसियों ने सुना मगर चुपकी साध ली। सवेरा न हुआ था इसलिए उन्होने निकलना नामुनासिब समझा, डरे कि चोरों मे शुमार होगी।

धीरे-धीरे पौ फटी। लोग जंगल को निकले। ढोर छुटे। रास्ते पर इक्के-दुक्के आदमी का निकलना जारी हुआ। माधव मिश्र सिर लटकाकर दरवाजे आ बैठे। भीतर रह-रहकर चीख लगती रही। बाहर के लोगों को अभी तक अच्छी तरह न मालूम हुआ था कि मामला क्या है। माधव मिश्र जाहिरा तौर से कहते न थे सिवा सिर पीटने के और यह कहने के कि हाय रे, लुट गये, करमदण्ड है, मरजाद धूल मे मिल गयी, गाँव छोडकर कहाँ जायें, हे भगवान्, बुरे का सत्यानाश कर, कहाँ सोया है, कन्हैया, गौ-ब्राह्मण बेकसूर सताये जाते है, कंस का राज बढ़ा है, हे राम, फिर राक्षस छा गये, डूब रहे है भगवान् इस भवसागर मे, उबारो, आदि-आदि।

इससे किसी की समझ मे कुछ न आया सिवा इसके कि माधव मिश्र बहुत दुखी हो रहे हैं। भेद खुलेगा, इस डर से लोग मुँह छिपाये इधर-उधर घूमते रहे। औरतों मे कानाफूसी होती रही। आदमी मक्कार है, यह सब लोग जानते है, गाँव मे यह खबर फैल गयी कि माधव मिश्र के यहाँ कुछ हुआ है।

सूरज निकलने को हुआ, माधव जमीदार यमुनाप्रसाद के मकान चले। खबर ले जानेवाले वहाँ दो-एक आदमी और थे। जमींदार ने माधव को देखते ही पूछा, "क्या माजरा है, मिश्रजी ?"

माधव मिश्र ने कहा, "मालिक। कहीं के न रहे।"

जमीदार ने लोगों से कहा, "भाई, बड़े आदमी का मामला है, इसको देखना-भालना है। हाल मालूम हो जाने पर आप लोगों से राज खोलें।"

यह कहकर तुरन्त बढ़े और रास्ते पर ही माधव मिश्र को लिया। और 'आओ, आओ,' कहते हुए मकान की ओर न आकर गलियारे की ओर बढ़े।

लोग चौकन्ने थे कि न-जाने कौन-सा पहाड़ टूटे, आपस में बन लेंगे तब बना-कर कहेंगे।

चौपाल की चारपाई से लोग-बाग उठकर अपने घरो की ओर चले। यमुना-प्रसाद माधव मिश्र को लिये हुए गलियारे-गलियारे रामराखन के मकान आये।

रात-भर पं. रामराखन को नींद नहीं आयी, कुकुर-निंदिया की तरह दो-एक झपकियाँ ली, बाकी सारी रात इसको फाँसने और उसको खोलने में बीती।

धनी वर्ग की आमदनी का उपाय देहात में यही है। कौन परदेशी है, कितना कमा लाया, कौन किसान आलू या गन्ने की खेती से दो-चार सौ रुपये जोड़ चुका, कौन दूकानदार अपने व्यवसाय में फायदा उठा रहा है, ये लोग पूरी जानकारी रखते हैं। उनके घरों के जवान बेटी, बेटों, पतोहू और दामादों को फँसाकर रिश्वत ले-लिवाकर, या मुकदमे लड़वाकर या गवाहियाँ दिलवाकर अपनी जेब भरते हैं।

रामराखन दातौन-कुल्ला कर चुके थे। दरवाजे पर पानी सोखने का दाग बना था। यमुनाप्रसाद और माधव मिश्र को सामने की दूसरी चारपाई पर बैठाला। यमुनाप्रसाद ने कहा, "काम हो गया।"

नौ

मनोहर को रात तीन बजे रामराखन ने जगा दिया। समझा दिया, गाँव के स्टेशन पर न चढ़कर अगले स्टेशन पर चढ़े। चार कोस के फासले पर है। सवेरे पहुँच जायगा। आठ बजे गाडी वहाँ पहुँचती है, उसी से रवाना हो जाय और छः महीने तक कम-से-कम गाँव में मुँह न दिखाये।

मनोहर आग-बबूला था ही। उठकर मुस्तैदी से चल दिया। सरायन के किनारे से कच्ची सड़क गयी है, उसी को पकड़े हुए चला। बरसात में उसकी हालत अच्छी न थी, जगह-जगह गड्ढे पानी से भरे थे, मगर रास्ता चलनेवाले के लिए राह निकल आती है। मनोहर पैर बढ़ाता गया। पौ फटते-फटते आधा रास्ता तै कर डाला।

उसको मालूम था, इस प्रान्त मे बडे जंगली जानवर का डर नहीं, फिर भी भेडिये कही-कही बरसाती नदी और नालो के किनारे मांदों मे रहते हैं। एक डण्डा लिये सजग राही, किस्मत का मारा हुआ चलता गया। कसरती जवान के लिए चार कोस का फासला कोई दूर नही। ऐसे बदजातो से रिश्ता छूटा, इसकी खुशी भी उमड़ पडती थी।

उसको पछाँहवाली गाडी से जाना था बम्बई के लिए। वह गाडी तीन घण्टे पूरबवाली गाडी के बाद आती थी। पूरबवाली का समय उसके स्टेशन पहुँचते हो गया। उसने देखा, सुबह की सुर्खी के साथ छोटे-से सुर्ख स्टेशन के मुसाफिरखाने मे पूरब जानेवालो की भीड लगी है। वहीं तीन-चार खोचेवाले भी बैठे हैं, किसी के पान और बीडी, किसी के पेडे और बर्फी, किसी के तेल के सेव और चने भुने हुए लगे हैं। बाहर स्टेशन की तरफ नीले फूल की लता चढायी हुई सारे स्टेशन की दीवार पर छतर रही है। कई कुत्ते परम परिचितो की तरह बैठे देख रहे हैं। सामने फैला हुआ ऊसर! दूर तक निगाह चली जाती है। बीच मे ऊसर का छोटा मगर पुराना बरगद का पेड देख पडता है, जिसके एक बगल एक बारहदरी है और दूसरी बगल एक पक्का कुआँ, सामने तालाब। आते हुए यात्रियों का ताँता और गाड़ियाँ देख पडती है।

घण्टी हुई। सिगनल गिरा। टिकटवाला दरवाजा खुला। टिकट लेनेवाले मुसाफिर एक-दूसरे पर चढ गये। मनोहर खडा देखता रहा। उसको पछाँह जाना है। कुछ देर बाद मंसूबा पलटा। बम्बई के कारनामे याद आये। जलालत से नसों मे खून दौड़ने लगा। सोचा, क्या बम्बई मे मुँह दिखाये, बाप की आंख का कांटा हो या धनिको के जाल मे फँसे?

इरादा पलटा। खून की तेजी धीमी नही पड़ी। अपने आप पैर उठे। यात्रियों के पीछे एक तरफ खड़ा हो गया। वे टिकट लेकर बाहर निकले। एक ने टिकट दिखाकर कहा, "नम्बरदार, देखो तो, टिकट कहाँ का है।" मनोहर के जले पर नमक पड़ा। मगर उसने यह न कहा कि वह नम्बरदार नही, न यही कि वह टिकट न देखेगा। नम्बरदार के लिए चढ़ी चिढ़ को दबाकर धुँधले प्रकाश मे पढकर टिकट दे दिया। यात्रियो के बढ़ने के साथ बढता गया। झरोखे के पास पहुँचकर बिना कुछ सोचे कहा, "बनारस के लिए एक टिकट।" एक नोट पाँच रुपये का दिया। टिकट के साथ कुछ पैसे वापस मिले; लेकर बाहर निकला। पान खाये, स्टेशन पर टहलता रहा, गाड़ी डिस्ट्रिक्ट सिगनल पार कर आयी। यात्रियों की भीड़ बढ़ी। बैठे लोग खड़े हो गये। गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। मनोहर बिना कपड़े-लत्ते के, बिना लोटे-थाली के एक जादू का मारा जैसे, खिड़की खोलकर एक डब्बे मे बैठ गया।

बातचीत तय हो गयी कि पहलवान रामसिंह से पाँच सौ रुपये लिये जायें। यमुनाप्रसाद बुलाकर आपस मे तय कर लें। अगर पहलवान रामसिंह राजी न हों तो रिपोर्ट कर दी जाय।

अभी तक चौकीदार के कान में बात न पड़ी थी। वह इस मामले से नावाकिफ था।

यमुनाप्रसाद गाँव के भीतर गये और धीमे गले से पहलवान को आवाज दी। पहलवान भीतर थे। जमीदार का गला समझकर बाहर निकल आये। यमुनाप्रसाद उनको बुलाकर गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे ले चले। छाँह मे दोनो बैठे। यमुनाप्रसाद ने कहा, "पहलवान, जमीदार का मामला है। सरकार भी जमीदार है, आपका पक्ष लेने के लिए आपका रिश्तेदार राजा रईस कोई गाँव में खड़ा न होगा। मामलेदारों में उसकी कोई गवाही काम न देगी।"

पहलवान चले। जी से घबराये। कहा, "मामला तो हमको कुछ मालूम नही। राय हम इस पर क्या दें ?"

"राय नही। रुपये चाहिए। पुलिस के हाथ अब जाने ही वाला है। तब दूने से ज्यादा पर कही छूटियेगा।"

"देखिए, बिना कुसूर के अगर सजा भी हो जायगी तो काट लेंगे। और क्या कहें ?"

"तो पहलवान, सज़ा ही होगी। जिन्दगी-भर के लिए दागी बन जाइयेगा। फिर जमींदारी ही का सहारा ढूंढना होगा और गाँव मे।"

"इतने दबकर तो कभी नही रहे। अब मालूम भी नहीं कि माजरा क्या है, तब क्या हाँ करें और क्या नही ? आप माजरा बतला दीजिए। हम आपको सही जवाब देंगे।"

"भाई बात हमारी हो तो कहें। दुनिया-भर जुत गयी, अभी मौसम का रंग ही नही मालूम। कही भी जाइयेगा, राज ही मिलेगा, अपने घर मे तो पक्की बात ले लीजिए।"

"तो हमारे घर हरसिंगार के फूलों की तरह रुपये नहीं बिछ जाते। हम बिछा कहाँ से दें ? अगर पुलिस के पेंच में आ गये और अपने को बेकसूर पाया तो आगे दुश्मन से बदला निकाल लेंगे। ठाकुर होकर और कौन-सी सचाईवाली बात कहें ?"

"तो, कहो तो हम चलें। देर हो रही है।"

पहलवान बहुत विकल हुए। जमीनो-आसमान के कुलावे मिलाने लगे मगर जोड़ नही बैठा, जैसे जंगल मे भटकते फिर रहे हों। पहलवान के आँसू बड़ी करुणा से निकलते हैं। रामसिंह के दोनों गालो से बड़े-बड़े आँसू टपकते रहे। उन्होंने कहा, "कहीं इतनी भी लकड़ी पकड़ायी होती ! रपोट करनेवाला व्यक्ति कौन है ? हमने कौन-सी खता की ?"

"पहलवान, यह अपने-आपसे पूछिए। मगर हमारी मार्फत यह रुपये आप दे देंगे, तो मामला ले-देकर दवा दिया जायगा, नही तो आप फँसेंगे, गाँव में आपका मददगार न खड़ा होगा। हमको यह दु:ख है कि आपकी भलमनसी में बट्टा लगते देखकर भी हम किनारा किये रहेंगे क्योंकि पानी में रहकर मगर से वैर हम न करेंगे। इसीलिए कहते है कि जव फाँसी गले लग चुकी हैं, वुरा फेल तैयार हो गया है, मामला सही हो या गलत, तो पुलिस के हाथ जाने के पहले उसकी पायेदारी मार दी जानी चाहिए, नही तो इस फाँसी से छुटकारा न होगा। आपको किन्होने फँसाया, किन्होंने नही, यह पुलिस से आप मालूम कर लीजियेगा, क्योंकि वहाँ वादी पहले रपोट करने के लिए जायगा।"

रामसिह ढाढ़ें मारकर रोने लगे। यमुनाप्रसाद के पैर पकड़ लिये। कहा, "मालिक, हमसे खता हुई, हमने आपके सामने सिर उठाया। हमारी इज्जत वचाइए। यह ताव हममें नही कि सैकड़ों का झोंका सह जायें। हम मिठाई खाने के लिए दो-चार रुपये की चपेट सह लेंगे।"

यमुनाप्रसाद ने आँखें ढोरी। कहा, "पहलवान, मामला हमारा नहीं और अव विल्कुल वक्त नही रहा। अगर चार रुपये पर आ जाइए तो हम वातचीत करें।"

पहलवान का फिर पैर मजवूत हुआ। कहा, "जवकि आप किसी के भेजे हुए आये तो इतना वता दीजिए कि वह कौन है!"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "यह हमको नही मालूम, क्योंकि मारफत...।"

पहलवान ने कहा, "तो या तो थानेदार ही ले जायँगे या वरी होंगे या काट लेंगे, मगर यमुनाप्रसाद, इस मामले को समझकर ही हम जवाव देंगे जो ठाकुर का असली जवाव होगा। हमारी आँखों से दोस्त और दुश्मन भी गुजर जायँगे। निगाह साफ हो जायगी। तव कहाँ वार करना चाहिए कहाँ नही, हमारी समझ में आ जायगा।"

यह कहकर घृणा से पहलवान चल दिये। यमुनाप्रसाद भी दूसरे रास्ते से रामरावन के दरवाजे की तरफ चले।

ग्यारह

ताल पड़ गयी कि माधव मिश्र से रपोट करा दी जाय। गाँव का चौकीदार मातादीन साथ कर दिया गया।

माधव मिश्र सत्तू वाँधे रहनेवाले आदमी रपोट करने चले। आगे-आगे वँधाई लाठी लिये चौकीदार मातादीन मारे खुशी के फूला नही समा रहा। जानता है, आजकल में सैकड़ों के वारे-न्यारे होंगे; गाँव और पड़ोस के कितने ही

भले-बुरे आदमी फँसेंगे; मिलने विछुड़ने की कितनी बातचीत होगी, कितने दाँव-पेंच खिलेंगे-खुलेंगे। जमींदार और महाजन भी इस रुपये मे शरीक होंगे, कहते हैं, रिश्वत का रुपया लाखों और करोड़ो तक पहुँचता है और बड़े-से-बडा इसका साझीदार है; इस काम मे पुलिस के मददगार जितने आदमी हों, वे सरकार के आदमी कहे जाते हैं, उनसे इसी तरह के काम लिये जाते हैं, जब कमजोर पडे तब वे नेकमाश धीरे-धीरे बदमाश करार दिये जाते हैं और बाँधकर भेज दिये जाते है, आमदनी का जरिया जेल में भी है, मजे में कालीन बिनते रहे, दस पैसा खाये और दो रुपया उगले, क्या चरखा है ! मातादीन मन-ही-मन मुस्कराया।

मिश्रजी भी चलते-चलते अपनी ढाई चावलो की खिचड़ी पकाते रहे। वह सरकार के आदमी हैं, इस पर उनको फख्र भी है। उनकी मरजाद का एक बाल भी नही टूट सकता। यह सरकार हिन्दुस्तान मे इसीलिए है और इसी ढर्रे से चलाकर बाघ और बकरी को एक घाट पानी पिलाती है। रपोट के दो रुपये जो लिये हुए थे, वे जमींदार रामराखन के दिये हुए थे। उनको याद आते ही उन्होंने कहा, "देखो मातादीन, रपोट मे दो रुपये लगेंगे। यही से श्रीगणेश है। यह दो-दो सौ पर सत्य होता है या दो-हजार पर, इस गाँव में और गुंजाइश तो है नहीं, नही तो दो लाख भी कहते, दो करोड़ भी; यह आँख के सामने आयेगा।"

मातादीन ने तम्बाकू ठोककर खायी और कहा, "हमको तो बीस से ज्यादा की गिनती ही नही आती, करोड़ के आगे और क्या है ?"

माधो मिश्र ने कहा, "और आगे का हिसाब नही लिखा जाता। यों तो शंख-महाशंख तक है।"

मातादीन ने कहा, "जैसे गाँव का रहनेवाला शहर का हिसाब नहीं जानता, वैसे ही थाने का हिसाब थाने ही के आदमियों को मालूम है। जहाँ तक तुम गिनती गिनते हो, उससे और आगे तक हिसाब पहुँचता है।" यह कहकर मातादीन गम्भीर हो गया। फिर तम्बाकू की एक पीक थूकी। मिश्रजी ने सोचा, यह इस वक्त लाठी और साफे के साथ है, कौन इसके मुँह लगे ?

दोनों पगडण्डी पकड़े हुए बढ़ते गये। एक बगल बागों की कतार, दूसरी बगल खेत। बागो से चिड़ियों की चहक सुन पडती हुई। गलारें, तोते, बुलबुलें, पिडकियाँ, रुकमिनें, सतभैये, कौवे, पपीहे और कोयलें अपनी-अपनी डाल से अपनी-अपनी बोली सुनाती हुई। खेतों पर कही-कहीं हिरनों के झुण्ड भगते हुए। कहीं ढोर चरते हुए। कही नाले, कही बरसाती नदी। किनारों में बबूलो के बेशुमार पेड़। काँटों से कहीं-कही रुँधी हुई। थूहड़ के पेड़ बागों की खाई के चारों तरफ लगे शोभा बढाते हुए।

दिन डेढ़ पहर चढ़ आया। सामने पक्का तालाब दिखा। एक तरफ विशाल शिवालय जिसकी दूसरी तरफ पक्का कुआँ। मिश्रजी ने मातादीन से कहा, "या तो तुम चले चलो, थाना नजदीक ही है, चलकर आराम करो, हम हाथ-मुँह धोकर थोड़ा-सा पानी पी लें, वहाँ फिर लिखाने के झंझट मे पड़ेंगे, चित ठिकाने नहीं, कुछ का कुछ न कह जायँ, हाकिम का सामना ठहरा या ठहरो।"

मातादीन ने कहा, "बड़े आदमी होकर बदल रहे हो। हम तो साथ ही हैं।

जो खाओ हमको भी खिलाओ। हम तुमको छोडकर कहा जायँ ?"

मिश्रजी ने हाथ-मुँह धोये और मिली पाँच भेलियो मे वड़ी-वड़ी दो भेलियाँ गुड की निकाली। एक अपने लिये रखी, एक मातादीन को दी। मातादीन हराम का माल लापरवाही से गले के नीचे उतारने लगा। मिश्रजी भी निःसंकोच होकर गुड़ की भेली खाने लगे। दोनों ने खाकर पानी पिया, फिर थाने के लिए रवाना हुए।

थाने की लाल दीवार दिखने लगी। सडक के किनारे के पेड़ों की आड़ थी, मगर पेड़ियों की दरार से निगाह पहुँच जाती है। मातादीन का वीरत्व थाने के दिखने के साथ-साथ वढ गया। मिश्रजी अभ्यासी मनुष्य की चाल से चलते गये।

थाना आया। दोनो अहाते के अन्दर गये। चौकीदार ने मुंशी को सलाम किया।

मुंशी ने पूछा, "किस मौजे के हो ?"

चौकीदार ने कहा, "हुजूर, सरायन का।"

मुंशी ने पूछा, "और यह कौन है ?"

चौकीदार ने जवाव दिया, "वही के ब्राह्मण, रपोट कराने आये है।"

मुशी जमे। कैंची निगाह से एक दफे मिश्रजी को देख लिया, फिर कहा, "इधर आओ।" मिश्रजी वढ़े और झुककर सलाम किया।

मुंशी ने कहा, "लाओ, यह पहली सरकार का है।"

मिश्रजी ने कहा, "अभी दिया क्या ?"

डाँटकर मुंशीजी ने माँ की गाली दी।

मिश्रजी ने कहा, "यह एक दूसरी रपोट होगी।"

मुशी पहले घवराये, फिर उठकर चले गये। सोचा था, 'वैठा रहेगा, झक मारेगा, रपोट लिखायेगा।'

उठकर अपने डेरे की तरफ चले तो चौकीदार ने वढ़कर एकान्त मे कहा, "आप पुलिस का राज विगाडते हैं, हम उसी गाँव मे रहते है या और कही ?" मुंशी झेंप सँभालकर सिर गडाये हुए चले ही गये।

चौकीदार थानेदार के पास गया। थानेदार ने मिश्रजी को वुलाया और पूछ-ताछ की। मिश्रजी ने कहा, "अव पहला मामला तो यही है कि थाने आने पर गालियाँ मिलती हैं या यह मुशीजी किसी फेर में है ?"

थानेदार ने कहा, "खैर, कल हम आपके गाँव आयेंगे और तहकीकात कर जायेंगे जव चौकीदार को आप लाये तो रपोट हो चुकी।"

चौकीदार का नाम लेकर पूछा, "क्या रपोटवाले रुपये ले लिये ?"

मिश्रजी ने कहा, "गाँव मे आप लीजियेगा।"

थानेदार के चेहरे पर शिकनें पडी, मगर चुपचाप वैठे रहे।

मिश्रजी थाने से वाहर निकल आये और गाँव का रास्ता पकड़ा।

बारह

गाँव लौटते मिश्रजी का चौकीदार से साथ छूट गया। थाने में चौकीदार ने तरह-तरह की सच-झूठ बातों का थानेदार से राज खोला, जिसमें गाँव के बाशिन्दों की शिकायत ज्यादा थी। सरकारी पक्ष को प्रवल किये हुए था। मुसलमान के प्रति, उसके बड़प्पन के हक के कारण ईर्ष्या भी थी, साथ ही वह यह भी समझता था, सरकार मुसलमान के खिलाफ बातचीत कराना चाहती है और जब कि एक मामला आँख का देखा गठ चुका है, तब इसको छोड़ना वेवकूफ का काम होगा। ईश्वर की कृपा से थानेदार भी मुसलमान थे, छोटे थानेदार हिन्दू थे, ठाकुर। इन्सपेक्टर हिन्दू थे। मातादीन इन्हीं कड़ियों से चढ़ता था। जी खोलकर उसने मुंशी हकीकत अली खाँ की शिकायत की। मारे गरमी के वह रपोट न लिखकर गालियाँ देते हुए कुर्सी छोडकर चल दिये, कहा। यह भी कहा कि वह ब्राह्मण पानीदार हैं, तअज्जुव नहीं कि दरख्वास्त कर दे। और भी बहुत तरह से डरवाया। थानेदार ने कहा, "राज रख दो।"

चौकीदार ने कहा, "राज मुंशीजी को दे चुके है। आप मुशीजी से हमारा राज दिलवाइये।"

थानेदार ने कहा, "मैं थानेदार हूँ तो दूसरा ही चौकीदार आवेगा।"

मातादीन ने जवाब दिया, "मैं ढाई रुपये की नौकरी के मत्थे नहीं हूँ, दुहाई इन्स्पेक्टर साहब की, और आपसे कहता हूँ कि अगर उस मौजे मे अपनी वल्ली गाड़ लें इस मामले में विना मेरी मदद के, तो मैं अपने वाप का पैदा किया हुआ मातादीन नहीं।"

इस तरह थाने में खासी वमचख रही।

मिश्रजी गाँव लौटकर किसी के यहाँ न गये, ठण्ढे होकर थोड़ा-सा पानी पिया और पहलवान के दरवाजे की तरफ चले। हथेली के इशारे से पहलवान को बुलाया। वह चौपाल में चुपचाप बैठे सोच-विचार मे थे। इशारा देखकर मिश्रजी के पास उठ आये। मिश्रजी उनको लेकर नजदीक के बाग की तरफ गये। एक महुवे की छाँह में बातचीत करने लगे। कहा, "पहलवान, हम-तुम एक ही गाँव में रहते हैं, एक-दूसरे की मदद के लिए हैं, दुश्मनी के लिए नहीं। दुश्मनी करायी जाती है, नहीं तो वेइज्जती होती है। और हम कुछ कह नहीं सकते, मगर जो कार्रवाई खिलाफ हो, आप उसी को समझें जो बड़ा है।"

पहलवान के आँसू आ गये। कहा, "भैया, एक जगह रहने का यह हाल है! कुछ हमको भी नहीं मालूम, नहीं जानते, कौन-सी लकड़ी फेरी जानेवाली है। जितने लोग आते हैं सब वात लेनेवाले, इज्जत लेनेवाले।"

मिश्रजी ने कहा, "जाल-ही-जाल में हम-तुम जितनी मछलियाँ हैं, फँसायी और निकाली जाती है। जितना वैर वढ़ता रहेगा, जमींदार और सरकार को उतना ही फायदा है। वात की जड़ वेवात-की-वात मे पड़ती है। इसके वाद वातों का ही जाल फैलता है। क्या आपसे किसी से लाग-डाँट थी?"

पहलवान पशोपेश मे पडे । देखा, यहाँ भी राज देना है। कहा, "उस गाँव का एक लड़का लड़ने आता था, या तो वह दुश्मनी की गरज से भेजा गया, या उसके आने पर उसके लोगो को बुरा लगा, और हमारी समझ मे कुछ नही आता।"

मिश्रजी ने कहा, "आप हमको मानते हैं, सारा गाँव हमको मानता है। मान्य का काम यह नहीं होता कि वह अपने वन्धुओ को फँसाये। हम आपसे इतना कहे देते हैं कि हमारे जितने वयान होगे उनमे आप अपने को न समझें और यहाँ आप हमारे साथ आये, यह किसी दूसरे से न कहे दूसरों को ही कहने दें। हम आपके दुश्मन नही, यही से जाहिर है। गाँव के दो-एक हमको-आपको देख भी चुके होगे। उन्ही को कहने दीजिए। अगर हमको कहियेगा कि वुला ले गये थे तो इससे आपका न भला होगा और न इस पजे से छुटकारा, क्योकि यह पंजा ही ऐसा है जो कभी किसी को छोड़ता नही। जाइए, हम जंगल जा रहे हैं, इस तरह दूसरों को भी हमको खुश करना पडता है, उनका रुख देखना पड़ता है और उनकी वात भी माननी पड़ती है।"

पहलवान को दिल में वल मिला। मिश्रजी भीटों के आगेवाली तलइया के किनारे मुँह-अँधेरे निपटने के लिए गये।

रात को भोजन-भाव करके मिश्रजी रिश्तेदार जमीदार के यहाँ भी हो आये। कोई वातचीत न की, कोई राज न दिया, सिवा इसके कि कल थानेदार आयेंगे। रामराखन को इतने से पूरा हाल जैसे मिल गया। गम्भीर मुद्रा से विचार करने लगे। मिश्रजी से कहा, "हम वहुत थके हैं, अव हमको आराम करना है।"

जमीदार ने हाथ जोडकर प्रणाम किया, मिश्रजी ने आशीर्वाद देकर रास्ता नापा। घर पहुँचकर दो रपोटें लिखी, एक इस्पेक्टर के नाम, दूसरी कप्तान पुलिस के नाम। कागज, कलम-दावात घर मे तैयार थे, रपोटें पूरी करके सिरनामे लिख-कर रात ही को पास के लेटर-वाक्स में छोड़ आये। ब्राह्मण का ताव, सोचा कहीं सवेरे तक ठण्डा न हो जाय, जहाँ सत्यनाश वहाँ साढ़े सत्यनाश। मिश्रजी मुंशी का नाम जानते थे। उनका काम ही इस हलके का परिचय रखना था।

तेरह

दूसरे दिन आठ वजे दो सिपाहियों के साथ थानेदार आये। धर्मशाले मे उतरे। गाँव के जमीदारों को वुलाया। चारो ओर हलचल मच गयी। सवको निश्चय था कि रपोट हो चुकी है। मातादीन थानेदार से सहमत होकर भी न हुआ। गाँव-भर में उसने भी अपनी दो-रंगी उड़ायी थी। मजदूरों से अच्छे-अच्छे पलँग दो-तीन उठवाकर जमीदार रामराखन ने भिजवा दिये, साथ कालीन। घर में पूड़ी और साग का नाश्ता वनाने के लिए कह गये। थानेदार को यह पसन्द नहीं, मगर

हिन्दुओं के गाँव में मुसलमान पकानेवाले के न होने पर यह खाना स्वीकार कर लेते हैं, साथ में कह भी देते हैं, 'हमारा खाना तो आप लोगो को मालूम है, वगैर उसके मजा नहीं आता, न पेट भरता है।'

तीन-चार पीपल, पाकर और महुए के पेड़ धर्मशाला के आस-पास हैं। कुछ ही दूर एक पक्का तालाव, पक्का कुआँ, स्वच्छ जलवाला धर्मशाला के साथ लगा हुआ है। वगल में लड़कों ने एक अखाड़ा गोड़ रखा है कूदने के लिए। पीपल के नीचे चबूतरा है जिस पर पीपल की जड़ के साथ शिवजी रखे हुए हैं। गाँव का यह एक सबसे अधिक मनोहर स्थान है। यहाँ से तीन-चार लीकें दूसरे-दूसरे गाँवों को कटकर गयी हैं। अगल-वगल खेत और वागात हैं। दिन का दृश्य वड़ा ही सुहावना हो रहा है। खरीफ की हरियाली मन को मोहे ले रही है। पुरवाई के झोके मत-वाले किये जा रहे हैं। कुछ ही फासले से गाँव शुरू है। पेड़ो पर बुलबुल, तोते, रुकमिनें, गलारें, कबूतर आदि चहकते और गटरगूँ करते है। आम की कुन्जों से पपीहे और कोयल की होड़ सुनायी पड़ रही है।

थानेदार ने यहाँ डेरा इसलिए जमाया कि अपना दल यहाँ तैयार कर लें, तव मामले में हाथ लगायें। चौकीदार से जो कुछ उनको मालूम हुआ था वह वहुत पायेदार वात न थी, दूसरे मुंशी के जरा चले जाने पर रपोट लिखानेवाले मिश्र का थाना छोड़कर चला जाना शक पैदा कर रहा था। फिर भी पुलिस पर कोई आक्षेप न हो, इसीलिए उन्होने तहकीकात करनी चाही मगर छिपे तौर से। चौकीदार के कहने के अनुसार सिपाहियो ने मुख्य-मुख्य आदमियों को बुलाया। सधे लोग कौवे की तरह एक-दूसरे को देखते हुए आगे-पीछे चले।

चौकीदार एकान्त समझकर मिश्रजी के पास गया और दोनो हाथों से विल दिखाकर थाने की मनोभावना समझायी और हिम्मत वाँधते हुए कहा, ढीले न पड़ना। कहकर चला गया।

मिश्रजी एकान्त देखकर पहलवान के यहाँ गये और वाहर से आवाज दी।

बुलाये जाने पर सिपाही की पगड़ी देखकर पहलवान को जूड़ी चढ़ आयी थी। जव मिश्रजी ने आवाज दी, उन्होने डरभूते स्वर से रजाई के भीतर से कहा, "अरे, जूड़ी चढी है, क्या काम है ? घर में कोई नही है।"

मिश्रजी ने कहा, "ओढ़े-ओढ़े चले चलो। नही तो मामला समझ में न आयेगा, दोस्त और दुश्मन की पहचान जाती रहेगी। हम आगे-आगे चलते हैं। हमारे तरफदार रहना।"

पहलवान ने आवाज दी, "जव तुम कहते हो तव चलेंगे। रजाई की जगह चदरा ओढ़ लेंगे।" कहकर जोर वाँधा कि मददगार है।

रामराखन अपने पूरे सहायकों के साथ मामले को साधकर आगे-पीछे चले। रामराखन, लीलाराम, रामशंकर, यमुनाप्रसाद, देवीप्रसाद, शिवकुमार तथा गाँव के और-और जमींदार और महाजन। एक-एक करके पलँग पर वैठे हुए थानेदार के पास पहुँचे और कमर-भर झुककर सलाम करते गये, फिर दूसरी चारपाइयों पर अदव के साथ वैठते रहे। गोड़इत लोगों को तम्वाकू खिलाता और हुक्का पिलाता रहा। थानेदार के कहने के माफिक, अभी यह सरकारी काम नहीं, गाँव

के लोगों से थानेदार की आपसी बातचीत है।

इसी बीच मिश्रजी आये और साधारण रूप से थानेदार को सलाम किया।

यहाँ मिश्रजी का बड़प्पन रामराखन की नजर में आनेवाला नहीं और जब कि वह मुद्दई है। उन्होने मिश्रजी को बुलाकर नहीं बैठाला, यह बात मिश्रजी को खटकी। मगर कुछ बोले नही। संसारवाली नस दबाये हुए, होश दुरुस्त किये हुए, धर्मशाला के चबूतरे पर सबकी तरफ मुँह करके बैठे। उनके बड़प्पन की तरह यह चबूतरा भी चारपाइयों से ऊँचा था। तेल लगाने के सहज स्वभाव से रामराखन ने हाथ उठाकर कहा, "सरकार के सामने इस आसन से ऊँची जगह ऐसी हालत में मिश्रजी आपको न बैठना चाहिए।"

मिश्रजी ने कहा, "अगर आप इस चारपाई को उठाकर धर्मशाले में डाल दें, और थानेदार साहब बैठें तो और शोभित हो जायँ।" थानेदार को मुसलमान समझकर मिश्रजी ने जमींदार पर धार्मिकता का एक हाथ रखा।

जमींदार खामोश रह गये। उन्होंने सोचा, मुसलमान को हिन्दू धर्मशाला में घुसेडकर लोगों की निगाह में हमको गिराना चाहता है। कुछ नजर बदली, मगर अन्दर से डरे कि मामला उन्हीं का गठाया हुआ है कहीं यह उल्टा खुदाई न गले डाल दे। दबकर ढाढस बँधाते हुए कहा, "बैठे रहिए, जैसे चारपाई वैसे चबूतरा।"

थानेदार बातचीत तोलते रहे। इसी समय चदरा ओढ़े कोट पहने कांखते हुए पहलवान धीरे-धीरे आये, और जहाँ मिश्रजी बैठे थे उसी जगह, एक किनारे से थानेदार को दूर का सलाम करके, बैठे। उनको निश्चय था, यह गठना उन्हीं पर है।

एक चारपाई पर सिपाही बैठे थे। गाँव के तीन चौकीदार लाठी लिये हुए अगल-बगल खड़े थे। इक्के-दुक्के लोग जो राही थे या जिनका मामले से तअल्लुक न था, आते-जाते रहे।

थोड़ी देर में जमींदारोंवाली चारपाई के एक-एक पाये के पास पान-दोहरा खायों की तम्बाकू की पीक से बित्ते-बित्ते-भर जमीन रँग गयी। गाँव में भीट, गाँव के तमोली, कई रोज की तैयारी, सैकड़ों की संख्या में लगे पान लौंगदार ले आये। इलायची दोहरा और जरदावाली तश्तरियाँ भी दो-तीन। सिपाहियों ने पत्ते चबानेवाले बकरों को मात किया। झूठ के मामले में जमींदारों की चौगुनी फुरती थी।

चौदह

थानेदार देखते हुए जातीय सभ्यता के अनुसार ऊबकर, लोभ के ढंग से चले, सरकारी आज्ञा की हथेली से सिपाहियों को बुलाकर, एक किनारे आपसी बातचीत

करने के लिए। यहाँ ऐसे मामलों की तहकीकात में जमींदारों और मुद्दई-मुद्दालों से सिपाही बातचीत करते हैं, लेन-देन करते है। कुछ दूर चलकर कान में बतला-कर, थानेदार लौट आये और बैठे। एक सिपाही ने यमुनाप्रसाद को और दूसरे ने रामराखन को बुलाया। अलग-अलग दोनों की बातचीत लेकर अलग-अलग थाने-दार से कहेंगे। उनके सिवा दूसरे को एक-दूसरे की बातचीत मालूम न होगी। सिपाहियो ने तदनुसार दोनों को बुलाया, दो भिन्न दिशाओ मे ले चले और पूछने लगे।

उत्तर तरफ यमुनाप्रसादवाला सिपाही और दक्षिण तरफ रामराखनवाला था।

यमुनाप्रसादवाले ने एक दफे मूछो पर ताव देकर यमुनाप्रसाद से पूछा, "आपको क्या मालूम है ?"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "हमारी सीढ़ी दूसरे के घर से काम के लिए आयी हुई दीवार से लगी थी। रात को वह माधो मिश्र की दीवार से लगी दिखी। माधो मिश्र उस रात विना सेंध के अपने यहाँ से कुछ रुपये सामान और वरतन उठ जाने का वयान करते थे। आखिर चोरी या डाके के वक्त उनकी आँख खुल गयी थी, मगर मारे डर के उन्होने मुँह नही खोला और हिले भी नही; पड़े-पड़े देखते रहे। जो सूरत कम-बेश उनकी पहचान मे आयी उसका बयान यह है कि जवान खासा हट्टा-कट्टा था।"

रामराखनवाले ने पूछा, "आपको इस मामले का क्या हाल मालूम है ?"

रामराखन ने कहा, "मिश्र माधवप्रसादजी गाँव के भलेमानुसो के अगुआ अपने जमीदार यमुनाप्रसाद के साथ हमारे यहाँ तड़के आये और हाल बयान किया कि रात को ताला तोडकर उनके घर चोरी हुई है। पिछली रात को पैर की आहट से या सामान की खनक से उनकी आँख खुल गयी, वह मारे डर के चारपाई से उठे नही, पड़े-पड़े ताकते रहे। जो सूरत उन्होने बयान की वह यह है कि एक गठा जवान अँधेरे में लगी सीढ़ी से चढ़ता नजर आया। चढ़कर उसने सीढ़ी चढ़ा ली। सुनकर हमने थाने मे रपोट कर आने के लिए कहा और शक में किसी का या किन्ही के नाम लेना चाहें तो लिखा दें, यह सलाह दी। अब सरकार की तहकीकात है।"

दोनों सिपाही अलग-अलग खड़े रहे। थानेदार ने दोनों से अलग-अलग मिल-कर बातें की और कार्रवाई समझायी। सिपाहियों ने फिर दोनो जमीदारों को बुलाया और रामराखन से उसी तरह यमुनाप्रसाद के पीछे लगकर जाने और क्या बातचीत होती है कहने के लिए कहा। यही आज्ञा यमुनाप्रसाद को हुई। दोनों ने पहलवान को बुलाया।

पहलवान रामसिंह ने काँपते गले से कुछ कहा, आये और मजबूरन काँपते हुए पैर रखते हुए एक वगल खड़े दोनों जमीदारो से मिलने गये।

यमुनाप्रसाद ने पहले की तरह पहलवान से कहा, "हम कहते थे कि सर आयेगा। वही होकर रहा। इल्लत लग जाती है, तो ऐसे नही छूटती, कुछ खर्च दीजिए या अपनी जान पर खेलिए। अब सामने आया।"

जमींदार रामराखन की ओर उँगली उठाकर पहलवान से उन्होंने कहा, "हमारी आपकी बातचीत के यह गवाह हैं। इकार जाइयेगा तो भुगतना होगा।"

पहलवान के होश फाख्ता हो गये। झूठी जूड़ी चौगुनी बढ़ी। थानेदार निर्विकार चित्त से देखते रहे। सिपाही अपनी-अपनी जगह तम्बाकू और पान थूकते रहे।

पहलवान ने कई दफे अपने निश्चल हृदय का परिचय देना चाहा मगर हुमस-हुमसकर रह गये। सरकारी मजबूरी छाती पर तिपाये की तरह बराबर जमी पर जसे जमकर बैठी थी, धार्मिक प्रतिक्रिया छाती के निचले हिस्से में। हाथ मला किये, काँपा किये, हुमस-हुमसकर रहा किये, आँसू लाने की कोशिश करती आँखों को देखा किये।

"कुछ कहो, नही तो जाते है।" यमुनाप्रसाद ने आवाज ऊँची करके कहा।

पहलवान डगमगाकर रह गये।

रामराखन ने हिम्मत बँधायी। यमुनाप्रसाद से कहा, "आओ, उधर के लोगों से बातचीत कर लें।"

अपने साथ रामराखन कई और मझोले नये आदमियो को ले आये थे अपने दबाव से। थानेदार की तरफदारी के बिना उनसे रुपये वसूल न होंगे, इस ख्याल से उनके पास चले। साथ यमुना गवाह की तरह गये। रामराखन की तरफ से यह सबूत है कि वह अपनी तरफ से मित्र ग्रामवासियो से रुपये नही वसूल कर रहे हैं, ग्रामवासियो की बचत के लिए ही ये रुपये लिये जा रहे हैं, नही तो थानेदार खुश नही होते, उनसे वैर होता है, जिसका झोका पहले जमीदार के घर आता है। इनमें रामसुख, शिवलाल दो मुख्य हैं। अलग-अलग हर एक से जमींदार ने यह कहा कि चोरी की शिनाख्त में वे पुलिस की निगाह मे आते है, उनका क्या कहना है। गिड़गिड़ाकर, समझाये जाने पर, हरएक ने अपनी इज्जत के बचाव के लिए दस-दस रुपये देना मंजूर किया। रामराखन के लिए यह तारीफवाली बात हुई कि उनके आदमियो से थानेदार को बीस रुपये की आमदनी हुई, जिसमे दो रुपये कम-से-कम उनके हैं।

दोनों ने चलकर अपनी-अपनी बातें कही। सिपाहियो से थानेदार ने सुना, शनाख्तवाले असली आदमी के अलावा गैर-आदमियों से बीस रुपये रामराखन की मार्फत मिले।

यमुनाप्रसाद ढीले हुए भी, सरकार की फर्माबरदारी के बल से कड़े रहे।

मिश्रजी का अभी समय न आया था। थानेदार ने समझाने के लिए कहा, "पहलवान की निगरानी खुलवाई जायगी इसलिए बदमाशी लगायी जानेवाली है; पुलिस मुद्दई होने पर मदद न पहुँचेगी, सजा हो जायगी।"

यमुनाप्रसाद सिपाही से सुनकर पहलवान के पास फिर गये।

एक दफा ठण्डे होने, सोचने-समझने का मौका पाकर पहलवान ने दूसरे दफे भी आवाज लगायी।

मिश्रजी से पूछने का हुक्म हुआ। मिश्रजी ने रपोट के रुपये दे दिये थे। दिल कड़ा था। बहुत नीचा न देखने की हिम्मत बाँधे हुए थे, व्यक्ति के विचार से मंशी

के खिलाफ भी हो चुके थे। चौकीदार पर भरोसा था कि गाँव का विचार रखेगा। इज्जत के ख्याल से बयान बदल दिये। कहा, "एक लम्बा-लम्बा दुबला-पतला आदमी था, भीतर सीढ़ी लगाकर उतरा। मुँडेरी पर एक आदमी खड़ा था उसको सामान उठाकर देता रहा होगा, जब हमारी आँख खुली और हम हिले, चढ़कर मुँडेरी पर हो रहा और सीढ़ी चढ़ाकर बाहरी तरफ लगा ली, फिर एक रहे, दो या और उतर गये। हम अलसाये हुए, कुछ न समझे हुए, आहट से उठे और दिया जलाने को हुए, तब तक यह सब हो गया। दिया जलाकर हमने देखा तो कोठरी का ताला टूटा था और चार पेटियाँ और कुछ बासन गायब थे। दरवाजा खोलकर आवाज लगायी और बाहर देखा तो सीढ़ी लगी थी। रात साढ़े तीन का वक्त रहा होगा।"

थानेदार ने उसी तरह सुना। निगरानी-शुदह पासी के साथ पहलवान के आने की गवाहियाँ उसी तरह ली गयी और पहलवान से फिर उसी तरह पूछने के लिए कहा गया।

यमुनाप्रसाद को इतना ही बल था कि गवाहियों की व्यवस्था कर रखी थी।

पहलवान के पास फिर गये और पूछा और खुलकर कहा भी कि अगर पुलिस को खुश नही करते तो बँधते हैं यानी बदमाशी लगायी जाती है, सज़ा की भी नौबत आ सकती है। कही माल बरामद हुआ, जबकि पुलिस जहाँ चाहेगी तलाशी लेगी, तो ईश्वर के बचाये भी नही बचते। पहलवान ने एक दफे मिश्रजी की तरफ देखा। मिश्रजी को भी मददगार चाहिए था, एक पानी दिखा चुके थे, यहाँ अपने बयान मे पहलवान की पीठ भी बचायी थी, गर्दन कड़ी करके उनकी तरफ देखकर इशारा किया।

पहलवान ने जूड़ी में जैसे काँपकर कहा, "भई, जब पीछे पड़ गये तब दस रुपये तक कहो तो बाज आयें; नही तो सेंत-मेंत की बला है, आप गाँव के जमीदार हैं, जानते है कि बेकसूर की मदद होनी चाहिए, बिना कारण गला फँस रहा है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "दस रुपये से काम न चलेगा। जब मामला लड़ गया है बचाव कठिन है। देर करना ठीक नही है। काफी सोच-विचार चुके। कबूलो या अखीर है कह दें।"

पहलवान ने कहा, "दस और दे सकते हैं, बस!"

यमुनाप्रसाद का चार सौ का अन्दाजा बीस मे आया। चढ़ी पेंग घट गयी।

सिपाही से चलकर कहा कि बीस रुपया देना चाहता है।

सिपाही ने थानेदार से जाकर कहा।

थानेदार ने कहा, "बेलज्जत है।"

सिपाही ने कहा, "माल बरामद नहीं। कुछ रोज तक तहकीकात कर लीजिए, फिर बाँधिए, फिर जैसी हुज़ूर की मर्जी।"

थानेदार ने कहा, "बदमाश की तरफ के भी गवाह होने चाहिए।"

नाश्ते का हिसाब था। उस रोज थानेदार चले गये।

मनोहर वम्वई न जाकर काशी आया। गाड़ी से उतरकर स्टेशन पर एक पुस्तिका ख़रीदी जो काशी पर थी। टिकट देकर स्टेशन से वाहर निकला और पुल के नीचे राजघाट पर चलकर वैठा। गंगा और किनारे की उजड़ी हुई पुरानी वस्ती देखता रहा। इक्के-दुक्के लोग आते-जाते रहे। पूछने पर उसको मालूम हुआ, पुरानी काशी वरुणा की तरफ और थी। किसी-किसी ने कहा, वरुणा के किनारे तक थी और वरुणा के किनारे-किनारे इस तरफ वीच मे गंगा के किनारे कुछ आगे किला पड़ता है। अस्सी की तरफ जहाँ आवादी है, वन था। मुगलकालीन काशी अस्सी नाले तक थी। तुलसीदासजी का स्थान उसी जगह है। राजघाट के नीचे का हिस्सा हिन्दूकालीन पुराना है। वहुत-सी चीजें खोदने पर मिलती हैं। मनोहर डेढ घण्टे तक वैठा रहा। काशीवाली किताव पढ़ डाली। लोगो से भी जानकारी प्राप्त की। सभी के पते लगाये। संस्कृत की पढाई के वारे मे भी पूछा कि क्या-क्या प्रवन्ध है। फिर स्नान करके धोती सुखायी। फिर जलपान किया और शहर की तरफ चला।

दो-तीन रोज तक घूमता-पूछता सुविधाएँ देखाता रहा। धनिकजनों और राजों-महाराजो के दिये दान और विद्या के प्रवन्ध की जाँच करता रहा। स्वभाव मे जो जलन थी, उसकी लपटों मे जलाने का अन्वेपण प्रवल था। संस्कृत वह इतनी जानता था कि काशी मे सम्मान की सर्वत्र उसको सुविधा हो। मगर जिस परिस्थिति का वह मुकाविला कर रहा था उसका मित्र उसको कही नही मिला। द्विजों के शूद्रत्व से उसका रोआँ-रोआँ लपट की जीभ हो रहा था। उनको जलाने था जाति मे नयी जान फूंकने की सहूलियत उसको उन सभो और पाठशालाओं से नही हुई। इतर-जनो मे भी प्राचीन भावना थी। अगर कही अंग्रेजी राज के कारण हुमसते थे, तो उनका हाथ पकड़कर रास्ते पर ले चलनेवाला न था। जाति का कोई व्यक्ति संस्कार करनेवाला चाहिए, वह समझा। स्कूली विद्या और सरकारी नौकरों से अपने पाये नही पुख्ता होते। वही रास्ता चालू रहता है जो गुलामीवाला है। उनसे छिपकर काम करने की ठानी। उसका विश्वास था कि संस्कार के साथ शास्त्री तक वह वीस आदमियों को ले चल सकता है, जो व्राह्मणेतर कहे जाते हैं। अपनी जातीय मर्यादा शास्त्रानुकूल द्विजत्ववाली वे आप ले लेगे, उसको विश्वास था। वही वह जम गया और भूमि की खोज करने लगा। उसके पास वम्वई तक के लिए जितना खर्च था, उससे वह एक मास तक सादगी से काशी में रह सकता था। घर की चिन्ता अविवाहित युवक को न थी। घर का मुँह वह मर्यादित होकर ही देखेगा।

उसने देखा काशी सभी प्रकार के मनुष्यों की आवादी है। मन्दिरों, मठों और राजभवनों के अलावा उसके चार-पाँच मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। उसी भू-भाग के रहनेवाले लोग मुख्य हैं। ईसाइयो के अलावा मुसलमान, वंगाली, गुजराती, मराठे अपने-अपने निवास वनाये हुए है। काम स्थानीय जनों में ही

सम्भव है। उसका विरोध द्विजों द्वारा अवश्य होगा। मगर स्थानीय जिन वैश्यों तक संस्कृत की प्रथा थी उनके दायरे से कुछ उतरकर नीचे उसने हिसाब बाँधा। जो जातियाँ प्रजा के रूप में शूद्र कही जाती थी उनको उसने वैश्य के रूप में समझा, दिल से ब्राह्मण से भी उच्च। जिस प्रचलन के घाव उसको लगे थे, उससे बचाव का यही रूप निकाला। एक जगह जमकर घूर-घूरकर हाल मालूम करता रहा। धनिक शूद्र काशी में बहुत थे।

एक हफ्ते के अन्दर उसने उनमें नयी जान डाल दी। संस्कृत की पढ़ाई से उनका सामाजिक क्रम ऊँचा उठेगा, उनकी समझ मे आया। जो लड़के स्कूल नहीं जाते थे उनको उसने अपनी पाठशाला में लिया। जो स्कूल और कालेज मे संस्कृत लिये हुए थे उनको वेतन लेकर पढ़ाने का प्रबन्ध किया। फायदा यह सुझाया कि एक पठित ब्राह्मण उनके सामाजिक क्रम को उठाने का सहायक है, उनके घर की पक्की साग-पूड़ी खुल्लम-खुल्ला खायेगा, इस सुविधा को वह गाँठ बाँधे रहेगे और आवश्यकता पड़ने पर प्रमाण के रूप में पेश करेंगे, मगर जब तक खासी तैयारी न हो जाय तब तक यह भेद न खोलें, क्योकि वह अकेला बहु-संख्यक ब्राह्मणों से अकारण विरोध न करेगा। लोग उसकी बात से बहुत प्रसन्न हुए। वह तुल गया था, उनके इम्तहान में कटा नहीं। काम शुरू हो गया।

सोलह

मनोहर उषाकाल उठकर निवृत्त होकर दशाश्वमेध में गंगा स्नान करके विश्वनाथ-जी के दर्शन करता था, फिर लौटकर लड़कों को पढ़ाता था। दुपहर को भोजन-पान के पश्चात् दो घण्टे विश्राम करता था, फिर आखीर आचार्य-परीक्षा की पढ़ाई में लगता था। रात को स्कूल-कालेज के लडकों को उनके घर चलकर पढ़ा आता था। दुपहर का बनाया भोजन रखा रहता था, दस-ग्यारह बजे रात को फुरसत पाकर करता और सो जाता था। इस प्रकार कई महीने पार कर दिये। लोग उसकी तल्लीनता और परिश्रम से प्रसन्न थे। प्राय: उसकी पूड़ियों की दावत करते थे। इस प्रकार जीवन का पौधा लहलहाने लगेगा। लोगों मे काना-फूसी शुरू हो गयी, मगर अभी तक चढाई न हुई थी। ब्राह्मण सुनकर कसमसाकर रह जाते थे। उनके समर्थक क्षत्रिय और वैश्य सुन लेते थे, पराधीनता की दोहाई देकर रह जाते थे। इस प्रकार छः महीने और पूरे हुए। मनोहर आचार्य-परीक्षा के इम्तहान में वैठा और प्रथम होकर पास हुआ। इससे उसके सहकारियों में आनन्द का दूसरा तूफान उठा। वे उसके पीछे जानोमाल खपाने को तैयार हो गये। उसकी तारीफ अब बनारस के इतर-जनो के घर-घर थी। ब्राह्मण के नाम से वही माना जाने लगा। वहाँ के लोग, खासतौर से ब्राह्मण और जगे; परन्तु दान-दक्षिणा के खाते

में उसका नाम न होने के कारण, उसकी तारीफ सुनकर अवज्ञता से मुँह फेर लेते थे, कहते भी थे—हमारे यहाँ उसकी कोई मान्यता नहीं, न उसकी पाठशाला कोई पाठशाला समझी जाती है।

बनारस में मनोहर इस प्रकार छिप गया कि घरवालो को डेढ साल हो जाने पर भी कोई पता न चला। उसने एक भी पत्र नही लिखा। जीकर भी जैसे मर गया हो। संस्कृत का आचार्य होकर वह दूसरे विषयों की तरफ मुडा। अंग्रेजी भी सीखने लगा। स्वस्थ था, परिश्रम सफल हो चला। उसके छात्र टूटी-फूटी संस्कृत में बातचीत करने लगे। घरवालों का कौतूहल बढ चला। इस समय काशी मे जोरो से लोग क्रिश्चियन बन रहे थे। इसकी पाठशाला की इसी डाट के कारण ज्यादा मुखालिफत नही हुई। वह खुद अपना काट सोचे और लिये रहता था, लोगो को समझाया भी करता था। काशी के धनिक वैश्य जो ब्राह्मणत्व के हकदार थे, भीतर से शूद्रो के संस्कृत पठन के समर्थक थे। मनोहर अब तक इतनी तैयारी कर चुका था कि इन लोगों को शूद्रत्व के आवरण से पृथक कर देने मे प्रमाण-प्रयोगो द्वारा समर्थ हो जाय। लोग उसकी इज्जत करने लगे कि उसको देखकर खड़े हो जाते थे और हाथ जोडकर नमस्कार करते थे। कुछ प्रथाएँ भी उन लोगों ने अपने बीच मे चला ली थी। उनकी प्राचीन प्रथा द्विजों से मिलते वक्त दूसरी थी। मनोहर को इन सबका ज्ञान हो गया।

काशी मे बहुत तरह के लोग रहते हैं। सभी का उद्देश्य पुण्य-सञ्चय है। पुण्य के प्रकार बहुत से हैं। रानी विमला का नाम उनमे एक वैसा ही है जैसा मनोहर का। रानी साहिबा अब तक भारत की काफी खाक छान चुकी हैं। अभी उम्र सिर्फ पचीस साल की है, मगर विधवा हैं, पति शराब-खोरी से नष्ट-स्वास्थ्य होकर गुजर चुके हैं। सरकारी बन्धुत्व का रानी साहिबा पर अत्यधिक आक्रमण हो चुका है। वैधव्य की बाधा स्वल्पकाल के लिए भी नही मानी गयी। उन्होने अपने कहार से सुना कि एक पण्डित इस प्रकार का काम कर रहे हैं। इससे उनका मन ऊँचा उठा। प्राचीन प्रथा से उनकी रक्षा नही हुई, इस नवीनता के जागरण में काम करने के लिए गुप्त रूप से उन्होने हाथ बढाया, अर्थात् एक दिन मनोहर से मिलने के लिए कहा। खबर पाकर मनोहर ने मिलने का अपना रास्ता निकाला; कहा—नहाते वक्त दशाश्वमेध घाट पर बातचीत हो सकती है, अभी खुलकर मिलने मे बहुत तरह की आपत्तियाँ हो सकती हैं, जिनका प्रतिरोध किसी पक्ष के द्वारा नही हो सकता है। संवाद सुनकर रानी साहिबा सहमत हुईं और रात चार बजे जब इक्के-दुक्के आदमी ही नहाने के लिए जाते हैं, साधारण वेश से स्नानार्थिनी की तरह उससे मिलने के लिए कहा। दिन निश्चित हो गया। कहार रानी साहिबा को लेकर आया। मनोहर रास्ते पर मिला।

रानी साहिबा ने हाथ जोडकर नमस्कार किया। मनोहर ने भी किया। बत्ती के प्रकाश मे रानी साहिबा ने देखा, दिव्य युवक है। कहा, "हम आपकी तारीफ सुन चुके हैं। यह लीजिए," कहकर रूमाल मे बँधी हुई एक रकम मनोहर को दी। हाथ बढाकर मनोहर ने ले लिया। रानी साहिबा ने कहा, "अपने काम के लिए, अपनी सहायता के लिए खर्च कीजियेगा। हमारा पता आपको मालूम है। इसी

माध्यम से सहायता के लिए कहियेगा। हम अपने हाथ आपको अर्थ देते रहेंगे। देश के युवक, अब हम वह नहीं हैं, मगर देश की भलाई के लिए तुम्हारे साथ हैं। हमारी जो तौहीन होती है, उसके निराकरण के लिए कम-से-कम हजार युवक तैयार कर दो।"

मनोहर को जैसे साक्षात् अन्नपूर्णा मिली। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। कहा, "मुझको आज तक ऐसा दान नहीं मिला, ऐसी दात्री मैंने आज तक नहीं देखी।"

सत्रह

मिश्रजी मुंशीजी के खिलाफ दरख्वास्त दे चुके थे। गाँव में दल बाँधना शुरू किया। पहलवान के खिलाफ उनकी गवाही नहीं थी। यह जमीदारों को बुरा लगा। रिश्तेदारी और मान्यता के कारण सिर उठाकर वे उनके खिलाफ कुछ कह नही सकते थे, लिहाजा आमदनी में जो रिश्वत से होनेवाली थी फर्क आया। चौकीदार भी मिश्रजी के साथ था। कुछ लोग और बँधे। रामसिंह ने अपने लोगों मे पैरवी करने की दौड लगायी। मनोहर के गाँव भी गये। थाने मे चारों तरफ से सिफारिशें सच हालात के साथ पहुँचने लगीं। थानेदार सुनते और लिखते गये। बिना सेंध की चोरी थी, इसलिए बड़ा महत्त्व उसको नही दिया; उलटे मिश्रजी पर निगाह डटायी। तव तक मुंशी के खिलाफ कप्तान के यहाँ से तहकीकात हो गयी। मामले को सच समझा हो या झूठ, मुंशी का बहरहाल तबादला हो गया। बरखास्त होते-होते बचे, यह उन्होने अपना सौभाग्य समझा। बड़ा बदमाश हलका है कहकर बोरिया-बधना समेटकर विदा हुए। मिश्रजी को खबर हुई कि मुशी बदल गये। थाने का हाल अदालतवाले लोग बाजार आते-जाते लेते रहते है। मिश्रजी ने निश्चय किया कि अब फन्दा मजबूत डाला जायगा, बचाव किये रहना चाहिए। जिले में उन्होने वकील को डायरी लिखा दी कि यह-यह हुआ। गाँव में बातचीत बढी कि अब मिश्रजी के हाथ गाँव के लोगों की बागडोर है। सामाजिक फैसले आदि के वह मुखिया माने जाने लगे। आमदनी भी बढ़ी। जमीदारों से कम लगान पर चार बीघे खेत और मिले। वह समझते थे, दिन-दूने रात-चौगुने बढ़ते पाप का पर्दा यह फाश करेगा, तो बाप-दादों की जोड़ी माया महीने-भर में बह जायगी। इन खेतों से भी अगर जमीदारोवाली इज्जत बरकरार रहे, तो भली। थानेदार तब तक माल की जाँच करते रहे। गये हुए सामान की फिहरिस्त उनके पास थी। उन्होने चौकीदार से ले ली थी।

जिस तरह चोरी का न होना एक सरकार का धर्म है, उसी तरह चोरी का होना भी उसका धर्म कहा जा सकता है, जबकि लोगों की माली हालत के सुधार

का तरीका ही उल्टा है, जमींदारों के वड़प्पन की साख चलती है, विलायत की नोविलिटी का देश पर सिक्का है। इस तरह, एक थाने मे हर रात चोरियाँ होती रहती हैं, कुछ लिखी जाती हैं, कुछ नही। इस चोरी के वारे मे जो पहलवान से तअल्लुक रखती है, थानेदार को वहुत विश्वास न था, मगर मिश्रजी की पार्टी को वह फँसाना चाहते थे। उन्होने शिकायत के जवाव मे जो रपोट दी थी वह मुंशी के माफिक थी और मिश्रजी के खिलाफ। गाँव के जमींदारों को भी उन्होंने समझाया कि मुंशी का तवादला हुआ, इसके माने यह नही कि वह वरखास्त हो गये या सरकार की नजर मे गिर गये। अगर रैयत मे इतनी गर्मी होगी तो सरकार के मुलाजिम मे कितनी हो सकती है। इसका उलटा सवने समझा कि मिश्रजी एक दिन वाँधे जा सकते है। जमीदारो को भीतर एक खुशी हुई, मगर दाँव पर चढ़ा नही पाते थे। जमीन देने का कारण भलमनसी का वचाव भी रखा था कि उनको अपना तरफदार वनाये रहें कि कलई न खोल दें।

इस प्रकार एक अरसा गुजर गया। पहलवान पहले की तरह वाजार आते-जाते रहे, आमदनी वढती रही। उठक-वैठक मिश्रजी के यहाँ वढी और मान्यता भी गांव में उन्ही की रही। चौकीदार भी आता-जाता रहा और लोग भी आने-जाने लगे। जिनके दरवाजे वैठने-विठाने के लिए चारपाई न पड़ती थी, उनके वहाँ पड़ने लगी। यदा-कदा जमीदारों का भी शुभागमन होने लगा। किसी को पता नहीं चला कि मिश्रजी ने क्या किया कि मुंशी यहाँ से वहाँ हो गये। एक ही हाथ से मिश्रजी ने अपना मैदान साफ कर लिया। लोगों के यहाँ से दूध-घी, सब्जी आदि गाँव की चीजें मिश्रजी के यहाँ व्यवहार में अधिक आने लगी। जमीदारों से इस तरह की शिकायतें थानेदार सुनते रहे, मगर अव तक काँपा न लगा था। चोरियों के सामान में जो चीजें वरामद हुईं, उनको अभी तक निश्चयपूर्वक थानेदार मिश्र-जी की चीजें नही कह सके थे। इस ताक मे थे कि एक अरसे के वाद उनको पहचनवायेंगे।

अट्ठारह

इस प्रकार एक साल से अधिक वीत गया। मिश्रजी तथा लोगों ने निश्चय किया कि शिकायत रफा हो गयी। थाने का हिसाव मिश्रजी को मालूम था। वह जानते थे, दूव की जड़ वारह साल तक सूखकर मिट्टी और पानी के लगते जिस तरह हरी हो उठती है उसी तरह सरकार की निगाह पर चढ़ा आदमी जिन्दगी के आखीर दम तक याद किया जाता है। सरकार और जमीदार का जो साथ है उसके वीच मे आ गये हैं। इसका कारण ब्राह्मणत्व का एक-दूसरा वड़प्पन है। इसको छोड़कर भी वह साँस नही ले सकते। इतनी मान्यताओ के वाद आदमी का जीना मुहाल

हो जाता है। तैयारी किये रहना चाहिए, जो कुछ होगा, भोग लिया जायगा। इस वल पर मिश्रजी वढ़ते गये।

हलके मे थानेदार की निगाह गवर्नर की निगाह से बड़ी मान्यता रखती है। थानेदार वदले मगर इस मामले की याद दिला गये। दूसरे थानेदार हसन खाँ ने मामले को समझ लिया, सरकारी लोगो की गवाहियाँ ले ली, चार्ज लगाने की पेशवन्दी की। जमीदारों से इच्छानुसार रपोटें लेते रहे। चार्जशीट तैयार करते रहे। एक रोज चौकीदार ने मिश्रजी से कहा, "माल की पहचान करनी है। जो मालवरामद हुआ है उसमें आपकी लिखायी चीजें भी हैं। चलिए थाने मे पहचान-कर वताइए।" मिश्रजी ने कहा, "हाँ, चलेंगे।" स्नान-भोजन करके दो-तीन मित्रों को लेकर देवीजी की जय करते हुए चले। जानते थे, जाल है। अपना सामान गया ही नही, पहचान किसकी ? घवराये कि अव फँसाये जायेंगे। गवर्नमेण्ट को मानते ही थे, व्यक्तिगत राग-द्वेष था। थाने चलकर कमर तक झुककर थानेदार को सलाम किया। थानेदार से चौकीदार ने परिचय दिया। थानेदार कुछ न वोले। मिश्रजी आँखें और मनोभाव पढ़ते रहे। वहुत माफिक नहीं देखा। वरामद शुदा चीजें न थी, दूसरी जगह से लायी गयी थी। सामने लाकर रखी गयी। तीन का समय था। मिश्रजी एक-एक देखते रहे। चीजे ऐसी न थी, जो शिनाख्त में न आयें जैसे रुपये-पैसे, सोने-चाँदी की ईंटें या कच्ची चाँदी। जेवर और कपड़े वह देखते फिरे। दिल में सोचा, अगर नहीं कहते हैं तो वात नही वनती। गोल-गोल कहते है तो वचाव की जगह रहती है, मगर दूसरे गाहक आ सकते है या तैयार किये जा सकते है। अगर कहते हैं कि चीजें वही हैं तो मामला लड़ जायगा। खुद-व-खुद थानेदार को जिम्में जिले की अदालत मे भेजनी पड़ेगी। अभी अगर कोई झोल या कोई पोल है तो वहाँ खुलेगी, थानेदार के हाथ से यह मामला निकल जायगा। अदालत में हाकिम के यहाँ होगा। यह भी सोचा कि जो सरकार वहाँ है वह वहाँ भी है; हमको थोड़ी-सी जगह वही से मिल सकती है।

मिश्रजी ने कहा, "जेवर वगैरह वैसे ही जान पड़ते है। इनकी पहननेवालियाँ भी हैं। पहचान उन्ही की पक्की होगी, इसलिए मामला जिले मे ही फैसला पा सकता है। वहाँ उन लोगो को हम पहचानने के लिए ले जा सकते हैं।"

थानेदार ने कहा, "मगर कोई चीज आपकी है, यह कहने ही से आपकी नही हो जायगी। इसकी भी जाँच-पडताल है। सरकार दूध का दूध और पानी का पानी निकालकर छोड़ेगी।"

मिश्रजी ने कहा, "क्या यह देख नही रहे, सरकार वाघ और वकरी को एक ही घाट पानी पिलाती है।"

थानेदार ने कहा, "इनमें जो-जो चीजें आपकी हों, उठाकर लिखा दीजिए।"

मिश्रजी ने जेव से फिहरिस्त की नकल निकाली और देखते हुए पाँच अददें थानेदार के पास ले गये। कहा, "यह अददे हमारी फिहरिस्त मे दर्ज हैं।"

उन्नीस

थानेदार को फसाना था, इसलिए जमीदार से लिया माल जिले चालान कर दिया। हाकिम से मिलकर कुल वात समझा दी कि जिस तरह की कार्रवाई हो रही है इससे गाँव विगड रहा है; सरकार का पाया उखड़ जाता है; लोग जमीदार और सरकार के मातहत नही रह जाते; वे मामले को व्यक्तिवादी वना देते हैं। चोरी से लेकर अव तक की तहकीकात का हाल थानेदार ने समझाया। शहादत के लिए कहा। प्रार्थना की कि मिश्र वदमाश आदमी है; इसने सरकार के मुलाजिम के खिलाफ दरखास्तें दी है और लोगो को फँसाये रहता है जिसमे पुलिस को कार्रवाई मे अड़चन पड़ती है। माल असली चोरी का नही, जमीदार से लिया गया है। कुछ चीजो को यह अपना वताता है। यहाँ मकुनी अदालत मे हाकिम को इनके रवैइये का अन्दाजा हो जायगा; फिर हुक्म के मुताविक कार्रवाई की जायगी। शहादत की तारीख लेकर थानेदार चले गये। माल थाने में जमा रहा।

तारीख के रोज मामला समझाने के लिए गाँव के जमीदारों और गवाहों को लेकर गये। मनोहर के गाँव के भी जमीदार और पासी थे। पडोस के प्रतिष्ठित कहे जानेवाले प्राय: सभी लोग। इस तरह फाँसा कि थाने के हलके मे कहीं भी मदद न मिले। वाहिरी लोगो को समझा दिया, सरकार के वागी लोगो की किसी तरह की मदद न की जाय। पहले मामला शुरू हुआ, फिर गवाहियाँ गुजरी। हाकिम ने सुन लिया, फिर असामियों की तारीख ली।

अपने लोगों को समझा दिया कि किसी के कान यह वात न पड़े। सव लोग सरकार के दुश्मन को समझे रहें।

थाने से मिश्रजी को उनके परिवार के साथ शनाख्त के लिए तारीख वता दी। पहलवान को भी वुलाया।

मिश्रजी को वुलानेवाला एक सिपाही था। चौकीदार का नाम न था। मिश्र-जी को इतना ही खटका। उन्होंने चौकीदार से आरजू-मिन्नत की। वह चलने के लिए तैयार हो गया। ऊँचे ब्राह्मणों से वह विनम्रता ही चाहता था।

जिले मे वकील की मार्फत मिश्रजी मिले। पहले से रिपोट लिखाये हुए थे। दरख्वास्तों का जिक्र वकील के यहाँ था। चौकीदार की व्यक्तिगत गवाही वकील से ले ली। और-और लोगो मे भी पूछ-ताछ की। मामला जोरदार था, वकील को हिम्मत हुई। माल की पहचान के लिए मिश्रजी की औरतें सिखायी-पढ़ायी ही थी। उन्होने उन्ही जेवरो को उठाया और कहा हमारी-जैसी है।

हाकिम ने अलग वकील को समझा दिया कि यह आदमी सरकार के खिलाफ चलता है और लोगों को उभाड़ता है। जो सरकारी तरीका है उसको वदल रहा है। चालाक है, इसमे शक नही। इसके घर की औरतें भी चालाक है। मगर सरकार का काम अपने ही रास्ते पर होगा। आप अदालत के सिर न हों, नही तो वकालतनामा जब्त किया जायगा। इतनी आजादी एक मामूली रियाया को नहीं दी जा सकती। आप अपने तौर से समझा दीजिए वाजू वचाकर।

वकील ने वैसा ही किया। कहा, "हम अपनी ताकत-भर लड़े लेकिन हाकिम थानेदार का तरफदार है। अगर वह चीजें आप ही की हैं तो आप जोर देकर कहिए। दुफसली बातें न कीजिए। अदालत को शक होता है। वकील भी कमजोर पड़ता है।"

मिश्रजी ने कहा कि हम जोर देकर नहीं कह सकते। थानेदार की जो मर्जी हो करे। सरकार को मानते हैं, मगर सरकार के मुलाजिम की गैरकानूनी कार्रवाइयों को भी मानना पड़ेगा, यह हमसे न होगा।

बीस

कई रोज बीत गये। गाँव में तहलका मचा हुआ था। लोग कानों में बतला रहे थे। मिश्रजी के यहाँ आने-जानेवाले लोगों की हिम्मत पस्त थी। सारा वायुमण्डल दहशत खाये हुए था। किसी को कुछ मालूम न था कि क्या होनेवाला है, सब अपना-अपना अन्दाजा लड़ा रहे थे। कोई कह रहा था, बगावत की जगह, जमींदार और थानेदार से कुछ कह देने के सबब, मिश्रजी को सजा होनेवाली है। उनके दरवाजे, कहा जाता है कि बदमाशों की बैठक लगती है, जो रैयत को जमींदार के खिलाफ भड़काते हैं। बाग, पनघट, घर, गली, कूचा, खेत-खलिहान सब जगह ऐसी ही बातों का तूमार बँध रहा था।

रात पार हो चुकी थी, सूरज की किरणें नही फूटी थी। चिड़ियाँ डालों पर प्रभाती गा रही थी। इक्की-दुक्की औरतें बाहर निकलने लगी थी। तीन सिपाहियों के साथ थानेदार आये और पहलवान के दरवाजे आवाज लगवायी। पहलवान निकले। सिपाहियों ने बाँध लिया और उनका चालान कर दिया। गाँव-भर मे सनसनी फैल गयी। घर में रोना-पीटना पड गया। सिपाही पहलवान को लेकर चल दिये। कुछ दूर तक जमींदार भी साथ गये। फिर लौट आये। बड़ी हमदर्दी से पहलवान से कहा, "हम कहते थे—पहलवान, सरकार की आँख गडी है, अभी दो का खर्च है, फिर चार का होगा, इस पर भी बचाव न होगा। घूम-फिरकर जमींदार की ही शरण लेनी पडेगी।"

पहलवान ने कहा, "जब तक रोग गले नहीं लगता तब तक वैद्य की बात याद नही आती। हम दो-सौ रुपये देने को तैयार है।"

जमींदार ने कहा, "चलिए थाने मे देखें, अगर थानेदार मान जायें।" पहलवान को ढाढ़स हुआ।

जमींदार ने थानेदार से कहा, "अगर बन्द कर दीजिएगा तो रुपये से हाथ धोना होगा, नही तो दो सौ रुपये देने को कहता है। खोल दीजिए, घर से ले आकर दे जाय।"

पहलवान को सिपाही ने खोल दिया। कहा, "इन्हीं के रहना!"

पहलवान सिर लटकाये हुए घर गये, दो सौ रुपये ले आये और जमींदार के हाथ मे रख दिये।

हिसाब से बँटवारा हो गया। पहलवान अपनी चौपाल में आकर बैठे।

इक्कीस

मनोहर के घर के लोग हताश हो गये थे। पहले दो-एक दिन घर न जाने पर घरवालो ने रिश्तेदार जमीदार के यहाँ पूछ-ताछ की। जमीदार ने ढाढ़स बँधाया। चुपचाप बैठे रहो, कही काम से गये होगे, अपने-आप खबर मिल जायेगी कि खैरियत है। इतने से घरवालों को प्रवोध हो गया। महीने-भर इसी भरोसे पर वीता। मनोहर न आया। वम्बई की चिट्ठी आयी, उसमे मनोहर का जिक्र न था। चिट्ठी के जवाब मे घरवालों ने लिखा कि मनोहर एक महीने से लापता है, जमीदारो के यहाँ गया था, वे लोग कहते हैं कि किसी काम से गया होगा, अभी तक कोई चिट्ठी नही आयी। मनोहर के पिता की चिट्ठी मिली। पता लगाने के लिए दस रोज के अन्दर वह भी गाँव दाखिल हुए। घर मे रोना-पीटना पड़ा। और जब पूरी खबर नही मिली कि मनोहर इस संसार से विदा हो गया है, तव मिलने की आशा फिर वँधी। दूसरे रोज मनोहर के पिता अपनी वहन के यहाँ गये! वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि मनोहर उन्ही के पास से गया है और पचीस रुपये कर्ज लेकर। दो महीने के व्याज के साथ वह रुपया अदा कर देना चाहिए। मनोहर के वाप ने स्वीकार कर लिया, मगर पेट ऐंठने लगा कि लड़के-का-लड़का गायव हुआ और ऊपर से रुपये देने पडे, व्याज के साथ। जमीदारो ने समझाया, जवान आदमी है, कही नौकरी तजवीज करता होगा, धीरज रखिए। अपने-आप सँभलकर आ जायगा। यहाँ जोर करने के लिए आया था, मगर दुनिया का रवैया कुछ और है, उसके आने के वाद से पुलिस से कई मामले लड गये, इसीलिए भाग गया, नहीं तो वँध गया होता। आप खामोशी से घर वैठिए या अपने काम पर जाइए। मनोहर के पिता घर चले गये। घर मे जैसा सुना, कहा। गाँव के जमीदार से मिले, आरजू-मिन्नत की। जमीदारो ने भी शिकायत की कि मनोहर का मिजाज कुछ चढा-चढ़ा रहता था, दो-एक जगह गये वहाँ विगाड हो गयी।

सारे गाँव मे कानाफूसी होने लगी कि मनोहर चला गया लेकिन किसानों में किसी ने उसकी निन्दा न की। मनोहर के पिता जिधर से निकलते थे उधर की वाहवाही होती थी, तुम्हारी मूँछे रख ली, तुम्हारा सिर ऊँचा किया, वह हमारा अपना भैया है, उसको कोई डर नही, हम जानते हैं कि लोगों ने उसको रहने न दिया, लेकिन वह वज्र है जो सिर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू

से टपककर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की बारिश लायेगा।

तालाब में सिंघाड़े भरे हुए थे। कहार ताक रहे थे। किनारे एक जगह कुटिया डालकर रहते थे। एक दीवार हाथ-भर की उठाकर चूल्हा बना रखा था, वहाँ रोटी पकाते थे। मनोहर के पिता को देखकर बच्चू कहार बहुत खुश हुआ, सेर-भर के करीब कच्चे सिंघाड़े ले आया और देकर कहा, "आपके बेटे की तारीफ में है, जो हम लोगों को ऊँचा उठाता है, ब्राह्मणों की तरह हमारा सिर नहीं फोड़ता।"

हरे-भरे बागों की कतार के किनारे से रास्ता था। रत फूली नहीं समा रही थी। इतनी खुशबू किसी इत्र की दूकान मे भी नहीं मिलती और ऐसी अच्छी। उसके नीचे से एक चौगड़ा कूदता हुआ दूसरी झाड़ी की तरफ चला गया। चिड़ियाँ बसेरे को लौट रही थी। डालों पर चहक रही थी। सूरज सामने अस्त होने को था। मनोहर के पिता घर लौटे।

०००

चमेली

एक

उतरता वैसाख। खलिहान मे गेहूँ, जव, चना, सरसों-मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से, माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है। एक जगह, घने आम के पेड़ के नीचे, सव जगहों से ज्यादा लाँक रक्खी है,—एक रास भी माड़ी लगी हुई,—एक अच्छा पलँग और एक चारपाई पर लट्ठ रक्खे सिपाही वख्तावरसिंह थैली से तैयार किया रक्खा दोहरा निकाल रहा है। पलँग पर पटवारी लाला शहनाईलाल श्रीवास्तव, खेतों की पैदावार लिख रहे हैं, वहुत कुछ अन्दाजन। देखने पर मालूम देता है, यह जमींदार का खलिहान है। जमीदार के खलिहान की वगल में पटवारी के खेत की लाँक लगी है। जमीदार ने तीन वीघे का एक खेत पटवारी को दिया है। गाँववाले जानते हैं—क्यों दिया है। फिर भी लाला शहनाई-लाल सौ से ज्यादा दफे, जव गाँव आते है, रास्ता चलते गाँववालों को बुलाकर कहते है—किसानो के अच्छे खेत से वीघा पीछे दो रुपये ज्यादा लगान उनके खेत पर लगाया गया है—पुलिस और जमीदार अपने वाप को भी नही छोड़ते। लाला शहनाईलाल पैदावार लिखते हुए रह-रहकर अपने खेत की लाँक देख लेते हैं, सन्तोष की साँस छोड़कर फिर लिखने लगते है। सुखलाल अपने गधे से समझौते की वातचीत करता हुआ वगल के गलियारे से निकल गया। पुरवा की अदालत से लौटनेवाले लोग कन्धे पर अधारी डाले, एक के वाद दूसरे, चले गये, गम्भीर भाव से कुछ मनन करते हुए। लाँक की तरफ, लपकते हुए भैंसे को भीखू चमार का नाती खेद ले गया। सूरज डूवने को है। किरनें ठण्डी हो आयी हैं। आम की डाल पर कोयल वोली। उठकर चमेली ने उस तरफ देखा। कोयल न देख पड़ी। लदे आमों की कतार दिखी। देखकर, जैसे वड़े प्यार की चीज हो, कुछ देर तक अनमनी-सी होकर, औगी उठाकर फिर वैल हाँकने लगी। शरमाकर सिर झुका लिया, जैसे सिर उठाते वक्त सीना कुछ ज्यादा उठ गया हो। वख्तावरसिंह देख रहा था, आँखों में जैसे मजवूत इरादा लिये हुए। पास के मड़नीवाले कोई-कोई चले गये है, दूसरे कामों से, पटवारी शहनाईलाल भी चलनेवाले है। जमींदार के गोड़इत से घोड़िया कसवा रहे हैं। गाँव डेढ़ मील दूर है। रात को नदी-नाले से होकर गुजरते डरते है। सिपाही खलिहान के अहाते के वाहर तक छोड़ आने के

लिए लट्ठ सँभालकर वैठा। इसी समय लाला वनिया कन्धे पर दोहर रक्खे खलिहान मे आये और चमेली की रास देखकर मुस्कराते हुए पूछा, "यह रास कव ओसाई जायगी?" फिर आप ही उसके ओसाये जाने का दिन सोचकर दूसरी रास की ओर वढ़े। पटवारी को देखकर राम-राम किया। पटवारी घोड़िया पर जा रहे थे, साथ जमीदार का सिपाही। चमेली उसी तरह गर्दन झुकाये औगी लिये वैलो को चलाती गयी। सिपाही पटवारी को छोड़कर लौटा। सूरज डूव चुका है। दूर गाँव के दूसरी तरफ आसमान पर ढोरो की खुरों की धूल दिखायी दी। खलिहान कुछ सुनसान है। कुछ दूर एक मडनी चल रही है, पर किसी की धीमी आवाज वहाँ तक नही पहुँच सकती। चमेली के नजदीक के लोग दिन रहते-रहते वैलो को वाँधकर चारा-पानी कर आने के इरादे से गाँव गये हुए है—मुँह अँधेरे तक आ जायँगे ताकने के लिए—तव तक दूसरी मड़नीवाले लाँक और रास देखे रहेंगे—वे सव अकेले आदमी है। कोई लड़का या लड़की किसी के घर है तो वह ढोर चराने गयी है। घरवाली शाम तक भोजन पका रखती है, और सवेरे का पकाया हुआ रक्खा है तो गृहस्थी का दूसरा काम करती है, जैसे कभी सीला वीनती रही या वगीचे के आम ताकती रही जो कुछ रुपये-धेली का हिस्सा लिया गया है, या वैलों के चारा-पानी का इन्तजाम करती रही कि दिन-भर के चले थके वैल आयेंगे, उनके आगे रक्खेगी।

वख्तावरसिंह चमेली के पास आकर खडा हुआ और एक दफा इधर-उधर देखा जैसे सवकी रक्षा कर रहा हो। फिर लाठी का गूला रास की वगल मे दे मारा, और खँखारकर पूछा, "तेरा वाप कहाँ है, चमेली?"

हाथ की औगी धीरे-से वैल की पीठ पर मारकर निगाह वैलो मे गड़ाये हुए चमेली ने कहा, "लकड़ी काटने गया है।"

"लकड़ी काटने?" वख्तावर ने हमदर्दी मे तअज्जुव करते हुए कहा।

"हाँ।" वेमन चमेली ने जवाव दिया।

"लादता है क्या?"

"नही।"

"फिर?"

"मजूरी करता है।"

"मजूरी करता है और इतना चलकर? हम कई मर्तवे कह चुके कि तू हमें दूसरा न समझ, हमसे जहाँ तक होगा, हम तैयार है। वह खरीदे तो तू उसे समझा, गाँव के दस-पाँच ववूल हम दिलवा दें आसामियो के, नही तो रुपया हम अपनी गाँठ से देंगे, और वह चाहे तो लौटकर, माल वेचकर रुपया चुका सकता है; यह मजूरी छूट जायगी। हाँ, गाड़ी का किराया न देना होगा—हम सरकारी गाड़ी दे देंगे।" वख्तावरसिंह धन्नासेठी निगाह से चमेली को देखकर मुस्कराया।

इस कहने का कोई जवाव हो सकता है, चमेली की समझ मे न आया। वह चुपचाप वैल हाँकती गयी। एक-एक दफे गलियारे की तरफ देखती थी कि उसका वाप आ रहा है या नही।

वख्तावरसिंह ने इधर-उधर फिर देखा और अपनी लाठी का गूला रास पर

रक्खा। वैलों के साथ चमेली के घूमकर आते ही कहा, "चमेली, तीसरी दफे कह रहा हूँ।"

चमेली कुछ न वोली। वैलो के साथ चक्कर घूमती हुई चली गयी। वख्तावर वैसे ही खड़ा रहा। चमेली का मौन उसे वड़ा सुहावना मालूम दिया।

चमेली वैसी ही शान्त, वैलों के साथ फिर आयी। अवके ठाकुर से न रहा गया। वढ़कर चमेली का हाथ पकड़ लिया।

"महादेव भैया रे,—ओ महादेव भैया!" चमेली ने आवाज दी। पहले देख चुकी थी कि महादेव मड़नी कर रहा है। कुछ दूर था।

"क्या है?" महादेव ने मदद के गले से पूछा।

"जल्दी आ," चमेली जैसे अपनी जवान पर ही उसे ले आयी।

महादेव जल्दी से वढ़ा। चमेली की पुकार पर ही ठाकुर भगे।

महादेव जव चमेली के पास आया, तव ठाकुर चिल्लाने लगे, "दौड़ो गाँव-वालो, महादेवना चमेली की रास में क्या कर रहा है।"

ठाकुर की आवाज वुलन्द थी। गाँव की दीवारों से टकरायी। गाँव और वाहर के लोगों ने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेव को ठाकुर की आवाज से ही चमेली के साथवाली हरकत मालूम हो गयी।

"घवरा न," चमेली से कहकर महादेव ठाकुर की तरफ वढा।

ठाकुर लाठी लिये तैयार थे ही। महादेव के हाथ में सिर्फ औंगी थी। लेकिन यह पट्ठा था और लड़ता था। ठाकुर की देह में सिर्फ दाढ़ी और मूछों के वाल थे और हाथ में एक तेलवाई लाठी।

महादेव के आते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठाकर ठाकुर को दे मारा। इसके वाद ठाकुर की वुरी हालत थी। कई जगह चोट आयी।

अव तक गाँव के लोग पहुँच गये। मनराखन ने ठाकुर पर महादेव को देखते हुए पूछा, "क्या हुआ?"

सीतलदीन मनराखन के वाद पहुँचे और महादेव और ठाकुर को देखकर ताअज्जुव में आ मनराखन मे पूछने लगे, "क्या है?"

माधो सुकुल पहुँचानेवाले तीसरे थे। देखकर सीतलदीन और मनराखन से कहा, "इन्हें छुड़ाना चाहिए।"

वदलू कुम्हार पहुँचे। देखकर वोले, "जव मालिको का यह हाल है तव हमारा कैसा होगा!" और ताअज्जुव में भरे हुए दु.ख में वही डूवकर रह गये।

महादेव ने अव तक खूव भरकर मार लिया था। रद्दे पर रद्दे और घूँसे पर घूँसे चलाये थे। मारकर गालियाँ देता हुआ, छोड़कर अपनी मड़नी की तरफ चला। गालियों मे ही लोगो को समझा दिया कि माजरा क्या था।

चमेली अपनी जगह खड़ी थी। वैलो को खड़ा कर दिया था। वही से देख रही थी।

महादेव के चले जाने पर, सिर झुकाये, हमदर्दी से ठाकुर वख्तावरसिंह को पकड़कर गाँववाले अपने-अपने अँगोछे से उनकी गर्द झाड़ते रहे, और जो कुछ

कहा, वह महादेव की तरफदारी में विलकुल न था, फिर भी ठाकुर नाराज थे कि वक्त पर नही छुडाया। वैठे हुए फटी निगाह से इधर-उधर देखते रहे। गर्द झाड़कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होश में आये, होश आने पर जोश आया; वोले, "हम वचाते थे, सोचते थे कि कौन हाथ छोड़े—कौन हाथ छोड़े, लेकिन साले सूद्र ने अपमान कर ही तो दिया। अच्छा, देख लिया जायगा, ठकुराइन ने दूध पिलाया है, तो—"

"तुम्हारी उसकी कोई जोड़ है, मालिक ?" सीतल ने ठाकुर को ठण्डा करते हुए कहा, "सेर और स्यार की वरनी !"

ठाकुर कुछ और जोश मे आये। वोले, "अव तुम्ही लोग देखोगे। और यह जो छोलहट चमेलिया है,''' खैर, देखा जायगा।"

लोग चमेली के नाम से सन्न हो गये। ठाकुर की ही वात सही मालूम दी। सव लोग एक-दूसरे को देखते रहे।

वात अव तक गाँव के चारो ओर फैल गयी। चमेली का वाप दुखिया लकड़ी काटकर गाँव के किनारे आया कि सुना, 'खलिहान में आफत मची है चमेली के वारे मे; ठाकुर वख्तावरसिंह को मारा है महादेव ने; ठाकुर पहले चिल्लाये थे कि रास मे महादेव और चमेलिया—'

एक दूसरे ने कहा, "मुँह अँधेरा था, अरे हाँ, कौन कहे, उतनी वड़ी विटिया।"

दुखिया सूख गया। सीधे खलिहान पहुँचा। मालिको के खलिहान के पास लोग इकट्ठे थे। वही गया। लोगो को जमीदार की तरफदारी करते देखा, गाँव मे भी जैसा सुना था, वह चमेली के खिलाफ था, मारे डर के काँपते हुए दुखिया ने, सिर पर वँधा अँगोछा उतारकर टोपी जैसे ठाकुर के पैरों पर रख दिया, और हाथ जोड़कर वोला, "मालिक, मेरा कोई कसूर नही है, दुखी रियाया हूँ, किसी तरह जीता हूँ तुम्हारी जूठी रोटी तोड़कर, मुझ पर नेक निगाह रक्खो, मर जाऊँगा नही तो, कही का न रहूँगा।"

गर्म साँस छोड़कर वख्तावर वोले, "तेरी वह जुवंटा विटिया भी समझती है, देस के धिगरों को वुलाने के लिए रख छोडा है उसे घर में ? भर्तार को तो चवा गयी व्याह होते ही, इससे नही समझ मे आया कि कैसी है ? वैठा क्यो नही दिया किसी के नीचे अव तक ?"

लोगों ने दुखी को पकड़कर कहा, "तुम अभी जाओ। ठाकुर की तवियत ठीक नही है। वोलते है तो दम फूलता है।"

दुखी अपने खलिहान गया। चमेली वैलो को खड़ा किये चुपचाप खड़ी थी। यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरत मे उसकी निगाह के सामने आयी थी। इस दुनिया को वह सच समझती थी, इसके लोगों को सही भावों से उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था, वदले में वैसे ही भाव जैसे पाती आ रही थी; पर आज कैसा छल है। महादेव को वह भैया कहती थी, पर कोई आज मानने के लिए तैयार नही !

चमेली को देखते ही दुखी ने कहा, "क्यो री, नाक काट ली न तूने ?"

"अँधेरे में तुझे अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है ?" चमेली ने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा, "अरी, जमीन पर पैर रखकर चल !"

"तो तू क्या देखता है, किसी के सिर पर पैर रखकर चलती हूँ जमीदार के सिपाही की तरह ?"

दुखी डरा। फिर जमींदार के प्रताप का सहारा लेकर वोला, "अरी, आँख में माड़ा न छाये—कुछ देख।"

"मैं खूब देखती हूँ। माड़ा छाया है लोगों की आँखो में और तेरी भी।" चमेली वदलकर खड़ी हुई, दूसरी तरफ मुँह करके।

दुखी उस सचाई के सामने अपने आप दवा। फिर उसने गिरते सुर में पूछा, "फिर वात क्या हुई, बता। लोग क्या कहते है।"

"लोग कहते है अपना सिर। लोग उसी ठकुरवा की ठकुरसुहाती कहते है। वात यह हुई कि ठाकुर मुझसे कहता था कि तरा वाप मजूरी क्यो करता है, हम ववूल दिला देंगे, दाम नहीं तो अपने पास से देंगे, मालिकों की गाड़ी देंगे, काटकर कम्पू से वेच लाये, दाम फिर लकड़ी वेचकर दे।"

"तो फिर ? मालिक और कैसे रियाया पर दया करें ?"

"तेरा सिर करें," चमेली की माँ ने पीछे से कहा।

चमेली की माँ पास के दूसरे गाँव न्योते गयी थी। महादेव को सूझा, ठाकुर को मारकर उस गाँव सीधे पहुँचा। महादेव की माँ भी वहीं थी। चमेली की माँ कहते ही वहाँ से चल दी, और ठाकुर की सरासर शरारत है समझी, क्योकि चमेली ठाकुर की पहले की दो दफे की छेड माँ से कह चुकी थी।

ताव मे भरी चमेली की माँ चमेली को 'आ, री' कहकर साथ लेकर, घर चली गयी। दुखी दीन-भाव से अपने वैलो के मुस्के खोलकर वहीं वैलो को वाँधने लगा।

ठाकुर के पास गाँव की करारी भीड जमा हुई। चौकीदार पसटू पासी रपोट कर देने के लिए कई मर्तवे कह चुका, और समझा दिया कि गाँव के सब लोग जानते हैं, गवाही देगे, थानेदार साहव के आने-भर की देर है, मारे जूतों के महादेव के सिर के वाल उडा दिये जायँगे, सजा तो वाद को होगी ही। गाँव के लोग पूरे उत्साह से साथ देने को कहने लगे, कसमें खा-खाकर कि 'जैसा देखा है वैसा न कहें तो अपने वाप के नही, नास हो जाय, खाट सीधे गगाजी जाय।'

कुछ देर मे जमीदार साहव आये। ठाकुर जमीदार साहव के भैयाचार थे। सूद्र ने पीट लिया, सवसे वड़ी चिन्ता उन्हें यह थी। रिपोर्ट कर आने के लिए चौकीदार से कहकर ठाकुर को चारपाई पर गाँव उठवा लाये, और रातों-रात कुल वातें मालूम कर मामले को मजवूत करने की तरकीवें सोचने लगे।

वो

इसी गाँव मे एक पण्डितजी रहते है। नाम शिवदत्तराम त्रिपाठी। उम्र पचपन के उधर। पेशा अदालत-झूठ, तमस्सुख लिखना-लिखवाना, मुकद्दमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को अधिक सूद पर रुपया कर्ज देकर व्याज में खाना-रहना। गाँव के समाज के एक मुखिया (सरकारी नही)। अपनी भी काफी जमीन कर ली है, दूसरे-दूसरे गाँवो मे हिस्सा लेकर। लडका लखनऊ मे पढ़ता है। घर के तीन भाई हैं। ये सवसे वड़े है। इनसे छोटे नही रहे। ननकी वेवा है, लावारिस। यही मकान की मालकिन है। पं. शिवदत्तराम की धर्मपत्नी नही है। वेवा भँहू मकान मे थी, उसे दोवारा व्याह करने की जरूरत नही हुई। लड़का समझदार है, इसलिए चचा से और वाप से कम पटती है। पण्डितजी के छोटे भाई अपनी स्त्री और वच्चो को लेकर कानपुर रहते है। घर में एक वेवा वहन भी है। दो लड़कियाँ थी जो ससुराल हैं।

पं. शिवदत्तराम का कहना है, सुवह सोकर उठने के वाद जव तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो। गाँववाले जानते है। फिर भी शिवदत्तराम की आमदनी मे रुकावट नही पडी। कोई-न-कोई हाजिर हो जाता है।

सुवह का वक्त है। शिवदत्तराम नहाकर पूजा कर रहे है। कुशासनी पर वैठे है रामनामी ओढे। मस्तक पर चन्दन, चोटी सँवारकर वाँधी हुई। गम्भीर मुद्रा, सामने ठाकुरजी। चन्दन और फूल चढ़ाये हुए, ताँवे के वर्तन मे पानी दायी ओर रक्खा। सपटी से कभी-कभी मुंह मे छोड़ लेते हैं। माला लिये हुए जप रहे है।

जगह, उन्ही की चौपाल, काठ के नक्काशीदार खम्भो की, पुरानी चालवाली। तिसाही दरवाजा वैसा ही नक्काशीदार। वाहर से देखने पर एक दफा निगाह रुक जाती है। पक्का मकान, वड़ा सहन, तीन-चार नीम के पेड़, पक्का कुआँ।

लतखोरे के एक वगल चौपाल मे पं. शिवदत्तरामजी जप रहे है, दूसरी वगल लड़का मनोहर वैठा उन्हे देख रहा है। इसी समय दुखिया आया। चौपाल पर चढ़कर भक्तिभाव से माथा टेककर पण्डितजी को प्रणाम किया। फिर उकड़ूँ वैठकर हाथ जोड़े हुए दीनता की चितवन से देखता रहा। पं. शिवदत्तरामजी और गम्भीर हो गये।

कुछ देर वाद, संपटी से पानी चखकर वहुत ही ठण्ढे सुरो मे पूछा, "कैसे आये, दुखी ?"

पूछने के साथ हाथ की माला चलती गयी। फिर होंठ भी हिलने लगे।

दुखी ने कुछ कहने से पहले रीढ़ सीधी की, फिर एक तरफ गर्दन टेढ़ी करके टेंट से कई पर्तो मे लपेटा एक रुपया निकाला और कुछ गम्भीरता से सामने रखकर वैसा ही दीन होकर वोला, "तिवारी भय्या, मैं तो मरा अव।"

प्रसन्नता को दवाते हुए, दुखी से हमदर्दी दिखाने के विचार से कुएँ के भीतर से जैसे तिवारीजी ने पूछा, "क्या हुआ, दुखी ?"

"वड़ी आफत है, भैया !"

मदद-सी करते हुए तिवारीजी ने पूछा, "वात तो वताओ, महतो ! तुम तो वस···"

"पुलिस में रपोट हुई है।"

"किस वात की ?"

"अव क्या कहूँ, भैया !"

"पुलिस के आगे तो कहोगे ?"

"हाँ, पुलिस के आगे तो कहना ही होगा। तभी तो आया हूँ।"

"तो वताओ, क्या रपोट हुई है, और माजरा क्या है, और तुम्हारा क्या कहना है।"

"मेरा क्या कहना है, मालिक, मैं तो किसान आदमी, कहना तुम्हें है जो कुछ है।" दुखी ने गर्दन उठाकर अपने मुख्तार-आम को जैसे देखा।

फटके से दरवाजा खोलकर मालकिन ने डाँटा, "इन्हें कुछ नही कहना। चल यहाँ से, वड़ा आया।" फिर जेठ की तरफ मुँह करके पर्दे के विचार से कान के पास की धोती में हाथ लगाती हुई अपनाव से वोलीं, "तुम्हें नही जाना वहाँ, जिमींदार का मामला है। इसकी वेटी चमेलिया को महादेवना के साथ दोख लगा है। सिपाही वख्तावरसिंह ने देखा था, महादेवना ने मारा है, जिमींदार ने रपोट लिखवायी है; कल थानेदार की अवाती है।" कहकर, वाहरी आदमी कोई देखता न हो, इस विचार से सहन के इधर-उधर झाँकने लगी, फिर देहरी पर पैर चढ़ाकर खड़ी हो गयी।

पं. शिवदत्तरामजी ने हाथ वढाकर रुपया उठाया, और टेंट मे करके पुजापा समेटने लगे। पुत्र गम्भीर भाव से देखता रहा।

"अच्छा, दुखी, अभी जाओ, अभी हमें काम है। दुपहर को वाग मे मिलो, हमारे खलिहान में; ये सव एकान्त की वाते हैं।" कहकर, पुजापा उठाकर पण्डित-जी घर के भीतर चले। चलते समय हिम्मत वँधाते हुए कहा, "घवराओ मत।"

घर के भीतर साथ-साथ उनकी भैहू भी गयी। आँगन में जाकर पण्डितजी ने स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखते हुए कहा, "औरत का कलेजा वेवात की वात में दहलता है। अरे, वहाँ जैसा मौका देखेंगे, कहेंगे। सूद्र है, घवराया है। इनसे ऐसे ही मौके पर रुपया मिलता है। आती लच्छिमी को कोई लात मारता है ? वहाँ दो वातों में तो इसे समझायेंगे। थानेदार आये हैं, तो एक रुपये से पार है ? जितना दूध होगा, निकलेगा। रुपये थानेदार को काटते नही ? नहीं तो मामला कौन है; कोई घावपट्टी चढ़ गयी ? हाथापाई के मामले में थानेदार का कौन-सा काम ?—सीधे अदालत खुली है। इस लोध को भरोसा है कि हमारी तरफ से चार कहेंगे, और हमारा भी काम निकल रहा है। थानेदार से कुछ खुल्लमखुल्ला वातें होती हैं ? यह अदालत थोड़े ही कि जिमीदार के खिलाफ चढकर गवाही देनी पडेगी ? रुख देखेंगे, लोध को समझा देंगे कि ऐसा हो। मुमकिन, लोध के भी अच्छे गवाह हों। मामला लड़ जायेगा तो वाहर से लड़ा देंगे। लेकिन यह कमजोर है।" पण्डित-जी ने फिर स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखा।

भैहू अपनी वेवकूफी के खयाल से लजाकर वोली, "ऐ, इतना कौन जानता

था ? हमने कहा, कहीं बैठे-बैठाये एक बला गले न लगे ! हमारे कोई दूसरा बैठा है ?" फिर कुछ रोनी सूरत बनाकर उसी आवाज मे बोली, "कोख का लड़का होता तो कोई एक बात न कहता। तुम्हारा भी होता—" फिर गम्भीर होकर बोली, "दीदी का सुभाव अच्छा न था, तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा, यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नही है; दीदी मायके मे ही बिगड़ी थी। कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़ेवाले बाग में।" शान्त होकर बोली, "एक दिन पहर-भर रात बीते दीदी बाहर निकलीं। मैंने कहा, क्या है कि हफ्ते में एक रात दो रात इस तरह दीदी अकेली बाहिर जाती हैं। वे निकली कि पीछे से दबे पाँव मैं भी चली। ऐन वक्त पर पकड़ ही तो लिया। वह तो भगा; दीदी पैरों पड़ने लगीं। आज तक मैंने नही कहा। देखो न, तुम्हारा जैसा मुँह थोड़े ही है ? न बाप को पड़ा है, न माँ को; उसी का जैसा मुँह है। उजाली रात थी, मैंने अच्छी तरह देख लिया था उसे।"

इसी समय बहन बाग से आयी ! मैहू हँसकर दूसरी दालान की तरफ चली।

पं. शिवदत्तराम भाव मे डूबे हुए बोले, "बाग जल नही गया।"

बहन ने सोचा, छींटा उन पर है। उनकी दाल मे काला था, बोली, "बाग क्यो जले, जले घर, जहाँ रोज आग लगती है।"

मैहू बगुलिन की तरह ननद पर टूटीं। दोनों हाथ फैलाकर बोलीं, "अरी राँड अपना टेंटर नहीं देखती, दूसरे की फूली देखनी है ? बहेतू कहीं की, सवेरे से जब देखो धोती उठाये बाहर भगी, कभी बाग, कभी खेत, इनके घर, कभी उनके घर। यह सब बहाने हैं, मैं समझती नही ?" जेठ की तरफ कनवाँ घूँघट काढ़कर देखती हुई, "कहे देती हूँ तुमसे, यह अब रहेंगी नही घर, खोदोया बिसाते से इसकी आस-नाई है, सीधे तुम्हारे मुख मे लगायेंगी कालिख और होंगी मुसलमानिन।" फिर धमाधम एक कोठरी को चलती हुई, "यह इतना बड़ा सीसा खोदैया के यहाँ से आया है—रोज मुँह देखती है।"

"सुनो, सुनो," पं. शिवदत्तराम ने बुलाया।

"क्या ?" बदलकर मैहू बोली, देखती हुई कुछ नजर बचाकर।

"घर की बात घर ही मे रहने दो।" पं. शिवदत्तराम पूरे विश्वास से बोले, "कोई कुछ करे, दोख नहीं, धर्म न छोड़े।" फिर मैहू से कहा, "जरा यहाँ तो आओ।"

कहकर बाहर की दहलीज की तरफ चले। पीछे से मैहू चली गम्भीर भाव से। दहलीज के एक सिरे पर खिड़की है या जनाना रास्ता, बाहर जाने को वहीं गये। वहाँ, दरवाजा कुछ खोलकर, खड़े हो गये। मैहू जेठ से विश्वास की आँखें मिलाकर खड़ी हो गयी।

"सुनो," पण्डितजी ने आदर से कहा। मैहू एक कदम बढ़कर बिलकुल सटकर जैसे खड़ी हुई। "वह दवा जो तुम्हे दी थी, इसे भी पिला दो।" पण्डितजी ने शंका और लापरवाही से कहा।

"तुम निरे वह हो," जेठ की छाती पर धक्का मारकर मैहू ने कहा, "बाम्हन ठाकुरो के यहाँ कोई बेवा वह दवा खिलाये बिना रक्खी भी जाती है ? वह गावदी

होगा जो रक्खेगा। एक-आध के हमल रह जाता है, लापरवाही से। यह वह सब कर चुकी है।" कहकर स्वस्ति की साँस छोड़ी।

"तो ठीक है, चलो," पीठ पर हाथ रखकर थपकियाँ देते हुए जेठ ने कहा और लौटकर दरवाजे की तरफ बढ़े। मनोहर न था।

['रूपाभ', मासिक, कालाकाँकर, फरवरी, 1939। असंकलित]

०००

इन्दुलेखा

एक
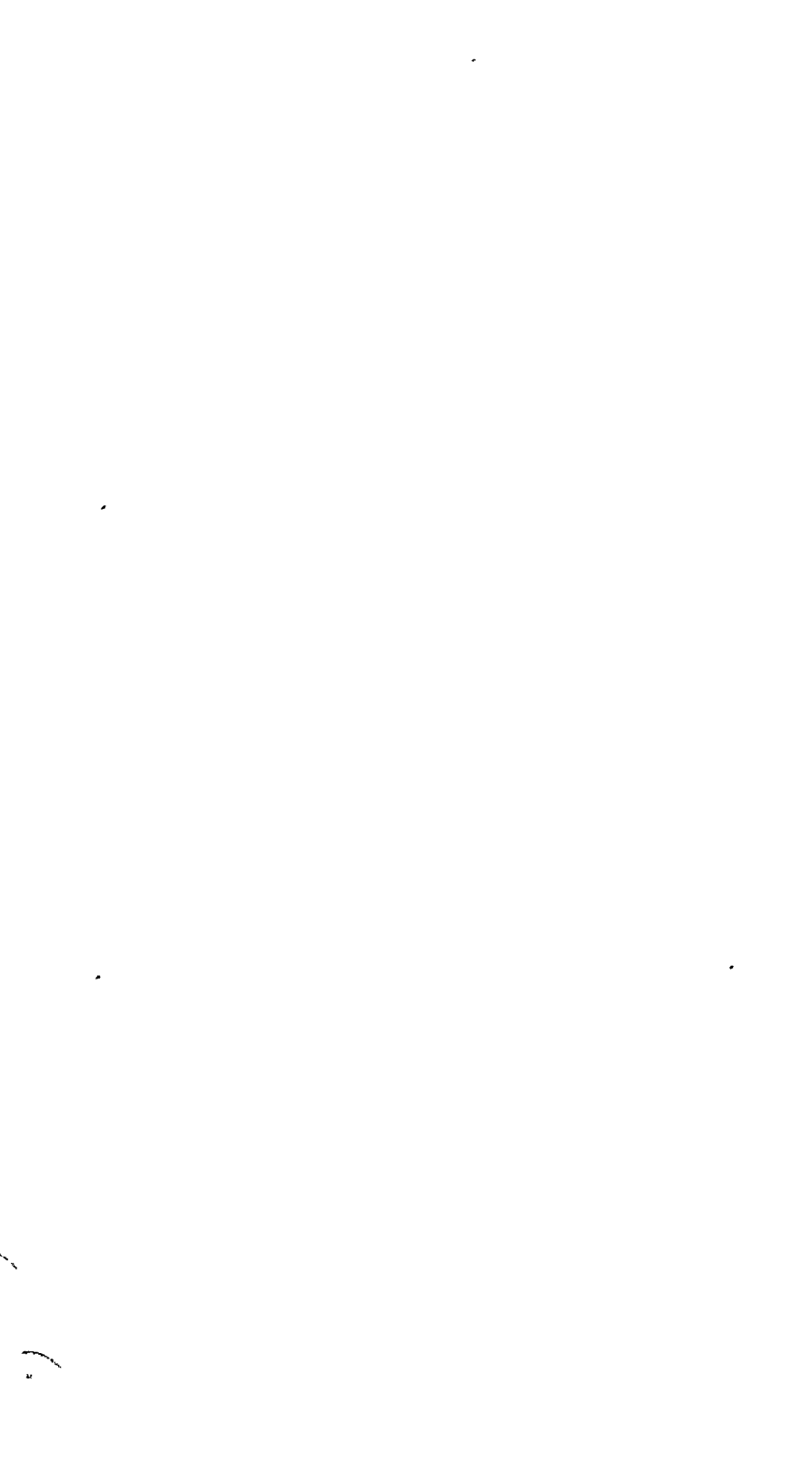
सूरज की किरन फूटी। धीरे-धीरे प्रभाकर की कुल किरणें खुल गयी। सामने नहर वहती हुई। प्रातर्भ्रमण के वाद सूरज को पिछौड़ा कर आते हुए विद्यार्थी युवक स्नातक की आँखें एक सुन्दर तरुणी पर पड़ी जो प्रतीकता मे भूमि की कन्या की तरह सूर्य के कुल रूप थी। कुल किरणों को अपने में मिलाकर, धान के लहराते हुए खेतो को देखती हुई एक नजर युवक स्नातक पर डालकर तरुणी-स्नातिका की मुस्किराहट हँस रही थी। युवक धीरे-धीरे नव्वे डिग्री के कोने को पार कर नहर के वाँध पर चढ़कर अपने अध्ययन-गृह की ओर कुछ और पढ लेने के इरादे से और तेज कदम उठाता चला।

तरुणी धान के खेत की मेंड से अपने घर की ओर चली। दक्खिनाव उसकी सूरत लेकर युवक के कमरे की ओर वढा। दूधवाला युवक का कमरा खोलकर आधा सेर दूव रख गया। घर से एक लड़की आयी और पूछा, "दादा! दूध गरम कर दिया जाय या पानी मिलाकर वादाम का शर्वत वनाकर पियोगे?"

युवक ने कहा, "नही, दूध-भात खायँगे, ले जाओ।" लड़की दूध लेकर अपनी माँ के पास चली गयी।

घण्टे-भर पढ़ने के वाद युवक उठा और सावुन का डिब्बा लेकर धोती वगल में दवाये नहाने के लिए सीढ़ीवाले तालाव मे गया। सुभीते से धोती सीमेण्टदार कुर्सी पर रखकर और सीढ़ी पर सावुन का डिब्बा भी, वह पानी मे डुवकी लगाने को उतरा। नहाकर निकला। जीने पर वैठकर हाथ-पाँव, सिर सावुन से मलने लगा। झँझरीदार डिब्बा वन्द करके रख दिया और वह नहाने लगा। उसने निकल-कर धोती वदली। छोड़ी धोती को छाँटने चला कि वहाँ तरुणी वाँस की डलिया में कच्ची मछली के गट्टे लेकर तालाव में धोने आयी। युवक को देखकर अंग्रेजी में पूछा, "तुम मछली तो न खाओगे, समर!" समर ने कहा, "नहीं, इन्दु! मैं आज-कल निरामिष भोजन करता हूँ।"

"अच्छी वात है," इन्दु ने कहा, "आँतों का विकार निकल जाय तो कहना, मेरी वनायी पहिली मछली होगी।"

"हाँ स्वीकार करता हूँ," समर ने कहा, "पढ़ाई आजकल कैसी चल रही है?"

इन्दु ने कहा, "नतीजा निकलने पर हमारी-तुम्हारी मेहनत भी साथ-साथ

साबित होगी।"

"अच्छी बात है मगर हमारे विषय अलग-अलग है तो पढ़ाई की शुमार एक कहाँ से हो," समर ने कहा।

इन्दु ने जवाब दिया, "तुम्हारा तो, सुनती हूँ, जद्‌बद्‌ ही पढ़ाई का हिसाब है, हमारा exclusive के बाद of छूट गया तो नाव डूबी।"

युवक ने सुनकर मुस्किरा दिया। नीची नजरों से साबुन का डिब्बा उठाकर अपने कमरे की तरफ बढ़ा। युवती और सँभालकर मल-मलकर मछली धोती रही।

दो

नौ का वक्त होगा। पेशे के कर्मचारी और शिक्षक वगैरह स्कूल-कालिजों के लड़कों के साथ-साथ सरसो का तेल लगाकर देह और वाल मलते हुए घाट की तरफ नहाने चले। विजय ने बंकिम से कहा, "आज सारी रात (उस तरुणी की तरफ इशारा करके) यह पढती रही।"

बकिम ने जवाव दिया, "अच्छा खान्दान है, तीन घटक दो साल से चारों तरफ चक्कर काट रहे है। पचासों फोटो आये। लड़की के बाप को एक भी पसन्द नही।"

विजय ने पूछा (बायें हाथ से वाल रगड़ते हुए), "दो-चार जगहों की सुनी हुई पूरी जानकारी कुछ कहो।"

बंकिम ने कहा, "एक तो हमारे महराज कुमार है जिनकी पढ़ाई बन्दूक है; कढाई में चिपका रहता है जिसका छुआ लडकी का बाप नही खाता। सगाई की बात सुनकर उसने मुंह बनाकर कहा, 'वह ऐसा है जिसको गधे की भी तमीज नहीं।' दूसरी कलकत्तेवाली है जिसकी रसगुल्ले और सन्देश तारीफ मे आये थे। लड़की के बाप ने कहा, 'यह क्या उसके घर गूल (भट्ठी) खोदेगी।' एक-एक आधे सन्देश और रसगुल्ले मार गया। मैं खड़ा देखता था कि पूछेगा, मगर हरामजादे ने जैसे मुझको देखा न हो, अपनी बोली सुनाता गया और एक-एक टपाटप मारता रहा।" घटक ने कहा, "कुछ बिटिया रानी को···।" पलकें मूंदकर उसने जवाब दिया, "वह फूल सूंघती है।" एक सन्देश और एक रसगुल्ला घटक को दिया और हण्डी उठाके भीतर रख दी। हाथ धोके एक गिलास पानी लेता आया और कहा, "केदार मेरा इससे बीस है। कहाँ इसके खाजे, खुरमे, छाना-मुडकी, सन्देश, रस-गुल्ले, मोतीचूर और सिंघाडे; कहाँ ये रत्ती-भर खुशबू में उल्लू बनाने की हकी-कत?" फिर चार आने पैसे घटक को दिये।

बंकिम ने पूछा, "और यह शिवरंजन? यह निगाह पर चढ़ा?"

विजय ने कहा, "कालेज की पढाई का प्रेम कुछ नही, लैला-मजनू की नजीर

काफी है।"

दोनों तालाब की पक्की सीढ़ी से नहाने के लिए पानी में उतरे। पालतू बड़ी मछली एक जांघ में धक्का देकर चली गयी। वंकिम पानी में फैल गया।

"क्या हुआ ?" विजय ने पूछा।

"पानी के भीतर सुअर है या सांप ?" वंकिम ने सँभलते हुए कहा।

तुर्त-फुर्त दो ज़ीने ऊपर चढ़ गया।

दूर आंवले के नीचे खड़े एक वच्चे ने हँसते हुए कहा, "मैं दूर से मना कर रहा हूं; उस तालाव की मझोली रोहू जाल से निकालकर इस तालाव में छोड़ी गयी है। बीना को भी खुत्था मारा।" बीनाशंकर उसके एक साथी का नाम है।

विजय ने कहा, "यह शुभ लक्षण है या अशुभ ?"

वंकिम को कुछ डर हुआ। मुर्दा आँखों से उसने मदद चाही।

"सहारा दूँ"—पूछकर विजय ने हाथ वढ़ाया और अपने लोटे से पानी उठाकर वंकिम के सिर पर डाला ताकि नहा जाय। टेकाकर घर की तरफ ले चला।

धोती वदलवाकर विजय ने दोस्त को चारपाई पर वैठाया। पास खड़े पण्डित ने माजरा पूछा। विजय ने कहा, "मछली ने खुत्था मारा, जाँघ कुछ जख्मी हो गयी है। पण्डित, यह तो वताओ मछली का खुत्था सगुन में है या नहीं ?"

पण्डित ने कहा, "एक गिनती का नाम लो।"

विजय ने कहा, "इक्कीस।"

रामशलाका-प्रश्न से पण्डित ने जवाब दिया,

> 'विधिवश सुजन कुसंगत परही
> फनि मनि इव निज गुन अनुसरही।'

तीन

क्लास में घुसने के साथ कागज की एक गोली समर को नीचे पड़ी हुई मिली। उसने उठाकर उसे जेव में रख लिया। लेक्चर का पीरियड समाप्त होने पर वाहर निकला और अकेले में गोली खोलकर पढ़ी। इन्दु का अखीर पीरियड में बुलावा था। संकेत की जगह पार्क की एक वेंच, जो कुंज के भीतर थी। मन लगाकर तीन पीरियड के लेक्चर सुनता रहा। अखीर की उसकी छुट्टी इन्दु को मालूम थी, उसने बुलाया था। समर की शताधिक वैठकें इन्दु के साथ हो चुकी थीं। इन्दु के अखीर के दो पीरियड खाली थे, घण्टे-भर तक वैठी हुई 'गोल्डेन ट्रेजरी' पढ़ती रही। जब समय आया तो शेली का···

> Like a poet hidden
> In the light of thought,

Whose words are unbidden,
Till the world is wrought

'स्काई लार्क' चल रहा था। घुसकर समर ने कहा, "नमस्कार, इन्दु!"

"नमस्कार," प्रत्युत्तर मे इन्दु ने आँखें उठाकर समर की आँखों मे रखते हुए कहा और किताब समेटी।

"यह हैण्डराइटिंग तुम्हारी नही जान पडती," समर ने कहा।

"हाँ, इसलिए कि बायें हाथ से लिखा है," इन्दु ने कहा, "चारों तरफ मैच मेकर दौड़ रहा है। पिताजी को कोई मैच पसन्द नही आया। इसका मतलब बहुत अच्छा, हमारी समझ मे नही आता।"

"होगा," समर ने कहा, "ये लोग कैसे आदमी है, सही-सही मैंने नही समझा।"

"हमको दाल मे काला नजर आता है," इन्दु बोली, "ये लोग आदमी व्यवसायी जान पड़ते हैं।" समर इन्दु की बात से सहमत हुआ और आँखें झुकाकर उसने कहा, "कोई मददगार न होगा तो कैसे दुनिया मे गुजर होगी, यह समझ से बाहर है।"

इन्दु ने आँखें बड़ी-बडी निकालकर विश्वास के स्वर में कहा, "उधर का इनका अपना हिसाब समझना है तो भी पक्के साथी और पूरे साथ की आवश्यकता है। हमको लेडी-प्रोफेसर ने भी थोड़ी-सी चेतावनी दी थी और जान पड़ता है कि समझ से काम न लिया गया तो जिन्दगी बर्बाद हो जायगी।"

"जिस तरह होती जा रही है," समर काँपती आवाज में बोली, "इससे थोड़ी ख्वारी नही हुई। बात सही होने पर भी इसलिए गलत है कि उसका चूल पढ़ाई से नही बैठता। जो कारगुजार है, उनमे किसी को साहित्य या गणित में पारंगत मैंने नही देखा।"

"और बिना पूरी रखवाली के किसी के साथ हमारी जिन्दगी बेकार हो जा सकती है, इनकी रखवाली किस रूप में कहाँ कैसी है, इसका भी पक्का-पक्का ज्ञान आवश्यक हो रहा है।"

"तो तुम तैयार रहो, हम भी पढ़ाई बने या बिगड़े, इधर ही के लिए कमर कसते है।"

इन्दुलेखा कुछ क्षण के लिए पलकें नीची किये खड़ी रही, फिर वैसे ही बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर समर की निश्छल आँखों पर रखते हुए कहा, "यह शापमय है ऐसे आदमियों की छाँह मे जीना। यह बल्कि खून के ठण्डे होते-होते जान से हाथ धोना है बनिस्वत गर्म खून के बहाव में जीने के।"

समर ने कहा, "सही है कि यह बुजदिली की वजह स्नातक की पुकार नही, बल्कि प्रियजन से जबरदस्ती अलग होना और एक मुर्ग की मौत मरना।"

['ज्योत्स्ना', मासिक, पटना, दीपावली अंक, 1960 ई.। असंकलित]

०००

कहानियां

प्रेमपूर्ण तरंग

बाबू प्रेमपूर्ण मेरे अभिन्न हृदय मित्र है। मेरे बी. ए. क्लास के छात्रों मे आप ही सबसे वयोज्येष्ठ हैं। आपकी बुद्धि की नापतौल इस वाक्य से पाठक स्वयं कर लें कि, जब मैं कालेज मे भर्ती हुआ, तभी से आप कालेज की चौथे साल की पढ़ाई रट रहे है—गोया मेरे देखते-देखते बी. ए. को परीक्षा मे तीन बार फेल हो चुके। किन्तु फिर भी आप प्रतिभा से प्रवंचित नही है। यदि किसी को उनकी प्रखरता की परीक्षा लेनी हो तो उनसे वाद-विवाद और चाहे वितण्डावाद तक करके देख ले। उनके वाग्बाणों के अव्यर्थ सन्धान से प्रोफेसरो के भी हाथ से पुस्तक छूट पड़ती है,—मारे भय के या मारे क्रोध के,—यह बतावें तो वही बता सकते है। प्रेमपूर्ण को ऐसे और भी अनेक गुणों से आप पूर्ण पाइयेगा। इन्ही कारणो से हम लोगो ने आप ही के सिर पर लीडरी का सेहरा बाँधा है। किसी भी पराक्रमी तर्क-शिरोमणि की क्या मजाल जो हमारे प्रेमपूर्ण जैसे वाक्सिद्ध धुरन्धर विद्या-लवणार्णव के रहते छात्रालय के सरस्वती के सपूतों को नीचा दिखावे। अगर कोई बुरी लत उनमे है तो वह है रोमेंस की तलाश। जब देखिए, आप रोमेंस के भूखे ही रहे! फेल होने का यह भी एक मुख्य कारण है। बिना 'रोमैंटिक' नावेल की कुछ पंक्तियों की आवृत्ति किये रात को आपकी आँख नही लगती। संक्षेप मे, आप कई विचित्र भावों के आधार, नहीं पूर्णाधार हैं। सबसे उल्लेखनीय कौतुक तो यह है कि प्राचीन काल के नामों की तरह ज्योतिर्विदों ने आपका नाम गुणानुसार ही रखा है। बिहारी सतसई के हरएक दोहे को अपने छात्र-जीवन मे ही सार्थकता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। कदाचित आप हिन्दी लिखना जानते होते तो बिहारी सतसई तथा अपर श्रृंगारी कवियों की कृति पर सजीव भाष्य लिख देते। फिर तो आपकी अनुदार मूर्ति से हिन्दी साहित्य का पिण्ड छुड़ाने के लिए लोग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के आसन पर आपको प्रतिष्ठित करके सविनय कहते ही,—खुलकर न सही, मन-ही-मन सही, कि "प्रभो, अब 'दूरमपसर', साहित्य का सत्यानास खूब किया आपने, बस अब कृपा कीजिए!"

हम लोग प्रेमपूर्ण की प्रेम-कथा सुनते-सुनते ऊब गये थे। बंकिम बाबू ने अपने उपन्यासो मे किसी नायक को एक से अधिक नायिका नही दी, हाँ, कही-कही अशुद्ध प्रेम को विशुद्ध या विशुद्ध को अशुद्ध करने के विचार से उन्होने एक नायक के पीछे दो-दो नायिकाओ को प्रेम के कँटीले मार्ग पर चलाया है। (कदाचित एक नायिका

के पीछे दो-दो नायकों को भी भिड़ाया है; हम इसकी कसम नही खाते। अस्तु।) यही हाल शेक्सपीयर का भी है। परन्तु यहाँ तो एकमात्र नायक प्रेमपूर्ण के पीछे एक नही, दो नही, तीन नही, अगणित नायिकाएँ! प्रेमपूर्ण के पास प्रतिदिन एक नयी नायिका की चिट्ठी आती है। ताज्जुब तो यह कि इनकी सभी नायिकाएँ पढ़ी-लिखी होती हैं। किसी के पत्र मे लिखा है, आपको देखकर जी व्याकुल है; किसी के पत्र मे है, रात को नीद नही आती—करवटें बदलते-बदलते रात पार हो गयी; किसी के पत्र मे है, बिन देखे नहिं चैन। प्रेमपूर्ण से जब पूछिए, कहाँ चले यार मेरे ? तब यही एक उत्तर सुनिए कि, इससे मिलने जा रहा हूँ,—उससे मिलना है, —पत्र आया है। प्रमाणस्वरूप पत्र खोलकर दिखा देते। वे कोई ऐसे-वैसे प्रेमी नही है कि मुँह छिपाते, दिल के बडे पाक-साफ है। उनका अधिकांश समय इस प्रकार प्रेमिकाओं से मिलने मे ही व्यतीत होता है। उनके फेल होने का यह एक गौरवपूर्ण कारण है।

आज सुबह को मैं 'माधुरी' मे प्रकाशित द्विवेदीजी का एक लेख पढ़ रहा था कि प्रेमपूर्ण हाथ मे चिट्ठी लिये आ पहुँचे। झुककर लेख का शीर्षक देखते ही कहा, "उँः, क्या पढ़ते हो ! इस नीरस लेख में क्या रखा है। जरा इधर देखो यह पत्र; पढो तो, वह सरस शैली है कि पढ़ते ही मुग्ध हो जाओगे।" फौरन मेरी समझ मे आ गया कि यह वही नित्य की क्रिया है। मैंने झुँझलाकर कहा, "जब तक मैं इस लेख को समाप्त न कर लूंगा, तब तक तुम्हारी चिट्ठी नहीं पढ़ सकता; यह विद्वान का लेख छोड दूं और तुम्हारे पत्र मे 'किसके कलेजे में कटार भोंका' देखूं, क्यों न ?"

लेख समाप्त करके प्रेमपूर्ण की चिट्ठी पढने लगा था। लिखा था—

जब से आपको देखा तब से जी बेहाल है। यही आशा लगी है कि आप कब मिलेंगे। लिखने को तो बहुत जी चाहता है, परन्तु ज्यादा लिखूंगी तो आप भी क्या समझेंगे। लज्जावश हृदय के भाव प्रकट न कर सकी, और प्रकट करना असम्भव भी है; आप सहृदय है, समझने में देर न होगी कि मैं किस हालत मे हूँ। रथयात्रा के दिन बड़ा-बाजार मे मिलिए। अवश्य मिलिए, नही तो मै जान पर खेल जाऊँगी। तरस-तरसकर मरने से एकदम कूच कर जाना कही अच्छा है।

सोमवार, आषाढ़ बदी एकादशी, मै आपकी
1979; "तरंग"
29, डीयर लेन, कलकत्ता।

पत्र को मैंने ध्यान से पढा। मेरी दृष्टि अन्त की चार पंक्तियों में अटकी। देखकर प्रेमपूर्ण बोले, "यह सब इस देव-दुर्लभ सौन्दर्य की करामात है बच्चू, समझे ?"

मैंने पूछा—और संग का असर बड़े-बडे पर पड़ जाता है—कि, 'क्योजी, तुमने कही वशीकरण तो नही सिद्ध कर लिया ! क्या बात है जो तुम्हारे पीछे स्त्रियाँ इस तरह हाथ धोकर पड़ जाती है ? कुछ हमे भी सिखाओ,—तुम्हारा बड़ा जस मानूंगा, सच कहता हूँ।"

प्रेमपूर्ण—"क्या सिखावें ! तुम्हारे चेहरे पर कही लावण्य का नाम भी तो हो?

तुम्हें तो देखते ही 'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' की याद आ जाती है। अगर मेरी तरह इस असार संसार मे स्वच्छन्द विहार करना चाहो तो भरते जाओ रोमेंस के भाव; जब सिद्ध हो जाओगे तब तुम्हारा हृदय ही प्रेम का केन्द्र बन जायगा। फिर तो चुम्बक पत्थर लोहे को—वह कही भी हो—आप खीच लेगा।"

मैं—"ठीक है, तो सिद्ध कब तक हो सकूँगा ?"

प्रेमपूर्ण—"इसकी कोई मियाद नहीं। मिहनत जितनी ही करोगे मजा भी उतना ही चखोगे।"

आज रथयात्रा का दिन है। काटन स्ट्रीट की कौन कहे, सेन्ट्रल एविन्यू मे भी गाडियों का ताँता ही ताँता देख पड़ता है। फुटपाथ न होते तो आदमियों का चलना मुश्किल था। कितने ही लोग तो केवल इसी सुभीते के कारण भीड़ की जाँच-पड़ताल और अखबारों के लिए समाचार-संग्रह करना छोड़ सरकार की भर-मुँह तारीफ करने लगे। अनेको ने अनेकों को यह कहते सुना, 'सर्कार दयालु दानी देता है दया से दान।' इस उच्छ्वासमयी कविता को सुनते ही किसी समालोचक महोदय से न रहा गया; वे बोल उठे—'सर्कार' की जगह यदि 'सर्कर' होता तो छन्द शुद्ध उतरता,—'सर्कार' शब्द कानों को कोंचता है।

इधर प्रेमपूर्ण का और ही हाल था। पास तो उनके छदाम न था, लेकिन रोब-दाब देखिए तो लखपती की भी शान को मात करते थे। वह ट्रंगल्कट् फैशनेबुल् बालों की बहार ! वह इलाहाबादी सिर पर लखनवी ठाटबाट से बनारसी टोपी ! आधुनिक सभ्यता के अदब से वह बैसाखी मुस्कुराहट ! नुकीली नाक पर वह चश्मा ! हरे-हरे ! हाथ में रिस्टवाच, पैरों में दिल्ली का कामदार जोड़ा ! कहाँ तक लिखें, गोया आपके चेहरे पर प्राच्य और पाश्चात्य भाव एक-दूसरे से सप्रेम आलिंगन कर रहे थे। पीछे चोटी और आगे इंगलिश फैशन ! उधर कानो के दोनों बगल के बाल नदारद और इधर मूछें हवा मे हिलोरें ले रही थी।

बेचारे ने तमाम मेला छान डाला पर कही कोई नही। किसी की मोटर निकलती,—बग्घी आती, तो आपके प्रेम-पिपासु नेत्र स्वागत के लिए बढ जाते। किसी महिला की मोटर किले के मैदान की ओर जाती तो आपकी मुरझायी हुई आशा की कली पर वासन्ती मलय का एक मधुर झोंका-सा लग जाता। हृदय में ध्वनि गूंज उठती—"वह आयी !" उच्छ्वास का झोंका खाकर खिला हुआ प्रेम-कुसुम प्रेमिका की सेवा में स्वीकृत होने के लिए जाता, परन्तु बदले मे मिलती थी —घृणा, तिरस्कार और प्रत्याख्यान। इस तरह बेअदबी का नतीजा हाथोंहाथ मिल जाता था। परन्तु आदत तो बुरी बला होती है। दूसरे आशा इतने सहज ही क्यों छूटने लगी ? एक न हुई तो दूसरी अवश्य होगी, बस इसी विश्वास से एक दूसरी मोटर पर नजर डालते। वहाँ से भी चोट खाकर वापस आना पड़ता। यदि कलि-महाराज समय के सम्राट् न होते तो उस दिन आप पर जैसी मूसलाधार अग्निवर्षा हुई, उसे देखकर तो यही अनुमान होता है कि आप भस्म हुए बिना हरगिज न बचते। आपके बाप-दादों के बड़े भाग्य थे जो सहीसलामत घर पहुँच गये।

घर पहुँचते ही प्रेमपूर्ण मुझसे सारी विपत्तियों का वयान करने लगे। इतने में डाकिया चिट्ठी लेकर आया। एक पत्र प्रेमपूर्ण का भी था। लिफाफे के हस्ताक्षरो पर नजर पड़ते ही उनके चेहरे पर दूनी रोशनी आ गयी। मैंने पूछा, क्यो भई, क्या है जो मन-ही-मन खुश हो रहे हो? वे वही रोमेस की हँसी हँसकर वोले, "उसी का पत्र है, क्या लिखा है, सुनो।"

हमारे प्यारे,

मेरे भाग्य ही खोटे थे जो रथयात्रा के दिन मैं आपसे नही मिल सकी। क्षमा कीजियेगा। आपकी सेवा मे मैंने जो पत्र भेजा था उसमे यह लिखना भूल गयी थी कि अमुक स्थान पर आपसे मैं मिलूंगी। यह मुझे तव मालूम हुआ जव मैंने आपके पत्र की दूसरी कापी देखी जो मेरे पास ही थी। अव आप मुझसे अलफ्रेड थिएटर मे, फर्स्ट क्लास मे, कल अवश्य मिलिए।

सोमवार, आषाढ़ सुदी तीज, 1979; आप ही की

29 डीयर लेन, कलकत्ता। "तरंग"

शाम हो गयी थी। प्रेमपूर्ण वातचीत करना भूल गये। मुझसे कहा, "अव देर न करनी चाहिए। आज 'पत्नी-प्रताप' का खेल होगा। वड़ी भीड़ होती है। जल्दी न जायँगे तो टिकट नही मिल सकता। आज भेंट अवश्य हो जायगी, क्यों न?"

इन इतने प्रश्नों का एक ही उत्तर था। सो मैंने 'न' मे 'हां' मिलाकर बेमेल का मेल पूरा कर दिया।

रात के दो वज चुके है। दर्वाजे की खड़खड़ाहट से मेरी नींद उचट गयी। जव किसी की सुख की नीद में वाधा पड़ती है तव विघ्नकारी चाहे परम मित्र ही हो, परन्तु इस हरकत से नवावी की याद आती और दुश्मन का सिर काट लेने को जी चाहता है। नामर्द जमाने से तंग आकर, किसी वेगुनाह को कोसते हुए, उठा और दर्वाजे के पास जाकर पुकारा, कौन है?

"अरे यार, मैं हूँ प्रेमपूर्ण।" आवाज वेजान थी। वस इतनी भूमिका से प्रेम-पूर्ण के वियोगान्त नाटक का वहुत कुछ पता मिल गया। आखिर दर्वाजा वन्द करके मैं उन्हें अपने कमरे में ले गया। फिर तो इस विशुद्ध प्रेम के कौतूहल के आगे 'नैनन को छोड़ नीद वैरन विदा भई'; और लगा मैं पूछने कि, आज अपनी 'तरंग' में कितने गोते लगाये?—वहे—डूवे या सदेह वच आये? प्रेमपूर्ण के सचिन्त मौन से यह सूचित हो रहा था कि उनकी 'तरंग' ही नही आयी। फिर कौन गोते लगाता? विरक्ति के भय से मुझे ज्यादा छेडछाड़ करने का साहस नही हुआ। न जाने वे अपनी उदास आशा को किन वाक्यो से और कव तक समझाते रहे।

सुवह होते ही प्रेमपूर्ण का एक पत्र और आया। पत्र किसने लिखा, इसकी विना ढूंढ़-तलाश किये ही मेरे मुँह से निकल गया, 'हो तो यार चुम्वक पत्थर, पर, लो खींच, या कि खिंच आओ, लो वुला या कि खुद जाओ।' मेरी कवित्व कला मे दूसरों के लिए भले ही सरसता की मात्रा न हो और वे आँखों से पढकर कानों से उसे वाहर निकाल दें, पर प्रेमपूर्ण तो उसे सुनते ही खिल उठे। मुझे रोमेस की नजर से देखते

हुए उन्होंने लिफाफे का वन्द खोला। रात-भर की परेशानी और सुवह की खुमारी एक ही सिकण्ड में गायव ! प्रेम का भी अजव हाल होता है ! पत्र पर प्रेमपूर्ण की प्रीति की जो दृष्टि पड़ी उसका वयान, मैं तो तुच्छ हूँ, मेरे विचार में, चतुरानन तो क्या—हजार मुँहवाले शेषजी भी, न कर सकेंगे। पत्र मे लिखा था—

प्रिय,

कल मेरे साथ मेरे वड़े भाई भी थिएटर देखने गये थे। लाचार होकर मुझे जनाना सीट में रहना पड़ा। यही कारण है कि आपसे मैं नही मिल सकी। क्षमा कीजियेगा। कल जगन्नाथघाट मे मिलिए। मैं गंगा नहाने जाऊँगी। वहाँ मुझे कौन रोक सकता है ? दर्शन अवश्य होगे। वही यह हृदयहार उपहारस्वरूप अर्पित होगा। श्री गंगाजी से बढ़कर साक्षी और कौन है ? इति शम्।

बुध, आषाढ़ सुदी 5, आपकी अनुराग-भरी
1979; "तरंग"
29, डीयर लेन, कलकत्ता।

वस फिर क्या था ! प्रेमपूर्ण के रोम-रोम से आनन्द छलक पड़ा। घाट की तैयारी होने लगी। आज उन्होंने मेरी कोई सलाह नही ली। चुपचाप उठकर चले गये।

लौटे तो चेहरे पर उदासी की काली घटा उमड़ रही थी। कुछ पूछने से पहले ही मालूम हो गया कि इस वार भी वार खाली गया। इस एक हफ्ते के अन्दर प्रेम-पूर्ण का प्रेमकलस वियोग की विकट ज्वाला से सूखकर ठनक रहा था। शरीर सूख-कर काँटा तो नही हुआ, पर आधा जरूर रह गया था। मौसिमे वरसात थी, वरना इस वियोगी की आह क्या न कर डालती, यह कोई महाकवि शंकरजी से पूछ ले।

डाकिया फिर चिट्ठी लेकर हाजिर हुआ। इस वार प्रेमपूर्ण का हौसला इतना पस्त हो गया था कि जान पड़ा मानो पत्र के लिए हाथ वढ़ाते हुए उन्हें शक्ति से वाहर काम लेना पड़ा। पत्र में लिखा था—

मूर्खचन्द,

जाह्नवीजी की असंख्य तरंगें देखने पर भी तुम्हें 'तरंग' की याद नहीं आयी तो न सही; पर क्या वहाँ तुम्हें चुल्लू-भर पानी भी नही मिला ?

आषाढ सुदी 6, वृहस्पति, 1979; मैं हूँ—
29, डीयर लेन, कलकत्ता। एक 'तरंग'

मैंने कहा, एक उपाय अब और करके देखो। 29, डीयर लेन, में कौन रहता है, इसका भी पता लेना चाहिए।

मेरी वात मानकर वेचारे प्रेमपूर्ण 29, डीयर लेन तक गये। वह प्रेमिका-गार के वदले छात्रागार निकला जिसमें उन्ही के सहपाठी छात्र रहते थे। सब-के-सब उन्हें देखते ही हँस पडे।

['मारवाड़ी-सुधार', मासिक, कलकत्ता, वैशाख, संवत् 1980 वि. (मई, 1929)। असंकलित]

क्या देखा

प्रेस की बगल मे थाना है जहाँ शान्ति के ठेकेदार रहते हैं। हिन्दू-मुसलमानों की एकता के दृश्य कोई आँखें खोलकर देखना चाहे तो जब चाहे, हमारे पच्छिमवाले झरोखे से झाँककर देख ले। यह अनन्य प्रेम हम सुवह-शाम हमेशा देखा करते हैं। तारीफ तो यह कि वह प्रेम केवल मनुष्यों में नही, वहाँ के पशु-पक्षियों मे भी है हिन्दुओ के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्गियाँ भी प्रेम करती हैं। उनका द्वेषभाव बिल्कुल दूर हो गया है। वही पीपल के पेड के नीचे एक छोटे-से चबूतरे पर भगवान भूतनाथजी स्थापित हैं। चार चावल चढ़ाकर चक्रवर्ती बनने के अभिलाषी शिवजी के अनन्य भक्त हिन्दुओं मे से हरएक चार-चार चवालिस तो जरूर चढ़ाता है, और श्रद्धेय शिवजी को अपने पंजों मे फाँसकर—जैसे नीचेवाले पर ऊपरवाला साथ हफ्ते के सवारी कसता है, मुर्गियाँ शिवजी पर चढ़ाये चावल चुगा करती है और मारे आनन्द के सिर उठाकर 'कुकड़ूँकूँ' की हर्षध्वनि से हिन्दुओ को चक्रवर्ती (चक्की मे पिसनेवाला) बना देने के लिए खुदा से दुआ माँगती हैं।

मुझे रात को नीद नही आयी। सुबह को बिस्तर पर से उठकर चारपाई की बगल मे मेज के सहारे बैठा हुआ आपबीती नयी घटना पर बड़े गौर से विचार कर रहा था। वह घटना बड़ी लम्बी-चौड़ी थी, और शृंगार से वीभत्स तक प्रायः सभी रस उसमे आ गये थे। सोचने लगा—

"उसका प्रेम सच्चा है या झूठा ? उसने कहीं प्रेम की नकल तो नहीं की ? परन्तु क्यो फिर उसने अपने पीछे मर मिटनेवाले—पसीने की जगह खून की नदियाँ बहानेवाले बड़े-बड़े करोड़पतियों को उस दिन टके-सा जवाब दे दिया ? वे बेचारे अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। अगर वह वेश्या है तो वह उसी की क्यों न हुई जिसके पास धन है ? परन्तु—यह किसी दुश्मन की कारस्तानी भी हो सकती है कि मुझे फँसाने के लिए उसने सधकर यह जाल रचा हो ? लेकिन उसकी भरी हुई आवाज मे बनावट नही थी—त्रियाचरित्र का स्वर नहीं बज रहा था। कुछ हो, मैंने जिस शान पर स्त्री का मुंह देखने से इन्कार कर दिया है, उसे अन्त तक जरूर निभाऊँगा। बुरा हो इस साहित्य-सौन्दर्य का जिसके फेर मे पड़कर कवि सुन्दर-लालजी के साथ मुझे वेश्यालय जाना पड़ा और सौन्दर्योपासना की प्रथम पूजा मैंने एक वेश्या के चरणो पर अर्पित की !"

इतने मे 'कुकड़ूँकूँ' के कर्कश नाद ने कान ऐंठ-से दिये। चौंक पड़ा, विचार का सिलसिला टूट गया।

दस बजते-बजते सुन्दरलालजी की भेजी हुई एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी उनका नौकर मेज पर रख गया था। मालूम हुआ कि चिट्ठी मेरी नही, उनकी है; कारण से मेरे पास भेजी गयी है। पत्र की इबारत इस तरह है—

13, न्यू स्ट्रीट, कलकत्ता
3.9.'23

प्रिय सुन्दरजी,

आज शाम को आप अपने मित्र को लेकर जरूर आइए; आपके मित्र वही जो उस दिन, बुध को, आये थे। जियादा और क्या लिखूं—

आपकी
हीरा

बस इतने ही से, पत्र के बाहरी समाचार के सिवा उसका अन्दरूनी मतलब समझ मे नहीं आया। सिर पर सन्देह का भूत सवार था ही, लगा विचार की सीधी-टेढ़ी गलियाँ झाँकने। मैंने लाख प्रयत्न किये, पर इस बागी से मेरी एक न चली; और चलती भी कैसे? सवार तो वही था न? मैं तो उस वक्त किराये का टट्टू ही बन रहा था। अगर सौन्दर्योपासना की शरण लेता और उस देवी की भेंट—घड़ी-भर का मुजरा सुनना कबूल करता तो पहरो की उधेड़-बुन मे पड़ा अब तक हैरान न होता; पर इज्जत का खयाल अंगद की तरह पैर जमाये रास्ता रोके हुए था। हठी मन बार-बार कह उठता था—'असम्भव क्यों है? सौन्दर्योपासना और ब्रह्मचर्य-पालन दोनों एक साथ क्यों नही निभ सकते?' विरोधाभास कहता था—'तो फिर चलो, सुनो मोजरा, डरते क्यों हो?—अनबूडे बूडे तिरे जे बूड़े सब अंग।' दुश्मनों की शिकायत का खयाल और महिलाओ की मर्यादा रखने की आदत पीछे हटाते थे तो साहित्य, संगीत, कला-कौशल, रूप-लावण्य, अंगों की चारुता और मनोभावों की विशदता, सौन्दर्य का सारा परिवार लालच मे फँसाकर लगाम ढीली कर देता था और बढ़ने का इशारा करता था। इस मौके पर रामायण की अच्छी-अच्छी जितनी चौपाइयाँ याद थीं, घोख डालीं, पर असर उनका कुछ न हुआ। संस्कार महाराज मन के चर्खे पर सूत-जैसा कात रहे थे, गुनगुनाहट की तरफ ध्यान नहीं दिया। अन्त को यही सूझा कि चलकर सुन्दरलालजी का सहारा माँगूं, हाथ लगा देंगे बेड़ा पार हो जायगा, नही तो डोंगी करवट है ही।

नंगे सिर क्वार की कड़ी धूप बरदाश्त करते हुए किसी तरह मैंने मील-भर रास्ता तै कर डाला। सुन्दरलालजी पुस्तकालय मे बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। मुझे देखते ही कलम रख दिया और मुस्कराते हुए कहा, "इतनी जल्दबाजी? अभी तो पूरे छ: घण्टे और इन्तजार करना है।"

"बात क्या है सुन्दरलालजी, मेरी कुछ समझ मे नहीं आता," मैं एक साँस मे कह गया, "इससे मेरी ऐसी कोई जान-पहचान नही, क्यो वह इतना मेरे पीछे पड़ रही है। मुझे बचाइए।"

"अजी, वह बाघ है जो खा जायगी? बुलाया है तो जरा देर मोजरा सुन लो। इससे चरित्र में धब्बा न लग जायगा। यहाँ सभी ऐसा करते हैं और साहित्य-सेवा के लिए यह आवश्यक विषय है।"

"नही, आप मुझे उसके पजे से बचाइए।"

"ढोंग न करो। न जाओ, बस। यों कालिदास से लेकर अब तक जितने अच्छे कवि हुए सबके लिए, कहते है, जब साहित्य की बीमारी बढ़ी दवा एक यही रही

जिससे कुछ मतलब पहुँचा। कल के छोकरे हो, साहित्य का परिणाम बाद को समझोगे।"

कुछ उत्तर देना घाव को ताजा करना था। मैं लौट गया।

ठीक समय पर सुन्दरलाल हीरा के मकान पहुँच गये। बैठक में कई कुर्सियाँ रखी थीं, एक पर बैठ गये। बाँदी हीरा को खबर देने के लिए लचकती हुई दूसरे कमरे में गयी। दीवार पर कई चित्र टँगे थे, प्रायः सभी हीरा के नाचते-गाते समय के। एक चित्र मर्दाने वेश का भी। सुन्दरलाल नजर गड़ाये हुए उसे देखते और अपने नोट-बुक में कुछ नोट करते रहे। जान पड़ा, कविता के लिए सामग्री संग्रह कर रहे हैं।

बाँदी से आवश्यक बातें पूछकर हीरा बाहर बैठक में आयी। सुन्दरलाल का आग्रह आँखों के रास्ते निकलकर हीरा के मुँह पर छा गया। लेकिन उसके वैमनस्य से टकराकर अलग हो गया। सुन्दरलाल के मन की कमनीय कल्पनाएँ अपनी-अपनी बारी से हीरा के स्वागत के लिए गयीं, परन्तु जेठ के आगे अचानक पड़ी हुई बहू की भाँति लाज घूँघट में मुँह मूँदकर चली आयीं। सुन्दरलाल पतिंगे की तरह उस आग में जलना चाहते थे, पर शीशा लगा था, घुस न सकते थे।

हीरा तीन मिनट तक चुपचाप खड़ी रही, जैसे उनके वार झेलने के लिए पहले से तैयार होकर गयी थी। समुद्र को इतना शान्त देखकर मल्लाह समझ गये कि जल्द तूफान उठनेवाला है। मेघों का गरजना बन्द हुआ, हवा धीमी पड़ी, सटे बादलों में पहले आसमान देखने का जरा-सा छेद नहीं रहा; लोग समझ गये, वर्षा जोरों की होगी।

"सुन्दरलालजी," इतना कहकर हीरा सँभल गयी। भीतर का भाव शब्दों से बाहर हुआ चाहता था। उसे भाव पर अधिकार रखने की आदत थी। कितने मुर्गों को नहाने के नाम से सोहनी सुनायी और इनाम लिया। सहज स्वर से पूछा, "आपके मित्र नहीं आये?" आग्रह प्रकट हुआ, न लापरवाही। उसने सुन्दरलाल को जाँच करने का मौका भी नहीं दिया, झट पानदान से पान निकालकर पहले की तरह बनावटी भाव दिखलाते हुए, उनकी तरफ हाथ बढ़ाया। पान लेकर सुन्दरलाल अपने श्रेष्ठताभिमान में फूलकर बोले, "कहते थे, 'हम बदनामी से डरते हैं।' हम ऐसे मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते,—मामूली पढ़ा आदमी!"

हीरा की दृष्टि का सुन्दरलाल के अंगों में कड़ा पहरा था, जैसे झूठ में सच की तलाश करना चाहती थी। उसने 'बदनामी' को ध्यान से सुना। फिर अनमनी हो गयी, थोड़ी देर के लिए।

सुन्दरलाल—"गाना कब से होगा? अभी तो साजिन्दे भी नहीं आये।"

हीरा—"शायद आज गाना न होगा। साजिन्दे पुखराज के घर गये हैं। मेरी तबियत अच्छी नहीं। आपके मित्र ऐसे हैं, मैं जानती तो हरगिज उन्हें न बुलाती। उस दिन कहीं से भटककर आ गये थे जान पड़ता है। कहाँ रहते हैं?"

सुन्दरलाल—"यहीं, कलकत्ते में।"

हीरा—"तो वहीं रहते होंगे जहाँ कूड़ा फेंका जाता है।" कहकर हीरा

मुस्करायी।

सुन्दरलाल—"नही, रहते तो बड़ी अच्छी जगह है, 3 ग्रे स्ट्रीट में। उनका स्वभाव ही ऐसा है।"

हीरा—"कह तो नही सकती, पर मेरी तवियत आज अच्छी नहीं; लेटी थी, आपके आने से उठकर चली आयी।"

सुन्दरलाल—"अच्छा-अच्छा, आप आराम कीजिए।"

सुन्दरलाल को विदा करने मे हीरा की तरफ से कोई त्रुटि नही हो पायी। जब तक वे आँख की ओट नही हो गये, हीरा खिड़की के पास खड़ी रही। उनके चले जाने पर, 3 ग्रे स्ट्रीट लिख दिया।

एक अरसा गुजरा। सुन्दरलाल के मित्र वीमार पड़े थे। दो दिन से अच्छे हैं। पलँग पर वैठे विचार मे गोते लगा रहे हैं—

'वीमारी के वक्त वुलाने पर भी सुन्दरलाल नही आये। नौकर जाता था तो वहाना वनाकर टाल देते थे। अगर नाराज हों तो वजह नही समझ मे आती। टेढ़े पड़ने का कोई और कारण हो तो अच्छा हो लूं, फिर पूछ लूंगा। अभिन्न-हृदय मित्र, दुःख के दिनों मे मुँह फेर लें, चिन्ता की वात है। परन्तु मेरी वीमारी के समय से रोज शाम को जो नौजवान सिक्ख अमरसिंह आता है, इरादे का पक्का और सच्चा मित्र जान पड़ता है। शाम को रोज डाक्टर वुला लाता था, नुस्खा लेकर वाजार से दवा ले आता था, ठीक समय पर पिलाने के लिए नौकर को कितना समझाता था और वातचीत से मेरा दिल वहलाये रहता था—कितनी खवरें सुनाता था। जान पडता है, संवाद-पत्र वहुत पढ़ता है। शाम हो गयी, आता होगा।'

मालिक की गम्भीर मुद्रा देखकर भजना को खवर देने की हिम्मत नही पड़ती थी। एक कदम वढ़ता था तो दस कदम वढ़ जाने के समय तक उसी जगह खड़ा मालिक का मुँह ताकता रहता था। दिल मजवूत करके कुछ वढ़ता था तो फिर ठिठककर ठहर जाता था। वाहर अमरसिंह आज्ञा की इतनी प्रतीक्षा नही कर सके। वारीक आवाज से जवाँमर्दी का नारा वुलन्द करते हुए वोले, "क्यों भजना, वावूजी सोते हैं क्या? सोते हों तो खींच लें पकड़कर चद्दर। अभी आज पथ्य दिया गया और ज़रा देर नही वैठे कि हाजमा न विगड़े, लेट गये।"

इस आवाज ने चिन्ता के द्वार की जंजीर इस जोर से खटखटायी कि चिन्ता देवी को कान के सूराख से वाहर निकलना पड़ा। चौककर मालिक ने भजना की गजेन्द्रगति देखी, विना पूछे नही रहा गया—"क्यों रे, पैर रखता है या जमीन नापता है, यह अगवानी की चाल कव से सीखी?" भजना के मन मे आया कहे—'जव से आपको खयाली पुलाव पकाने का शौक हुआ,' लेकिन सभ्य समाज के शिष्टाचार-पालन का उसे कुछ अभ्यास पड़ गया था, इसलिए उजड्ड आजादी के अल्फाज थूक के घूंट के साथ उसे गले के नीचे उतारने पड़े।

उसने कहा, "अमरसिंहजी देर से खड़े हैं।"

"देर से? उन्हे अव रोकना नही।"

अमरसिंह सिक्ख तो है, पर कद के उतने लम्बे नही। इन्हें हिन्दुस्तान के दूसरे लोग तो नही, पर सिक्ख जरूर बौना कहेंगे। इनके कद की लम्बाई बालों ने ले ली है। अगर सिक्ख इनसे बालिस्त-भर ऊँचे निकलेंगे, तो इनके बाल अपनी बिरादरी मे सानी नहीं रखते, कम-से-कम पूरे दो हाथ ज्यादा निकलेंगे। बहादुर नौजवान के बालों के बोझ से तकलीफ मिलती है या नही, इसकी मैंने तहकीकात नहीं की पर यह जरूर है कि बालों पर डटे रेशमी साफे के नीचे चाँद का टुकड़ा गोरा-गोरा मुखड़ा दबता नजर आता है। साफा क्या, पूरा थान लपेट लिया है। आते ही उन्होने पूछा, "क्यों साहब, आप कैसे हैं ?"

"अच्छा हूँ; आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं ? ऐसा शब्द नहीं मिलता जिससे कृतज्ञता प्रकट करूँ; आपने मुझे सदा के लिए मोल ले लिया।"

"रखिए तहकर। चार दिन मे भूल जाइयेगा। फिर ऐसे मुँह फेर लीजियेगा जैसे कभी की पहचान न रही हो। सच कहता हूँ, अपनी इतनी उम्र मे दुनिया के बहुत रंग देख चुका। आप परमात्मा के कृतज्ञ हूजिए जिनकी कृपा से खड़े हुए।"

"परमात्मा के कृतज्ञ सभी हैं—भलाई में भी और बुराई मे भी। सच पूछिए तो परमात्मा की दोहाई देना एक चाल हो गयी है, जैसे तकियाकलाम होता है। परमात्मा को किसी ने देखा नही, सिर्फ सुना है; सुनते-सुनते लोग संस्कार की रस्सी मे बँध गये हैं और बात-बात में परमात्मा की रट बाँधते हैं। मैं इसे ऐब समझता हूँ। यों, निर्विकार ईश्वर मानना पड़ता है, पर उसे किसी की बधाई की क्या अपेक्षा और गलतियों की क्या परवा ? जहाँ भले-बुरे का प्रसंग है वहाँ परमात्मा को घसीटना अन्याय है; भले और बुरे मे किसी का हाथ है तो मनुष्य का, निन्दा और प्रशंसा का पात्र मनुष्य ही बनाया जा सकता है।"

"आप बड़े विद्वान जान पड़ते हैं। परमात्मा की बातचीत में दखल देना मेरे लिए मूर्खता का परदा-फाश करना है; पर इसमे सन्देह नही कि आदमी आज जो कुछ कहता है, कल उससे बदल जाता है। क्या इस विषय को लेकर आपके दर्शनकारो ने बाल की खाल नही निकाली ? लेकिन रहने दीजिए, आप बोलने लगते हैं तो घण्टों दम नही लेते। अभी आप कमजोर हैं, दिमाग मे गर्मी छा जायगी। हाँ, उस दिन आपने क्या नाम बतलाया था ?—भूल गया।"

"एक नाम भी आप बार-बार भूल जाते है।"

"नाम है या संस्कृत शब्दो की पँचलडी ! इसलिए मैं अपने दिये नाम से आपको पुकारा करता हूँ !"

"आपका पँचलड़ी शब्द भी अच्छा रहा ! ज़रा कुछ जनानापन आ गया है !"

"आप मे मर्दानापन भी है ? जनानापन की गवाही तो आपकी शक्ल देती है। आपके नाम मे जितना मर्दानापन है या कहिए जैसा भारी-भरकम नाम है, वैसा ही जनानापन आपके चेहरे मे लोगो को मिलता है।"

"आप नही समझे, इसे लावण्य कहते हैं।"

"लेकिन इसकी जरूरत तो स्त्रियो को होती है, मर्दो को तो जवाँमर्दी चाहिए।"

"जवाँमर्दी से आपका मतलब कसाइयो की-सी सूरत बना लेने से तो नही ?

अगर ऐसा है तो आप मतलव नहीं समझे। जिसके मन में जैसी भावनाएँ होती हैं, उसका रूप वैसा ही वन जाता है। अगर मेरे चेहरे पर कठोरता के चिह्न नहीं नजर आते तो समझना चाहिए, मैं मनुष्यता के बाधक विचार नही किया करता, वल्कि ऐसे विचार किया करता हूँ जिसका प्रकाश मेरे चेहरे पर रहता है।"

"अच्छा, अपना नाम वताने के साथ यह भी वताने की कृपा कीजिए कि वे कैसी कमनीय कल्पनाएँ हैं जिनकी उधेड़-वुन में आपने अपनी जनानी सूरत वना डाली।"

"मेरे पिता संस्कृत के भारी पण्डित थे। उन्होने मेरा नाम जानकीवल्लभ-शरण-विहारी रक्खा। पर लोग मुझे विहारी ही कहते है।"

"आप हैं भी विहारी।"

"हाँ, मुझे विहारी होने का गर्व है जैसे वंगालियों को वंगाली होने का, मद्रासियों को मद्रासी होने का,—"

"अर्थात् विशेषता कुछ नहीं रही, जैसे किसी को कुछ होने का।"

"खैर, मैं देखता हूँ, हर मनुष्य में वल्कि हर जीव मे प्रेम की धारा वहती है।"

"सो तो वहती हैं। आप देखते है, इतनी ज्यादती है या कहना चाहिए, आप विहारी है इसलिए खासतौर से देखते हैं।"

"गम्भीर विषय में मजाक अच्छा नही। मैं उसी धारा मे, उसी आनन्द मे डूवा रहता हूँ।"

"मुझे विश्वास नही। मुझे जान पड़ता है, आप झूठ कह रहे हैं। आप उस सिद्धान्त की वात करते हैं जिसका प्रमाण आप नही दे सके।"

"क्यों, प्रमाण पर ही तो वहस छिड़ी; प्रमाण मुँह है।"

अमरसिंह ने मुस्कराकर आँखें फेर लीं। कहा, "इसका प्रमाण अपना मुँह नही हो सकता, दूसरे का हो सकता है।"

दोनों की मुस्कराती हुई आँखें एक हो गयी।

अमरसिंह ने कहा, "मैं आपको प्यारेलाल कहा करूँगा। विहारी कहूँगा तो दूसरे फवतियाँ कसेंगे।"

उसी समय मेज पर निगाह गयी। एक नयी पत्रिका दिखी। उठा ली। माधुरी थी। अमरसिंह पन्ने उलटने लगे।

प्यारेलाल ने पूछा, "माधुरी आपके यहाँ नही आती?"

"आती है।"

"फिर क्यों पन्ने उलट रहे हैं?"

"एक कविता निकली है, आपको दिखाने के लिए।"

"कौन-सी।"

"यह, यही तो एक कविता इस वार छपी है।"

"हाँ, वड़ी अच्छी है। मैं पढ़ चुका हूँ।" प्यारेलाल ने अमरसिंह की खोली कविता पर निगाह डालते हुए कहा।

"कविता वियोग-शृंगार पद है।" अमरसिंह ने सीधे तौर से कहा।

"नही, मेरा ख़याल है, कवयित्री के हृदय के भाव है, तभी इतनी चोट करते हैं।"

"मेरी तो ऐसे रोने-धोने से सहानुभूति नहीं होती।"

"पर चीज बहुत बढिया बन पडी है। भाव बहुत सही उतरा है। शब्द की कहीं कोई फाँस नही। मैं एक आलोचना की दृष्टि से कहता हूँ।"

"इस मामले मे मेरे आलोचक की दृष्टि आप नही समझते।"

"आपको व्यंग्य पसन्द है?"

"पसन्द मुझे अस्ल मे सबकुछ है या कुछ नही। व्यंग्य पकड़ मे आता भी है?"

"क्यो नही?"

"मैं तो देखता हूँ, नही आता।"

"यानी मैं व्यग्य नही समझता?"

"यानी मुझे साफ-साफ कहना चाहिए कि आप सर्वज्ञ है।"

"नही सर्वज्ञता की बात नही, पर भले-बुरे की पहचान हो जाती है। यह रचना प्रथम श्रेणी की है।"

"अच्छा, पत्रिका मुझे दीजिए, मैं अपने एक प्रोफेसर से पूछूंगा।"

"अभी तो आपने कहा था कि आपके पास पत्रिका आती है!"

"पर मैं साथ तो नही ले आया? यहाँ से चलते समय प्रोफेसर साहब से मिलता जाऊँगा।"

"अर्थात् मेरी बात पर आपको विश्वास नही? आप क्या मालूम करना चाहते है—छन्द, रस, अलकार, ध्वनि?"

"यानी आप खुद सबकुछ बतलायेंगे, पर पत्रिका नहीं देंगे।"

"अभी मैंने पूरी पढी नही।"

"अच्छा, इसकी लेखिका हीरा कौन है?"

प्यारेलाल कसमसाये। अमरसिंह निगाह गडाये देखते रहे। कुछ देर बाद कहा, "अच्छा, पढ लीजिए, फिर ले जाऊँगा।"

प्यारेलाल अनमने थे। अमरसिंह विदा हुए।

कई दिनो से प्यारेलाल अच्छे है। शाम को अमरसिंह आते हैं, गपशप करते है, चले जाते हैं। प्यारेलाल अमरसिंह की सेवा की जितनी तारीफ करते थे, आजकल उनकी भोली सूरत पर उतने ही ललच पडे हैं। अमरसिंह का चेहरा उनके दिल की तस्वीर से मिलता-जुलता है। पहले वे अमरसिंह की सेवा को जिस पवित्रता से देखते थे, अब चेहरे को उसी पवित्रता के विचार से देखते रहते हैं। उन्हें बड़ी तृप्ति मिलती है, एक प्रकार की शक्ति भी ऊपर को उठती हुई उन्हें ऊँचा उठा देती है। उन्हे यह मालूम नही हुआ कि इस तरह पवित्रता-दर्शन से कामना के चेहरे पर पड़ा नकाब उठता गया। वह कामना भयंकर न होकर भी भयंकर थी। उससे खतरे मे पड़ने की सम्भावना थी। वह जान-बूझकर आसक्ति से मित्रता थी। उससे ब्रह्मचर्य की जड़ भी कटती थी। पर प्यारेलाल यह नही समझ सके। वे रूप की लालसा, सौन्दर्य के मोह को साहित्य समझे, जिससे एक दुर्बल हृदय बाहर

खिंचा आ रहा था, आँखों की राह से निकलकर एक अतृप्त अभिलाषा वाहर की वस्तु पर सिर पटक रही थी। जब दृष्टि सुन्दर से लिपटती है, तब कुत्सित से हट जाती है उसे अवज्ञा का धक्का मारती हुई। यही भ्रम है। प्यारेलाल यह नही समझे। वे अमरसिंह को जितनी देर के लिए पाते थे; उतनी देर तक चाह-भरी दृष्टि से उन्हे देखते रहते थे; कभी आँखो की, कभी होंठों की, कभी हृदय में अमृत घोल देनेवाली बातचीत की, और कभी प्रकृति के कोमल हाथों से सजाये उनके हर अंग से निकलते लावण्य की मन-ही-मन प्रशंसा करते थे।

कल शाम को अमरसिंह नही गये। न जाने का कोई कारण नही था। मित्रता गहरी थी। प्यारेलाल बैठे इन्तजार करते सोचते रहे, कही अटक गये होगे, आते होगे। पर दस वजे रात तक अमरसिंह नहीं गये। हताश होकर भोजन-पान करके प्यारेलाल लेटे। देर तक नीद नही आयी।

सुवह को अखवारवाला दैनिक स्वतन्त्र दे गया। शुरूवाले पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरो मे लिखा था—

"ईडन गार्डन में हत्याकाण्ड"

"एक साथ दो खून।"

"मिस्टर हाग के कलेजे में छुरी भोंकी गयी और हीरा के सिर मे गोली लगी।"

हीरा नाम पढ़ते ही प्यारेलाल चौक पड़े। बड़ी उत्सुकता मजमून पढ़ने की हुई। पढ़ने लगे। मजमून थोड़ा था। लिखा था, "मिस्टर हाग व्रौन एण्ड कम्पनी के मैनेजर थे और हीरा 13, न्यू स्ट्रीट कलकत्ता, की प्रसिद्ध बाई। अब तक इतना ही पता चला है। खून क्यों हुआ, पुलिस इसकी तहकीकात कर रही है। स्त्री-पुरुष के खून में दोनो के चरित्र का अनुमान किया जाता है। अनुमान से बलात्कार की गवाही मिलती है, क्योंकि हीरा के हाथ मे छुरी थी। विपत्ति में पड़कर, जान पड़ता है उसने छुरी चलायी। घायल होने पर, मरने से पहले, साहव ने फायर किया। तमंचा सात गोलियों का है। एक गोली छूटी, छः भरी हुई मिलीं।"

पढ़ने के साथ प्यारेलाल के सिर से पैर तक नस-नस मे बिजली दौड़ने लगी। सँभलने की लाख कोशिशें की, पर एक न चली। समाचार की नीव पर मनगढ़न्त की तरह-तरह की दीवारें उठाते-ढहाते रहे। मुख पर भिन्न-भिन्न भाव की रेखा खिंचती रही परकोई निश्चय नही होता था। उनके अपने एक भाव मे मन बालक की तरह मचल रहा था। अन्तस्तल की व्यक्त और अव्यक्त, सुप्त और जाग्रत सभी प्रकार की वृत्तियाँ हीरा की मृत्यु का विरोध कर रही थीं। उभड़ते उच्छ्-वास में कोई उत्तर नही मिल रहा था। साहव के अत्याचार पर प्यारेलाल को विश्वास हो गया। उन्होने निश्चय किया, हीरा निर्दोष थी। रह-रहकर हीरा के आचरण से उन्हें गौरव का अनुभव होता था।

इसी समय नौकर एक खत लेकर आया। प्यारेलाल पढ़ने लगे, लिखा था—

"पत्र पाते ही मिलो। कैसा ही काम हो, छोड़कर पत्रवाहक के साथ चले आओ। अधिक और क्या ?—

तुम्हारा
अमरसिंह"

घोर घटाओं से घिरी अँधेरी रात में राह चलने के लिए चिट्ठी बिजली का काम कर गयी। लेकिन उसका कौंधना बन्द होते ही पहले से चौगुना अँधेरा आँखों के आगे छा गया।

प्यारेलाल जिस सादे पहनावे से मकान मे थे उसी से चल पड़े। आगे-आगे पत्रवाहक, पीछे-पीछे प्यारेलाल। सड़कें और गलियाँ पार करते हुए न्यू स्ट्रीट पर पहुँचे! मोड पर न्यू स्ट्रीट पढकर प्यारेलाल एक दफा सन्नाटे में आ गये। फिर सँभलकर आगे बढ़े। फिर पत्रवाहक को हीरा के मकान के अन्दर जाते देखकर प्यारेलाल बडे तआज्जुब मे आये। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यन्त्र की तरह पैर रखते गये। एक दासी ऊपर से नीचे उतरी और प्यारेलाल को साथ ले गयी।

चारो ओर सन्नाटा है। कमरे मे उदासी की स्याही-सी फिरी हुई है। कुल खिडकियाँ बन्द है। सारी सजावट पर काली चादर का एक गिलाफ-सा पड़ा हुआ है। कौच पर एक युवक बैठा कुछ सोच रहा है।

प्यारेलाल कमरे मे गये। सन्नाटे मे प्यारेलाल की पिण्डलियो मे कँपकँपी छुट गयी। देह मे ऐसी जडता समायी कि चेहरा उतर गया। प्यारेलाल को युवक ने एक दूसरे कौच पर बैठाया, फिर खुद भी बैठ गया।

प्यारेलाल—"अमरसिंह ?"

अमरसिंह— "हाँ।"

रोते हुए अमरसिंह का गला बैठ गया था। आवाज भारी थी। इसी से शोक की सूचना मिलती थी। उनके दुःख मे प्यारेलाल के हृदय में सहानुभूति नही आयी। उन्हें सन्देह हुआ। हीरा की याद आयी। कुछ देर सोचते रहे। साँस छोड़ते समय उनके विचार की समाप्ति हो गयी, या लड़ी टूट गयी, हम नही कह सकते।

प्यारेलाल ने पूछा, "क्यो अमरसिंह, आज अखबार मे पढा, हीरा का खून कैसे हुआ ? और तुम भी यहाँ कैसे आये ? क्या हीरा से पहले की कोई जान-पहचान थी ?"

प्रश्नों में भाव-परीक्षा की तीव्र गति थी, पागल की नसों मे बहती रक्तधारा की तरह प्रबल। तट पर सिर पटकती तरंगो की तरह, श्रोता के मन में सन्देह के धक्के लगते थे। अमरसिंह को समझते देर नही लगी। वे बोले, "प्यारेलाल! (शोक की स्याही पर थोड़ी देर के लिए आँखों के एक कोने से दूसरे तक लज्जा की लाल रेखा खिच गयी)—ऐसे प्रश्न से तुम्हारा मतलब ?"

प्यारेलाल (सन्देह की दृष्टि से देखते हुए)—"मतलब कुछ नही, यों ही पूछा। क्या तुम्हें बताने मे एतराज है ?"

अमरसिंह—"अब जब वह है ही नही तब अकारण क्यों उसका प्रसंग उठाते हो ?"

प्यारेलाल कुछ उत्तेजित हो गये। कहा, "कैसी मित्रता कि मैं तुमसे एक बात पूछूँ और तुम टालते जाओ।"

अमरसिंह—"अच्छे समय मित्रता की आड़ लेते हो। तुम्हारी मेरी मित्रता से हीरा से सम्बन्ध ? तुम्हारी मित्रता मुझसे है या हीरा से थी ?"

प्यारेलाल से कोई जवाब न दे आया।

अमरसिंह—"मैंने सिर्फ एक दृश्य दिखाने के लिए तुम्हें बुलाया था।"

प्यारेलाल—"तुम तो ऐसे बदले—"

अमरसिंह—"मै ज़माने से अलग नही। ज़माना बदलता जाता है।"

प्यारेलाल—"अमरसिंह, तो क्या इस तरह मेरा अपमान करने के लिए मुझे बुलवाया था ?"

अमरसिंह—"मेरी समझ मे नही आता कि तुम्हारा अपमान कौन-सा हो गया।"

कहकर अमरसिंह मुस्कराये। प्यारेलाल के सिर से पैरों तक आग लग गयी। झुँझलाकर बोले, "किसका कहना आँख के सामने आया—विश्वस्तं नाति विश्वसेत्।"

अमरसिंह—"यह सहजोक्ति तुम मुझ पर क्यो लाद रहे हो ? अच्छी तरह देखोगे तो अपने को इसका प्रमाण पाओगे।"

अमरसिंह मुस्कराये। मारे क्रोध के प्यारेलाल का चेहरा फिर लाल पड़ गया। गुस्से मे आकर उठ पडे और कहा, "अब मैं जाता हूँ। एक की जान गयी, और तुम्हें शर्म तो है नही, उसके घर पर बैठकर हँसी उड़ाते हो। तुम्हारी मित्रता का मुझे अब पता चला।"

अमरसिंह—"मै तुम्हें धन्यवाद देता हूँ कि तुम बात के एक ही धनी निकले। क्यों साहब उस दिन मैंने कहा था कि ये बातें भूल जायँगी। मतलब निकलने के बाद लोग मुँह फेर लेते हैं।"

प्यारेलाल लज्जित हो गये। अमरसिंह ने हाथ पकड़कर उन्हें फिर बैठाला। आग्रह की कोमल दृष्टि मुख पर फेर दी। कुछ देर कमरे मे सन्नाटा रहा। प्यारेलाल के हृदय मे अमरसिंह और हीरा के नाम उठ-उठकर फिर खलबली मचाने लगे। एकाएक उत्तेजना बढ़ गयी। प्यारेलाल ने अमरसिंह की कलाई पकड़ ली, परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर छोड़ दी। आज ही प्यारेलाल को आग्रह की आन्तरिक पीड़ा का अनुभव हुआ था। पूछा, "अमरसिंह, तुम यहाँ कैसे आये ? हीरा से क्या कोई पहले की जान-पहचान थी ?"

अमरसिंह—"हाँ, थी।"

किसी ने प्यारेलाल का कलेजा पकड़कर मसल दिया।

प्यारेलाल—"कैसे हुई ?"

अमरसिंह—"उस समय वह कानपुर मे रहती थी।"

प्यारेलाल—"कानपुर मे कहाँ ?"

अमरसिंह—"मूलगंज में।"

प्यारेलाल—"क्या करती थी ?"

प्यारेलाल की हालत ऐसी हो गयी जैसे कोई भूली बात याद कर रहे हों।

अमरसिंह—"करती क्या थी, पढ़ती-लिखती थी। इसकी एक छोटी बहन थी शान्ता। पिता मालदार थे। कलकत्ते में भी कारोबार था। कुछ दिनों बाद पिता का देहान्त हो गया। माँ लड़कियो को कलकत्ते ले आयी। दोनो को गाना-

वजाना भी सिखाने लगी। रूप और सम्पत्ति दोनो के लोभ में लोग इन्हें वरवाद करने की सोचने लगे। ये वडे लोग ही थे, समाज मे जिनकी इज्जत है। छोटे लोग इनके आज्ञाकारी थे। यहाँ का इतिहास सक्षेप में समाप्त करता हूँ। इनकी माँ की भी अकाल मृत्यु हुई। सम्पत्ति नष्ट हो गयी। हीरा के लिए धनिको के जाल विछने लगे। मुसीवत-पर-मुसीवत का सामना उसे करना पड़ा। उसने अपनी इज्जत वचायी। पर रोटियो के सवाल से वचाव नही हुआ। उसने परवा नही की। गाना-वजाना जानती थी। नेक लड़की की तरह गाना गाकर रोटियाँ कमाने लगी। उसके वूढे उस्ताद उसके चरित्र के गवाह हैं और उसे मुसीवत से दिनों मे राह दिखाते और वचाते भी रहे हैं। शान्ता की पढाई जारी रही। वह वेथून कालेज की छात्रा थी।"

अमरसिह का गला भर आया। आँखो से आँसू टपकने लगे। प्यारेलाल कुछ समझ नही सके कि शान्ता के प्रसंग से अमरसिह रोने क्यों लगे। पूछा, "छात्रा थी तो क्या अव पढना छोड़ दिया है? वहन की इस घटना में उसे वड़ी चोट पहुँची होगी। क्या उसे मैं देख सकता हूँ?"

"नही।" आँसू पोछते हुए अमरसिह ने कहा, "आपको कुछ देर वाद सही हाल मालूम हो जायँगे। मैंने एक पत्र आपके लिए लिख रक्खा है। अपने डेरे चलकर पढ़ियेगा और मेरी आज की अस्वाभाविकता के लिए क्षमा कीजियेगा।"

यह कहकर अमरसिह ने एक पत्र प्यारेलाल को दिया। पत्र पढने की उत्सुकता से प्यारेलाल जल्द-जल्द विदा हुए। अपने डेरे पहुँचने ने पहले ही खोलकर पढ़ने लगे। लिखा था—

"प्यारेलाल,

मैं अपने को कृतार्थ समझती हूँ कि तुम मुझे चाहते हो। यहाँ तुम जिस अमरसिह से मिले वह मैं हूँ। वहाँ तुमसे जो अमरसिह मिलते थे वह शान्ता थी। दम निकलते समय शान्ता ने घर के पते के साथ मेरा नाम कहा था। मतलव वह मेरे मकान मे रहती है। आगे अपना नाम और वाकी वातें कह नही सकी। वोल वन्द हो गया। संवाद-पत्र की खवर के वाद मुझे देखकर तुम चौंकोगे, सन्देह करोगे, इसलिए दुःख से मुझे अमरसिह के कपड़े पहनने पड़े। कल संवाद-पत्र में सही खवर छप जायगी।

तुम्हारी हीरा"

['मतवाला', साप्ताहिक, कलकत्ता, के 20 अक्तूवर, 27 अक्तूवर, 1 दिसम्वर, 8 दिसम्वर और 15 दिसम्वर, 1923 के अंको मे पाँच किस्तो में प्रकाशित। सुकुल की वीवी मे संकलित]

पद्मा और लिली

पद्मा के चन्द्र-मुख पर षोडश कला की शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली-सी प्रणय के वासन्ती मलयस्पर्श से हिल उठती, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।

पद्मा की प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर उसके पिता ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट पण्डित रामेश्वरजी शुक्ल उसके उज्ज्वल भविष्य पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ किया करते हैं। योग्य वर के अभाव से उसका विवाह अब तक रोक रखा है। मैट्रिक परीक्षा मे पद्मा का सूबे में पहला स्थान आया था। उसे वृत्ति मिली थी। पत्नी को, योग्य वर न मिलने के कारण विवाह रुका हुआ है, शुक्लजी समझा देते है। साल-भर से कन्या को देखकर माता भविष्य-शंका से काँप उठती है।

पद्मा काशी-विश्वविद्यालय के कला-विभाग मे दूसरे साल की छात्रा है। गर्मियों की छुट्टी है, इलाहाबाद घर आयी हुई है। अबके पद्मा का उभार, उसका रूप-रंग, उसकी चितवन-चलन-कौशल-वार्तालाप पहले से सभी बदल गये है। उसके हृदय में अपनी कल्पना से कोमल सौन्दर्य की भावना, मस्तिष्क में लोकाचार से स्वतन्त्र अपने उच्छृंखल आनुकूल्य के विचार पैदा हो गये है। उसे निस्संकोच चलती-फिरती, उठती-बैठती, हँसती-बोलती देखकर माता हृदय के बोलवाले तार से कुछ और ढीली तथा बेसुरी पड़ गयी है।

एक दिन सन्ध्या के डूबते सूर्य के सुनहले प्रकाश में, निरभ्र नील आकाश के नीचे, छत पर, दो कुर्सियाँ डलवा माता और कन्या गंगा का रजत-सौन्दर्य एकटक देख रही थीं। माता पद्मा की पढ़ाई, कॉलेज की छात्राओं की संख्या, बालिकाओ के होस्टल का प्रबन्ध आदि बातें पूछती है, पद्मा कहती है, हाथ में हाल की निकली स्ट्रैंड मैगजीन की एक प्रति। तस्वीरें देखती जाती है। हवा का एक हलका झोंका आया, खुले रेशमी बाल, सिर से साड़ी को उड़ाकर, गुदगुदाकर, चला गया।

"सिर ढक लिया करो, तुम बेहया हुई जाती हो।" माता ने रुखाई से कहा।

पद्मा ने सिर पर साड़ी की जरीदार किनारी चढ़ा ली, आँखें नीची कर किताब के पन्ने उलटने लगी।

"पद्मा!" गम्भीर होकर माता ने कहा।

"जी!" चलते हुए उपन्यास की एक तस्वीर देखती हुई नम्रता से बोली।

मन से अपराध की छाप मिट गयी, माता की वात्सल्य-सरिता मे कुछ देर के लिए बाढ़-सी आ गयी, उठते उच्छ्वास से बोली, "कानपुर मे एक नामी वकील महेशप्रसाद त्रिपाठी हैं।"

"हूँ"···एक दूसरी तस्वीर देखती हुई।

"उनका लड़का आगरा-युनिवर्सिटी से एम. ए. मे इस साल फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया है।"

"हूँ," पद्मा ने सिर उठाया। आँखें प्रतिभा से चमक उठीं।

"तेरे पिताजी को मैंने भेजा था, वह परसों देखकर लौटे हैं। कहते थे, लड़का

हीरे का टुकड़ा, गुलाब का फूल है। बातचीत दस हजार में पक्की हो गयी है।"

"हूँ," मोटरकी आवाज पा पद्मा उठकर छत के नीचे देखने लगी। हर्ष से हृदय मे तरंगें उठने लगी। मुस्किराहट दबाकर आप ही मे हँसती हुई चुपचाप बैठ गयी।

माता ने सोचा, लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह के प्रसंग से प्रसन्न हुई है। खुलकर कहा, "मैं बहुत पहले से तेरे पिताजी से कह रही थी, वह तेरी पढ़ाई के विचार में पड़े थे।"

नौकर ने आकर कहा, "राजेन बाबू मिलने आये हैं।"

पद्मा की माता ने एक कुर्सी डाल देने के लिए कहा। कुर्सी डालकर नौकर राजेन बाबू को बुलाने नीचे उतर गया। तब तक दूसरा नौकर रामेश्वरजी का भेजा हुआ पद्मा की माता के पास आया। कहा, "जरूरी काम से कुछ देर के लिए पण्डितजी जल्द बुलाते है।"

जीने से पद्मा की माता उतर रही थी, रास्ते में राजेन्द्र से भेंट हुई। राजेन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पद्मा की माता ने कन्धे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा, "चलो, पद्मा छत पर है, बैठो, मैं अभी आती हूँ।"

राजेन्द्र जज का लड़का है, पद्मा से तीन साल बड़ा, पढ़ाई मे भी।

पद्मा अपराजिता बड़ी-बड़ी आँखों की उत्सुकता से प्रतीक्षा में थी, जब से छत से उसने देखा था।

"आइए, राजेन बाबू कुशल तो है?" पद्मा ने राजेन्द्र का उठकर स्वागत किया। एक कुर्सी की तरफ बैठने के लिए हाथ से इंगित कर खड़ी रही। राजेन्द्र बैठ गया, पद्मा भी बैठ गयी।

"राजेन, तुम उदास हो!"

"तुम्हारा विवाह हो रहा है?" राजेन्द्र ने पूछा।

पद्मा उठकर खड़ी हो गयी। बढ़कर राजेन्द्र का हाथ पकड़कर बोली, "राजेन, तुम्हें मुझ पर विश्वास नही? जो प्रतिज्ञा मैंने की है, हिमालय की तरह उस पर अटल रहूँगी।"

पद्मा अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। मैगजीन खोल उसी तरह पन्नों में नजर गड़ा दी। जीने से आहट मालूम दी।

माता निगरानी की निगाह से देखती हुई आ रही थी। प्रकृति स्तब्ध थी। मन में वैसी ही अन्वेषक चपलता।

"क्यो बेटा, तुम इस साल बी. ए. हो गये?" हँसकर पूछा।

"जी हाँ।" सिर झुकाये हुए राजेन्द्र ने उत्तर दिया।

"तुम्हारा विवाह कब तक करेंगे तुम्हारे पिताजी, जानते हो?"

"जी नही।"

"तुम्हारा विचार क्या है?"

"आप लोगों से आज्ञा लेकर विदा होने के लिए आया हूँ, विलायत भेज रहे हैं पिताजी।" नम्रता से राजेन्द्र ने कहा।

"क्या बैरिस्टर होने की इच्छा है?" पद्मा की माता ने पूछा।

"जी हाँ।"

"तुम साहब बनकर विलायत से आना और साथ एक मेम भी लाना, मैं उसकी शुद्धि कर लूंगी।" पद्मा हँसकर बोली।

आँखें नीची किये राजेन्द्र भी मुस्किराने लगा।

नौकर ने एक तश्तरी पर दो प्यालो मे चाय दी—दो रक़ाबियों पर कुछ विस्कुट और केक। दूसरा एक मेज उठा लाया। राजेन्द्र और पद्मा की कुर्सी के बीच रख दी, एक धुली तौलिया ऊपर से विछा दी। सासर पर प्याले तथा रकाबियों पर विस्कुट और केक रखकर नौकर पानी लेने गया, दूसरा आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

"मैं निश्चय कर चुका हूँ, जवान भी दे चुका हूँ। अवके तुम्हारी शादी कर दूंगा।" पण्डित रामेश्वरजी ने कन्या से कहा।

"लेकिन मैंने भी निश्चय कर लिया है, डिग्री प्राप्त करने से पहले विवाह न करूँगी।" सिर झुकाकर पद्मा ने जवाव दिया।

"मैं मैजिस्ट्रेट हूँ वेटी, अव तक अक्ल की ही पहचान करता रहा हूँ, शायद इससे ज्यादा सुनने की तुम्हें इच्छा न होगी।" गर्व से रामेश्वरजी टहलने लगे।

पद्मा के हृदय के खिले गुलाव की कुल पंखड़ियाँ हवा के एक पुरजोर झोंके से काँप उठी। मुक्ताओ-सी चमकती हुई दो बूंदें पलकों के पत्रों से झड़ पड़ी। यही उसका उत्तर था।

"राजेन जव आया, तुम्हारी माता को वुलाकर मैंने ज़ीने पर नौकर भेज दिया था, एकान्त में तुम्हारी वातें सुनने के लिए।···तुम हिमालय की तरह अटल हो, मैं भी वर्तमान की तरह सत्य और दृढ।" रामेश्वरजी ने कहा, "तुम्हें इसलिए मैंने नही पढ़ाया कि तुम कुल-कलंक वनो।"

"आप यह सब क्या कह रहे हैं?"

"चुप रहो। तुम्हें नहीं मालूम? तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय-घराने का लडका है—ऐसा विवाह नही हो सकता।" रामेश्वरजी की साँस तेज चलने लगी, आँखें भौंहो से मिल गयी।

"आप नहीं समझे मेरे कहने का मतलव।" पद्मा की निगाह कुछ उठ गयी।

"मैं वातों का वनाना आज दस साल से देख रहा हूँ। तू मुझे चराती है? वह वदमाश···!"

"इतना वहुत है। आप अदालत के अफसर हैं! अभी-अभी आपने कहा था, अव तक अक्ल की पहचान करते रहे हैं, यह आपकी अक्ल की पहचान है! आप इतनी वड़ी वात राजेन्द्र को उसके सामने कह सकते है? वतलाइए, हिमालय की तरह अटल सुन लिया, तो इससे आपने क्या सोचा?"

आग लग गयी, जो वहुत दिनों से पद्मा की माता के हृदय में सुलग रही थी।

"हट जा मेरी नजरों से वाहर, मैं समझ गया।" रामेश्वरजी क्रोध से काँपने लगे।

"आप गलती कर रहे हैं, आप मेरा मतलव नही समझे, मैं भी विना पूछे हुए वतलाकर कमजोर नही वनना चाहती।"

पद्मा जेठ की लू मे झुलस रही थी, स्थल पद्म-सा लाल चेहरा तमतमा रहा था। आँखों की दो सीपियाँ पुरस्कार की दो मुक्ताएँ लिये सगर्व चमक रही थी।

रामेश्वरजी भ्रम मे पड़ गये। चक्कर आ गया। पास की कुर्सी पर बैठ गये। सिर हथेली से टेककर सोचने लगे। पद्मा उसी तरह खड़ी दीपक की निष्कम्प शिखा-सी अपने प्रकाश मे जल रही थी।

"क्या अर्थ है, मुझे वता।" माता ने वढकर पूछा।

"मतलव यह, राजेन को सन्देह हुआ था, मैं विवाह कर लूंगी—यह जो पिताजी पक्का कर आये हैं, इसके लिए मैंने कहा था कि मैं हिमालय की तरह अटल हूँ, न कि यह कि मैं राजेन के साथ विवाह करूँगी। हम लोग कह चुके थे कि पढाई का अन्त होने पर दूसरी चिन्ता करेगे।" पद्मा उसी तरह खड़ी सीधे ताकती रही।

"तू राजेन को प्यार नही करती ?" आँख उठाकर रामेश्वरजी ने पूछा।

"प्यार ? करती हूँ।"

"करती है ?"

"हाँ, करती हूँ।"

"वस, और क्या ?"

"पिता···!"

पद्मा की आवदार आँखों से आँसुओं के मोती टूटने लगे, जो उसके हृदय की कीमत थे, जिनका मूल्य समझनेवाला वहाँ कोई न था।

माता ने ठोडी पर एक उँगली रख रामेश्वरजी की तरफ देखकर कहा, "प्यार भी करती है, मानती भी नही, अजीव लडकी है।"

"चुप रहो।" पद्मा की सजल आँखें भौहो से सट गयी, "विवाह और प्यार एक वात है ? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है, तो वह उससे विवाह भी करता है ? पिताजी जज साहव को प्यार करते हैं, तो क्या इन्होने उनसे विवाह भी कर लिया है ?"

रामेश्वरजी हँस पड़े।

रामेश्वरजी ने शंका की दृष्टि से डॉक्टर से पूछा, "क्या देखा आपने डॉक्टर साहव ?"

"वुखार वडे जोर का है, अभी तो कुछ कहा नही जा सकता। जिस्म की हालत अच्छी नही, पूछने से कोई जवाव भी नहीं देती। कल तक अच्छी थी, आज एकाएक इतने जोर का वुखार, क्या सवव है ?" डॉक्टर ने प्रश्न की दृष्टि से रामेश्वरजी की तरफ देखा।

रामेश्वरजी पत्नी की तरफ देखने लगे।

डॉक्टर ने कहा, "अच्छा, मैं एक नुस्खा लिखे देता हूँ, इससे जिस्म की हालत अच्छी रहेगी। थोड़ी-सी वर्फ मँगा लीजियेगा। आइस-वैग तो क्यो होगा आपके यहाँ ? एक नौकर मेरे साथ भेज दीजिए, मैं दे दूंगा। इस वक्त एक सौ चार डिग्री

बुखार है। वर्फ डालकर सिर पर रखियेगा। एक सौ एक तक आ जाय, तब जरूरत नहीं।"

डॉक्टर चले गये। रामेश्वरजी ने अपनी पत्नी से कहा, "यह एक दूसरा फसाद खड़ा हुआ। न तो कुछ कहते बनता है, न करते। मैं कौम की भलाई चाहता था, अब खुद ही नकटों का सिरताज हो रहा हूँ। हम लोगों में अभी तक यह बात न थी कि ब्राह्मण की लडकी का किसी क्षत्रिय-लड़के से विवाह होता। हाँ, ऊँचे कुल की लड़कियाँ ब्राह्मणों के नीचे कुलो में गयी है। लेकिन, यह सब आखिर कौम ही में हुआ है।"

"तो क्या किया जाय?" स्फारित, स्फुरित आँखें, पत्नी ने पूछा।

"जज साहब से ही इसकी बचत पूछूंगा। मेरी अक्ल अब और नही पहुँचती। ...अरे छीटा!"

"जी!" छीटा चिलम रखकर दौड़ा।

"जज साहब से मेरा नाम लेकर कहना, जल्द बुलाया है।"

"और भैया बाबू को भी बुला लाऊँ?"

"नही-नहीं।" रामेश्वरजी की पत्नी ने डाँट दिया।

जज साहब पुत्र के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। इंग्लैण्ड के मार्ग, रहन-सहन, भोजन-पान, अदब-क़ायदे का बयान कर रहे थे। इसी समय छीटा बँगले पर हाजिर हुआ, और झुककर सलाम किया। जब साहब ने आँख उठाकर पूछा, "कैसे आये छीटाराम?"

"हुजूर को सरकार ने बुलाया है, और कहा है, बहुत जल्द आने के लिए कहना।"

"क्यों?"

"बीबी रानी बीमार है, डॉक्टर साहब आये थे, और हुजूर..." बाकी छीटा ने कह ही डाला था।

"और क्या?"

"हुजूर..." छीटा ने हाथ जोड लिये। उसकी आँखें डबडबा आयी।

जज साहब बीमारी कड़ी समझकर घबरा गये! ड्राइवर को बुलाया। छीटा चल दिया। ड्राइवर नहीं था। जज साहब ने राजेन्द्र से कहा, "जाओ, मोटर ले आओ। चलें, देखें, क्या बात है।"

राजेन्द्र को देखकर रामेश्वरजी सूख गये। टालने की कोई बात न सूझी। कहा, "बेटा, पद्मा को बुखार आ गया है, चलो, देखो, तब तक मैं जज साहब से कुछ बातें करता हूँ।"

राजेन्द्र उठ आया। पद्मा के कमरे मे एक नौकर सिर पर आइस-बैग रक्खे खड़ा था। राजेन्द्र को देखकर एक कुर्सी उसने पलँग के नजदीक रख दी।

"पद्मा!"

"राजेन!"

पद्मा की आँखों से टप-टप गर्म आँसू गिरने लगे। पद्मा को एकटक प्रश्न की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिये।

सिर पर हाथ रक्खा, सिर जल रहा था। पूछा, "सिर-दर्द है?"

"हाँ, जैसे कोई कलेजा मसल रहा हो।"

दुलाई के भीतर से छाती पर हाथ रक्खा, बड़े जोर से धड़क रही थी।

पद्मा ने पलकें मूँद लीं, नौकर ने फिर सिर पर आइस-बैग रख दिया।

सिरहाने थरमामीटर रक्खा था। झाड़कर, बॉडी के बटन खोल राजेन्द्र ने आहिस्ते से बगल में लगा दिया। उसका हाथ बगल से सटाकर पकड़े रहा। नजर कमरे की घड़ी की तरफ थी।

निकालकर देखा, बुखार एक सौ तीन डिग्री था।

अपलक चिन्ता की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने पूछा, "पद्मा, तुम कल तो अच्छी थीं, आज एकाएक बुखार कैसे आ गया?"

पद्मा ने राजेन्द्र की तरफ करवट ली, कुछ न कहा।

"पद्मा, मैं अब जाता हूँ।"

ज्वर से उभरी हुई बड़ी-बड़ी आँखों ने एक बार देखा, और फिर पलकों के पर्दे में मौन हो गयी।

अब जज साहब और रामेश्वरजी भी कमरे में आ गये।

जज साहब ने पद्मा के सिर पर हाथ रखकर देखा, फिर लड़के की तरफ निगाह फेरकर पूछा, "क्या तुमने बुखार देखा है?"

"जी हाँ, देखा है।"

"कितना है?"

"एक सौ तीन डिग्री।"

"मैंने रामेश्वरजी से कह दिया है, तुम आज यहीं रहोगे। तुम्हें यहाँ से कब जाना है?—परसों न?"

"जी।"

"कल सुबह बतलाना घर आकर, पद्मा की हालत कैसी रहती है। और रामेश्वरजी, डॉक्टर की दवा करने की मेरे खयाल से कोई जरूरत नहीं।"

"जैसा आप कहें।" सम्प्रदान-स्वर से रामेश्वरजी बोले।

जज साहब चलने लगे। दरवाजे तक रामेश्वरजी भी गये। राजेन्द्र वहीं रह गया। जज साहब ने पीछे फिरकर कहा, "आप घबराइए मत. आप पर समाज का भूत सवार है।" मन-ही-मन कहा, 'कैसा बाप और कैसी लड़की!'

तीन साल बीत गये। पद्मा के जीवन में वैसा ही प्रभात, वैसा ही आलोक भरा हुआ है। वह रूप, गुण, विद्या और ऐश्वर्य की भरी नदी, वैसी ही अपनी पूर्णता से अदृश्य की ओर, वेग से बहती जा रही है। सौन्दर्य की वह ज्योति-राशि स्नेह-शिखाओं से वैसी ही अम्लान स्थिर है। अब पद्मा एम. ए. क्लास में पढ़ती है।

वह सभी कुछ है, पर वह रामेश्वरजी नहीं हैं। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने पद्मा को एक पत्र लिखा था, "मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं, पर

अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मानकर चलो—राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना। बस।"

इसके बाद से पद्मा के जीवन में आश्चर्यकर परिवर्तन हो गया। जीवन की धारा ही पलट गयी। एक अद्भुत स्थिरता उसमें आ गयी। जिस जाति के विचार ने उसके पिता को इतना दुर्बल कर दिया था, उसी जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का उसने निश्चय कर लिया।

राजेन्द्र बैरिस्टर होकर विलायत से आ गया। पिता ने कहा, "बेटा, अब अपना काम देखो।" राजेन्द्र ने कहा, "जरा और सोच लूँ, देश की परिस्थिति ठीक नही।"

"पद्मा!" राजेन्द्र ने पद्मा को पकड़कर कहा।

पद्मा हँस दी। "तुम यहाँ कैसे राजेन?" पूछा।

"बैरिस्टरी मे जी नही लगता पद्मा, बड़ा नीरस व्यवसाय है, बड़ा बेदर्द। मैंने देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया है, और तुम?"

"मैं भी लड़कियाँ पढ़ाती हूँ—तुमने विवाह तो किया होगा?"

"हाँ, किया तो है।" हँसकर राजेन्द्र ने कहा।

पद्मा के हृदय पर जैसे बिजली टूट पडी, जैसे तुषार की प्रहत पद्मिनी क्षण-भर में स्याह पड़ गयी। होश में आ, अपने को सँभालकर कृत्रिम हँसी रँगकर पूछा, "किसके साथ किया?"

"लिली के साथ।" उसी तरह हँसकर राजेन्द्र बोला।

"लिली के साथ।" पद्मा स्वर में काँप गयी।

"तुम्ही ने तो कहा था—विलायत जाना और मेम लाना।"

पद्मा की आँखें भर आयीं।

हँसकर राजेन्द्र ने कहा, "यही तुम अँगरेजी की एम. ए. हो? लिली के मानी?"

['सुधा', मासिक, लखनऊ, फरवरी, 1930। लिली में संकलित]

ज़्योतिर्मयी

"मानती रहे, चूंकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाये हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल है, हमें जबरन् गुलाम बना रक्खा है; कोई चारा भी तो नही---कैसी बात है !" कमल की पंखड़ियों-सी उज्ज्वल बडी-बड़ी आँखो से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चन्द्रिका, भरी हुई युवती ने कहा।

"नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक मे अपने पति से मिलती है।" सहज स्वर से कहकर युवक निरीक्षक की दृष्टि मे युवती को देखने लगा।

युवती मुस्किरायी—तमाम चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी। सुकुमार गुलाब के दलों-से लाल-लाल होठ ज़रा बढे, मर्मरोज्ज्वल मुख पर प्रसन्न-कौतुकपूर्ण एक ज्योतिश्चक्र खोलकर यथास्थान आ गये।

"वाक्ये का दरिद्रता !" युवती मुस्किराती हुई बोली, "अच्छा बतलाइए तो, यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग मे अपने पूज्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियो को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहे, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ?" युवती खिल-खिला दी।

युवक का चेहरा उतर गया।

"आपने इस साल एम. ए. पास किया है, और अँगरेजी मे। वहाँ पतिव्रता स्त्रियो की शायद पत्नीव्रत पुरुषो से ज्यादा जीवनियाँ आपने याद की !" युवती ने वार किया।

युवक बडे भाई की ससुराल गया था। युवती उसी की विधवा छोटी साली है।

"आपने कहाँ तक पढ़ा है ?" युवक ने जानना चाहा।

"सिर्फ हिन्दी और थोडी-सी संस्कृत जानती हूँ।" डब्बे को नजदीक लेकर युवती पान लगाने लगी।

"मैं इतना ही कहता हूँ, आपके विचार समाज के तिनके के लिए आग है।" ताज्जुब की निगाह देखते हुए युवक ने कहा।

"लेकिन मेरे भी हृदय के मोम के पुतले को गलाकर बहा देने, मुझसे जुदा कर देने के लिए समाज आग है, साथ-साथ यह भी कहिए।" उँगली चूनादानी मे, बड़ी-बड़ी आँखो की तेज निगाह युवक की तरफ फेरकर युवती ने कहा, "मैं बारह साल की थी, ससुराल नही गयी, जानती भी नही, पति कैसे थे, और विधवा हो गयी !" कई बूंद आँसू कपोलों से बहकर युवती की जाँघ पर गिरे। आँचल से आँखें पोछ ली, पान लगाने लगी।

"तम्बाकू खाते है आप ?" युवती ने पूछा।

"नही।" युवक के दिल मे सन्नाटा था। इतनी बड़ी, इतने आश्चर्य की, इतनी खतरनाक बात आज तक किसी विधवा युवती की जबान से उसने नही सुनी। वह

जानता था, यह सब अखबारों का आन्दोलन है। इस तरह की कल्पना भी उसने कभी नही की। कारण, वह कान्यकुब्जो के एक श्रेष्ठ कुल मे पैदा हुआ था। युवती की बातों से घबरा गया।

"लीजिए।" युवती ने कई बीड़े दिये।

"आप बुरा मत मानियेगा, मैं आपको देख रही थी कि आप कितने दर्दमन्द है!" युवती ने साधारण आवाज में कहा।

युवक ने पान ले लिये, पर लिये ही बैठा रहा। "खाइए", युवती ने कहा, "आपसे एक बात पूछूं?"

"पूछिए।"

"अगर आपसे कोई विधवा-विवाह करने के लिए कहे?" युवती मुस्किरायी।

"मैं नही जानता, यह तो पिताजी के हाथ की बात है।" युवक झेंप गया।

"अगर पिताजी की जगह आप ही अपने मुख्तार आप होते?"

संकुचित होकर, फिर हिम्मत बांधकर युवक ने कहा, "मुझे विधवा-विवाह करते हुए लाज लगती है।"

युवती, मनोभावो को दबाकर, छलछलायी आँखो चुप रही। एक बार उसी तरह युवक को देखा, फिर मस्तक झुका लिया।

दूसरे दिन युवक घर चलने लगा। मकान की जेठी स्त्रियों के पैर छुए। इधर-उधर आँखें युवती की तलाश करती रहीं। वह न मिली। युवक दोमंजिले से नीचे उतरा। देखा, दरवाजे के पास खड़ी वह उसी की राह देख रही है। युवक ने कहा, "आज्ञा दीजिए, अब जा रहा हूँ।" हाथ जोड़कर युवती ने प्रणाम किया। एक पत्र युवक को देकर कहा, "जल्द दर्शन दीजिएगा।" युवक के हृदय मे एक अज्ञात प्रसन्नता की लहर उठी। उसने देखा, नील पलको के पंखो से युवती की आँखें अप्सराओं-सी आकाश की ओर उड़ जाना चाहती है, जहाँ स्नेह के कल्प-वसन्त में मदन और रति नित्य मिले हैं, जहाँ किसी भी प्रकार की निष्ठुर श्रृंखला नवोन्मेष को झुका नही सकती, जहाँ प्रेम ही आँखों में मनोहर चित्र, कण्ठ मे मधुर संगीत, हृदय मे सत्यनिष्ठ भावना और रूप मे खूबसूरत आग है।

युवक ने स्नेह के मधुर कण्ठ से, सहानुभूति की ध्वनि में कहा, "ज्योती!"

युवती निस्संकोच कुछ कदम आगे बढ़ गयी। युवक के बिल्कुल नजदीक, एक तरह सटकर, खडी हो गयी। सिर युवक की ठोढ़ी के पास, आँखें आँखों मे मिली हुई। वस्त्र के स्पर्श से शिराओं में एक ऐसी तरंग बह चली, जिसका अनुभव आज तक उनमे किसी को न हुआ था। अंगों से आनन्द के परमाण निकलते रहे। आँखों में नशा छा गया।

"फिर कहूँगा।" युवक लजाकर चल दिया।

"याद रखिएगा—आपसे इतनी ही कर-बद्ध प्रार्थना···" युवक दृष्टि से ओझल हो गया।

"पिघलकर पत्थर भी उस पत्र को पढने पर बह जाता है वीरेन!" विजय ने सहानुभूति के शब्दो मे वीरेन्द्र से कहा।

"दिल के तुम इतने कमजोर हो। नष्ट होते हुए एक समाजविलष्ट जीवन का उद्धार तुम नहीं कर सकते विजय ? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का सीधा-साधा एक लद्दू बैल करने के लिए हुई है ?" वीरेन्द्र ने चित्य भर्त्सना के शब्दों में कहा।

"पिताजी से कुछ बस नहीं वीरेन, उनके प्रतिकूल कोई आचरण मैं न कर सकूंगा। पर आजीवन—आजीवन मैं सोचूंगा कि दुर्बल समाज की सरिता से एक बहते हुए निष्पाप पुष्प का मैं उद्धार नहीं कर सका, खास तौर से इसलिए कि मुझे उसने तैरना नहीं सिखलाया।"

"तुम्हें एक दूसरी सामाजिक शिक्षा मे तैरना मालूम हो चुका है।"

"हां, हो चुका है, पर केवल तैरते रहना, फिर किनारे पर लगना नहीं; सब घाट हमारे समाज द्वारा अधिकृत हैं, और केवल तैरते रहना मनुष्य के लिए असम्भव है।"

"तुम कूल पर आ सकते हो।"

"पर उस फूल को लेकर नहीं, तब समाज के किसी भी घाट पर नहीं जा सकता, और केवल कूल इतना बीहड़ है कि मेरे थके हुए पैर वहां जम नहीं सकते, वहां दृष्टियों का ताप इतना प्रखर है कि वह फूल मुरझा जायगा, मैं भी झुलस जाऊंगा।"

"तो सारांश यह कि तुम उस पावन-मूर्ति अबला का, जिसने तुम्हें बढ़कर प्यार किया—मित्र समझकर गुप्त हृदय की व्यथा प्रकट कर दी, उस देवी का समाज के पंक से उद्धार नहीं कर सकते ?"

"देखो, मेरा हृदय अवश्य उसने छीन लिया है, पर शरीर पिताजी का है, वीरेन, मैं यहां दुर्बल हूं।"

"कैसी वाहियात बात ! कितनी बड़ी आत्मप्रवंचना है यह ! विजय, हृदय शरीर से अलग भी है ? जिसने तुम पर क्षण-मात्र में विजय प्राप्त कर ली, उसने तुम्हारे शरीर को भी जीत लिया है। अब उसका तिरस्कार परोक्ष अपना ही है। समाज का धर्म तो उसके लिए भी था--क्या फूटे हुए बरतन की तरह वह भी समाज मे एक तरफ निकालकर न रख दी जाती ? क्या उसने यह सब नहीं सोच लिया ?"

"उसमें और-और तरह की भी भावनाएं होंगी।"

"और-और तरह की भावनाएं उसमे होती, तो वह तुम्हारे भाई की ससुराल-वालों के सगर्व मुखों पर अच्छी तरह स्याही पोतकर अब तक कहीं चली गयी होती, समझे ? वह समझदार है। और, तुम्हारे सामने जो इतना खुली है, इसका कारण काम नहीं, यथार्थ ही तुम्हें उसने प्यार किया है। अच्छा, उसका पता तो बताओ।"

वीरेन्द्र ने नोट-बुक निकालकर पता लिख लिया। फिर विजय से कहा, "तुम मेरे मित्र हो, वह मेरे मित्र की प्रेयसी है !"

दोनों एक दूसरे को देखकर हंसने लगे।

इस घटना को कई महीने बीत चुके। अब भाई की ससुराल जाने की कल्पना-मात्र

से विजय का कलेजा काँप उठता, संकोच की सर्दी तमाम अंगों को जकड़ लेती, संकल्प से उसे निरस्त हो जाना पड़ता है। उसकी यह हालत देख-देखकर वीरेन्द्र मन-ही-मन पश्चात्ताप करता, पर तब से फिर किसी प्रकार की इच्छा-दबाव उस पर उसने नहीं डाला। विजय इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में रिसर्च-स्कॉलर है। वीरेन्द्र बी. ए. पास कर लेने के पश्चात् वहीं अपना कारोबार देखने में रहता है। वह इटावे के प्रसिद्ध रईस नागरमल-भीखमदास-फर्म के मालिक मंसाराम अग्रवाल का इकलौता लड़का है।

महीने के लगभग हुआ, वीरेन्द्र इटावे चला गया है, चलते समय विजय से विदा होकर गया था।

इधर भी, तीन-चार दिन हुए, घर से पत्र द्वारा विजय को बुलावा आया है। जिला उन्नाव, मौजा बीघापुर विजय की जन्म-भूमि है।

उसके पिता अच्छी साधारण स्थिति के मनुष्य है, माँझगाँव के मिश्र, कुलीन कान्यकुब्ज। विवाह अधिक दहेज के लोभ से उन्होने रोक रक्खा था। अब तक जितने सम्बन्ध आये थे, तीन हजार से अधिक कोई नही दे रहा था। अब के एक सम्बन्ध आया हुआ है, उसकी तरफ विजय के पिता का विशेष झुकाव है। ये लोग मुरादाबाद के बाशिंदे हैं। पन्द्रह दिन पहले ही विजय की जन्म-पत्रिका ले गये थे। विवाह बनता है, इसलिए दुबारा पक्का कर लेने को कन्या-पक्ष से कोई आया हुआ है। विजय के पिता और चचा मकान के भीतर आपस में सलाह करते है।

"दादा, लेकिन एक पै तो है, ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं, ऐसा फिर न हो कि कही के भी न रहें।"

"तुम भी; मारो गोली; हमको रुपये से मतलब; हमारे पास रुपया है, तो भाई-बन्द, जात-बिरादरीवाले सब साले आवेंगे; नही तो कोई लोटे-भर पानी को न पूछेगा।"

"तो क्या राय है?"

"विवाह करो, और क्या?"

"सात हजार से आगे नहीं बढ़ता।"

"घर घेरे बैठा है, देखते नही? धीरे-धीरे दुहो; लेकिन शिकार न निकल जाय।"

"अब फँसा है, तो क्या निकलेगा।"

"डर कौन—बारात में घर के चार जन चले चलेंगे। कहेंगे, दूर है, खर्चा नही मिला।"

"वही खर्चा यहाँ करके खिला दिया जाय—है न?"

"ठीक है।"

"बस, यही ठीक है।"

विजय के पिता पं. गंगाधर मिश्र और चचा पं. कृष्णशंकर रक्त-चन्दन का टीका लगाये, रुद्राक्ष की माला पहने, खड़ाऊँ खटपटाते दरवाजे-चौपाल में, नेवाड़ के पलँग पर, धीर-गम्भीर मुद्रा से, सिर झुकाये हुए, आकर बैठ गये। एक मूँज की

चारपाई पर कन्या-पक्ष के पं. सत्यनारायण शर्मा मिर्जई पहने, पगडी बाँधे बैठे हुए थे। मिश्रजी को देखकर पूछा, "तो क्या आज्ञा देते है मिश्रजी ?"

पण्डित गगाधर ने पं. कृष्णशंकर की ओर इशारा करके कहा, "बातचीत इनसे कीजिए। मकान-मालिक तो यह है।"

पं. सत्यनारायण ने पं कृष्णशंकर की ओर देखा।

"बात यह है पण्डितजी कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रुपया तो लडके की पढाई में ही लग चुका है। लखनऊ के बाजपेयी आये थे, हमारा-उनका सम्बन्ध भी है, छ हजार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको खर्च भी पूरा न मिला, तो लडके को पढाकर हमने फायदा क्या उठाया ? इस सम्बन्ध मे (इधर-उधर झाँककर) हमें कुछ मिला भी नही, तो इतना गिरकर · "

"अच्छा, तो कहिए, क्या चाहते है आप ?"

"पन्द्रह हजार।"

"तब तो हमारे यहाँ बरतन भी साबित न रहेगे।"

"अच्छा, तो आप कहिए।"

"नौ हजार लीजिए।"

"अच्छा, बारह हजार मे पक्का।"

प. सत्यनारायण अपनी अधारी सँभालने लगे।

"ग्यारह हजार देते है आप ?" पं. कृष्णशंकर ने उभरकर पूछा।

"दस हजार सही, बताइए।"

"अच्छा, पक्का; मगर पाँच हजार पेशगी।"

प. सत्यनारायण ने कागज, स्टाम्प और हजार-हजार के पाँच नोट निकालकर कहा, "लीजिए, आप दोनो इसमे दस्तखत कीजिए। पहले लिखिए, पं. सत्यनारायण, मुरादाबाद की कन्या से श्रीयुत विजयकुमार मिश्र एम्. ए. के विवाह-सम्बन्ध मे, जो दस हजार मे मय गवही और गौने के खर्च के पक्का हुआ है, कन्या के पिता से पाँच हजार पेशगी नकद वसूल पाया, फिर स्टाम्प पर वल्दियत के साथ दस्तखत कीजिए।"

पण्डित गंगाधर गद्गद हो गये। लिखा-पढी हो गयी। विवाह का दिन स्थिर हो गया।

तिलक चढ गया। तिलक के पहले समय तक विजय को ज्योतिर्मयी की याद आती रही। पर नवीन विवाह के प्रसंग से मन बँट गया। फिर धीरे-धीरे, जैसा हुआ करता है, वह स्मृति भी चित्त के अतल-स्पर्श को चली गयी। अब विजय को उसके चरित्र पर रह-रहकर शंका होने लगी है। सोचता है, बुरा फँस गया था, बच गया। सच कहा है, 'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?'

अब नयी कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क मे उठने लगी है। एक अज्ञात, अपरिचित मुख को जैसे केवल कल्पना के बल से प्रत्यक्ष कर लेना चाहता है, और इस चेष्टा मे सुख भी कितना ! इतना कभी उसे नही मिला। इस अज्ञात रहस्य मे वह ज्योतिर्मयी की अम्लान छवि एक प्रकार भूल ही गया।

विजय ने विवाह के उत्सव में मिलने के लिए वीरेन्द्र को लिखा था, पर उसने उत्तर दिया कि 'मैं तो विजय का ही मित्र हूँ, किसी पराजय का नही; इस विवाह में मैं शरीक न हो सकूँगा।'

जैसा पहले से निश्चय था, जल्दबाजी का बहाना कर पं. गंगाधर ने जाने-जाने रिश्तेदारो को छोडकर और किसी को न बुलाया। इसी कारण ज्योतिर्मयी के यहाँ निमन्त्रण न पहुँच सका। इधर भी जहाँ कही न्योता गया, वहाँ से कुछ ही लोग आये। कारण, सन्देह की हवा वह चुकी थी।

बारात चली। लखनऊ मे वीरेन्द्र से विजय की मुलाकात हुई। वीरेन्द्र ने पूछा, "यार, तुम तो ज्योतिर्मयी को भूल ही गये, इतने गल गये इस विवाह में !"

"बात यह है कि इस तरह की स्त्रियाँ समाज के काम की नहीं होती।"

"अरे, तुमने तो स्वर भी बदल दिया !"

"क्या किया जाय ?"

"और जहाँ विवाह करने जा रहे हो, यही बड़ी सती-सावित्री निकलेगी, इसका क्या प्रमाण मिला है ?"

"क्वारी और विधवा में फर्क है भाई !"

"यह मानता हूँ।"

"कुछ संस्कृति का भी खयाल रखना चाहिए। संस्कृति से ही सन्तति अच्छी होती है।"

"अरे, तुम तो पूरे पण्डित हो गये !"

"अपने कुल का सबको खयाल रहता है --केतहु काल कराल परै, पै मराल न ताकहिं तुच्छ तलैया।"

"अच्छा !"

"जी हाँ।"

"तब तो, जी चाहता है, तुम्हारे साथ मैं भी चलूं।"

"चलो, मैंने तो तुम्हें लिखा भी था, पर तुम दुनिया की वास्तविकता का विचार तो करते नही, विचारों की दीवारे उठाया-गिराया करते हो।"

"अच्छा भई, अब वास्तविकता का आनन्द भी ले लें। कहो, कितने गिनाये ?"

"दस हजार।"

"दस हजार ! उसके मकान मे लोटा तो मजबूत न छोड़ा होगा ?"

"कान्यकुब्ज कुलीन हैं।"

"वे कोई मामूली कान्यकुब्ज होगे ?"

"बहुत मामूली नही, 17 बिस्वे मर्यादवाले है।"

"हूँ।" वीरेन्द्र सोचने लगा। 'तुमसे घृणा हो गयी है। जाओ, अब नही जाऊँगा। तुम इतने नीच हो !'

वीरेन्द्र शहर की ओर चला गया। बारात मुरादाबाद चली।

विवाह हो गया। पं. सत्यनारायण शर्मा ने वर-यात्रियों का हृदय से स्वागत-सम्मान किया। खोरे मे पाँच हजार नकद दिये और कन्या को पाँच हजार का जेवर ऊपर

से बनवा दिया। विजय को सोने की चेन, जेब-घड़ी, रिस्ट-वाच, साइकिल, अँगूठी और कुछ और सामान देकर खुश किया।

बड़ा-छोटा 'बडहार' हो गया। चतुर्थी के बाद कन्या के साथ बारात विदा हुई।

वर-कन्या के लिए पं. सत्यनारायणजी ने एक सेकण्ड-क्लास-कम्पार्टमेण्ट पहले से रिजर्व्ड करा रक्खा था, और लोगों के लिए इण्टर-क्लास अलग।

पं. सत्यनारायण हाथ जोडकर पं. गंगाधर और कृष्णशंकर आदि से विदा हुए। कन्या से कहा, "बेटी, वहाँ पहुँचकर अपने समाचार जल्द देना।" गाड़ी छूट गयी।

प्रणय से विजय का चित्त चपल हो उठा। अब तक जिस अदेख मुख पर असंख्यों कल्पनाएँ उसने की हैं, उसे देखने को यह कितना शुभ, सुन्दर अवसर मिला। उसने पिता को, ससुर को, समाज को भरे आनन्द के छलकते हृदय से बार-बार धन्यवाद दिया। साथ युवती बहू का घूंघट उठा चन्द्रमुख को देखने की चकोर-लालसा प्रबल हो उठी। डाकगाड़ी पूरी रफ्तार से जा रही है।

विजय उठकर बहू के पास चलकर बैठा। सर्वांग काँप उठा। घूंघट हटाने के लिए हाथ उठाया। कलाई काँपने लगी। उस कम्पन मे कितना आनन्द है। रोएँ-रोएँ के भीतर से आनन्द की गंगा बह चली।

विजय ने बहू का घूंघट उठाया, त्रस्त होकर चीख उठा, "एँ! तुम हो?"

"विवाह का यही सुख है!" ज्योतिर्मयी की आँखों से घृणा मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रही थी। 'छि: ! मैंने यह क्या किया! यह वही विजय—संयत, शान्त, वही विजय है? ओह! कैसा परिवर्तन! इसके साथ अब अपराधी की तरह, सिकुड़कर घर के एक कोने में मुझे सम्पूर्ण जीवन पार करना होगा। इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्र-गुण अच्छा था! वहाँ कितनी मधुर-मधुर कल्पनाओ मे पल रही थी! वीरेन्द्र, तुम्हारे-जैसा सिंह पुरुष ऐसे स्यार का भी साथ करता है? तुमने इधर डेढ महीने से मेरे लिए कितना दु:ख, कितना कष्ट, मुझे और अपने इस अधम मित्र को सुखी करने के विचार से, स्वीकार किया! 18 हजार खर्च किये! तुम्हारे मैनेजर—सत्यनारायण—मेरे कल्पित पिता—वह देवताओं का निर्मल परिवार।' ज्योतिर्मयी मन-ही-मन और कितना न-जाने क्या-क्या, सोच रही थी।

विजय ने पूछा, "तुम वहाँ कैसे गयी?"

"वीरेन्द्र से पूछना।" ज्योतिर्मयी ने कहा।

ज्योतिर्मयी मिश्र-खानदान मे मिल गयी है, पर वीरेन्द्र फिर विजय से नही मिला।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, मार्च, 1930। लिली मे संकलित]

कमला

कमला सोलहवें साल की अधखुली घुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खुली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह वही जा रही है।

गत वर्ष कमला का पाणि-ग्रहण-संस्कार हो चुका है। पर मकान की प्रथा के अनुसार वारात के साथ वह बिदा नही हुई। अभी पति केवल ध्यान का विषय है, ज्ञान का नही। अभी सिर्फ सुनती, सोचती और मन-ही-मन प्यार करती है।

कमला के पति पण्डित रमाशंकर वाजपेयी आज दोपहर के समय आये हुए हैं। टेढ़ा के रहनेवाले, भाई के जनेऊ मे कुछ दिनो के लिए बिदा करा ले जायेंगे। पिता ने भेजा है।

पण्डित रमाशंकर के आने की खबर गाँव-भर की युवतियों मे तेजी से फैल गयी। कमला की सहेलियाँ उसके घर महफिल के विचार से चली। माता वहाने से दूसरे के घर चली गयी। हँसी-मजाक, दिल्लगी गूँजने यगी। वाजपेयी जनान-खाने मे ही आराम कर रहे हैं। दिन का पिछला पहर, तीन का समय है। सखियाँ पान लगाकर देती, बुझौवल-कहानियो के लटके कहती, अर्थ पूछती है। वाजपेयी-जी अर्थ जानते है या नही, नही मालूम; जवाब नही देते; न झेंपकर झेपते हैं। "कहाँ तक पढ़े हैं आप ?" "कुछ तिरिया-चरित्तर भी सीखा है ?" "आपकी वहन का नाम ?" उत्तर की प्रतीक्षा के विना प्रश्न होते रहे। वाजपेयीजी के क्षुद्र घट में एक साथ इतना आदि-रस नही अट सका। जी उकताने लगा। उधर, वाजपेयी-जी का वैसा भरा-पूरा मुँह देखकर रस का सागर उमड़ता गया। छिपने के इरादे उठकर वह वाहर की तरफ चले, तो कमला से कुछ छोटी रिश्ते की उसकी एक वहन ने फुर्ती से हाथ पकड़कर कहा, "लो, मेरे पान तो अभी आपने खाये ही नहीं; मैं आपकी वहन लगती हूँ (खुलकर हँसी)। देखिए, दीदी और आप एक है। दीदी की मा आपकी मा है, तो दीदी की वहन ?"···"आपकी वहन हुई।" तीन-चार सहेलियाँ हँसती हुई एक साथ कह उठी। वाजपेयीजी ने पान ले लिये, लजाये हुए वाहर चले गये।

कमला रामपुर रहती है, छोटा भाई उन्नाव अँगरेजी-स्कूल मे पढता है। पिता का देहान्त हो गया है। पिता पण्डित रामेश्वरजी त्रिपाठी, अहमदावाद मे कपड़े की दूकान करते थे। इसी से कुछ धन एकत्र कर लिया था। कमला कभी-कभी माता के साथ अहमदावाद जाया करती थी। शिक्षा हिन्दी की मिलती थी। पर मराठी और गुजराती वालिकाओं मे रहने के कारण उन भाषाओं पर भी कुछ दखल पा गयी है। तीनों भाषाएँ पढ़ लेती, तीनों मे पत्र लिख लेती है। पिता की मृत्यु के वाद उसका विवाह हुआ। माता ने अच्छा घर, पढ़ा-लिखा वर देखकर विवाह किया। दहेज मे तीन हजार रुपये दिये। कमला के पति पण्डित रमाशंकर अँगरेजी के एम. ए. हैं। इसी साल परीक्षा दी है, अभी फल नही निकला।

कमला के पड़ोस में कई घर उनके खानदान के है। मकान के मालिक पण्डित शिवरामजी से कमला के पिता की न बनती थी। इसका एक कारण था। कमला की माता गरीब कान्यकुब्ज की लड़की थी। बीस साल तक अविवाहित बैठी रही। पिता का देहान्त हो चुका था। माता के पास इतना धन न था कि लड़की की शादी बराबरवाले घर मे कर देती। कमला के पिता कल्याण-भार्य थे। बिना दहेज लिये उन्होने कन्या की माता को ऋण-मुक्त किया। यह बात उनके खानदान के आदमियों को अच्छी न लगी। इसका एक दूसरा कारण था। कमला के ननिहालवाले भैया-चार कमला की नानी को गरीबी के कारण छोड़े हुए थे कि खान-पान रखने से लड़की की शादी करानी पड़ेगी। अलग होने के कारण भी उन लोगो ने गढ़ लिये थे, जिनमे कमला की नानी और कुमारी माता के चाल-चलन मे फर्क मुख्य था। यह सुनकर कमला के पिता-पक्ष के भैयाचार विवाह के समय से अब तक कमला की माता से कोई तअल्लुक नही रखते। कमला के विवाह के समय भी नही गये। विवाह हो जाने पर बाजपेयीजी से शिकायत करने की ताक लगाये बैठे। सोचा था, कमला का जीवन बरबाद कर देंगे।

रात एक पहर बीत चुकी। पण्डित रमाशकर भोजन कर चुके। ऊपर के कोठे पर पलँग बिछा दिया गया था, वही लेटे हुए है। कमला की माता और कमला का भी भोजन हो चुका।

कमला को अनेक प्रकार की सीख दे, पान और पानी लेकर पति की पद-सेवा के लिए भेजकर, ईश्वर-स्मरण करती हुई माता नीचे अपनी चारपाई पर लेट रही।

कमला के मन मे माता की शिक्षा, मस्तिष्क में पति-सेवा, आंखो मे एकनिष्ठ अचल ज्योति, होंठो पर लाज से मधुर मन्द मुसकान—कपोलों तक चक्राकृति फैलती हुई, आत्मा मे मृदु प्रणय-भय, पदो मे भूषणो की विजय-शिंजन। जीने की एक-एक कली पर पैर रखती, रति की मधुर झंकृति रमाशंकर के भीतर एक-एक कमल खिला देती है।

आकाश के चाँद का फूल पृथ्वी पर ज्योतिर्मय परिमल भर रहा है। कोठे के झरोखो से किरणें, अदृश्य अप्सराओं-सी, दो सुहृदयो को प्राथमिक प्रणय के दृढ़ पाश मे बँधते हुए देखकर हँसती हुई चली जाती हैं। हवा नीम के फूलों की भीनी महक से दोनो को मौन-स्नेह मे ढककर बह रही है। हृदय के रत्नाकर ने आज ही विष्णु को लक्ष्मी दी, लक्ष्मी को विष्णु।

कमला ने जल-भरा ढक्कनदार लोटा और गिलास रख दिया। डिब्बे से निकालकर रमाशंकर को पान दिये। पलकें झुकाये पलँग के एक ओर खड़ी रही। जहाँ कमला का यथार्थ स्थान था—रमाशंकर का स्नेहमय प्रदेश—वहाँ से उस प्रान्त मे जहाँ रमाशंकर कमला की स्मृति मे चमक रहा था, प्रतिध्वनि हुई, "बैठो।" स्वप्न-संचलित कमला पैरो की तरफ बैठ गयी, दबाने के लिए अपनी तरफवाला दाहना पैर पकड़ लिया, दबाने लगी। झरोखे से चाँद सीधे मुख पर पड़ रहा था, तमाम पलँग चाँदनी से जगमग।

कमला पैर दबा रही है, रमाशंकर एकाएक उस अर्द्धस्फुट कली की नवल

मुख-कान्ति पान कर रहा है। प्रति शिरा एक नये जीवन से मजबून, उसे अपनी ही दृढ़ता मे स्खलित कर दूर, बहुत दूर, सौन्दर्य के उस अपरिचित लोक में पतंग की तरह उड़ा ले गयी। आज तक के बन्द अनेक रहस्य-द्वार उस किरणमयी के सौन्दर्य के जादू से गुलशब्बो की तरह खुल-खुल गये। उसी के प्रकाश से पथ देखता हुआ वह कहाँ-कहाँ हो आया।

कमला को थकी हुई जान यथासमय रमाशंकर उठकर बैठ गया। बडे स्नेह से हाथ पकड चाँद की तरफ बैठा लिया। पैर लटकाये मुक्त-ज्योत्स्ना कलित अकल आकाश देखते हुए, एक दूसरे का हाथ लिये दोनो चुपचाप बैठे रहे। खुले हुए हृदय ने कमला का संकोच दूर कर दिया। प्रणय का मौन स्पर्श दोनो के हृदय को पुलकित करता रहा। भाषा आप बन्द हो गयी, जैसे शक्ति की चंचलता हो।

मौन स्थिति मे रहने की अनिच्छा या परिवर्तन ने दोनो को सृष्टि की चपलता —वाक्य-कलाप, कलियों मे उभाड़ दिया।

अनेक बातें हुई, अनेक विशृंखल परिणय-प्रसंग छिड़े, रमाशंकर की उतनी बडी विद्वत्ता ने कमला को वार्तालाप की बराबर जगह दी, और निस्संकोच कमला उसके सामने ही वाक्पटु रही।

वह रात दोनो को जागते, तरह-तरह गपशप लड़ाते हुए कटी। वह जागरण की रात्रि भविष्य के जीवन की चिर-स्मरण रात्रि बन गयी। चिड़ियों की चहक सुनकर दोनो ने देखा, रात पार हो रही है।

कमला के हृदय मे रमाशंकर का कहा हुआ एक वाक्य हमेशा के लिए रह गया, "तुम्हारे बिना मेरे जीवन का अर्थ ही क्या ?"

उसी रोज दिन मे करीब ग्यारह बजे एक नाई रमाशंकर के पास खबर लेकर पहुँचा। एकान्त मे बुलाकर कहा, "चुपचाप चले चलिए। मालिक ने कहा है, बिदा कराने की जरूरत नही, और इसी दम बुला भेजा है!"

रमाशंकर के होश उड़ गये, कुछ देर सोचकर पूछा, "इसका कोई कारण भी है?"

"हाँ, बिदा कराने पर भैयाचार और नातेदार छोड़ देंगे। बहुत बड़ी बात है। घर चलकर मालूम कीजिए।"

रमाशंकर एक पेड़ की तरफ कुछ कदम बढ़ गया। कहा, "तुमको जो कुछ मालूम हो कहो।"

नाई ने मुँह बनाकर कहा, "भैया, अब घर में सब समझ लीजिएगा। बड़े घरों की बात कौन कहे?"

रमाशंकर का दिल बैठ गया, फिर अदम्य आग्रह से भर गया। उसने कहा, "हम कहते है, संकोच छोड़कर कहो।"

नाई लाचार, जमीन पर नजर गड़ाये कहने लगा, "कल यहाँ के कुछ लोग, इन्ही के भैयाचार, गाँव गये थे। जगनू बापू, रामकिशोर चाचा, भगवानदीन दादा वगैरा (ये सब रमाशंकर के भैयाचार है, जो जुदा रहते हैं) को अलग बुलाकर कहा है कि लड़की काम की नही है। कानपुर मे किसी मुसलमान···"

रमाशंकर क्षोभ से काँपने लगा। कमला पर क्रोध आ गया।

नाई कहता गया, "अब भैयाचार, नातेदार, सबको मालूम हो गया है। सबकी राय है कि आप चले चलें, फिर जैसा होगा, किया जायगा। आपकी सास का चाल-चलन अच्छा नहीं, न मायके मे अच्छा रहा। सब भैयाचार छोड़े हुए है।"

रमाशंकर सोचता रहा। विषय कोई न था, केवल चिन्ता और क्रोध था, जिसका अर्थ था कि स्त्री-जाति कैसी छल से भरी होती है!

प्यार रमाशंकर को बहुत दूर ले गया था। अब हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे थे, पर प्रमाण की उसे जरूरत न थी। प्यार प्रमाण नही चाहता।

रमाशंकर मकान गया, चुपचाप अपना छोटा सन्दूक उठाकर चल दिया। उसकी सास उस समय कार्य से बाहर थी।

कमला खड़ी थी। भोली दृष्टि से देखती रही। रमाशंकर सिर झुकाये हुए चला गया।

बिना बिदा कराये रमाशंकर का चला जाना सखियों तथा गाँव के लोगों में कमला तथा उसकी माता का बहुत बड़ा अपमान हुआ। सखियाँ कमला के आँसू पोछतीं, उसे ढाढ़स देती थी। कुछ दिनों मे उसके भैयाचारों की स्त्रियों से उन्हें हाल मालूम हो गया, और उसकी माता भी समाचार पा गयी।

कमला कारण सुनकर सूख गयी। यह बात बिलकुल झूठी थी। कानपुर मे वह अपनी मौसी के यहाँ थी, उसी समय एक रात वहाँ चोरी हुई थी, जिसका अर्थ भैयाचारों ने अपनी तरफ से इतना बढ़ा लिया था, और विवाह हो जाने के बाद यह जौहर खेलने का इरादा किये बैठे थे। कमला की माता की दशा थोड़े ही दिनों मे शोचनीय हो गयी; कमला भी हवा मे डोलने-सी लगी।

गर्मी की छुट्टी हुई। कमला का भाई राजकिशोर घर आया। बालक घर की दशा देखकर बहुत घबराया। गाँव के लोग उसे साथ ले बाजपेयीजी के यहाँ चलने लगे। कमला ने रोक दिया। माता को सोचते-सोचते और फाके करते-करते कमजोरी से बुखार आ गया। क्रमश: कफ से फेफड़े जकड़ गये, हालत चिन्ताजनक हो गयी।

एक दिन बालक राजकिशोर ने गाँव मे चर्चा सुनी, और उदास होकर, माता के पास जाकर कहा, "अम्मा, बाजपेयी जीजा का दूसरा विवाह हो रहा है। रामअधीन चाचा आज बातचीत करते थे। कोई डिप्टी-कलक्टर फतेहपुर के हैं, उनकी लड़की के साथ।" कमला खड़ी थी।

माता ने सुना, आँखों मे आँसुओं की धारा बँध गयी। बोलने की रही-सही क्षीण शक्ति भी जाती रही। उसी सजल दृष्टि से कमला को पड़ी हुई देखती रही।

कमला भी इस ग्रीष्म मे मरु-निर्झरी-सी अल्प जल हो रही है! माता की दशा देखकर, सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ फेरने लगी, बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे।

यह कष्ट माता से न सहा गया, उसी रात उनका देहान्त हो गया। गाँव के अपर लोगों की मदद से लाश गंगा पहुँचायी गयी। राजकिशोर ने दाह किया।

विवाह के लिए रमाशंकर की इच्छा न थी। उसकी चोट ताजी थी। हृदय बैठ गया था। कमला को वह इतना प्यार कर चुका था कि अब विवाह की तरफ से बिलकुल वीतराग हो रहा था। मन उड़ा फिरता था। हृदय में जगह न थी, था दर्द, जहाँ उसे केवल कष्ट मिलता था। गाँव मे कोई और उसका साथी भी न था, सिर्फ बगीचे थे।

डिप्टी-कलक्टर के छोटे भाई वर की तलाश में आये थे। लड़का बहुत पसन्द आया। विवाह पक्का कर गये। रमाशंकर ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली।

एक रात की बात है। रमाशंकर सो रहा था। स्वप्न मे देखा कमला बगल मे खड़ी है, आँखो से आँसू जारी है। उठकर बैठ गया। वह मूर्ति उसकी दृष्टि में लीन हो गयी।

कमला की मौसी खबर पाकर आयी, उसे अपने पास कानपुर ले गयी। कुल क्रिया हो चुकी थी। राजकिशोर उन्नाव से सार्टीफिकेट लेकर कानपुर मे भर्ती हो गया।

दिन, सप्ताह, मास, क्रम-क्रम से, जीवन की पूर्ति के रूप से, एकमात्र भाई के स्नेह मे, बीतने लगे। कमला का चित्त भी पूर्व-स्थिति के विस्तार को संकुचित करता हुआ अपनी ही हद मे आ गया! दुख का वह रूप नैराश्य के तम मे लीन हो अब केवल सुप्ति की तरह जीवन की शान्ति में परिवर्तित हो गया है। अब उसे कोई इच्छा नही, उसके प्राणो मे कोई रग नही; है केवल तपस्या, जिस पर एक हिन्दू-महिला विश्वास की डोर पकड़े हुए अपना कुल जीवन निछावर कर देती है।

पति के प्रति कमला का काम ही क्रोध उभाड सकता था, मोह में बदलकर जीवन को कलंकित कर सकता था, पर अब उसका निशान तक न रहा। वह अपनी कुल-प्रथा के अनुसार एक सौभाग्यवती की तरह व्रत-उपवास आदि तथा देवताओं को प्रणाम कर पति तथा भाई की कल्याण-कामना किया करती है। शृंगार में केवल सेंदुर उसे तृप्त कर रखने के लिए है।

एक सीने की मशीन उसने खरीद ली है। रूमाल, कमीज, कुर्ते आदि सीती, कभी कपड़ों पर छापे लगाकर बेल-बूटे काढ़ती है। इसी तरह उसके अवकाश का समय पार होता है। उसकी मौसी माल बाजार में बेचवा देती। दूकानदार बिक जाने पर दाम दे देते है।

कमला जहाँ रहती है, वही एक बगल मे आर्य-समाज के मन्त्रीजी रहते है, और एक तरफ 'महिला'-पत्रिका की सम्पादिका।

एक रोज मन्त्रीजी की कुमारी कन्या उससे आकर मिली, अपनी घरेलू सभ्यता के अनुसार थोडे सामान और भरे-पूरे हृदय से कमला ने उसका स्वागत किया। बातचीत होने लगी।

"तुम बहुत दिनो से यहाँ रहती हो, कल मैंने सुना।" मन्त्रीजी की लड़की वेदवती ने कहा।

"हाँ, मौसीजी के साथ, कुछ महीने हुए, आयी हूँ।" कमला ने नम्र स्वर से कहा।

"तुम्हारा विवाह तो हो गया है ?" माँग का सेंदुर देखती हुई वेदवती ने पूछा।

"हाँ।" कमला ने सरल चितवन नीची कर कहा।

"तुम अपने पतिदेव के यहाँ कितने दिनों से नही गयी ?"

"जब से विवाह हुआ।" उसी सरलता से कमला ने कहा।

"क्यों, क्या अभी तुम्हारा गौना नही हुआ ?"

"न।" कमला चुपचाप बैठी रही।

तब तक कमला की मौसी भी आ गयी, और पडोस की उसे प्रतिष्ठित घर की कन्या जानकर एक साँस मे कमला के प्रति हुए पाशविक अत्याचार का वर्णन कर गयी।

सुनकर गुस्से से वेदवती का चेहरा लाल पड़ गया, "तुम लोग कमजोर हो। किस्मत को कोसती हो। मैं होती तो, चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती—उन्ही की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन्, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए। तुम्ही लोगो ने अपने सिर स्त्रियो का अपमान उठा रक्खा है।"

कमला अपलक ताकती रही। वेदवती उठकर बाहर की ओर "अभी आती हूँ" कहकर चली गयी। 'महिला' की सम्पादिका कुमारी सुशीलादेवी को साथ लिवा लायी, "यह है। देखो, पतिदेव के पिताजी ने विना अपराध परित्याग कर दिया। चिरजीव पुत्र की दूसरी शादी कर दी।" परिचय दिया।

सुशीला बैठ गयी। वेदवती खड़ी रही।

"तुम्हारी बाते एक नोट के रूप मे 'महिला' मे दे दूँ ?" सुशीला ने राय ली।

"नही।"

"ये सब बुरे संस्कार है बहन, इन्हें दूर करने की कोशिश ही हमारा धर्म होना चाहिए।"

"पर ये मेरी तरफ के बुरे संस्कार नही, लिखने के लिए कहने पर साक्षी बनकर मेरी तरफ के ठहरेंगे। मै ऐसा नही चाहती।"

"पर मेरा धर्म भी एक है।"

"उसके लिए मुझसे आप राय क्यों लेती है। अगर आप लिखेंगी, तो आपसे मेरा विनय-स्नेह उठ जायगा। क्योकि आप मेरे सम्बन्ध मे मेरी मर्जी के खिलाफ कार्रवाई करेंगी।"

सुशीला एकटक देखती रही। वेदवती भी स्थिर खडी सुनती रही। कमला अपने ही विचारों की लय में मौन बैठी और दृढ होती रही।

"अच्छा, फिर मिलूंगी, मुझे पाठशाला जाना है।" कहकर वेदवती चली, साथ-साथ सुशीला भी गौर करती हुई चली गयी।

दो साल और पार हो गये। कमला के स्वास्थ्य में पुनः भादों की बाढ है। भरी-पूरी परन्तु समय की तमिस्र तिथि के भीतर, सधी हुई चाल से, ठीक अपने ही समुद्र की ओर बहती जा रही है।

राजकिशोर के स्नेह की कमला महिलाओं मे सर्वत्र चरित्रबल, आदर्श-प्रीति

के कारण सम्मान तथा प्यार की पात्री वन रही है। स्त्रियाँ उसे देवी के भाव से, मन-ही-मन अपना आदर्श मानकर, पूजती हैं।

राजकिशोर अव सोलहवें साल का तरुण, प्रवेशिका-परीक्षा का कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी है। सोलहवें साल मे ही वह फूटकर जवान हो गया है। रोज कसरत करता, जोर करने के लिए अखाड़े जाया करता है। कमला का वाहरी लक्ष्य है भाई और भीतरी पति-धर्म।

प्रातः स्नान करती है, कुछ देर रामायण-पाठ, फिर अपने कार्य में लगती है। रमाशंकर अव उसके लिए कोई वाहर का मनुष्य नही, वह अब उसकी आत्मा में अर्थमय वनकर है। इसलिए अव कामना-जन्य प्रेम का खिचाव उसके चित्त को हिला नही सकता। वह अव सव समय अकाम तपस्या-सी जीवन के कूल पर खड़ी अपने ही रमा-रूप के शंकर-शुभंकर निस्सीम सुन्दर को तन्मय देख रही है।

इसी समय कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में दगे की वुनियाद पड़ी। एक रोज वड़ा हंगामा भी हुआ। दोनो तरफ के अनेक घर लुटे, फुँके और ढहा दिये गये। हजारो आदमी काम आये। जो हिन्दू-मुसलमानों की बस्ती मे थे, उनके घर फूंककर, माल लूटकर, आदमियो को मारकर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों मे डाल लिया। ऐसा ही हिन्दुओं ने भी किया। अपने मसरफ मे न आने लायक जानकर उन्होने मुसलमानो की महिलाओं का भी वध कर डाला।

दोनों जातियों के लोग अपने-अपने दलो के भूले-भटके, गायब-शुदा लोगों की तलाश मे लग गये। उसी समय एक मुसलमान के घर से दो हिन्दू-युवतियाँ वरामद हुई। राजकिशोर हिन्दू-दल मे था। निस्सहाय जान अपने घर मे जाँच होने तक जगह देने को राजी हो गया, और कमला के पास लिवा लाया।

उन्हें नहला, वस्त्र दे, जलपान करा कमला ने परिचय पूछा। दोनों भले घर की स्त्रियाँ जान पड़ती है, वहुत ही दहशत खायी हुई। एक व्याही हुई घर की बहू-सी है; दूसरी क्वारी। युवती सत्रह साल की, वालिका पन्द्रह साल की है।

वालिका वोली, "यह मेरी बहूजी है। मेरे भाई रमाशंकर वाजपेयी यही काटन-मिल के वावू है। मेरे पिता का नाम रामचन्द्र वाजपेयी है। भैया का पता नही है। पिताजी घर में थे, पर हम लोगों से नहीं मिले। कुछ मुसलमान घर लूट-कर हमें अपने साथ ले गये थे।"

कमला चकित हो गयी। वड़ी देर तक सोचती रही। फिर राजकिशोर को अलग वुला, सव हाल समझाकर अस्पतालों मे पता लगाने के लिए कहा। फिर युवतियों के भोजन पकाने का इन्तजाम करने लगी। मौसी गाँव गयी थीं।

पण्डित रामचन्द्र और रमाशंकर अस्पतालों मे मिले। दोनों के सिर पर चोटें थी। रमाशंकर डेरे जाते समय घायल हुए थे। 4-5 दिन वाद अच्छे हो गये। राजकिशोर स्वयंसेवक की हैसियत से देख आता था, पर अपना परिचय नही दिया। युवतियाँ कमला के यहाँ प्रसन्न रहती रही। उनका पूरा परिचय तो कमला ने प्राप्त कर लिया, पर अपना पूर्णतः छिपा रक्खा।

पिता-पुत्रों के लिए 4-5 दिनों तक भोजन कमला घर से ही भेज देती थी। उन्हे हाल मिल चुका था कि उनकी वहू और कन्या सुरक्षित हैं। पाँचवें दिन अच्छे

होकर वे कमला के घर आये। साथ राजकिशोर भी था।

रमाशंकर तथा उनके पिता ने वह सब हाल जिस तरह उनकी महिलाएँ एक मुसलमान के घर से निकाली गयी थी, राजकिशोर ने कहा। वाजपेयीजी ने प्रत्युत्तर मे उसका निवास-स्थल पूछा। राजकिशोर ने रायबरेली-जिले के बई मुकाम के पास बतलाया।

मकान आ, अपनी महिलाओ को लेकर विदा होते हुए पण्डित रामचन्द्रजी बार-बार हाथ जोडकर बालक राजकिशोर से प्रार्थना करने लगे, "आपने हमारा पूरा-पूरा उद्धार किया है। अब इतनी कृपा और कीजिए कि इस मामले का भेद कही खुलने न पावे, नही तो हम किसी तरफ के न रहेगे।" रमाशंकर की भी पिता के शब्दो से सहानुभूति थी।

राजकिशोर पृथ्वी की तरफ देख रहा था। आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें टपक रही थी। कुछ सँभलकर कहा, "नही वाजपेयीजी, आप निश्चिन्त रहिए। जैसी हमारी इज्जत, वैसी ही आपकी है।"

पं. रामचन्द्रजी घर गये, तो देखते हैं, उनके जाने से पहले गाँव-भर में उनकी बहू और बेटी की मुसलमान के घर रहनेवाली खबर फैल चुकी है। घर मे उन्ही के सगे भाई ने कहा कि घर मे अभी आपका रहना नही हो सकता, क्योंकि आपके पीछे हम बे-धरम तो हो नहीं सकते, हमारे भी छोटे-छोटे बच्चे है, उनके भी जनेऊ और ब्याह हमें करने हैं, सब लोग हमे छोड देंगे, तो हम सिर्फ आपको लेकर करेंगे क्या ?···आप तब तक ढोरवाले घर मे रहिए, हम भैयाचारों को बुला लाते हैं।

पं. रामचन्द्र और रमाशंकर बडे घबराये, पर उपाय न था। ढोरवाले घर में गये। शाम को भैयाचारो का जमाव हुआ। सबने राय दी कि "तुम लोग गधे बन गये हो, अब लाख धोने पर घोड़े नही बन सकते। इसलिए अब अपना परिवार लेकर अलग रहो।"

लाचार होकर पं. रामचन्द्रजी को अलग होना पड़ा। गाँव में जहाँ उनके प्रबल प्रताप से सभी वर्ण काँपते थे; जिसके मकान में वह पानी पी लेते थे, वह अपने को कृतार्थ, इन्द्र-तुल्य समझता था, उन्ही वाजपेयीजी के लिए किसी शूद्र का पानी छू लेना दुश्वार हो गया।

इतने अपमान मे वे गाँव मे न रह सके। अपने पुत्र तथा परिवार के साथ पुनः कानपुर चले गये। दगे के कारण बहुत दिनों तक व्यवसाय बन्द रहा।

लडकी जवान हो चुकी थी, और भैयाचार छोड़ चुके थे। पता लगाकर विवाह करनेवाले कनवजिए फँस नही सकते, इस विचार से एक दिन राजकिशोर के यहाँ गये। बातचीत से मालूम हुआ, वह अभी कुँआरा है, और गोपाल का तिवारी, उनसे कुछ ही हेठा पडता है। पर ऐसे विवाह दोषवाले नही कहलाते। यह सोच-कर वाजपेयीजी ने राजकिशोर से उसके अभिभावक को पूछा। राजकिशोर ने पूछने का कारण पूछा। वाजपेयीजी ने कहा, "तुम्हारा विवाह अपनी लड़की से करना चाहते है, रमा कहता है कि बहन को उन्होंने बचाया है, अब उन्ही से उनका विवाह कर देना ठीक होगा।"

राजकिशोर ने कहा, "विवाह की वातचीत मेरे अभिभावक पक्की कर लेंगे, आपको दिक्कत न होगी, पर आप रमाशंकरजी को लेकर कल आइए, मैं अपने अभिभावक से भी कह रक्खूंगा।"

दूसरे दिन पं. रामचन्द्र तथा रमाशंकर आये। कमला अनावृत-मुख मन्द-पद सामने आकर खड़ी हो गयी।

रमाशंकर ने पिता से कहा, "यह तो प. शिवरामजी की लड़की है!"

कमला ने कहा, "आपकी इच्छा होगी, तो ऐसी स्थिति में मैं विवाह करने को तैयार हूँ, क्योंकि आपको उठा लेना मेरा धर्म है।"

['सरस्वती', मासिक, प्रयाग, मार्च, 1932। लिली में संकलित]

श्यामा

पण्डित रामप्रसादजी पहलेपहल सरकारी अँगरेजी स्कूल मे हिन्दी के शिक्षक थे, अव स्थानीय सरकारी कर्मचारी भक्तों के यहाँ रामायण पढते है। थोडी वैद्यक भी इन्ही की सिफारिश से जमीदार और तअल्लुकेदारो मे चला ली है। जव इस तरह आमदनी ज्यादा हो चली, सम्मान वढ़ गया, और अवकाश उठती धूप से पेड़ की छाँह की तरह घटने लगा, तव एक दिन शिक्षकवाले सापेक्ष पद के डण्ठल को पके फल की तरह परित्याग कर दिया।

जिन दिनों स्कूल में पढाते थे, वंगला-उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी की पडती जमीन पर, ढाक के झाड़ों की तरह, अविश्राम उग-उगकर छा रहे थे। पति-भक्ति से ओत-प्रोत इन उपन्यासों के प्रति समुदाय का आज से सौ गुण अधिक समादर था। ऐसे-ऐसे उपन्यास खासतौर से वंकिमचन्द्र के, पं. रामप्रसादजी पुस्तकालयों से इसलिए लाते थे कि उन्हीं दिनो आठ सौ रुपये में एक अट्ठारह साल की युवती कन्या मोल लेकर उन्होने नया विवाह किया था—उसे सुनाते थे।

उन्ही दिनों वंगला-उपन्यासों की वाढ़से हिन्दी की नयी सन्तानों के नामकरण में भी युगान्तर आ गया था। रामदास, शिवप्रसाद, कालीचरण आदि नामों की पौराणिक पराधीनता वल खाते हुए वंगालियों के वासतिक वालो से दवकर दम तोड़ रही थी, और 'शिशिर', 'विनोद', 'प्रदीप', 'प्रमोद' आदि स्वतन्त्र-पत्रो की तरह वास्तव-साहित्य की डालों पर, घर-घर उग चले थे। वालिकाएँ लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और यमुना आदि की मन्द रूढ़ियों से छुट छुटकर आशा और लता आदि से ललित, लचीली होकर, साहित्य के विटप से लिपट रही थी। यह लालच भगवान् ही जाने क्यों, पं. रामप्रसादजी भी नही छोड़ सके। विवाह के साल ही

भर में उत्पन्न हुए लड़के का नाम वंकिमचन्द्र रक्खा। पर, वड़ा होकर, गाँव जाकर, गाँववालों के स्वाधीन उच्चारण मे, एक ही रोज में, वंकिम वाँके वन गया।

पं. रामप्रसादजी वाकायदा कर्मचारी भक्त-वृन्दों के यहाँ रामायण पाठ करते है, कभी यहाँ, कभी वहाँ। अपने उदात्त व्याख्यानो द्वारा यह विश्वास उन्होंने उनमे जमा दिया है कि रामायण के वर्णन मे आया हुआ विहवावलपुर ही आजकल की वलायत है। वहाँ जानेवालों के राक्षसभाव, भोजन-पान तथा संग-संसर्ग आदि दोषों के कारण, चूंकि प्रवल हो जाते है, इसलिए करुणा-निधान महाराज श्रीरघुनाथजी उन्हें अपने चरणारविन्दो मे स्थान नही देते। ऐसे कई और भी महत्त्वपूर्ण अन्वेषण उन्होने रामायण से किये हैं। वे भक्तगण व्यर्थ के लिए रामायण न सुनते थे। वे पाप करनेवाले थे, तरने की आशा रखते थे। वे सव सरकारी नौकर थे, तनख्वाह सौ से सिर्फ तीन-चार सौ तक पानेवाले, पर रिश्वत से, धर्म की आम सड़क से उतरकर, अदालत या अपने ऑफिस की गली और कूचे मे, महीने में हजारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अधिकांश ऐसे थे, जो पाप पूरा कर चुके थे, अव पेंशन लेकर, प्रायश्चित्त कर रहे। उन्ही मे से किन्ही-किन्ही के सुपुत्र वलायत भी गये थे; पर चूंकि वलायत न जाने पर ही पिता ने पापो के हिसाववाला काफी मोटा खाता तैयार कर लिया था, इसलिए पुत्र के वर्तमान और भविष्य पापों के निश्चय पर उन्हें रत्ती-भर शंका न होती थी, पुनश्च उन्होने किसी निष्काम साधना के लिए पुत्र को वलायत तो भेजा न था। अत: पण्डितजी को कसौटी पर खरा पाकर, नाराज होने के वदले सभय प्रसन्न होते थे।

उधर ऐसी व्याख्या करनेवाले प. रामप्रसादजी, इधर, पुत्र को, वड़ा होने पर, अँगरेजी स्कूल पढ़ने के लिए भेजने लगे। वंकिम ने भी दसवें तक पहुँचकर, नाम के अनुसार, वाममार्ग ग्रहण किया। अर्थात सिगरेट से शुरू कर अण्डे-कवाव के प्रवेशिका-द्वार पर पैर रक्खा। उधर फेल हुआ, इधर पास। माता एक साल पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थी। एक वहन थी सरला, पिता ने नवे साल उसे भी ससुराल भेज दिया था। यदि उच्च कुल होता, तो अव तक वंकिम भी एक वच्चे का वाप हो चुका होता।

वंकिम के आचरणो का पहले पिता को पता न था। जव हुआ, तव वदनामी से डरकर उसे घर भेज दिया।

घर मे ताला लगा रहता था। वरसात में कुछ पहले जाकर पं. रामप्रसादजी मरम्मत करवा आते थे। वगल ही एक दूर के भैयाचार रहते है। वंकिम को रोटी खिला दिया करते है। पं. रामप्रसादजी का एक वाग गाँव में है, कभी-कभी उसका चारा इन्हें मिल जाता है। हिसाव से फायदा रहता है।

आम पकने लगे हैं। शीघ्र पं. रामप्रसादजी भी आम खाने के लिए आनेवाले हैं।

गाँव की हँसती हुई वाहरी प्रकृति से तो वंकिम को वड़ा प्रेम है, पर रूढियों पर चलती हुई लोगों की भीतरी प्रकृति के तद्रूप घृणा। वहाँ का जीवन जैसे मशीन के चाको की तरह दूसरे ताप से चल रहा हो, स्वयं लोह-खण्ड की तरह निर्जीव, निष्पन्द। इसलिए वहाँ उसका हृदय नही मिलता, सभी के लिए हृदय से वह विदेशी वन गया है।

अपाढ का महीना, एक सप्ताह बीत चुका है। बादलों के टुकड़े आकाश में क्रीड़ा करते हुए इधर से उधर दौड रहे हैं। पलकों को हलकी कर, कभी पूरव से पश्चिम कभी पश्चिम से पूरव को, ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही है। किसान आमों की अच्छी फस्ल होने से सुखी हैं। सभी के मुरझे कपोलों पर हँसी खेलती है। दो-एक दौंगरे गिर चुके है। हल चल रहे हैं, कहीं-कहीं जुवार, अरहर, तिली, बाजरे आदि बोये जा चुके है, कहीं बोये जा रहे हैं। छोटे-छोटे कपास के पौधे किसी-किसी खेत में उग रहे है। ईख लहरा रही है—उठायी मेड़ें वारिश से कहीं-कहीं छट गयी हैं। देहात वरसात के आगम से प्राणो मे सुख-स्पन्द पाकर प्रसन्न है। बागों की हरी-हरी घास के मखमली गलीचों पर गाँव के गरीब बच्चे छुई-छुअल, गुलहड़, गिली-डण्डा खेलते, अखाड़े गोड़कर कूदते, कुश्ती लडते हुए अपने-अपने आमों की रख-वाली कर रहे है। सुबह से एक पहर दिन तक गाँव के प्राय: सभी बाल-वृद्ध-युवक, किसानों की स्त्रियाँ, आम लेने, पेड़ हिलाने के लिए बागों में ही एकत्र चहल-पहल करते हुए मिलते हैं।

इन्हीं के बीच अपने बाग में, आज बंकिम भी बैठा हुआ है। पिता के शासन से घबराकर, अपने भविष्य-पट पर अपटु चित्रकार की तरह, पूर्णच्छवि को खींचने को काँपती, पराङ्मुख तूलिका मानसिक शक्ति से फेरता जा रहा है। उसे इस काम में बडी देर हो गयी, पर कोई पूरी तस्वीर उसके भविष्य-साफल्य-सी सामने न आयी। जैसे तट-ज्ञान से शून्य, बीच समुद्र में पडा हुआ युवक, दिग्यन्त्र के बिना नाव को इतस्तत: खेता रहता है, इस प्रकार केवल काल्पनिक श्रम वह कर रहा है। उसके घर के लोग बाग से आम बीनकर घर चले गये, धीरे-धीरे और-और लोग भी रात के गिरे आम बीनकर, पकते पेडों को हिलाकर, हिस्से लगाकर अपना हिस्सा लेकर पडोसियों, हिस्सेदारों के साथ चले गये, बंकिम बैठा सोचता रहा।

मधुर-मधुर हवा के झोंके से चेतना आने पर पलकें खुली, तो देखता है, आकाश और पृथ्वी की सजल श्यामलाभा के भीतर, वर्षा की ही नवयौवना स्वस्थ श्याम प्रतिमा-सी, एक युवती-बालिका, धीरे-धीरे, असंकुचित, मुस्किराती हुई, उसकी तरफ आ रही है। बंकिम प्रतिक्षा करने लगा, मन में खोजकर देखा, वह उसे पहचानता नहीं—आवाज आयी। बालिका बंकिम के बिलकुल पास आ गयी, और निस्संकोच वैसे ही बोली, "तुम कहो, तो इधर के गिरे हुए आम बिन लूं।"

उसके चेहरे की ओर देखकर, उसे गरीब किसान की लड़की जानकर बंकिम ने कहा, "बिन लो।"

बालिका धीरे-धीरे चल दी।

चार कदम चली थी कि 'ए—' पुकारकर बंकिम ने पूछा, "तेरा नाम क्या है?"

बंकिम की इस बेवकूफी पर शहर के अहमकों की हेकडीवाली सुनी कुछ बातें एकसाथ उसे याद आ गयी; मन-ही-मन हँसकर, बंकिम को क्षमा कर बोली, "मेरे घर के सामने से तो रोज आते हो, मेरे बाप को नहीं जानते क्या?" कहकर द्रुत लाज के पग एक पकते पेड के नीचे जा आम बीनने लगी।

बंकिम को उसका यह वाक्य पूरा रहस्यवाद जँचा। उसका पिता कौन है,

उसका घर कौन-सा हो सकता है, जो कई घर गली से होकर निकलते हुए पड़ते है, उनमे; यह कुछ वंकिम की समझ मे न आया। जो कुछ वह समझ सका, वह वालिका की ही खुली वात का मर्म, उसका निर्भय व्यवहार, उसका अनुपमस्वास्थ्य था। शहर में अनेक पढी-लिखी, विचारों मे वढी हुई वालिकाएँ उसने देखी थीं। पर इतना आकर्षण उसे उनमें नही मिला। इसके चपल लावण्य मे वह न समझ सका कि लुभानेवाला, मन को वलात् वशीभूत कर लेनेवाला कौन-सा जादू था। वैठा एकटक उसे देखने लगा। वालिका घूम-घूमकर अच्छे-अच्छे पेड़ों के आम उठाती रही, गति मे वह विलकुल नही भटकती, जैसे अच्छे आमवाले पेड़ पहले से पहचानती हो।

देखते हुए वंकिम को स्वभावतः उसके पिता को जानने के वहाने वातचीत करने का कौतूहल हुआ। वह उठकर उसकी ओर चला। वालिका का आँचल आमों से भर चुका था।

"तुम्हारे वाप का क्या नाम है ?" पास जाकर अज्ञ की तरह तअज्जुव से पूछा।

वेवकूफ समझकर वह फिर मुस्किरायी। "क्यो ?" खिलकर वोली, "मेरे वाप का नाम सुधुआ है।" कहकर चलने को हुई, तो वंकिम ने सहृदय अज्ञ की तरह फिर पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ?" हँसकर, आप ही अपने मे हवा की तरह लिपटकर वालिका वोली, "मैं अपना नाम नही कहती।" द्रुत फिर खाई की ओर चल दी। वंकिम खडा देखता रहा, वह खाई पार कर गाँव को चली गयी।

सुवह को दूसरे दिन वाग जाते समय द्वार पर ही सुधुआ वंकिम को मिला। पालागन कर आमों के लिए वार-वार विनयपूर्ण प्रशंसा करने लगा कि वड़े मीठे आम कल उसके वाग के उसने खाये, ईश्वर करे जल्द उसका विवाह हो, घर वहू आये। सिलसिले मे यह भी उसने कहा कि अवके तंगदस्त रहने के कारण वह आम मोल नही ले सका, नही तो वंकिम के वाग की वगल मे ही शुक्लो के 'हजारे' मे वह कई साल तक एक रुपये का हिस्सा लेता रहा है।

इतनी वात के वाद उससे कुछ वातचीत करना वंकिम का फर्ज हो गया। उसने पूछा कि इस साल वह तंगदस्त क्यों हो गया, और उससे छुटकारा पाने को वह कुछ कर रहा है या नही ?

किसान अपने दु:ख की वात वड़े करुण साहित्यिक ढंग से कहते हैं, यदि कोई सहृदय श्रोता मिल जाय। सुधुआ खडा था। वंकिम को वैठने के लिए चारपाई डालकर एक वगल जमीन पर वैठ गया।

हथेली से अपना सिर पकड़कर, कुछ खाँसकर, सँभलकर वोला, "महाराज, आठ रुपये वीघे के हिसाव से जिमीदार दयाराम महाराज ने तीन वीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतो को खूव वनाया, खाद छोडी, जव खेत कुछ देने लगे, तव परसाल इन्होंने वेदखल कर दिया, पहले इज़ाफ़ा लगान वीघा पीछे पाँच रुपये माँगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय ? फिर उन्ही जिमीदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी।

उन्होंने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिलकुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें, तो महाजन उधार नहीं देता। भूखो मरा नहीं जाता। खेती मे साढ़े बारह का पूरोपूर डाँड़ पड़ गया। कुछ न हुआ। एक बैल था, साझ में जोत लेते थे, वह भी मरा, इधर श्यामा की अम्मा थीं, वह भी भगवान् के यहाँ गयी। परमात्मा ने सब तरफ से बैठा दिया। अफसोस-अफसोस मुझको भी दमा हो गया है। काम होता नहीं। उस किस्त का किसी तरह पाँच रुपया चुकाया था। अबके कुछ भी डौल नहीं। बरखा आ गयी। छप्पर वैसा ही रक्खा है। कहाँ से पैसे आवें, जो छाया जाय! मिहनत-मजूरी का बल नहीं है। श्यामा दूसरे की पिसौनी करती है, तब दो रोटी तीसरे पहर तक मिलती हैं।"

बूढ़े सुधुआ को जोर की खाँसी आ गयी। घर के भीतर चक्की चल रही थी। जब सुधुआ सँभला, तब बंकिम उठकर खड़ा हो गया। ऐसी स्थिति में वह क्या कर सकता है, उसकी समझ मे न आया। सुधुआ भी केवल करुणा प्राप्त करने के सिवा उससे दूसरी मदद न चाहता था। वह भी जानता था, यह अभी खुद अपने मुख्तार नहीं हैं। इसी समझ और सहानुभूति के भीतर बंकिम ने आज भी आम ले जाने के लिए श्यामा को भेज देने को सुधुआ से कहा। विनयपूर्वक सुधुआ ने स्वीकार कर लिया। कहा, "अभी पीसती है; उठेगी, तो भेज दूँगा।"

बंकिम बाग चला गया। वहाँ से दूसरे-दूसरे बागों मे टहलता हुआ लड़कों से पूछ-पूछकर अच्छे-अच्छे पेड़ो के आम खाने लगा। निगाह अपने बाग की तरफ रक्खी।

बड़ी देर हो गयी। दूसरे बागों से वह अपने बाग मे आ गया। उसके भैया-चार घर के लड़के आम बीनकर बाग से चले गये। और-और लोग भी धीरे-धीरे जाने लगे। क्रमशः बाग खाली हो गये। बंकिम बैठा श्यामा की राह देखता रहा। पर वह न आयी।

एक-एक बार गाँव के रास्ते की तरफ देखकर, अन्त मे हताश होकर बंकिम खुद अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने को चला। तुख्मी सुफेदे का एक पेड़ खूब पक रहा था। चढ़कर एक डाल हिलायी। उतरकर आम बीन लिये। एक डाल तुख्मी दसहरी की हिलायी। कुछ शरबती के आम गिराये, कुछ शाहाबादी के। धोती का छोर फैलाकर सब बाँध लिये। उसके ले जाने-भर को हलका खासा बोझ हो गया! धोती चोपी से भर गयी। कुर्ते मे भी दाग लगे। पर इसकी चिन्ता न की। कन्धे पर रखकर ले चला। एक साधारण किसान को इस तरह एक ब्राह्मण का आम ले जाकर देना कहाँ तक ठीक है, उसने कभी नहीं सोचा। उसे इस तरह ढोकर आम देते हुए देखकर लोग क्या सोचेंगे, उसे अनुभव न था। जब द्वार पर आम ले जाकर पहुँचा, तो देखता है, जमींदार के दो सिपाही दोनो तरफ से सुधुआ के कान पकड़े हुए डेरे की ओर लिये जा रहे हैं, श्यामा सजल आँखो से एकटक पिता को देख रही है।

आम क्या करे, बंकिम कुछ सोच न सका, जैसा पहले सोच रक्खा था, उसी के अनुसार, जैसे नियन्त्रित यन्त्र हो, श्यामा के सामने गाँठ खोलकर कुर दिया। इस समय एक सिपाही ने फिरकर देखा।

एक सहृदय मनुष्य को देख दुखी श्यामा ने कहा, "मेरे बापू को पकड़े ले जा रहे हैं, मारेंगे, तुम बचा लो !"

सुधुआ की वैसी दशा देखकर सिपाहियों पर वंकिम को गुस्सा आ गया था। रूपड़ेपन ने पूछा, "क्यों मारेंगे ?"

"साढ़े सात रुपये लगान के बाकी है।" कहकर आँचल मे श्यामा ने आँसू पोछ लिये।

वंकिम झपटता हुआ चला गया।

वंकिम के पास रुपये न थे। हाथ मे एक अँगूठी सोने की थी। उस पर कुछ कीमती एक नग था। पिता से उसने सुना था, अँगूठी दो सौ रुपये की है। भैयाचार के घर रुपये देने के सिवा पाने की आशा न थी। निकट ही दूसरे गाँव मे एक अच्छे महाजन थे, उनका नाम उसने गाँव में सुना था कि मालदार आदमी हैं। सीधे उन्ही के यहाँ गया। उन्होने बड़ी देखभाल के बाद कहा, "आप हमारे मित्र पं. रामप्रसादजी के लडके हैं, आपको जरूरत पड़ गयी है, इसलिए हम तीस रुपये आपको देते हैं, यो हमारी निगाह इसमे दस रुपये से ज्यादा का सोना नहीं, और नग के लिए चार-पाँच जोड लेते हैं।" नग के हीरे से एक शीशे को खरोचकर, हीरे की पूरी परीक्षा कर उन्होने कहा। वंकिम को लगा तो बहुत बुरा, पर उपाय न था। वह उस अँगूठी की कीमत से सुधुआ का दारिद्र्य भी दूर कर देने का हौसला लेकर गया था। सोचा था, बेचकर, लगान चुकाकर, गाँव से भगने का सिर्फ रास्ता-खर्च लेगा, बाकी सब सुधुआ को देकर गाँव के कसाई जमीदार को समझा दिया जायगा कि गरीब किसानों को किस तरह प्यार करना धनी कहलानेवालो का धर्म होता है। पर आशा की वहाँ जड ही कट गयी। अँगूठी रेहन कर, सिर्फ तीस रुपये लेकर वह तेज कदम सीधे डेरे को गया।

तब तक वहाँ सुधुआ की सब दशा हो चुकी थी। बेंत की मार से उसकी पीठ फट चुकी थी। नीम के पेड के नीचे बेहोश मुँह के बल पड़ा था। मुश्कें बँधी थी।

सामने गलीचा-बिछे तख्त पर जमीदार दयाराम दोहरे के बाद तम्बाकू खाने का उपक्रम कर रहे थे। गाँव के भले आदमी कहलानेवाले प्रायः सभी लोग चारपाइयो पर बैठे बलि के बकरे की निगाह से मालिक दयाराम की ओर देख रहे थे। दोनो सिपाही तख्त के सामने लट्ठ लिये हुए खड़े थे।

सुधुआ को देखकर वंकिम को कुछ क्षण काठ-सा मार गया। निश्चल देखता रहा। फिर आगे जमीदार की ओर बढ़ा। जमीदार लोग व्यवहार-कुशल होते ही हैं, फिर दयाराम पर विद्या ने भी ठेठ-जमीदारो पर की-सी दया नहीं की—अपना काम और अदालत के कागजात यह आप देख लेते है। आदर से बुलाकर, बैठाकर, आने का कारण पूछा।

"आपने इसे मारा क्यो ?" वंकिम ने पूछा।

"भाई मेरे, तहसील-वसूल का तो यह कायदा ही है। ये मारे न जायँ, तो न इनके रुपयेवाले गढ़े से मिट्टी हटे, न लगान दें।" दयाराम हँसने लगे।

"आप जानते हैं। इसने इस साल आम भी नहीं लिये, इसके पास एक रुपया भी न था।" तेज गले से वंकिम ने कहा।

"ये सब चकमे हैं। बाहरी ऐसा रूपक न बाँधें, तो भीतर की बात खुल जाय।" दयाराम ने जनता की तरफ रुख करके कनखियों से राय ली।

एक ही अर्थ की भिन्न-भिन्न अनेक ध्वनियाँ हुईं, "मालिक को सब मालूम है।" "जैसे पेट की बात ताड लेते हैं।" "तभी तो भगवान ने भागवान बनाया है।" आदि-आदि।

प्रसन्न होकर उन्हीं लोगों से दयाराम फिर कहने लगे, "अभी यह लड़के हैं, दुनियादारी का हाल तो कुछ मालूम है नहीं, स्कूल मे पढ़ते हैं, बस, भड़क गये।"

वंकिम को असह्य हो गया। बोला, "आप लोग मजाक करते है, उधर उसके मुंह में चुल्लू-भर पानी छोड़ना भी रोक रक्खा है, वह मर रहा है, आप लोग दुनियादारी समझा रहे हैं।"

"आपकी इच्छा हो, तो घड़ों पानी उसके मुंह मे छोड़िए, पर रुपया भी आप देंगे, या सिर्फ पानी छोड़ने के लिए आये हैं?" कुछ गर्म पड़कर कुछ मजाक के स्वर से दयाराम ने कहा।

साथ ही गाँव के और-और उनके भक्त लोग कह उठे, "मालिक की बात, रुपया कौन गाँठ खोलकर देता है?"

वंकिम आग हो गया। उसी तरह गर्म होकर पूछा, "कितने रुपये है आपके?"

"साढ़े सात।" हँसकर दयाराम वंकिम की ओर देखकर बोले, "देते है आप?"

"हाँ, ये लीजिए।" आठ रुपये वंकिम ने तख्त पर रख दिये, कहा, "अब लिख दीजिए चुकता रसीद सुधुआ के नाम।"

गाँव के लोग एक-दूसरे को खोद-खोदकर मुस्किराने लगे, जिसका मतलब होता है—कैसा वेवकूफ है यह।

एक बार दयाराम को भी आश्चर्य हुआ। पर फिर उन्होने रुपये वजाकर अठन्नी वापस कर दी, और एक चुकता रसीद लिखा दी।

"यहाँ ये बहुत-से लोध हैं, इनसे कहिए, सुधुआ को इसके घर उठाकर रख आवें।" वंकिम ने कुछ विनयपूर्वक कहा।

दयाराम के दिल मे बात बैठ गयी। उन्होने दो लोधो को रख आने की आज्ञा दे दी।

वेहोश सुधुआ के साथ वंकिम डेरे से चला गया।

"मालिक, अभी तक झमेले मे मुझे याद न थी।" एक सिपाही ने कहा।

"क्या?" दयाराम ने हँसती आँखें उठाकर देखा।

"आज यह बाग से गट्ठर-भर आम खुद लादकर सुधुआ के घर लाये थे।"

"अच्छा!"

"हाँ, मालिक।"

"क्यो जी देवीदयाल, (देवीदयाल गाँव के एक गण्य ब्राह्मण है।) यह क्या

बात है ?"

"अब क्या कहा जाय मालिक ?" दूर मर्म तक ध्वनि को पहुँचाकर देवीदयाल हँसने लगे।

वे दोनो लोध सुधुआ को छोडकर लौट आये। इनसे दयाराम ने पूछा, "क्यों रे, बाँके तुम लोगो के साथ गये थे, किधर गये ?"

"वही उसकी दवा-दारू का इन्तजाम करने को रह गये हैं।" हाथ जोड़कर एक ने कहा। दूसरे ने 'हाँ मालिक' कहकर गवाही दी।

"क्यो देवीदयाल, तुम लोग तो ब्राह्मणो के सिरमौर हो गाँव मे, कुछ समझ में आती है—क्या बात है ?"

"बात ऊपर रक्खी है। महा गँवार भी समझ जाय।" पं. देवीदयाल विशेष रूप अन्तर्मुख हो गये।

"तो समझ ही से सब हो जायगा ? आज समझ गये, कल पानी पिओगे, परसों एक साथ पूडी खाओगे, तो ठीक होगा ?" निरीक्षक की दृष्टि से देखकर दयाराम ने पूछा।

देवीदयाल पहले तीन विस्वेवाले कनवजिए थे, अब तेरह विस्वेवाले बनकर गाँव के ब्राह्मणो मे सिरमौर हैं। कहा, "पहले तो नीचे-नीचे से चलना चाहिए, फिर ऊपर आप बँध जायगा; इन लोधों से पूछिए, हुक्के के लिए क्या कहते हैं—देंगे सुधुआ को हुक्का ?"

"क्यो रे, तुम लोग क्या कहते हो ? बात कुछ आती है समझ में ?" अपनाते हुए दयाराम ने पूछा।

"अब भी कुछ बाकी समझने को रह गया है मालिक ? कल से हुक्का-पानी कोई देगा, तो आप भुगतेगा।" लखुआ ने पूरे आत्मसम्प्रदान के स्वर से कहा। फिर गाँव के झींगुर, बुलाकी, नथुनी आदि लोधों से अपने-अपने टोले में मना कर देने को कह दिया। सब लोध सच्चे डपोरशंख की तरह मुख बाए, समझकर सिर हिलाकर राजी हो गये।

देवीदयाल ने कहा, "इन सूदों का कौन भरोसा, कहो चुल्लू-भर मे लुटिया डुबो दें।"

लखुआ तेज आँखों मे देवीदयाल को देखकर बोला, "सुनो महाराज, हम बाँभन नही हैं, जो कुरमी-काछी, तेली-तमोली, सबकी पूरियो मे पहुँचा पेल दें। हम है लोध—लोध का बच्चा कभी न कच्चा। अब खरी न कहलाओ। रूका बुआ को लोगो ने पकड़ा, सबने छोड़ दिया, फिर तुम्ही पिलकर सत्यनारायण की कथा मे खा आये।" कहकर सदर्प आँखें फेरकर जमीदार को भक्ति-भाव से देखने लगा।

पं. रामप्रसादजी गाँव आनेवाले थे। आज आ गये। घर पहुँचकर सुना कि बकिम के सम्बन्ध मे कोई मामला डेरे पर चल रहा है। उसी वक्त डेरे चल दिये। पं. रामप्रसाद को देखते ही देवीदयाल ने धीरे से कहा, "अब गठ गया मामला, यह भी सपूत की करनी अपनी आँखो देख लें।"

सब लोग स्तब्ध हो गये। जमीदार ने आदरसे बैठाला। फिर नमस्कार आदि

के वाद कुशल तथा लखनऊ के हाल पूछने लगे।

पं. रामप्रसादजी अपने सम्मान के विचार से गम्भीर होकर वोले, "सव कुशल है। इधर एक शिष्य के यहाँ विवाह था। न्योते पर जाना ही पड़ा। वह डिप्टी-कमिश्नर है। विवाह के समय भाषण करने के लिए कहा। हमने सोचा, विवाह का समय हो गया, किस विषय पर भाषण करें? फिर ब्रह्मचर्य-विषय पर कहा।"

रामप्रसादजी डब्बे से पान निकालकर जमीदार साहव को देने लगे। उन्होंने सिकुड़कर मुलायम-मुलायम जवाव दिया कि "देवीदयालजी गाँव के मान्य हैं, इन्हें पहले दीजिए।"

पं. रामप्रसादजी ने देवीदयाल की ओर हाथ बढाया। उन्होने कहा, "अभी स्नान नही हुआ। आप मालिक को ही दीजिए।"

रामप्रसादजी ने फिर मालिक की तरफ हाथ बढ़ाया। उन्होने पान ले तो लिये, पर सामने के एक कागज के टुकड़े में लपेटकर रख दिये।

गाँववालों के ऐसे स्वभाव से पं. रामप्रसादजी का काफी परिचय था। वह कई वार गाँव को ब्रह्मभोजवाली गुनहगारी अकारण दे चुके थे। स्वयं अच्छे ब्राह्मण न थे। प्राय: लोग पैरों पड़ते थे। इसलिए मन-ही-मन घवराये। सोचा, शायद वंकिम की सिगरेटवाली वात खुल गयी। इधर एक आदमी को जमीदार साहव ने एकान्त मे बुलाकर सुधुआ का मकान देख आने के लिए चुपचाप भेज दिया। वहाँ वाँके है या नही, वह देखकर वतलाये। फिर वैठकर फालतू वातचीत करने लगे।

लौटकर आदमी ने संवाद दिया कि वाँके वही पर हैं। तव, अपने लोगों के साथ रामप्रसादजी को एक आवश्यक दृश्य दिखलाने के उत्साह से लेकर, जमीदार साहव सुधुआ के मकान की तरफ चले। रास्ते में कहा, "आज सुधुआ की तरफ से साढ़े-सात रुपये लगान के वाँके ने दिये—गाँव मे लेन-देन करने के इरादे पर शायद आपने वाँके को भेजा है?"

पं. रामप्रसादजी सूख गये कि यह माजरा क्या है। प्रकाश्य वोले, "हमने तो ऐसी सम्मति उसे नही दी, उसके पास रुपये भी नही थे।"

अव तक सुधुआ का घर भी आ गया। भारतीय किसानो के घर में दरवाजे नही होते। सिर्फ टट्टर रहता है। रात को भेड़िए से वकरियों को वचाने के लिए एक डण्डे से वाँध दिया जाता है। फिर शूद्र के मकान में प्रवेश के लिए आज्ञा-विशेष आवश्यक नही। दरवाजा खुला था। सव लोग जूते समेत भीतर घँस गये। साथ-साथ पं. रामप्रसादजी भी गये।

जव रामप्रसादजी ने वंकिम को देखा, उस समय श्यामा पिता का शीश गोद में लेकर, कुछ उठाये हुए वैठी थी, वंकिम पड़ोस के गाँव से दवा ले आया था, झुककर मुँह मे डाल रहा था। कुछ झुकी हुई श्यामा करुणा-दृष्टि से पिता को देख रही थी। श्यामा और वंकिम एक ही लक्ष्य पर एकाग्र थे। कभी-कभी श्यामा के वाल, कभी-कभी कपोल और मुख वंकिम के गालों से छू जाता था। सुधुआ के जवड़े जकड़ गये थे, दोनों खोलकर दवा पिलाने के प्रयत्न मे थे। वहाँ ब्राह्मण और

लोध में सामाजिक जितने स्तरों का भेद है, वह न था। लोग खड़े यही देख रहे थे। लोगों की निगाह में श्यामा और वंकिम के सामीप्य का जो अर्थ था, उसके साथ सुधुआ का सहयोग विलकुल न था। वह मर रहा है, लोग यह नही देखते थे, वह क्या कर रहा है, इसका दूरान्वय कर रहे थे। प्रकट सत्य को छोड़कर अप्रकट तत्त्व को पहुँचे हुए थे। आँगन के दूसरी ओरवाले छप्पर के नीचे रोगी की सद्यश्च्युत पतझड़ के पत्र-सी जीर्ण शय्या थी। श्यामा और वंकिम अपना उत्तर-दायित्व पूरा कर रहे थे। लोगो की आहट नही सुनी।

जब वंकिम दवा पिला चुका, और साश्चर्य परीक्षक की दृष्टि से देख रहा था कि दवा मुँह से निकली आ रही है, उसी समय पिता की नीतिधर्म से गुरु वज्र-गर्जना सुनी, "क्यों चमार, धर्म को धोकर पी गया ?"

पिता के हितकर उपदेश से ताड़ित अनेकानेक भावनाओं की तड़ित् वंकिम की नसों मे तेज वह चली। अपनी स्थिति मनुष्यता की क्षिति पर खड़ा होकर अच्छी तरह समझा दे, यह इच्छा वदलती हुई मानसिक दृश्य को वल पहुँचाकर केवल शक्ति वन गयी—वह कुछ कह न सका, जो कुछ कहने को चला था, उसी ने रोक दिया।

पुत्र को चुपचाप खड़ा हुआ, तव तक भी निकलता न देखकर, रामप्रसादजी विना रोटी के तवे-जैसे, उसी की आग से, तप उठे, और पार्वत्य निर्झर की तरह प्रखर शब्द-गर्जन-स्वर से उस क्षुद्र उपल-खण्ड पर टूट पड़े। जब वह अपनी भाष्य और भाषण उभय प्रकार की शक्तियो से पुत्र के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे, उसी समय सुधुआ स्वर्ग सिधार गया—श्यामा पिता को हिला-हिलाकर ऊँचे स्वर से रोने लगी।

पूरी घृणा से पुत्र को सुनाकर कि उनके घर मे अब उसके लिए जगह नही है, पं. रामप्रसादजी वहाँ से निकल गये। साथ-साथ जमीदार तथा गाँव के और लोग भी 'बड़ा बेहया – नालायक है' कहकर चल दिये। लोध की लाश से ब्राह्मणो को क्या सहानुभूति ? वह तो उनके छूने लायक है नही। उसके सम्बन्ध में लोध सोचेंगे।

जो लोध वहाँ थे, वे चलते हुए। सीख दे देने की तर्जना श्यामा को सुना गये। वे जमीदार के किसान हैं। जमीदार खेत-पात देने के उनके काम आ सकता है। सुधुआ की लाश से उन्हे क्या लाभ—? फिर जब मालिक खुद नाराज है, और श्यामा अपनी राह पर नही।

वंकिम के कहने पर श्यामा गाँव-भर की विरादरी को पिता का मृत्यु-समाचार दे आयी, देर तक प्रतीक्षा करती रही, पर कोई न आया। तब वंकिम ने कहा, "जान पड़ता है, कोई न आवेगा।"

वकिम ने जिस काम का श्रीगणेश किया था, सोचा, उसे पूरा किये विना वाहर न जायगा, आखिर पिताजी ने तो घर से निकाल ही दिया। जब यथार्थ वात के समझदार यहाँ नही, तब यहाँ रहकर होगा क्या ? मन साथ-साथ श्यामा के लिए भी सोचता, इसका क्या होगा ? इसे भी तो भैयाचार छोड़ चुके है।

"अब शायद कोई न आवेगा बाबू !" श्यामा ने पहलेपहल वंकिम को सम्बोधन किया।

"यही मैं भी सोचता हूँ श्यामा !"

"तो अब क्या होगा ?" निराशा की साक्षात् प्रतिमा ने जैसे कहा।

"अब तो हमी-तुम हैं।"

"हम-तुम कैसे लहास गंगा ले चलेंगे ?"

"लाश गंगा पहुंचना कठिन है। श्यामा, तुम्हारी शादी हो चुकी है ?"

"हाँ।"

"तुम्हारी ससुराल यहाँ से कितनी दूर है ?"

"वह है जगतपुर में।"

"तो वहाँ से मैं तुम्हारे शौहर और ससुर को बुला लाता हूँ।"

"वहाँ अब कोई नही !"

"क्यो, कहाँ हैं ?"

"भगवान् के घर !"

"तुम्हारा शौहर ?"

"वह भी जब सात साल के थे, चले गये। सास है, उसने घर-बैठा कर लिया है।"

"तो तुम कहाँ जाओगी श्यामा ? मेरे पिताजी ने मुझे घर से निकाल दिया है, तुम सुन चुकी हो, अब मेरे लिए घर मे जगह नही है, आज ही रात आठ बजे-वाली गाड़ी से मैं कानपुर चला जाऊँगा।"

सुनकर, सजल आँखों से बढ़कर, श्यामा ने वंकिम का हाथ पकड़ लिया, "मुझे भी ले चलो बाबू, तुम्हारे वर्तन मलकर दो रोटी खा लूंगी, यहाँ मैं नहीं रहना चाहती।"

वंकिम चुपचाप खड़ा रहा। न-जाने कहाँ से एक शक्ति ने आकर उसे उभाड़ दिया। कहा, "अच्छा। सुनो। फावड़ा ले आओ। अब और जगह नही। तुम्हारे पिता को यहीं रक्खेंगे।"

श्यामा ने फावड़ा निकालकर दिया। वंकिम लाश के बराबर लम्बी जगह अन्दर जाकर खोदने लगा। पहले कुछ देर तक श्यामा देखती रही, फिर दुःख मे भी मुस्किराकर आकर फावड़ा पकड़ लिया। बोली, "तुमसे नही बनता। मुझे दे दो।"

वंकिम हाँफने लगा था। फावड़ा दे दिया। कोंछी का काँछा मारकर श्यामा खोदने लगी।

वंकिम कुछ दम लेकर बोला, "तुम्हें आदत है। तुम खोदो। तब तक मैं कफन खरीद लाऊँ।" कहकर वह पास के गाँव चला गया।

आज इस रास्ते लोधों का निकलना बन्द है। जमीदार डेरे पर यह कहकर गाँव गये हैं कि "जब तक दोनों हमारे पास न आवें, और माफी न माँगें, तब तक कोई इनसे बातचीत न करे।"

जब वंकिम श्यामा के पास आया, तब गढ़ा तैयार हो चुका था। सुन्दर खुदा

था। एक बार खड़े-खड़े वंकिम ने देखा। फिर कहा, "श्यामा, अब तुम दो घड़ा पानी ले आओ। लाश को रखकर एक में तुम नहा लेना, एक मे मैं।"

"लोहे का एक ही घड़ा है।" विनम्र स्वर से श्यामा ने कहा।

"मिट्टी, लोहे किसी के भी हों, पानी ले आओ।"

श्यामा एक मिट्टी और एक लोहे का घड़ा लेकर पास के खेतवाले कच्चे कुएँ से पानी लेने चली। तीन-चार स्त्रियाँ खेत मे मिली, देखकर आपस में बतलाने लगी, "ऐसा जगुआ गांव में अब तक तो किसी ने न किया था। एक यही नोखे की जवान हुई है!"

श्यामा के कानो मे आवाज पड़ी, पर पलकें झुकाकर चली गयी। मन मे कहा, 'ये अपने काम आनेवाली पड़ोसिनें है!'

घड़े भरकर लौट आयी। तब वंकिम ने लाश उठाने के लिए बुलाया। पैरों की तरफ श्यामा ने पकडा, सिर की तरफ़ वकिम ने। मौन कपोलों से बह-बहकर श्यामा के आँसू पिता के चरणों को धो रहे थे। दोनो ने लाश को नया कफन पहना, ढककर, गढे मे रख दिया, फिर मिट्टी छोड़ने लगे।

यह काम पूरा कर वकिम ने कहा, "श्यामा, अब सूरज डूब रहा है, हमको जल्दी करनी चाहिए। तुम्हारे यहाँ क्या-क्या है?"

"हल है, माची है, सेरावन है, और पुर-बरेत, हँसिया, गड़ासा, कुल्हाड़ी, यही खेती का सामान है, और दो लोटे, दो थाली, तवा-चिमटा, एक कराही, एक कल-छुल, एक घड़ा लोहे का, रस्सी और जांत।"

"अच्छा, नहा लो, फिर गीली धोती में बरतन बांध लो। मैं इधर को मुंह किये बैठा हूँ। फिर मैं भी नहा लूं। जल्दी चलें। फिर गाड़ी न मिलेगी।"

वंकिम मुंह फेरकर बैठ गया। श्यामा नहाने लगी। लोहे के घडेवाला पानी वकिम के लिए रख दिया। फिर वंकिम नहाया। श्यामा गीली धोती मे बरतन बाँधने लगी। नहाकर, उसी धोती को निचोड़कर वंकिम ने पहना।

अँधेरा हो गया था। स्टेशन करीब ही डेढ़ मील पर था।

बरतनवाला गट्ठर वंकिम उठाने लगा, तो श्यामा ने रोक लिया। कहा, "मुझे तो आदत है, मेरे सिर पर रख दो।" वंकिम ने रख दिया।

बाकी लावारिस सामान जमीदार के लिए छोड़कर उस सन्ध्या में दोनों हमेशा के लिए गाँव से निकल गये।

वंकिम कानपुर आकर एक धर्मशाला मे टिका। वहाँ से पता लगाकर आर्य-समाज के मन्त्री सत्यप्रकाशजी से मिला। सत्यप्रकाशजी ऊँचे दरजे के शिक्षित, प्रभाव-शाली मनुष्य हैं, अभी तक विवाह नहीं किया, करने का इरादा भी नही। वंकिम की कथा सुनकर हँसे। सामाजिक ऐसी अनेक प्रकार की व्याधियों की वह चिकित्सा करते रहते हैं, इसलिए अविश्वास नही किया। बल्कि सुनकर प्रोत्साहन देते हुए सब प्रकार की मदद करने को तैयार हो गये। उन्होने वंकिम को अपने यहाँ बुला लिया, और एक दिन आर्य-समाज मे दोनों का विवाह कर दिया। वंकिम के वीरोचित कार्य से वह इतने प्रसन्न हुए कि अपने वकील और कर्मचारी

मित्रों से कहकर खर्च के लिए प्रतिमास तीस रुपये चन्दा करा दिया, पन्द्रह स्वयं देते रहे, और उसे वही स्कूल मे भर्ती कर दिया। वंकिम और श्यामा की करीब बराबर उम्र थी। बाप का इकलौता लड़का होने के कारण अच्छी तरह पला था, जल्द तगड़ा, जवान हो गया था। संसार का एक ही प्रहार से पूरा परिचय हो गया था। वह जी तोड़कर पढ़ने में श्रम करने लगा। सत्यप्रकाशजी स्वयं तत्परता से उगे पढाते थे। अपने में मिला लिया। श्यामा के भी पढ़ने और दस्तकारी सीखने का प्रवन्ध हो गया।

कई साल हो गये, वंकिम अपने गाँव नही गया। वहाँ कितना परिवर्तन हो गया, पर गाँव के लोग अपने स्वभाव से जहाँ थे, वही ठहरे हुए हैं। अत्याचार उसी प्रकार होते हैं, प्रतिकार का मार्ग वैसा ही रुका है। पं. रामप्रसादजी ने फिर वंकिम की कोई खबर नही ली, मरते-मरते मर गये।

रामप्रसादजी का देहान्त होने पर जमींदार पं. दयाराम ने बाग में अपना कब्जा कर लिया। जो पडोसी भैयाचार थे, उन्हें वाहर से उन्होने भैयाचार स्वीकार ही न किया। गाँववालों को सिखला दिया कि कोई भैयाचार न कहे। घर मे भी अपना कब्जा कर लिया। वहाँ अपने वैल वँधवाने लगे। साल-भर से बाग के आम-महुए वही बिनवा रहे है। पहले भैयाचार ने जवानी खुशामद की, पर दयाराम न पसीजे, तव दावा कर दिया। उधर रामप्रसादजी की लडकी को भी कई महीने बाद पिता के गुजरने का संवाद मिला। वह दूर दूसरे जिले में व्याही थी। अब उसके एक लडका था। सरला पति और पुत्र के साथ जमीदार से मिली, और नाना की सम्पत्ति नाती को देने की बड़ी आरजू-मिन्नत की, पर जमीदार ने कहा, "हम दूसरे गाँव मे रहते हैं, हमको कुछ पता नही, आप उन्ही की लडकी हैं, आप अदालत से ले लीजिए।"

फलतः नावालिग बच्चे के वली ने अदालत मे दरख्वास्त दे दी। भैयाचार को भी इससे अपने हक के लिए लड़ने की हिम्मत हुई। इधर जमीदार दयाराम ने इन सबको उठल्लू और बाग को लावारिस साबित किया। कई महीने तक अदालत चली। जमीदार के गवाह सबसे मजबूत थे। नाती के सबसे कमजोर।

दयाराम चारो ओर से चौकस रहते थे। एक पेशी को गये, तो मालूम हुआ, नाती-पक्षवाले रिश्वत की पूरी तैयारी से डिप्टी-साहव से मिलने गये है, क्योंकि अदालत के गवाहों की कमजोरी उधर रुपये से पूरी करेंगे। दयाराम चलते-पुर्जे आदमी थे। शहर से बात-की-बात में सौ रुपये की डाली खरीदकर लगवा ली, और डिप्टी साहव के बँगले पर पहुँचे। देखा, वास्तव मे नाती-पक्षवाले डटे थे। डिप्टी साहव वाहर निकलनेवाले थे। दोनों पक्ष एक दूसरे को घूरते हुए स्वागत के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि डिप्टी साहव अपनी धर्मपत्नी के साथ बाहर निकले। सब लोग खड़े हो गये।

डिप्टी साहब ने दयाराम से पूछा, "इस बाग का हकदार कोई वंकिम है?"

"मैंने तो किसी वंकिम को नही देखा हुजूर!"

डिप्टी साहव की धर्मपत्नी श्रीमती श्यामकुमारीदेवी ने जमीदार पं. दयाराम-

जी की ओर उँगली उठाकर अपने अर्दली से कहा, "डालीसमेत इसे कान पकड़कर बाहर निकाल दो।"

सरला को संकुचित एक तरफ खड़ी देखकर डिप्टी साहब ने सस्नेह कहा, "सरला ! तू मुझे भूल गयी !"

बाग प. रामप्रसादजी के नाती को मिला।

डिप्टी साहब का नाम वेदस्वरूप है।

['रँगीला', साप्ताहिक, कलकत्ता, 4 जून, 1932। पुनः 'सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, के 1 अगस्त, 1933 के अंक मे ('आवारा' शीर्षक से) प्रकाशित। लिली मे संकलित]

प्रेमिका-परिचय

बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी. ए. क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल मे रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अँगरेजी हुकूमत मे बदल गयी है, पर उन्हे बादशाह-बाग की हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और बुलबुल के परिस्तान मे पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू-शायरी का अज़हद शौक, इश्क का नाज उठाते हुए चलते, पलको पर एक सदी पहले का स्वप्न। उदू के खुद भी कुछ अशआर लिखे है, कभी-कभी होज की बगल मे बैठकर पढ़ते हैं। होस्टल के मुशायरों मे सबसे ज्यादा चन्दा देते, हिन्दी के ज्ञान मे अक्षर-परिचय-भर, पत्रिका मे शेर खोज-खोजकर पढते है। तारीफ उसी पत्रिका की करते हैं, जो हिन्दी-अक्षरों मे उर्दू के शेर छापती है। मीर, गालिब, ज़ौक आदि के दीवान-के-दीवान बरज़बान याद, दाग को उस्ताद मानते हैं। होस्टल के छात्र उन्हें नव्वाब साहब कहते हैं। यों वहाँ दो-एक को छोड़कर सभी नव्वाब हैं, पर एक दर्जे मे पाँच साल फेल होकर शिकस्त न खानेवाले बाबू प्रेमकुमार इज्जत की सल्तनत मे बढ़ गये हैं। घर के अमीर है, कहते है, तहजीब सीखने के लिए लखनऊ आये थे, चौक इसी मतलब से जाया करते है, इसीलिए किताबों को तलाक दे दिया है। सर मे ऍंगल-कट इंगलिश-फैशन बाल, पैरो मे बूट, आज के यही दो चिह्न; बाकी अचकन पाजामा, टोपी, चाल-ढाल और गुलाबी उर्दू हिन्दोस्तानी एकेडेमी की नेशनल ड्रेस और लिंगुआ-इण्डिका चस्पाँ होती हुई। अँगरेजी बन्दरगाहो से दोस्तों को नव्वाबी गुलिस्तानो मे लाकर छोड़ते और हर तरह हवा खिलाकर कबूल करा लेते हैं कि सिवा नव्वाबी सभ्यता के चिकारे के विश्व-सभ्यता का कोई भी बाजा मनुष्य के गले से हूबहू नही मिल सकता, अँगरेजी कार्नेट तो गधे की धुधकार है। ऐसे गुणों से बाबू प्रेमकुमार छात्रों की आँख-आँख पर रहते, गले-गले से फिरते है। खास

बात यह कि क्लास की छात्राओं से, निषेध की ऊँची चारदीवार छायावादी ढंग से अनायास पार कर, प्राय: मौनालाप किया करते हैं, लिहाजा विद्यार्थी प्रतिक्षण इनकी तरफ देखने से विरत नहीं होते। छात्राओं की निश्चल मौन दृष्टि में छात्र-गण अनेक प्रकार की चंचलता सोच लेते हैं, और खुद-ब-खुद बातचीत के कच्चे सूत से बाबू प्रेमकुमार को मजबूत बाँध देते हैं।

होस्टल मे प्रेमकुमार की बगल मे शंकर का रूम है। शंकर ब्राह्मण का लडका है, अँगरेजी पढ़ता हुआ भी पीढ़ियो के संस्कारों की पूरी रक्षा करनेवाला। साबुन और मुरती का कारखाना खोलकर पिता ने कई लाख रुपये पैदा किये हैं। पुत्र को धर्म-रक्षा के साथ अँगरेजी-शिक्षा प्राप्त करने को लखनऊ भेजा है। सुयोग्य पुत्र पिता की ही तरह धर्म की रक्षा मे जितना पटु, खर्च में उतना ही कटु है। पीछे पूँछ-सी मोटी चोटी, कई पेंच के बाद बाँधने मे एक कौशल, खोलने पर बाल बल खाते हुए। कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिज़र्व करने का सबसे पहले यह आर्यो का निकाला हुआ तरीका है। एक समय वह प्रेमकुमार के साथ था। अब दो साल आगे, फाइनल एम्. ए. में है। तीन साल से बाबू प्रेमकुमार इसे अपने रास्ते पर सभ्य करने का परिश्रम कर रहे हैं, पर यह अब तक सूरदास की काली काँवर सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार बाबू प्रेमकुमार मुसलमान-सभ्यता के ऊँचे फाटक से आदमियों के साथ जानवरों को निकालते रहते हैं, उसी प्रकार शंकर आर्य-सभ्यता के संकीर्ण दरवाजे के भीतर ब्राह्मणों के सिवा दूसरी जाति को नही बैठने देता।

इसी विरोधी गुण के कारण प्रेमकुमार प्राय: उससे अपने प्रेम की बातें कहा करते हैं। मतलब, कब उसे पिघलाकर अपने रास्ते वहाँ ले जायें। मौसम बदलने तक प्रेमकुमार की दो-तीन रँगीन प्रेम की घटनाएँ बदल चुकती हैं, तब तक वह बराबर अपना मालकोस गाकर शंकर की शिला में बैजूबावरे के हाथ में मंजीरे छोड़ना चाहते है। नैसर्गिक प्रकृति से प्रेमकुमार की भौतिक प्रकृति-चर्चा मे शंकर को अधिक रस मिलने लगा, क्योंकि यह और भी शीघ्र बदलनेवाली, और भी आकर्षक, मनुष्य के स्वभाव के और भी निकट है, पर उसकी ओर चलने की शंकर को हिम्मत नहीं होती, क्योकि धर्म-भीरुता ने उसे वास्तव मे भीरु बना दिया है। जब प्रेमकुमार सुनाते हैं, "आज मिस 'सी' ने सिकन्दरबाग मे बुलाया था। क्या करूँ, किसी का न्योता टाल तो सकता नहीं, जाना पड़ा, भाई जान देती है। पूछने लगी, कहो, तुम हमेशा के लिए हमारे हो ? कहना पड़ा। अब ऐसा प्यार ठुकराया तो जाता नही। फिर क्या कहूँ कि क्या-क्या बातें हुईं। वहाँ से हम लोग कार्लटन होटल गये; खाया-पिया, मौज से बारह बजे तक रहे।" सुनकर शंकर चलते मूसल से ऊखल की दशा को प्राप्त होता है, तत्काल वासना वशीभूत कर लेती है। पर पिता की बात, जात जाने का भय, हृत्कंप पैदा कर बढ़ने से रोक लेते है। जब तक वह अपनी बिगड़ी दशा को राम-नाम जपकर सुधारता है, तब तक बाबू प्रेमकुमार अपनी दूसरी घटना उसके सर पटक देते हैं, "कल मिस लीलावती का पत्र मिला था। लखनऊ मे उससे खूबसूरत कोई नही, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। क्या ग़ज़ब की आँखें हैं ! देखती क्या हैं, पार कर जाती है। रात आठ बजे विक्टोरिया-पार्क मे मिलने के लिए बुलाया था। देखो, यह सब इस चेहरे की करामात है। दुनिया

में कामयाबी हासिल करना चाहते हो, तो पहले चेहरा सुधारो। मैं कहता हूँ, तुम जैसे मनहूस, मुहर्रमी सूरत बनाये फिरते हो, तुम्हारी बीवी भी तुम्हें नही प्यार कर सकती। यह चेहरा ही प्यार करनेवाला नही। हाँ, फिर लीलावती से बड़ी दूर तक मंजिल तय हुई।" शकर की नसो का खून फिर तेज वह चलता है। बेचारा पलकें दबाकर, रीढ सीधी कर सँभलता और दस-पाँच दिन बिगडे हुए मन को सुधारता है, तब तक एक फिर नयी खबर आ पहुँचती है। इसी तरह उसने तीन साल पार किये। पतिव्रता स्त्रियों के तीसरे कोठे से चौथे तक उतरने की कभी उसे हिम्मत नही हुई। सिर्फ एक दफा आजमाइश की थी।

प्रेमकुमार धीरे-धीरे प्रेमिका-परिचय मे सूक्ष्म से स्थूल होने लगे। पहले केवल अपने व्याख्यान के प्रभाव से खीचने के उद्योग में थे, अब अपने नैसर्गिक सुख के लिखे प्रमाण भी पेश करने लगे।

शंकर उनसे सुन चुका था, किस तरह कुमारियो और महिलाओ से आँखें मिलाकर बातचीत की जाती है; आवाज कहाँ तक शिष्ट और अलफाज कैसे-कैसे कौन-कौन से खासतौर से प्रयोगो मे आते है। एक रोज एकान्त मे अपने ही क्लास की एक छात्रा से आजमायश के लिए उतरकर बुरी तरह फेल हुए। इसके एक सम्बोधन-मात्र से जो आग उसकी आँख से निकली, फिर रस्टिकेटेड होने के डर से इसने किसी मिस की तरफ आँख उठाकर नही देखा।

आज एक पत्र लेकर फडकते हुए प्रेमकुमार शंकर से मिले, और लिफाफा-सहित शंकर के पास बिस्तरे पर फेंककर कहा, "देखो, क्या लिखा है।" शकर उठाकर पढने लगा। अँगरेजी मे पत्र यों लिखा है--

'मेरे प्रिय प्रेमकुमार,

आज इतने दिनों से कॉलेज जाती हूँ, तो एक बार तुम्हे अवश्य देखती हूँ। नही देखती, तो दिल की आग नही बुझती। पर तुम तुग कितने कठोर हो मेरी तरफ भूलकर भी नही देखते! ईश्वर ने तुम्हे यह रूप मुझे जलाने के लिए दिया था। जो चीज अपनी नही, मैं उसे चाहती हूँ। तुम हँसोगे। हँसो! यह मेरे भाग्य होंगे, पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलानेवाली आग तुम मुझे दोगे? जरूर दो प्यारे, मैं कुछ भी तुमसे इस नश्वर संसार मे नही चाहती, सिर्फ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलानेवाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे सामने ही किस तरह जलकर राख हो जाती हूँ। प्यारे, अब यह हाथ जवाब दे रहा है, आंसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूँ? क्या एक बार, बस एक बार तुम मेरे प्यासे दृगों को तृप्त करने के लिए कल शाम बनारसी-बाग मे मुझे मिलोगे? तुम्हारा हमेशा, हमेशा के लिए दिल से आभार मानूंनी—उफ्!

5, हिवेट रोड
लखनऊ
3.4.32

तुम्हे न मिल सकनेवाली
तुम्हारी शान्ति'

पत्र को बडे गौर से शंकर ने कई बार साद्यन्त पढ़कर कहा, "भई, है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार!"

"है न ?" गर्व-पूर्वक प्रेमकुमार ने सर उठाकर कहा, "तुमसे मैं कई वार कह चुका कि और कुछ नही, तो जरा अपना चेहरा भले आदमी की तरह सुधार लो, पर तुम पूरे गँवार ही रहे।"

"लेकिन कहाँ इसने तुम्हें देखा होगा ? मुझे तो कभी-कभी वड़ा तअज्जुव-सा लगता है।"

"कहाँ देखा होगा ! मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहीं-वही से कहीं देखा होगा, फिर कुछ दूर चलकर खुद ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को पता पूछ आने के लिए कह दिया होगा।"

"अच्छा ! ऐसा होता है ?"

"अरे मूर्ख ! लखनऊ है। फिर जव कि लगती है, तव दिल के खुदा रास्ता भी वन्दे को वता देते हैं। मुमकिन, दूसरी तरह पता लगाया हो। किसी गर्ल्स-कॉलेज की लड़की जान पडती है। कॉलेज की लड़कियो मे मेरी पहचान काफी है।"

"लेकिन हरएक तुम्हीं से स्वयंवरा होती है ?"

"मुझसे नही, देखो, इधर देखो, इस रूप से होती है, यह शाही शान लखनऊ में दूसरी जगह न पाओगे।"

वावू प्रेमकुमार की तरफ एक वार देखकर शंकर खूव प्रसन्न होकर हँसा। प्रेमकुमार कायस्थ है। वाल और चेहरे के रंग मे वहुत थोड़ा-सा फर्क है। तेल, सावुन, पाउडर और सेफ्टी-रेजर की दैनिक रगड से मुँह का तो मैल छुट गया है, पर चमड़े का स्याह रंग वार्निशशुदा वूट की तरह और चमकीला हो गया है। काले रंग पर पाउडर की सफेदी देखनेवालों की आँखो में गजव ढाती है।

"तुम हँसते क्यों हो ?" नाराज होकर प्रेमकुमार ने पूछा।

"इसलिए कि तुम जो कुछ कह रहे हो, इसमे कही तिल रखने की भी जगह नहीं। तो क्या जाओगे ही ?"

"जाना मेरा फर्ज है। प्यारवाले कलेजे मोम से भी मुलायम होते हैं, जरा-सी आँच नहीं सह सकते, पिघलकर खत्म हो जाते है। तुम्हें इसका कुछ पता तो है ही नहीं।"

"ठीक कहते हो। मुझे कहीं से ऐसा न्योता आ जाये, तो पहले तो जाने की हिम्मत न हो, अगर जी कडा करके जाऊँ, तो मिलने के वक्त भगवान् जाने क्या हो। सरस्वतीदेवी शायद ही जीभ तक पहुँच सकें।"

प्रेमकुमार हँसने लगे। वोले, "Face is the index of mind (चेहरा मन का सूचीपत्र है)। तुम्हें कहीं से न्योता मिल भी नही सकता। तुम जरा यह ब्राह्मणों की पोंगापन्थी छोड़ो, तो कुछ दिनों मे तुम्हें आदमियों से मिलने लायक वना दूं।"

शाम को वनारसी-वाग में, एक तरफ ताँगा खड़ा कर हिरन, गैंडा, चीते, शेर, चिडिया, शुतुरमुर्ग, कँगारू, वाघ, भालू, भेडिये और जेव्रा आदि के घेरे-घेरे, पिंजडे-पिंजड़े प्रेमकुमार चक्कर मारते रहे। प्रिया को वह खुद पहचाननेवाले नही, प्रिया द्वारा पहचाने जानेवाले हैं, इसलिए जो भी हसीन, नवीन साड़ी मे लिपटी,

लपट-सी उठती, उनकी तरफ आती हुई देख पड़ती है, पूरे ताव से दो-एक कदम उसकी तरफ बढ जाते हैं। बस, उसके साथ की सखी या आदमियों की आलोचना पहुँचती है, "कैसा अहमक है, अन्धा कही का।" बस, पैर रुक जाते, आशा दूसरी तरफ फेर देती है। पूरे चार घण्टे तक बाग में चक्कर लगाते रहे। दो-तीन वार ताँगेवाला आ-आकर पूछ-पूछकर लौट गया। जहाँ कही बैठी महिलाएँ बातचीत करती हुई देख पड़ीं, यह देर तक उनके चारों तरफ कावे लगाते रहे। धीरे-धीरे वाग निर्जन हो गया। यह फिर भी वारह-दरी के चारों ओर टहलते रहे। शान्ति न मिली। शान्ति खोकर शिथिल-देह ताँगे पर आकर बैठे, और होस्टल मे आ चुपचाप लेट रहे।

दूसरे दिन शंकर ने खबर लेने की गरज से आकर कमरे मे प्रेमकुमार को मुरझाया बैठे हुए देखा। वह प्रेमकुमार के प्रेम का खुमार न हो, ऐसा खयाल कर चेहरे की तरफ तारीफ की निगाह से देखते हुए पूछा, "क्यो भई, कल पहली पहचानवाली शाम अच्छी तो कटी ?" पूछकर बगल मे वैठ गया।

"हिन्दोस्तानी सवसे पहले इसलिए बदनाम है कि वादे के हजार पीछे दो भी पक्के नही निकलते। तभी तो गले से गुलामी छूटती नही। ऐसी-ऐसी गन्दी आदत-वाले अगर चाहें कि अपना सुधार सामाजिक, राजनीतिक कर लें, तो क्या खाक करेंगे ?" झुंझलाये हुए प्रेमकुमार बोले।

"तो कहो, कल वादा-खिलाफी रही। मैं तो पहले से तुम्हें सचेत कर रहा था कि कही किसी ने मजाक न किया हो। पर तुम भी ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सबको युधिष्ठिर का अवतार समझ लेते हो।"

"मेरी आदत है, मैं अपनी तरह दूसरे को भी तहजीव-पसन्द भला आदमी मान लेता हूँ। और लखनऊ में, खासकर पढ़ी-लिखी लड़कियों मे ऐसी वेहूदा भी रह सकती है, मै कयास मे नहीं ला सकता।"

पूरी गुस्ताखी की निगाह देखते हुए शंकर ने कहा, "तव तो वडा धोखा हुआ। सारा मजा किरकिरा कर दिया !"

सामने चिट्ठीरसा आता हुआ देख पड़ा। प्रेमकुमार उसी पर दृष्टि जमाये हुए थे। वह भी उन्ही की तरफ बढ़ रहा था। पास आ एक लिफाफा दिया। खोलकर, पढ़कर प्रेमकुमार प्रसन्न हो गये। कहा, "देखो, हम लोग गलती मे थे। देखो, कितनी अच्छी साफ-दिल की तस्वीर है।"

शंकर चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा। लिखा है—

'प्राणेश प्रेम,

तुम मेरे लिए कल कितने परेशान थे। जब जानवरों के घेरे-घेरे घूमते हुए अपनी शान्ति की खोज में व्याकुल हो रहे थे, तव मै अपनी माँ के साथ वैण्ड-स्टैण्ड के सामनेवाले मैदान मे खड़ी उधर से तुम्हें जाते हुए देखकर हंस रही थी। जी चाहता था, दौड़कर तुम्हारी शान्ति का पता दे दूँ, और पहले पता वताने का पुरस्कार तुमसे कुबूल करवा लूँ, पर मेरी माँ साथ थी, इसलिए तुमसे मिल नहीं सकती थी। पर क्या तुम इतना सोच ले सकोगे कि मैं कितनी वार, कितनी तरह, आँखों से, दिल से, गले से और प्यार से तुमसे मिल चुकी हूँ ? मैं वही हूँ, जिसे

देखकर तुम चौंके थे, मेरी मौन पुकार सुनकर, मुझे देखकर खड़े हो गये थे, फिर उदास होकर चले गये थे। तुम समझो कि अपनी चाहनेवाली के दिल में कितनी आग तुम फूंक गये हो। वह अपने प्यारे के असली प्रेम की परीक्षा कर न मिल सकने के कारण कितना तड़प रही है। आह ! तुम्हें इतना कष्ट अपनी शान्ति के लिए स्वीकार करना पड़ा ! पर शान्ति तुम्हें मिलेगी। वह तुम्हारे ही पास रहती है। तुमसे जुदा हो जाये, तो उसकी हस्ती मिट जाये। तुम्हें अवश्य-अवश्य तुम्हारी शान्ति मिलेगी। कल एलफ़िस्टन-सिनेमा जरूर-जरूर आने की कृपा करना।

हिवेट रोड, लखनऊ तुम्हारी

4.4.32 शान्ति'

मुस्किराकर शंकर ने कहा, "यार, इनके पत्र में तो पूरी कविता रहती है !"

"हाँ, काफी पढी-लिखी जान पड़ती हैं। अँगरेजी वड़े काट की लिखती हैं।" आत्मगौरव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए प्रेमकुमार ने कहा, "जब माँ साथ हों, तब कैसे कोई खुले दिल से बातचीत करे ?"

"किसी ऊँचे खानदान की जान पड़ती है।" शंकर ने बढ़ाकर कहा।

"जरूर, यह काट-छाँट किसी फटीचर घर की लड़की की हो ही नहीं सकती। खानदानी घर की लडकी की मिसाल दूब से दी जाती है, जो वारह साल धूप में झुलसती रहने पर भी दिल से गीली रहती है। इसीलिए जान से बची रहती है। किसी ने ज़रा-सा पानी डाला या आसमान से चार बूंदें पडीं कि चौगुनी हरियाली से लहरा-लहराकर पानी डालनेवाले की तारीफ करती रहती है। इस तरह उसकी आँख ठण्डी कर फौरन बदला चुका देती है।"

"बहुत दुरुस्त कहते हो। क्या सिनेमा जाने का विचार है ?" आग्रह जाहिर करते हुए शंकर ने पूछा।

"न जाने की क्या बात हुई ? अगर न्योता और वह भी भले घर का, किसी को मिले, और वह न जाये, तो उससे बड़ी मेरे खयाल से दुनिया मे दूसरी बेहूदगी है ही नही।" आईने को सामने की मेज पर रखकर सेफ्टीरेजर मे नया ब्लेड लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा।

"चाहिए जरूर जाना। तबियत मेरी भी होती है कि जब तुम मिल लो, तब एक बार उनके दर्शन मैं भी करूँ। अँगरेजी में कविता जरूर लिखती होगी।"

"हाँ, दिल एक सच्चे शायर का है। हर सेंटेंस चोट करता है, है न ?"

"करारी; चोट तुम पर है, तड़प मुझे हो चली है !"

"कोई लफ्ज निकाल दो, तो सारा मजमून लँगड़ा।" दाढ़ी में साबुन लगाते हुए, प्रेमकुमार ने कहा, "मैं मिल लूं, फिर वायदा करता हूँ, तुम्हें जरूर मिला दूंगा। इसी तरह धीरे-धीरे भले आदमी बन जाओ। अब जमाना ब्राह्मणोवाले खयालत से बहुत दूर बढ़ गया है। तुम बाकायदा पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ अपनी तरफ से भी समझो। खैर, मैं तो पहले मिलने-जुलने की आजादी मानता हूँ, फिर और।"

छः का समय है। एलफ़िस्टन-पिक्चर-पैलेस के सामने लोगों की भीड़ है। 'शैलवाला'

फिल्म जोरों से चल रही है। चवन्नी और अठन्नीवाले झरोखे में लखनऊ के पान-वाले, हिन्दू-मुसलमानो के, आवारागर्द नौजवान लडके और गरीब वाशिन्दे एक-दूसरे पर चढे हुए टिकट के लिए बढते जा रहे है। कई प्राइवेट मोटरें आकर लगी है। प्रेमकुमार बड़ी देर तक इधर-उधर टहलते रहे। कुछ देर तक तस्वीरें आज-वाली और आगे होनेवाली फिल्मों की, सुलोचना, जुवेदा, माधुरी, कज्जन, मुश्तरी, शीला, कपूर और मुख्तार वेगम आदि की देखते रहे, यद्यपि इन सबके चित्र उनके कमरे मे बड़ी हिफाजत से रक्खे हैं, और जुवेदा की एक तस्वीर बडे खर्च से, सुनहरे वार्डर में, आईने की तरह चेकदार, बँधवाकर मेज पर रख दी है। वहाँ तस्वीरो के पास रहने का खास मतलब यह है कि शान्ति आवेगी, तो जाने के समय मुलाकात हो जायेगी, और मालूम भी हो जायेगा कि वह किस दर्जे में गयी। अभी से टिकट खरीदकर कहीं जाकर बैठना वेवकूफी होगी। कहीं उस दर्जे मे शान्ति न मिली, न गयी, तो ? कोई भी प्रवीण नवीन पत्नी का हाथ पकड़े उधर से गुजरता है, तो प्रेमकुमार उन्हें शान्ति और उसका वाप समझकर प्रेम से सिहर उठते है, फिर तरुणी की जलती दृष्टि से मौन लांछन पा रह जाते और दूसरे वार की प्रतीक्षा करते है।

समय केवल दो मिनट खेल शुरू होने को रह गया, तव वहुत घवराये। निश्चय हुआ कि शान्ति उनके आने से पहले भीतर चली गयी, और अतृप्त आँखों से उनकी राह देखती होगी। वड़े वेचैन हुए। कहाँ, किस दर्जे मे जायें, कुछ ठीक नही हो रहा। वहाँ वह वैठी उनके नाम की माला जप रही है, कैसे मालूम करें। अन्त में, वाहर रहने से भीतर रहना अच्छा। इस विचार से अपना लाइब्रेरीवाला कार्ड दिखलाकर ऊपर का टिकट कसेशन से ले लिया। जाते-जाते वत्ती भी बुझ गयी, खेल शुरू हो गया। इच्छा थी, ऊपर और जहाँ तक नजर जायेगी, शान्ति को उजाले मे खोजेंगे। दिल वैठ गया।

खेल शुरू हो गया। प्रेमकुमार की घवराहट वढ़ चली। लोग एकाग्र होकर तमाशा देख रहे है। प्रेमकुमार चित्त की अपलक आँखो से शून्य शान्ति का ध्यान कर रहे हैं, उसकी वाते सोच रहे हैं, 'उसने लिखा है, मैंने तुम्हे देखा है; तुमने भी मुझे देखा है। सवसे ज्यादा मैं किसकी तरफ खिंचा था ! क्या वही है—वह गोरी-गोरी लडकी ! पर उधर से तो शायद किसी वेहूदे की दी गाली की आवाज आयी थी, किसी कमवख्त ने यों ही छेड़ दिया होगा।"

खेल को एक घण्टा हो गया, पर प्रेमकुमार को मालूम नही कि क्या-क्या हो गया। केवल शान्ति के ध्यान में तन्मय है।

घण्टी वजी। हाफटाइम हुआ। वत्तियाँ जल गयीं। प्रकाश में ऊपर-नीचे, कई जगह, सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतियों को वैठे हुए देखा। पर ऐसी हालत में कहाँ जायें ? किसे शान्ति समझें ? जो सवसे खूवसूरत है ? गौर से देखने लगे। जिससे निगाह लिपट जाती, प्रकाश में उज्ज्वल आँखें, कोट, कट, चिवुक, मुख उसी के अपूर्व सुन्दर लगते है। जव जिसे देखते, तव उसे ही शान्ति समझने लगते हैं। कैसी विपत्ति है ! इतनी युवतियों में कौन सवसे सुन्दरी है, निर्णय करने मे मन सक्षम नही। जितनी हैं, उतने रूप के मुख हैं—गोल, लम्वे, चकले, सम, सभी सुन्दर

है, सभी निर्दोष। इनमें शान्ति कौन हो सकती है ?

मेहनत करते-करते मन थक गया। रूपों को देखते रहने के लिए वह राजी है, पर शान्ति के निर्णय के लिए पूर्ण श्रान्त। उसने युक्ति दी—'इन्हीं मे शान्ति होगी। हर स्त्री अपने रूप को सबसे सुन्दर समझती है। वह वास्तव मे रूपवती है भी; इसलिए खेल समाप्त होने पर रास्ते पर हरएक को देख लेना।'

खेल समाप्त हुआ। रास्ते पर आ प्रेमकुमार ठाट से टहलने लगे। उन्हें शान्ति न मिली। जितनी शान्तियाँ अपने पति को हाथ से पकड़े हँसती हुई शैलबाला की आलोचना में मुखर उधर से निकलीं, सभी बाबू प्रेमकुमार को जला-जलाकर चली गयीं।

हताश होकर भी आशा के क्षीण-क्षणिक आश्वासन से हृदय को बाँधकर प्रेमकुमार एक ताँगे पर आ बैठे, और बादशाह-बाग चलने के लिए कहा।

प्राणों की प्रेयसी प्रतिमा को पुनः-पुनः दैत्यों के वीर भाव से अणुओं में चूर्ण करने लगे, और वह उन्हीं के प्राणों से शक्ति ग्रहण कर-कर परमाणुओं से सुन्दर रूप-बन्ध में गठित हो-हो—आज की उन्हीं रूपसियों के चेहरे-चेहरे से, जिन्हें वे अच्छी तरह कुछ देर पहले देख चुके है, जो कुछ देर पहले उन्हें आँखों की दृष्टि मे लांछित कर चुकी हैं—माया-मरीचिका मे आँखों की दृष्टि हर-हर, शान्ति के रूप में उठ-उठकर लुभाने लगी।

निरुपाय प्रेमकुमार होस्टल आ, किराया चुकाकर चुपचाप अपने कमरे में चले गये। शंकर पढ़ रहा था, पर अभी चलकर बातचीत करना उसने ठीक न समझा।

सुबह भी शंकर समय बरबाद होने के विचार से प्रेमकुमार से नहीं मिला। उधर प्रेमकुमार भी चिन्ताजनक मानसिक स्थिति के कारण सुबह शंकर से आकर नहीं मिल सके।

कॉलेज से लौटकर बाहर से शंकर ने आहट ली। प्रेमकुमार प्रसन्न थे। एक गजल मन-ही-मन गुनगुना रहे थे। इस गजल को कैनिंग कॉलेज के विद्यार्थी लखनऊ का नेशनल सांग (जातीय गीत) कहते है। गजल है—

"अगर क़िस्मत से लैला के गले का हार हो जाता,
ज़माने-भर की नजरों में खटकता, खार हो जाता।"

आदि, आदि।

शंकर को मालूम हो गया कि या तो कल इनकी किस्मत दरअस्ल लड़ गयी, या आज अब फिर चिट्ठी मे कल कहीं मिलने की आज्ञा पहुँची है। मुस्किराता हुआ भीतर गया, और बड़ी उत्सुकता से पूछा, "क्या भई, कल मुलाकात तो हो गयी ?"

"किसी ने ठीक कहा है।" प्रेमकुमार बोले, "जो मजा इन्तजार में पाया, वह वस्ल मे न पाया।"

"तो क्या अभी इन्तजार ही चल रहा है ?" कुछ तअज्जुब से शंकर ने पूछा।

"बात यह हुई कि कल मैं पहले शो मे गया, वह दूसरे मे आयी। इसीलिए

मुलाकात न हो सकी। वडा ताना देकर चिट्ठी लिखी है। देखो।"

प्रेमकुमार ने चिट्ठी वढ़ा दी, शंकर पढ़ने लगा। लिखा है—

'प्यारे प्रेम,

कल दूसरे शो में मैं गयी, पर तुम नहीं थे। यह कैसी वात! क्या तुम मुझसे नाराज हो गये? मुझे क्षमा करना। तुम्ही सोचो, मेरा क्या कसूर था? अगर तुम पहले शो मे आये, तो गलती की। भला, पहले शो में भी कही दिल मिलानेवाले मिल सकते है? जब तक सिनेमा होता, हम लोग गोमती के किनारे वातचीत करते, फिर सिनेमा खत्म होने पर मैं घर चली जाती। पहले शो में यह मौका शहर की भीड मे कहाँ मिलता है? अगर पहले शो मे तुम गये, तो जरूर चुड़ैलों को देखकर मेरा अन्दाजा लगाया होगा, इस तरह तुमने मेरा कितना अपमान किया! अव कल का वादा पूरा होना ही चाहिए। कल गोमती के किनारे, छोटे-लाल के पुल पर, छत्री में रहना। मैं नहाने जाऊँगी। तव तुम मुझे दिन को देख कर फिर रात को न भूल सकोगे। फिर हम लोग किसी दिन कही मिल जायेंगे। कल जरूर जरूर तुम्हे तुम्हारी शान्ति मिलेगी। ठीक आठ वजे दिन को मैं जनाने घाट पर रहूँगी।

5, हिवेट रोड
लखनऊ
5-4-32
रात एक वजे

तुम्हारी कव से खोयी हुई,
शान्ति'

पढ़कर शंकर की तवियत फड़क उठी। कहा, "अब क्या, अब तो कल जरूर किस्मत खुल जायेगी।"

"एक-न-एक ऐसा अडंगा लग जाता है कि वना-वनाया काम विगड़ जाता है।" सहज प्रसन्न स्वर से प्रेमकुमार वोले।

"पहले की अडचन अच्छी होती है। पीछे की सफलता तव वड़ी स्वाददार जान पड़ती है। प्रेम के लिए तो यह खास वात होगी। मुझे कल्पना से इसका ठोस आनन्द कुछ-कुछ मिल रहा है।" शंकर ने चिट्ठी की तरफ देखकर कहा।

"कल्पना नही, खरवूजे-सा अपना हाल समझो। रोज साथ किसका होता है? यह उसी का रग चढ़ रहा है, जो तजवीज इतनी चोखी उतर रही है।" प्रेमकुमार ने आत्मप्रसाद के उदात्त भावों से कहा।

"पके खरवूजे को स्यारो से वड़ा डर है।"

दूसरे दिन पाँच वजे प्रातः नहाकर, पूरा शृंगार कर, प्रेमकुमार छड़ी लेकर छोटेलाल के पुल की ओर, ठीक छ. वजे चल दिये। आठ वजे तक घाट की ओर टहलते, छत्री पर उठते-वेठते रहे। आठ वज गये, नौ वज गये, दस वज गये, किसी ने भी उनसे आकर न कहा, प्यारे, तुम इतने परेशान हो मेरे लिए, मैं ही तुम्हारी शान्ति हूँ। वल्कि एक अज्ञात मनुष्य ने पूरी उद्दण्डता से पेश आकर कहा, "आप वडी देर से यहाँ टहल रहे हैं, और मैं देखता हूँ, जो भी औरत आती है, आप वुरी तरह घूरते है, क्या आपको इस तरह नजर लड़ाते वक्त अपनी माँ-वहनों की

विलकुल याद नही आती ?"

पाप वड़ा डरपोक होता है। कुछ जवाव दें, प्रेमकुमार को ऐसी हिम्मत न हुई। चेहरा उतर गया। चुपचाप सीढ़ियों पर चढ़कर वादशाह-वाग की राह ली। होस्टल में जाकर लेट रहे। उस रोज खाना न खाया।

वक्त पर चिट्ठीरसा फिर चिट्ठी लेकर पहुँचा। प्रेमकुमार मन-ही-मन शान्ति को शान्ति देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रहे थे, उसी समय उसने एक चिट्ठी इन्हें दी। लेकर पढ़ने लगे। लिखा है—

'मूर्खाधिराज,

तुम्हे गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नही मिला !

5, हिवेट रोड — तुम्हारी

लखनऊ — शान्ति'

पढ़कर प्रेमकुमार के छक्के छूट गये। कुछ देर वाद शंकर भी आया। पत्र वैसा ही खुला मेज पर पड़ा था, पढ़ लिया। फिर हँसी को पीकर वोला, "यार, यह तो अच्छा मजाक किसी ने किया। अव 5, हिवेट रोड पर चलकर देखो तो, कौन रहता है।"

हिवेट रोड पर इन्ही की नयी व्याह कर आयी साली अपने अकेले पति के साथ रहती है, जो इन्ही के कॉलेज मे पहले इन्ही के साथ रहकर अव रिसर्च-स्कॉलर है। इन्हें देखकर क्षमा हँसने लगी। कहा, "आप वड़े वेवकूफ है, शान्ति तो दीदी का ही राशि का नाम है।"

['सुधा', मासिक, लखनऊ, जुलाई, 1933। लिली में संकलित]

हिरनी

कृष्णा की वाढ़ वह चुकी है; सुतीक्ष्ण, रक्त-लिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल-जिह्व योजनों तक, क्रूर, भीषण मुख फैलाकर प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु ताण्डव कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, क्षुधा-क्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल साक्षात् प्रेतों-से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधो में सेनापति अकाल की पुनः-पुनः शंख-ध्वनि हो रही है। इसी समय सजीव शान्ति की प्रतिमा-सी एक निर्वास-वालिका शून्यमना दो शवो के वीच खड़ी हुई चिदम्वर को देख पड़ी।

"ये तुम्हारे कौन है ?" शवों की ओर इंगित कर वहाँ की भाषा में चिदम्वर ने पूछा।

वालिका आश्चर्य की तन्मय दृष्टि से शवों को कुछ देर देखती रहकर शून्य भाव से अज्ञात मनुष्य की ओर देखने लगी।

चिदम्बर ने अपनी तरफ से पूछा, "ये तुम्हारे माँ-वाप हैं ?"

वालिका की आँखें सजल हो आयीं।

चिदम्बर ने सस्नेह कहा, "वेटी, हमारे साथ डेरे चलो, तुमको अच्छा-अच्छा खाना देंगे।"

वालिका साथ हो ली। उसकी अन्तरात्मा उसे समझा चुकी थी कि उसके माता-पिता उस नींद से न जगेंगे। उसे माता-पिता को सचेत करने का इतना उद्यम पहले कभी नहीं करना पड़ा—यही उसके प्राणो मे उनके सदा अचेत रहने का अटल विश्वास हुआ।

पहले चिदम्बर ने अच्छी तरह उसे अपना दुपट्टा पहना दिया, फिर उँगली पकडकर धीरे-धीरे डेरे की ओर चला, जो वहाँ से कुछ ही फासले पर था। अकाल-पीडितो की समुचित सेवा के लिए मद्रास के 'पतित-पावन संघ' के प्रधान निरीक्षक की हैसियत से संघ को साथ लेकर चिदम्बर वहाँ गया था।

कुछ दिनों वाद धन-संग्रह के लिए चिदम्बर को मद्रास जाना पड़ा। शिक्षण-पोषण के लिए अनाथ-आश्रम मे भर्ती कर देने के उद्देश से वालिका को भी साथ ले गया। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि राजा रामनार्थसिंह रामेश्वरजी के दर्शन कर कुछ दिनो से ठहरे हुए हैं, उसे मिल आने के लिए वुलावा भेजा था। चिदम्बर के पिता जज के पद से पेंशन लेकर कुछ दिनों तक राजा साहव के यहाँ दीवान रह चुके थे; उन दिनो चिदम्बर को पिता के पास युक्तप्रान्त में रहकर प्रयाग-विश्व-विद्यालय मे अध्ययन करना पड़ा था। अव उसके पिता नहीं है।

संवाद पा राजा साहव से मिलने के लिए चिदम्बर उनके वासस्थल को गया। वाढ़ की वातचीत मे वालिका का प्रसंग भी आया। चिदम्बर उसे अनाथ-आश्रम में परवरिश के लिए छोड़ रहा है, यह सुनकर कारुण्य-वश राजा साहव ने ही उसे अपने साथ सिंहपुर ले जाने के लिए कहा। चिदम्बर इनकार करे, ऐसा कारण न था; वालिका रानी साहिवा की देख-रेख में, उन्हीं के साथ, उनकी राजधानी गयी।

आठ साल की लड़की रानी साहिवा की दासियों से स्नेह तथा निरादर प्राप्त करती हुई, उन्ही मे रहकर उन्ही के संस्कारों से ढलती हुई धीरे-धीरे परिणत हो चली। वहाँ जो धर्म दासियो का, जो भगवान् रानी से सेविकाओ तक के थे, वही उसके भी हो गये। झूठ अपराध लगने पर दासियो की तरह वह भी कसम खाकर कहने लगी, "अगर मैंने ऐसा किया हो, तो सरकार, सीतला भवानी मेरी आँख ले लें।" वहाँ सभी हिन्दी वोलती थी, पर जो मधुरता उसके गले मे थी, वह दूसरे में न थी; जैसे हारमोनियम के तीसरे सप्तक पर वोलती हो। रानी साहिवा उससे प्रसन्न थी, क्योकि दूसरी दासियो से वह काम करने में तेज और सरल थी। उसका नाम हिरनी रक्खा था। वह जिस रोज रनवास में आयी थी, तव से आज तक, उसी तरह, अरण्य की, दल से छटी हुई, छोटी हरिणी-सी, एकाएक खडी होकर, सजग-दृग, पार्श्व-स्थिति का ज्ञान-सा प्राप्त करने लगती है कि वह कहाँ आयी, यहाँ कोई

भय तो नहीं। दृष्टि के सूक्ष्मतम तार इस पृथ्वी के परिचय से नही, जैसे शून्य आकाश से बाँधे हुए हों; जैसे पृथ्वी पर उतारकर विधाता ने एक भूल की हो। उसके इस भाव के दर्शन से 'हिरनी' नाम, कवि के शब्द की तरह, रानी के कण्ठ से आप निकल आया।

वही हिरनी अब जीवन के रूपोज्ज्वल वसन्त में कली की तरह मधुसुरभि से भरकर चतुर्दिक् सूचना-सी दे रही है कि प्रकृति की दृष्टि में अमीर और गरीब-वाला क्षुद्र भेद-भाव नही, वह सभी की आँखों को एक दिन यौवन की ज्योत्स्ना से स्निग्ध कर देती है; किरणो के जल से भरकर, जीवन मे एक ही प्रकार की लहरें उठाती हुई, परिचय के प्रिय पथ पर वहाँ ले जाती है; जो सबसे बड़ी है, जिसके भीतर ही बड़े और छोटे की नाप मे भ्रम है, वह स्वयं कभी छोटे और बडे का निर्णय नही करती, उसकी दृष्टि मे सभी बराबर है, क्योंकि सब उसी के हैं। उसी ने हिरनी मे एक आशा, एक अज्ञात सुख की आकांक्षा भी भर दी, जिससे दृष्टि में मद, मद में नशा, नशे मे संसार के विजय की निश्चल भावना मनुष्य को स्त्री के प्रणय के लिए खीचती रहती है।

इसी समय इंगलैण्ड से शिक्षा प्राप्त कर राजकुमार घर लौटे थे, और दो-तीन बार हिरनी को बुला चुके थे। रानी दूसरी दासियों से यह समाचार पाकर हिरनी का विवाह कर देने की सोचने लगीं। वहीं एक कहार रामगुलाम रहता था। नौजवान था। रानी साहिबा ने उससे पुछवाया कि हिरनी से विवाह करने को वह राजी है या नहीं। वह बड़ा खुश हुआ, उत्तर में अपनी खुशी को दबाकर रानी साहिबा को खुश करनेवाले शब्दों में कहा, "सरकार की जैसी मर्जी हो, सरकार की हुकुमअदूली मुझसे न होगी।"

विवाह मे घरवालों की राय न थी। रामगुलाम बागी हो गया।

एक दिन उसके साथ हिरनी का विवाह प्रासाद के आँगन में कर दिया गया। हिरनी पति के साथ रहने लगी। साल ही भर में एक लड़की की माँ हो गयी।

दो साल और पार हो गये। रानी साहिबा का स्नेह, हिरनी के कन्या-स्नेह के बढने के साथ-साथ, उस पर से घटने लगा। जिन दासियों की पहले उसके सामने न चलती थी, वे ताक पर थी कि मौका मिले, तो बदला चुका लें।

एक दिन रानी साहिबा ताश खेल रही थी। पक्ष और विपक्ष में उन्ही की दासियाँ थी। श्यामा उर्फ स्याही उन्ही की तरफ थी। मौका अच्छा समझकर बोली, "सरकार को हिरनी ने आज फिर धोखा दिया; मैं गयी थी, उसकी लड़की को जूड़ी-बुखार कही कुछ भी नही।"

लड़की की बीमारी के कारण हिरनी दो दिन की छुट्टी ले गयी थी। रानी साहिबा पहले ही से नाराज थी। अब धुआँ देती हुई लकडी को हवा लगी, वह जल उठी। रानी साहिबा ने उसी वक्त स्याही को एक नौकर से पकड़ लाने के लिए कहने को भेज दिया। स्याही पुलकित होकर बूटासिंह के पास गयी। बूटासिंह से उसकी आशनाई थी। बोली, "सरकार कहती है, हिरनी का झोंटा पकड़कर ले आओ, अभी ले आओ, बहुत जल्द।"

बूटासिंह जब गया, तब हिरनी बालिका के लिए वैद्य की दी एक दवा अपने दूध मे घोल रही थी। बूटासिंह को मतलब समझाने के लिए तो कहा नही गया था। उसने झोटा पकड़कर खीचते हुए कहा, "चल, सरकार बुलाती है।"

प्रार्थना की करुण चितवन से बूटासिंह को देखती हुई हिरनी बोली, "कुछ देर के लिए छोड दो, मयना को दवा पिला दूं।"

घसीटता हुआ बूटासिंह बोला, "लौटकर दवा पिला चाहे जहर, सरकार ने इसी वक्त बुलाया है।"

स्याही उसे साथ लेकर ऊपर गयी। हिरनी रानी साहिबा की मुद्रा तथा क्रूर चितवन देखकर काँपने लगी।

रानी साहिबा ने हिरनी को पास पकड़ लाने के लिए स्याही से कहा, स्याही ने जोर से खीचा, पर हिरनी का हाथ छूट गया, जिससे वह गिर गयी, हाथ मोच खाकर उतर गया।

रानी साहिबा क्रोध से काँपने लगी। दूसरी दासियो को पकड़ लाने के लिए भेजा। इच्छा थी कि उसका सर दबाकर स्वयं प्रहार करें। दासियाँ पकड़कर ले चली, तो रानी साहिबा को आँसुओ मे देखती हुई, उसी अनिन्द्य हिन्दी में हिरनी क्षमाप्रार्थना करती हुई बोली, "सरकार, मेरा कुछ कुसूर नही है।"

पर कौन सुनता है, उससे रानी साहिबा की सेवा मे कसर रह गयी है।

जब पास पहुँची, उसको झुकाकर मारने के लिए रानी साहिबा ने घूँसा बाँधा।

हिरनी के मुख से निकला, "हे रामजी!"

रानी साहिबा की नाक से खून की धारा बह चली। वह वही मूच्छित हो गयी। हिरनी के बाल, मुख उसी खून से रँग गये।

डॉक्टरों ने आकर कहा, "गुस्से से खून सर पर चढ़ गया है।"

तब से ज़रा भी गुस्सा करने पर रानी साहिबा को यह बीमारी हो जाती है।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 अगस्त, 1933। लिली में संकलित]

परिवर्तन

परी सात साल की थी, और सूरज दस साल का। दोनों धूप-छाँह-से हिले-मिले रहते थे। परी की आदत थी आज्ञा करने की, वह फूल तोड़ दो, वह फल चढ़कर गिरा दो। सूरज की आदत थी, उसी समय उसे पूरा करने की।

एक दिन, नजरबागवाले तालाब मे कमल खिले थे, एक बड़ा-सा अधखिला

उन्हीं के वीच में था, परी ने कहा, "वह बीचवाला लाल-लाल बड़ा-सा कमल ला दो सूरज !" सूरज कूद पड़ा। तैरता, नालों को चीरता हुआ कमल को तोड़ तो लिया, पर लेकर निकल न सका।—पैर मृणालों में फँस गये। परी को देने को स्नेह-फूल हाथ से न छोड़ा, पैरों को पटक-पटककर नालों की उलझन छुडाता रहा। तट पर खड़ी लालसा की दृष्टि से फूल को देख-देखकर साग्रह हाथ फैलाती हुई परी हँस रही थी। थककर कमल लिये सूरज एकाएक डूब गया।

परी दौड़ती हुई कोठे पर माँ के पास गयी, और हाँफती हुई बोली, "सूरज मेरे लिए फूल तोड़ने को तालाव मे तैरा था, डूब गया है।"

खवर फैली, लोग दौड़े, सूरज को निकाल लिया। उसकी मुट्ठी मे तव भी कमल वँधा हुआ था। पेट से पानी निकाला गया। मुँह फूंका गया। साँस चलने लगी।

कई साल वीत गये। परी अव दस साल की है। पुस्तको के साथ नृत्यगीत की भी शिक्षा उसे दी जाती है।

माता के संस्कार चापल्य की उस विद्युत् मे प्रवेश करने लगे है। उसकी माता एक समय कलकत्ते की सुन्दरी वेश्या थी। अव राजा महेश्वरसिंह की रक्षिता है। यह कन्या राजा साहव के औरस से पैदा हुई है। इसका नाम है परिमलकुमारी। स्नेह से राजा साहव तथा उसकी माँ परी कहते हैं।

परी की माँ के नाम राजा साहव ने एक अलग जायदाद लिख दी है। वड़े-से अहाते के अन्दर चारों ओर से जल से भरी खाई है, वीच में कोठी, शिव-मन्दिर, वगीचा, फुलवाड़ी, राजपथ आदि प्रासाद के अनुरूप और-और सवकुछ। परी की माता शान में रानी साहवा से वढ़कर रहती है। परी का खर्च कुँवर साहव से ज्यादा है।

सूरज ड्योढ़ी के जमादार शत्रुहनसिंह का लड़का है। शत्रुहनसिंह किसी तरह नौकरी से गुजर करते हैं। ऐसी जगह जाकर नौकरी की है, जहाँ पास-पडोस का कोई आदमी नही। इसलिए एक प्रकार उनका जीवन अपने कर्त्तव्य और पुत्र स्नेह में ही पार होता है। सूरज इस समय मिडिल क्लास का विद्यार्थी है। परी के स्नेह-लेश-रहित तेज स्वभाव के कारण वह उससे नही मिलता। पुनः वह मिडिल क्लास में पढ़ता है, परी से वह ऊँचे दर्जे में, ज्यादा पढ़ा हुआ है, इसका विचार परी नहीं करती, जो काम उससे करवाती है, उसके कारण वह लाज से मुरझा जाता है। इसलिए नही जाता, प्राय: परी के निकलने के समय कोठी में नही रहता। उधर लोगों से आदर तथा सम्मान प्राप्त कर, परी के स्वभाव में, सम्मान्य राजकुमारीवाला गुरु गहन भाव, इतनी ही उम्र मे दूव की जड़ की तरह फैलने लगा। एक सूरज को छोडकर और सव उसकी इज्जत करते है, उसकी आज्ञा मानते हैं, उसके नौकर हैं। सूरज परी का शासन नही मानता, ऐसा विचार उठते ही वह सूरज को वुलवाती है। पर सूरज उस समय या तो गढ के वाहर किसी सहाध्यायी मित्र के साथ पढ़ता होता है या स्कूल गया होता है या खेलने के लिए निकला होता है।

ठीक बारह बजे दोपहर को, सोचकर इतवार के दिन, परी नीचे उतरी। सूरज उस समय पिता के साथ भोजन कर रहा था। एक नौकर चुपचाप दौड़कर देख आने के लिए भेजा। लौटकर नौकर ने कहा, "है भोजन कर रहा है।"

"अभी ले आओ, न आये, तो कान पकड़कर ले आओ।" हुक्म हुआ। नौकर दौड़ा हुआ गया, और सूरज के बाप से कहा कि परी बहुत जल्द सूरज को बुलाती है, भेज दो, नही तो दिखाने के लिए कान पकडकर ले जाना होगा।

सूरज का बाप आँसू पीकर रह गया। सँभलकर कहा, "लडके को फिजूल परेशान करती हैं, क्या काम है?"

"कुछ नही।" नौकर ने कहा, "गेंद धूप मे फेंक दिया है, और हठ है कि सूरज आकर उठाकर दे।"

सूरज ने कहा, "बाबू, मुझे इस तरह गेंद उठाकर देते हुए लाज लगती है।"

ठाकुर शत्रुहनसिंह की आँखो से आग निकलने लगी। कहा, "हम नौकर है, हमारा लड़का नौकर नही, और हम भी गेंद उठाने की नौकरी नही करते, तलवार बाँधने की करते हैं, जाओ, परी की माँ से कह दो।"

नौकर परी के पास लौट आया। कहा, "सूरज न आवेगा, शत्रुहनसिंह बिगड़ रहा है।" परी की आँखें लाल हो गयी, पर शत्रुहनसिंह वहाँ के सिपाहियो का अफसर था, वह भी कुछ डरती थी, इसलिए माँ के पास नालिश करने चली। उधर से नौकर भी चला।

परी और नौकर की बातें सुनकर, पूजा समाप्त करके आयी हुई पहले कामलता दासी, अब श्रीमती रानी कामलतादेवी तिनककर द्रुत-पद राजा साहब के कमरे मे गयी (राजा साहब का स्थायी निवास उन्ही की कोठी मे रहता था), और आँखो की पुतलियों को भौहों के पास तक चढ़ाकर, एक झटका गर्दन का देती हुई बोली, "ऊँ हूँ, यह तो न होगा; सुना, तुम्हारी परी कभी-कभी सुरजुआ को बुलाकर खेलती है, इससे उनके पिताजी महान् की मर्यादा जाती रहती है; क्योकि उनके पुत्र अब दफ्तर के बाबू की जगह लेनेवाले हैं। मैं पूछती हूँ, ऐसे आदमी को रखने से फायदा?"

"फायदा क्या है? उसको निकाल दो।" राजा साहब ने आज्ञा दी।

रानी कामलतादेवी ने कहा, "परी के सामने पिता और पुत्र दोनो के कान पकड़कर गढ़ से बाहर कर दो।"

पुरस्कार की लालसा से दो सिपाही शत्रुहनसिंह के मकान की तरफ दौड़े, परी हँसती हुई वही से देख रही थी। दोनों जैसे-के-वैसे ही लौटते हुए देख पड़े। परी को साथ लेकर रानी कामलतादेवी के पास जाकर कहा, "वे लोग पहले ही से फाटक के बाहर निकल गये, और सरकारी थाने मे जाकर बैठे हैं। हरगोविन्द से शत्रुहन कह गये हैं कि थानेदार को साथ लेकर कल चारज समझा जायेंगे।"

सात वर्ष और पार हो गये। परी अब सत्रह साल की परी हो गयी है। राजा महेश्वरसिंह इस समय राजा और तअल्लुकेदारों मे बड़े जोरों से समाज-सुधार कर रहे हैं। संवादपत्रो मे इस कार्य के लिए कभी-कभी उनके दिये दान की तालिका

प्रकाशित होती है, और जिस सभा में समाज की बुराइयों पर उनका भाषण होता है, लोग तालियाँ पीटकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते है। देश के राजा-रईसों के विगड़ैल, समाज-सुधार के शंख-स्वरूप, रूप के अन्धे, कुँवर लोगों ने एक वाक्य से राजा महेश्वरसिंह का समाज-प्रेम स्वीकृत कर लिया है, प्रायः उनकी कलकत्ते-वाली कोठी में एकत्र होते हैं, और परी के रूप में जलकर, सहानुभूति की राख उसके पिता की आँखों में झोंककर चले जाते है। राजा महेश्वरसिंह की इतनी उदारता, दान-मान और समाज-सुधार का फल यह न हुआ कि किसी कुँवर से वह परी का विवाह कर पाते। अधिकांश कुँवरों के पिता जीवित थे। पिता की मृत्यु न होने तक विवाह के लिए कुँवर लोग अपनी सम्मति नहीं दे सकते, राजा महेश्वरसिंहजी को वातचीत पड़ने पर समझा देते थे। दो साल से राजा महेश्वर-सिंह भी उनमें से किसी के पिता के मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर परी के दुर्भाग्य से अभी तक सब जी रहे हैं—रावनगर, धनपुर, कटहर, विड़ासी, पाटन, वहेड़ा, भुजइन, गजखान, कुम्हड़ौरा, तिरपट, सकोटा आदि-आदि की नवीस गद्दी आवाद नही हुई। कुछ दिनो से उन्हें महाराज प्रतापनारायणसिंह, चन्दपुर, से आशा हो रही है। रानी कामलतादेवी की भी इच्छा है कि परी का विवाह यही हो। राजा साहव को भरोसा इसलिए है कि महाराज चन्दपुर को वंगाली सभ्यता वहुत पसन्द है। समाज-सुधारक के नाम से प्रसिद्ध राजा महेश्वरसिंह से जब वह पहले-पहल कलकत्ते के ग्रैण्ड-होटल में मिले थे, तव वंगाल की सभ्यता की वड़ी तारीफ की थी, और उनके समाज-सुधार के लिए सहानुभूति दिखलायी थी। इसके वाद रानी कामलतादेवी तथा कुमारी परिमल को साथ लेकर कई वार राजा महेश्वरसिंह उनसे मिल चुके हैं। माता के साथ परी भी सहमत है। कारण, वहाँ ऐश्वर्य और सम्मान अधिक है।

आज महाराजा साहव के सेक्रेटरी मिस्टर रैटलर साहव फिर राजा महेश्वर-सिंहजी को निमन्त्रण देने आये है कि रात नौ वजे कृपा कर राजा साहव सपरि-वार महाराजा साहव की कोठी मे दर्शन दें।

सपरिवार राजा साहव महाराजा साहव के साथ भोजन कर रहे थे। और कोई न था। भोजन में राजाओं के साथ सम्मिलित हो भी नही सकता था। राजा साहव ने महाराजा साहव को गौर से परी की ओर देखते हुए देखकर आशा से पुलकित होकर कहा, "महाराज, अगर एक सम्वन्ध वंगाल मे भी करें, तो अच्छा हो, प्रान्तीय सौहार्द इस प्रकार वढ़ता रहे।"

"मेरी इच्छा तो है," महाराज साहव ने परी को देखते हुए कहा। रानी कामलतादेवी ने मुस्किराकर कहा, "आप मेरी परी से विवाह कीजिए।" वड़ी सभ्यता से महाराजा साहव ने कहा, "आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

दिन ठीक करने को एकान्त में महाराजा ने आज्ञा दे दी। लौटकर राजा महेश्वरसिंह ने रानी कामलतादेवी से कहा, "पहाड़ी हूस है, परी को देखकर पागल हो गया है, हमें तो अपना मतलव गाँठना है।"

विवाह से पहले महाराजा साहव ने कहला भेजा कि आप तो समाज-सुधारक है,

विवाह में व्यर्थ खर्च क्यो किया जाये, वही रकम जिस सार्वजनिक संस्था को आप कहें, दे दी जाये। प्रस्ताव राजा को भी पसन्द आया। फिर पण्डित लोग महाराजा साहब की तरफ के, जो एक पग इधर-से-उधर होनेवाले न थे, बोले, हमारे महाराज का विवाह तो उसी ढंग से होगा, जो रीति हमारे यहाँ प्रचलित है। उदार राजा महेश्वरसिंह ने यह भी मंजूर कर लिया।

विवाह का दिन जहाँ तक शीघ्र किया जा सका, स्थिर किया गया। राजा साहब को महाराजा साहब के यहाँ की सभी प्रथाएँ मंजूर करनी पड़ीं। इसलिए विवाह के दिन राजा साहब को अपने कुछ आदमियो, रानी कामलतादेवी तथा परी के साथ महाराजा साहब के ही मकान जाना पडा। राजा साहब अपनी तरफ से कोई ब्राह्मण पण्डित नही ले गये थे, उन्हें ब्राह्मणो के मन्त्रों पर विश्वास न था।

मन्त्रोच्चार करते समय ब्राह्मणों को 'दासी-ग्रहणम्'-'दासी ग्रहणम्' कई बार कहते हुए सुनकर राजा साहब चौके, पर सस्कृत अच्छी पढ़ी न थी, सोचा, यह भी कोई रीति की ही यहाँ होगी। इस विचार से चुप हो रहे। 'कन्या-दासी-समर्पणम्' से 'दासी-ग्रहणम्' सब पूरा हो गया।

प्रधान पण्डित ने कहा, "राजा महेश्वरसिंहजी ने हमारे महाराज को दासी-रूप से अपनी कन्या का समर्पण किया है।"

राजा साहब को शब्द बड़े बुरे लगे। पूछा, "दासी-रूप क्या है?"

प्रधान पण्डित ने कहा, "आपने अपनी कन्या महाराज की सेवा के लिए दी"।

राजा साहब रुष्ट होकर बोले, "आप केवल दासी और सेवा का उल्लेख करते है।"

पण्डित ने कहा, "महाराज के पूज्य पिताजी की ऐसी ही आज्ञा है, वह महाराज आ रहे है।"

राजा महेश्वरसिंह ने देखते ही पुकारा, "शत्रुहनसिंह!"

"चुप! कान पकड़कर निकाल दिये जाओगे।" पास ही खड़े हुए महाराज के एक शरीर-रक्षक ने कहा।

"राजा महेश्वरसिंह," महाराज शत्रुहनसिंह ने कहा, "तुम्हारी जैसी लड़की है, हमने वैसा विवाह भी कराया। हम, अपने विपक्ष के सताये हुए, राज्य से भगकर तुम्हारे यहाँ दो रोटियों के लिए राज्य के हकदार बच्चे को लेकर गये थे। समय बदला। लडके को गद्दी मिली। तुम और तुम्हारी यह सात रोज तक हमारे जूते उठाओ, तो तुम्हारी लड़की को लड़की समझकर, क्षमा कर, लडके के साथ एक आसन पर बैठने का अधिकार हम देंगे। क्षत्रिय होकर क्षत्रिय के साथ वैसा नीच बर्ताव तुम देखते रहे!"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 सितम्बर, 1933। लिली मे संकलित]

अर्थ

पंजावमेल पूरी रफ्तार से कलकत्ता जा रहा है। दूसरे दर्जे में दो मुसाफिर पास-पास वैठे हैं। कुछ देर मौन रहकर एक ने दूसरे से नाम पूछा, जव वह प्रयाग में गाड़ी पर चढ़ा। उसने कहा, "मेरा नाम दिनेशकुमार है।" थोड़ी देर में घनिष्ठता वढ़ गयी। पहला मुसाफिर हीरालाल कलकत्ता लौट रहा है। वहाँ व्यवसाय करता है। नवयुवक है। धनी व्यवसायी का लडका, दिल्ली गया था। दिनेश भी नवयुवक है। हीरालाल को मालूम हुआ कि एक अच्छी जगह सिनेमा मे कहानी लिखने की दिनेश को मिली है, इसलिए कलकत्ता जा रहा है। हीरालाल खुद भी हिन्दी के कथानक, उपन्यास तथा नाटक सिनेमा-साहित्य का शौकीन है, कुछ ज्ञान भी इधर उसने अर्जित कर लिया है। पूछा, "हिन्दी के उपन्यास-लेखक रामकुमारजी को आप जानते हैं?"

"हाँ, वह तो आजकल प्रयाग ही रहते हैं।" दिनेश ने कहा।

"मेरे विचार से उनके जो उपन्यास निकले हैं, उनकी जोड़ के हिन्दी मे दूसरे नहीं, आप क्या कहते है?"

"मेरा भी यही विचार है।"

"उनका एक जीवन-चरित इधर 'भारती' मे प्रकाशित हुआ है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें एक ईश्वरीय सत्य है। आप कहें, तो सुनाऊँ?"

"सुनाइए।"

हीरालाल कहने लगा, "रामकुमार एक कुलीन व्राह्मण के घर का वालक ही था, जव घर की पूजार्चा देखकर, पाठ सुनकर हिन्दू-धर्म पर उसे पूरा विश्वास हो गया! जैसा सुना, वैसी ही धारणा भी वँध गयी कि अगर आज अकेले भीम होते, तो म्लेच्छों के पैर क्षण-भर के लिए भी उनके सामने न ठहरते। जहाँ गदा को घुमाने पर भगदत्त के हाथी सेमर की रुई की तरह आकाश मे उड़ गये, कुछ तो अव भी चक्कर काट रहे है, वहाँ म्लेच्छों का पता न रहता कि किस लोक मे, अँधेरे की तरह प्रकाश मे कहाँ, गायव हो गये। अगर कही महावीर स्वामी आ जाते—आ क्या जायँ, अव उनके समकक्ष योद्धा कोई रह ही नही गया, द्वापर मे इसीलिए वह लड़े नही—नहीं तो वह अमर हैं, कही गये थोड़े ही है! और उखाड़-उखाड़कर पटकते पहाड़, तो सारी अक्ल हवा हो जाती तुर्रमखानों की। इस तरह श्रीराम और कृष्णजी को, सोचता हुआ, आजकल के रावण की सशस्त्र सेना को वानर-मात्र की सहायता से परास्त कर देता, कभी कृष्णजी से असम्भव कार्य-रूप गोवर्धन धारण करा, उसके नीचे देश के भगवद्भक्त गोप-गोपियों को आश्रय देकर वर्तमान इन्द्र की दुश्शासन-वर्षा से उद्धार कर लेता, कभी किसी राक्षस-रूप में कृष्ण को घुसेड़कर पेट चिरवाता वाहर निकालता। इस तरह वन्दर को आदमी और आदमी को वन्दर वनाने की आदत पड़ गयी। करुणा तुलसी-कृत रामायण और सूरसागर के दैनिक पाठ से वढ़ती गयी। नवें दर्जे मे था, इसी समय भक्ति के आवेश मे सूझा, म्लेच्छों की विद्या न पढ़ूँगा, यह धन के लिए है, ज्ञान के लिए नही। इस समय यह

पन्द्रह साल का बालक था। घरवालों का शासन प्रबल था, इसलिए स्कूल जाना पड़ा। पर वह रह-रहकर सोचता था कि उसके घरवाले ढोंगी हैं; बाहर से तो भगवान् का नाम लेते हैं, पर भीतर से रुपया ही उनका लक्ष्य है। घरवालों से उसे घृणा हो गयी। धीरे-धीरे दो साल का समय और बीता, और इसने प्रवेशिका-परीक्षा पास कर ली। इसी समय पिता ने उसका विवाह किया। वहू युवती थी। वहू के घर आने पर रामकुमार ज्यों-ज्यों क्षीण हो चला, उसकी ईश्वर-भक्ति और आस्तिकता त्यों-त्यों प्रवीण होने लगी। पति ही पत्नी का ईश्वर है, यह संस्कार यद्यपि घर से पत्नी को प्राप्त हो चुका था, फिर भी रामकुमार ने अपनी ओर से शिक्षा देने की गफलत न की। फलतः वह गम्भीर होने लगा, और उसकी धार्मिक साधना भी वहू को प्रभावित करने के लिए बढ़ गयी। वहू सुन्दरी थी। पत्नी को पूर्ण मादकता से प्यार देना धर्म में दाखिल है। अतः इधर भी रामकुमार संसार की भावनाओं को स्वर्ग में बदल-बदलकर विहार करने लगा। पिता ने कॉलेज जाने के लिए कई बार कहा। वह वृद्ध हो गये थे। शारीरिक शासन करने में असमर्थ थे। रामकुमार ने पिता के शब्दों पर ध्यान न दिया। पत्नी ने भी श्वसुर के आदेश की एक बार पुनरावृत्ति की, क्योंकि उसे भय था कि पति के कॉलेज न जाने का कारण वही समझी जायेगी। रामकुमार ने कहा, 'अँगरेजी-शिक्षा से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।'

"तब तक रामकुमार को अर्थ की चिन्ता न थी। पिता को पेंशन मिलती थी, संसार-चक्र मजे में चला जा रहा था। उसकी माता का कुछ दिन बाद देहान्त हो गया। एक साल का क्रिया-कर्म भी पूरा हुआ। पिता ने कहा, 'बेटा, हम करारे के रूख हैं; तुमने पढ़ा नहीं, तो हमारे रहते कोई काम ही कर लो; नहीं तो पीछे तुम्हें कष्ट होगा।' रामकुमार गम्भीर होकर बोला, 'आप इसकी चिन्ता न करें।' मन-ही-मन कहा, 'कितना अविश्वास इन्हें ईश्वर पर है—पशु-पक्षिउ की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करै, अरे मन, धीरज क्यों न धरै!' रामकुमार को बालक-काल से सन्तों की उक्तियों पर दृढ़ विश्वास करने की आदत पड़ गयी थी। गोस्वामीजी की चौपाई याद आयी, 'विश्व-भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।' जो भरत संसार का पालन करते हैं, वह भोजन न देंगे, उन पर कितना अविश्वास है इन लोगों को! सोचता हुआ वह चला जाता, पिता खिन्न हो जाते।

"कुछ समय और पार हुआ, एक रोज पिता को कुछ बुखार आया, दो-तीन दिन बाद उनका दम निकल गया। आज पहला दिन था, जब गाँव के लोगों से रामकुमार को एक गृहस्थ की तरह, दीन होकर, धार्मिक उद्दण्डता छोड़कर, वर्ताव करना पड़ा। पहला बुलावा गया, और लाश उठाकर गंगाजी चलने के लिए कोई न आया, तब नाई ने समझाया कि, 'भैया, यह हाथ जोड़ने का समय है।' रामकुमार जाकर घर-घर हाथ जोड़ता फिरा। लोगों ने सलाह करके कहा, 'रामचन्द्र शुक्ल मरे थे, तब लोगों को 15) के पेड़े उनके लड़के ने खिलाये थे; कहो, 15) के पेड़े खिलाओगे? तो चलें अपने गिरोह के बीस आदमी।' रामकुमार को स्वीकार करना पड़ा। घाट से लौटने पर तेरही तक बड़ी विपत्ति रही। कुटुम्बों का व्यवहार खासे दुश्मनों का-सा रहा। एक की जगह तीन-तीन लेकर टले। माता का भी क्रिया-कर्म उसी ने किया था। पर तब पिता थे, इसलिए संसार का वर्ताव नहीं

समझ सका। तेरहीं के बाद उसकी पत्नी विद्या ने कहा, 'नकद आठ सौ रुपये थे, सब खर्च हो गये।' धर्म के दवाव से पत्नी ने यह न कहा कि कोई काम देखो, नहीं तो इस तरह और कब तक चलेगा। रामकुमार ने कहा, 'अच्छी बात है, खर्च होने दो, मुझे धन के मालिक का पता मालूम है।'

"कुछ समय और बीता, रामकुमार की पूजा बढ़ चली। गाँववाले आपस में बतलाने लगे, 'कैसा बेवकूफ है, पढ़ा-लिखा है, कही नौकरी या रोजगारी नहीं करता, रामायण लिये चार-चार घण्टे मन्दिर मे बड़बड़ाया करता है।' इसके जवाब में कोई कहता है, 'बाप की कमाई का रुपया गाँजा है; हमारी-तुम्हारी तरह नदार है? कराया तो तुमने तेरही में मनमाना खर्च, फिर रुका? नही जाता नौकरी करने। जब माल होता है, तब भगवान् का नाम सूझता ही है, आखिर बैठा-बैठा क्या करे? अब आगे वर्षी मे कराओ खर्च दो हजार, देख लो, कभी जो हाथ खीचे।' इधर एक रोज ऐसा हो गया कि विद्या के हाथ में एक पैसा भी न रहा। उसने पति से कहा कि आज से अब एक पैसा भी खर्च के लिए नही है।

"युवक रामकुमार गम्भीर होकर बोला, 'अच्छी बात है, आज पैसा हो जायेगा।' जैसा उसने पढ़ रक्खा था कि भरतजी का नाम जपने पर अर्थ होता है, शाम होने पर एक कोठरी में बैठकर भरतजी का नाम जपने लगा। रात ग्यारह बजे तक पाँच हजार जप पूरा कर, वही एक चुटके में यह लिखकर कि मेरे इस जप की जो मजदूरी होती हो, यहीं अँगोछे पर रख दीजिए, उठकर पत्नी के पास आया। उधर विद्या भी चूल्हे के पास भोजन तैयार कर बैठी हुई पति के लिए तपस्या कर रही थी। गम्भीर भाव से भोजन कर रामकुमार बाहर आया, तब विद्या ने भी भोजन किया। मारे डर के उसने कारण न पूछा। प्रेम से उच्छ्वसित हो, गम्भीर भाव से, पलँग पर पडे-पडे पति ने स्वयं पत्नी से अपने अर्थोपगम का मन्त्र बतलाया। विद्या मुँह फेरकर हंसने लगी।

"सुबह उठकर रामकुमार नहाया, फिर भक्ति-भाव से उस कोठरी मे गया। विद्या मुस्किराती हुई बाहर से झांकने लगी। रामकुमार ने देखा, भीतर अँगोछा जिस तरह फैलाया था, उसी तरह फैला है; भरतजी पाँच हजार नाम जप की मजदूरी उस पर नही रख गये। हृदय को बडा दुख हुआ। मारे लज्जा के पत्नी से आँख न मिला सका। विद्या बडे कष्ट से हँसी रोके हुए थी। सान्त्वना की बातें हँस डालने के भय से नहीं कह रही थी। इसी समय छक्कन साह ने द्वार पर आकर पुकारा। छक्कन पहले बचका लाते थे। अब रुपया कर्ज दिया करते है। रामकुमार द्वार पर गया; तो छक्कन ने पालागन करके कुशल पूछी। अनुभवी छक्कन पड़ोस के दूसरे गाँव मे रहते हैं। आलसी अकर्मण्य आजकल के बाबू युवकों की नस-नस से वाकिफ हो चुके, उन्हे थोडे रुपये देकर काफी रकम—सोने-चाँदी के गहने ले चुके हैं। रामकुमार के पिता का देहान्त हो चुका है, पेंशन बन्द हो गयी है, जवान लड़का बहू के रूप में फँसकर बाहर पैर नही निकालता, हैसियत इतनी अच्छी नही कि इसी तरह हमेशा निभे, कही बीच में रुपयो की जरूरत हुई, तो ऐसा न हो कि दूसरे के हाथ शिकार फँस जाये, यह सब सोचकर छक्कन साह घर से चले थे। सरल रामकुमार ने पहले ही कहा, 'पिताजी की तेरही मे रहा-सहा रुपया खर्च हो

गया है, अब तो बड़ी दिक्कत में है।' छक्कन का श्रम सफल हुआ। बड़ी हमदर्दी से बोले, 'तो डर किस बात का है ? आप तो घर के लडके हैं। जैसे यह घर आपका, वैसे वह घर भी आपका। आपका खर्च न रुकेगा, रुपयों का इन्तजाम कर दिया जायेगा।' रामकुमार के विचार से साक्षात् भरतजी आ गये। बोला, 'रुपये तो अभी मुझे चाहिए।' छक्कन समझ गये कि यह बेवकूफ है, यह मुझसे उसी तरह रुपये लिया चाहता है, जैसे अपने बाप से लेता था। बोले, 'तो कितने रुपये अभी आपको चाहिए ?' 'दो सौ।' छक्कन ने कहा, 'हमारे पास होते, तो हम दे देते; हमे दूसरे से लेकर देना है, और वह वगैर कुछ रेहन रक्खे रुपया न देगा। अगर आप कहें, तो हम अपने यहाँ से 20 तोले की जंजीर सोने की रेहन करके रुपये ले आवें। आप सोलह तोले भी हमारे यहाँ सोना ले आवें, तो पिछले पहर तक दो सौ रुपये ले जा सकते हैं। दूसरे के पास जायेंगे, तो 2 रुपया सैकड़ा ब्याज से कम मे न देगा, हम 1 रु. ही सैकड़ा लेंगे।' इसके सिवा कोई चारा न था। रामकुमार ने रुपयो का इन्तजाम कर रखने के लिए कह दिया। उधर छक्कन घर गये, इधर वह पत्नी के पास आया। बडी लाज लगी, पर उपाय न था, विद्या से कहा, 'अपनी जजीर दे दो, तो पिछले पहर रुपये ले आऊँ।' अम्लान विद्या ने बॉक्स खोलकर जंजीर निकाल ली, फिर पति को देखती हुई, उसे ही हर तरह पाने की प्रार्थना से हाथ पर रख दी। रामकुमार जंजीर लिये पड़ा रहा। चौका-टहल कर, पानी भरकर चलती हुई महरी ने पूछा, 'आज अभी तक भैया पड़े है, गाँव के लोग कहते हैं, आज सुबह छक्कन साह आये थे, जान पड़ता है, दिवाला छ महीने मे निकल गया, क्या बात है वह ?' 'बात क्या है ? तुम अपना काम करो, कहने के लिए दुनिया है, किसी की जीभ मे ताला पडा है ?' भोजन पकाकर, पति को समझाती हुई बोली, 'तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो—फिर हम दोनो एक साथ भीख मांगेंगे, पर अब मैं तुम्हे कहीं भी न जाने दूंगी। मेरे चार हजार के गहने है, तुम सब बेच डालो।' रामकुमार को आज कार्यतः पहलेपहल प्रिया के अपार प्रेम का परिचय मिला। उठकर नहाया, भोजन किया, शाम को 30 तोले की जंजीर के बदले दो सौ रुपये लेकर घर लौटा।

"हृदय को बड़ी चोट पहुँची। 'जो राम पृथ्वी के ईश्वर है, जो भरत सृष्टि-भर को भोजन देते हैं, उन्होने स्वयं अपने भक्त की लाज ले ली, अब मैं किस विश्वास पर उन्हें पुकारूँ ? वे मेरे किस काम आयेंगे ?' सोचते-सोचते मस्तिष्क में गरमी छा गयी। प्यार की जगह चोट खाकर मनुष्य मुश्किल से सुधरता है। इसी समय याद आयी, 'भगवान् चित्रकूट मे है। तुलसीदास को वही उनके दर्शन हुए थे।' कागज लेकर उनके नाम चिट्ठी लिखने लगा। लिखा—

'प्रभो,

मुझे तुम्हारा बड़ा भरोसा था। मेरी नाव अब मझदार में है। पर तुम्हारी कृपा तो मुझे नही नजर आती। अब तुम्हारे सिवा संसार मे मेरी मदद करनेवाला कोई नही है। मेरे पिता का भी सहारा तुमने छुड़ा दिया। अब तो दया करो। तुमने सुग्रीव और विभीषण को राजा बना दिया; तो मेरी कुछ तो खबर करो। प्रभो, मैंने तुम्ही को संसार मे माना है, और आज तुम्हारी ओर से मुंह फेरते हुए

छाती दो-टूक हुई जा रही है। प्रभो, दास पर दया करो, वह बड़े दुःख में है। रामायण में भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी ने लिखा है—

जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन दिये दस माथ;
सोई सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि दीन रघुनाथ।

क्या यह सब झूठ ही है? रघुनाथ, विश्वास जो नही होता? अधिक और क्या लिखूँ? तुम तो हृदय-हृदय का हाल जानते हो, स्वामिन्!

तुम्हारा दास
रामकुमार'

"ऊपर लिफाफे मे, श्रीरामचन्द्रसिंह, रामघाट, चित्रकूट, सीतापुर, बाँदा लिखकर चिट्ठी डाकखाने में छोड़ दी। एकचित्त से प्रभु के उत्तर की राह देखता रहा। चिन्ता मे दुर्बल हो गया। एक दिन चिट्ठीरसा वही चिट्ठी वापस ले आया। चिट्ठी देखकर रामकुमार अर्द्ध-विक्षिप्त हो गया।

"धीरे-धीरे वर्षी का समय आ गया। लोग स्वयं उसे बुलाकर सलाह देने लगे कि 'कुल कमाई तुम्हारे पिता की है, ऐसा न हो कि स्वर्ग में उन्हे संकोच हो।' लोग इस प्रसंग पर रामकुमार को काफी आदर देते थे। उसके चले जाने पर आपस में कहते, 'इनके पिता हँसिया-खुर्पी छोड़कर परदेस गये थे, खैर, उनकी तो निवह गयी, पर इन्हें देखो, पकड़ाते है चार साल में।'

"विद्या ने कभी पति को कोई सलाह न दी। पति की ही मर्जी उसकी मर्जी रही। रामकुमार के हृदय को भक्ति से स्वार्थपूर्ति न होने पर एक चोट लगी है, यह वह समझ चुकी थी, इसलिए अपने स्नेह से बराबर उसे सिक्त रखने का प्रयत्न करती रहती। इसी बल से रामकुमार चल-फिर रहा था। पिता की वर्षी में दो हजार का खर्च है। इस बार विद्या के सब गहनों की बाजी है। बिना वर्षी किये जा नही सकता, पिता को लोग हँसेंगे। यह सोच-सोचकर एक दिन वर्षी की तैयारी करनी पड़ी। विद्या ने कुल जेवर निकालकर दे दिये। उसकी तरफ देखा तक नही। बराबर निगाह पति की आँखों से मिली रही।

"वर्षी हो गयी। दो हजार ब्राह्मणो का जमाव रहा। एक दिन उसने अपने ही कानों शाम को आते हुए सुना, लोग बातचीत कर रहे थे, 'कैसा बेवकूफ बनाया!' रामकुमार संसार से सब प्रकार हताश हो गया। एक दिन विद्या को विदा कराने के लिए उसका भाई आया। रामकुमार को निराभरण विद्या को भेजते हुए बड़ी लज्जा लगी। पर वह स्वयं कुछ दिनों के लिए विद्या से अलग होना चाहता था। पति को छोड़कर पिता के यहाँ जाने की विद्या की भी इच्छा न थी। उसने निश्चय कर लिया था, एक दिन इनके साथ हाथ पकड़कर हमेशा के लिए घर छोड़ेगी। ऐसी दशा जब उत्तरोत्तर हो रही है, तब वह दिन भी शीघ्र आनेवाला है, जब इसे स्त्रीत्व की विभूतियों से अमर, ऊँचा आदर्श पति के प्रेम में पूरा करना होगा। उसे बिना गहनो के मायके जाने मे लाज न थी, जहाँ उसके बालकेलियो से उज्ज्वल, निराभरण रूपवाले दिन बीते थे। वह केवल पति के सोच मे थी। पर रामकुमार, कुछ समय, हीरे की खान ढूँढ़ने के लिए निकले हुए योरपीयों की तरह, अर्थ के अन्वेषण मे अकेला चलना चाहता था। विद्या को घर मे निस्संग रहने के कारण

कष्ट होगा, सोचकर, मौका देख एकान्त में उसने समझाया कि जब तक किसी जगह वह पैर न जमा सके, तब तक विद्या का मायके ही रहना अच्छा होगा, और उसके विदा होने के बाद वह भी अर्थ की तलाश में निकलेगा।

"विद्या पति की पद-धूलि लेकर भाई के साथ चली गयी। रामकुमार भी अर्थ की खोज में बाहर निकला। लखनऊ, कानपुर और प्रयाग में कई जगह गया, पर किसी ने भी न पूछा। वह क्या जाने कि संसार किसे कहते हैं, एक साधारण-सी जगह के लिए कितने असाधारण कार्य करने पड़ते हैं, कितना छल, कितनी खुशामद, कितनी सिफारिश दो रोटियों की नौकरी के लिए आज जरूरी हो रही है? उसके राम इस संसार के स्वामी हो सकते हैं, पर बर्ताव मे इस संसार के स्वामी उसके राम नहीं। सभी जगह से उसे अपमान सहकर लौटना पड़ा; सभी ने उसे बेवकूफ बनाकर छोड़ा। उसके हृदय की कौन जानता था? पर उसकी मूर्खता नौकरी के लिए बेकायदा आकर गिड़गिड़ाने पर सब पहचान लेते थे। वह कितना पवित्र है, इसकी किसे आवश्यकता है? उसे संसार का, ऑफिस का कुछ ज्ञान नहीं, यह सब समझ जाते थे। उसने क्यों पहले से ऑफिस का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया? दस रुपये की नौकरी? नहीं है। रुपया पेड़ में फलता है? लाखों का माल किसी के पास होता है, तो वह लुटा देता है? लोग दमड़ी की हण्डी बजाकर लेते हैं।

"सब जगह ठोकरें मिली। रामजी के विश्वास पर इधर जो शैथिल्य आ गया था, संसार का जितना तृण इस मन्द अंगार पर आ पड़ा था, संस्कार की तेज हवा से जलने लगा। तमाम आग राम के ही विश्वास में बदल गयी। बार-बार हृदय में स्पन्द-स्पन्द पर ध्वनित हो चला—जिन पर इतने बड़े-बड़े महात्मा विश्वास करते आये, वह एक मिथ्या कल्पना-मात्र है? आज तक जिसके सहारे का भरोसा किया, वह शून्य की तरह कुछ भी नहीं? रामकुमार का मस्तिष्क और हृदय जलने लगा। प्रयाग-स्टेशन आ, चित्रकूट के लिए टिकट कटाकर गाड़ी पर बैठ गया।

"जब चित्रकूट उतरा, तब उसके पास कुछ न था। जो कुछ थोड़ा-सा सामान और रुपया-पैसा था, मानिकपुर और कर्वी के बीच जब रात को गाड़ी पहाड़ी जंगल पार कर रही थी, दूसरों की आँख बचाकर फेंक दिया। चित्रकूट पहुँच, चुल्लू से पयस्विनी का जल पीकर, एक यात्री की कृपा से नदी पार हो, हनुमद्धारा मे पहले रामभक्त महावीरजी के दर्शन करने गया। पहाड़ की सीढ़ियाँ तय कर बड़े भक्ति-भाव से हनुमानजी को प्रणाम किया। पर पैसे न चढ़ाये। थे ही नहीं। गृहस्थ, और पैसे न चढाये। एक बाबाजी बैठे थे, गालियाँ देने लगे। चुपचाप, कुछ देर भी विश्राम किये बिना, लौटा। महावीरजी की सहायता से विश्व-सम्राट् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से वह पैसे माँगने गया था, चढाने नहीं। थका हुआ, सीढियाँ उतरने लगा। सावन की सजल दिगन्त तक फैली हुई श्याम शोभा राममयी हो रही थी, शीतल-सुख-स्पर्श वर्षा-समीर बह रही थी, पर उसके हृदय की आग इससे और जल-जल उठने लगी। इतने जल में भी मुख सूख गया। नदी के किनारे दीन भाव से आकर खड़ा हुआ। अबकी मल्लाह ने स्वयं दया की। पार उतरकर रामकुमार कामद-गिरि की परिक्रमा करने लगा। पहाड़ पर मोरों के झुण्ड निर्भय नृत्य कर रहे थे। बड़े-बड़े पेड़ हवा के झोंकों से लहरा-लहराकर कह रहे थे 'हम पूर्ण हैं, हमें

कुछ भी न चाहिए।' एक जगह लोगों से उसने पूछा, 'भगवान् के इस गिरि पर क्या है ?' लोगों ने कहा, 'इस पर भगवान् स्वयं रहते है। ऊपर एक बड़ा-सा सरोवर है, उसके किनारे उनकी कुटी है, वही सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ वह निरन्तर तपस्या करते हुए भक्तों की मनोवांछाएँ पूरी करते रहते है।' रामकुमार ने आग्रह से पूछा, 'वहाँ दर्शन के लिए जाने की मनाही क्यों है ?' उत्तर मिला, 'वहाँ जाने से भी दर्शन नही हो सकते, भगवान्, सरोवर, कुटी, सब लुप्त हो जाते है।' रामकुमार को बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने निश्चय किया, लोग दिन को नही चढ़ने देते, मैं रात को चढ़ूंगा। फिर वह परिक्रमा करता गया। पहले भूख और प्यास से सूख रहा था, अब इस निश्चय से, राम-दर्शन-भर पर विश्वास दृढ़ हुआ, चेहरा गुलाब के फूल-जैसा खुल गया। प्राकृतिक शोभा जैसे सूचित कर रही हो, राम हैं, वह मिलेंगे। खुशी से परिक्रमा करता हुआ मसूबे बाँधता रहा।

"परिक्रमा समाप्त कर एक मन्दिर मे शिव-नाम जपता हुआ उनकी कृपा की भिक्षा, जिससे रामजी के दर्शन मिल जायें, और अपने समय की प्रतीक्षा करता रहा। सब दिनों की असफलता आज आशा मे पूरी सफलता बनकर उसे आनन्द में लहरा रही थी। रात दस बजे तक वह उसी मन्दिर में बैठा रहा। जब देखा कि सब सुनसान हो गया है, तब बाहर निकला। घोर अन्धकार छाया हुआ था। आकाश में सावन की घटा छायी हुई थी, हवा चल रही थी, बादल गरज रहे थे। परिक्रमा का अन्त करने से कुछ पहले एक स्थान उसे ऐसा मिला, जहाँ मन्दिर कम हैं, रास्ता रोकनेवाले लोगों का भय नही। वहीं से पहाड़ चढ़ने का उसने निश्चय किया था, उसी ओर, उल्टी परिक्रमा करता हुआ चला। घोर रात्रि-काल। मन्दिरों के द्वार बन्द हो चुके थे। शायद लोग भी सो चुके हों। तीव्र आकांक्षा से बढ़ता हुआ अपने स्थान पर पहुँचा। देखा, कामद-गिरि का बड़ा भयानक रूप हो रहा था। पर रामकुमार के प्राणो को चोट पहुँची थी, राम को वह प्यार करता था, उन्हीं राम ने संसार में उसे अकेला छोड़ दिया है, प्रार्थना पर भी सहायता नहीं की। इसलिए मृत्यु भी आज तुच्छ है—सत्य का साक्षात्कार, चिरकाल के प्यारवाले राम एक तरफ है, घोर प्रकृति, दुर्धर्ष पहाड़, अपार बाधाएँ प्राणों का मोह पैदा करती हुई एक तरफ। पर प्राणों का मोह तो उसे होता है, जिसका संसार सुखमय, विलास की रंगशाला में परियों की पद-भूमि हो। एक बार पहाड़ की ओर गर्दन उठाकर रामकुमार ने देखा। घोर अन्धकार के सिवा कुछ भी न देख पड़ा। उसके बाद नग्न गिरि की पूजा में अपने वस्त्र उतारकर पद-मूल में नमन कर मन-ही-मन कहा, 'लो, अब कुछ भी मेरे पास अपना कहने के लिए नही रह गया, मैं अब केवल उनसे मिलकर एक बार पूछना चाहता हूँ, मेरे पत्र का ग्रहण मेरे किस अपराध के फलस्वरूप आपने नही किया ?' अर्द्ध-विक्षिप्त-सा होकर ब्राह्य त्याग को सीमा तक पहुँचा-कर रामकुमार पहाड़ चढ़ने लगा। कमर-भर सब जगह घास उगी हुई, खड़ा पहाड़, वर्षा के जल से पत्थरों पर कहीं-कहीं काई जमी हुई, प्रति पद साँप और बिच्छुओं का भय। पर रामकुमार को कोई होश नही, केवल राम से मिलने की लगन लगी हुई। कुछ दूर बाद पहाड़ से एक झरना उतरा था, जल न था, वह

रास्ता मिलने पर, उसी से हाथ-पैर, चारों टेककर चढ़ता गया। कुछ दूर जाने पर थका, तो महावीरजी के देह के घी-मिले सेंदुर की सुगन्ध आने लगी। मन मे विचार आया, महावीरजी मेरे साथ मेरी रक्षा कर रहे है, फिर प्राणों को अपूर्व वल प्राप्त हो गया। फिर चढने लगा। तीन-चौथाई पहाड़ चढ़ गया, तव सामने पहाड़ का एक हिस्सा लटका हुआ देख पडा। चढ़ने का उपाय न था। वड़ा दुःख हुआ। उसी समय विजली कौंधी। प्रकाश में कुछ पग दाहने एक पेड देख पड़ा, जो पहाड के लटकते हिस्से की वगल से उगकर उससे मिला हुआ तने मे ही कुछ ऊँचा उठ गया था। रामकुमार उसी पेड़ पर चढ़कर उस लटकते हिस्मे पर गया। अव वूंदो की वर्षा होने लगी। पर रामकुमार चढ़ता ही गया। जव कुछ और ऊपर गया, तो वैसा ही एक दूसरा उससे कुछ और ऊँचा लटकता हिस्सा देख पड़ा। ठीक इसके वाद कामद-गिरि की चढ़ाई समाप्त थी। पर चढने का कोई उपाय न था। विजली चमकी, देखा, दूर तक पहाड़ वैसा ही खड़ा चढ़ा था। ऊपर से लटका हुआ। अव पानी भी धीरे-धीरे वरसने लगा। लाचार हो, उसी लटके पहाड़ के नीचे वैठकर रोने लगा।

"कुछ देर वाद पानी वन्द हो गया। उसे भय हुआ कि दिन को लोग देखेंगे, तो पकड़कर मारेंगे। रात दो-ढाई घण्टे रह गयी थी, तव तक पहाड से उतर जाने का निश्चय कर उतरने लगा। उसी तरह पहले पेड़ से होकर उतरा। फिर धीरे-धीरे घण्टे-भर वाद नीचे आया। कपड़े जो उतारकर कामद-गिरि पर चढ़ा दिये थे, फिर से पहन लेने की इच्छा हुई। जहाँ उतारे थे, वहाँ देखने लगा, वहाँ कोई कपड़ा न मिला। पवन देव न-जाने कहाँ उड़ा ले गये थे। अव वडी लज्जा लगी। अँधेरा जव तक है, तव तक वस्ती छोड़कर दूर निकल जाने को जी करने लगा। वह पयस्विनी की तरफ चला। रास्ते में नाला छाती तक भरा हुआ मिला। वहाँ उसे मालूम हुआ, पानी जोर का गिरा है। नाला पार कर पयस्विनी के तट पर गया, तो पानी के मारे सव घाट डूव गये थे। नदी का रूप भयंकर हो रहा था। जहाँ आदमी चलते थे, वहाँ कही-कही छाती से ज्यादा पानी था। यह देखकर अनजाने एक दूसरे रास्ते से चलकर सीतापुर के भीतर पैठा। जल्द-जल्द वस्ती के वाहर जा रहा था। ऊपा के क्षीण प्रकाश से अँधेरा हट चला। अभी तक लोग जगे न थे। कुछ दूर जाने पर ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाले एक यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण मिले। ब्राह्मण देवता को देखकर रामकुमार ने करुण कण्ठ से प्रार्थना की, 'आप अपना गमछा मुझे दे दीजिए! यहाँ वस्ती है।' ब्राह्मण गला फाड़कर पुकार उठे, 'चोर है! पुलिस-पुलिस!' रामकुमार धीर पद चल दिया। लोगो ने निकलकर देखा, प्रशान्त अविचल नग्न युवक-साधु चला जा रहा है—उसकी चाल में चोर के लक्षण नही। ब्राह्मण ने कहा, 'यह मुझसे अँगोछा माँग रहा था।' लोगों ने कहा, 'मूर्ख, वस्ती के विचार से साधु ने ऐसा कहा होगा, तेरा एक अँगोछा लेकर वह क्या करेंगे? तूने वड़ा धोखा खाया, डेढ़ गज कपड़े के तुझे थानों मिलते।'

"धीरे-धीरे रामकुमार वस्ती पार कर गया। जिधर निगाह जाती है, लक्ष्य-हीन उसी तरफ चला गया। दुःख, ग्लानि, क्षोभ, क्लान्ति और भूख से विलकुल मुरझा गया था। मन इतने उच्च स्तर पर था कि उसे अपने नग्न शरीर के लिए

अब बिलकुल लज्जा न थी। प्रकाश फैलने के साथ ही लाज का अँधेरा भी मिट गया। सामने महुए के दो-तीन पेड देख पड़े, उसी ओर चला। पहुँचकर छाया में बैठते ही इतनी क्लान्ति बढ़ी कि लेट गया। लेटते ही बेहोश हो गया।

"जब जागा, तब दोपहर थी। देह फूल-सी हलकी हो गयी थी। इतनी स्वच्छता का उसे कभी अनुभव न हुआ था। शंका आप-ही-आप पैदा हुई, 'क्या भगवान् नहीं है ?'

"सुना, ठीक मस्तक के ऊपर से आवाज आयी—'है, है।'

"तअज्जुब में आ निगाह उठाकर देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ फिर 'टें-टें' कर उठा।

"सन्देह से निगाह हटा ली। फिर शंका हुई, 'यह सब क्या है ?'

"फिर ऊपर से आवाज आयी, 'चित्रकूट', 'चित्रकूट'।

"मन मे उत्तर तैयार हो गया, 'चित्रकूट है इसका।'

"समास का ज्ञान रामकुमार को था। इस उत्तर के निकलते ही जैसे सारी पृथ्वी उसकी दृष्टि मे चक्कर खाने लगी, पेड़ आदि सब घूमने लगे, घूमते-घूमते, धूमिल छाया मे बदलते हुए सब आकाश मे मिलने लगे। अन्त मे रामकुमार को कहीं कुछ न देख पड़ा। उसके देह है, यह ज्ञान भी न रहा। शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक रह गयीं।

"कुछ देर बाद ज्ञान हुआ। गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवनी का वह अंश याद आया, जहाँ लिखा है, महावीर-रूपी तोते ने कहा है—

'चित्रकूट के घाट पै भइ सन्तन की भीर;
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुवीर।'

"इसके बाद ही शुकदेव की याद आयी।

"मन में फिर शंका हुई, 'तो क्या अभी-अभी जो कुछ मैंने देखा, यही राम है ?' फिर सुन पड़ा—'हाँ-हाँ !' आँख उठाकर देखा—'टें-टें' करता हुआ सुआ उड़ गया।

"फिर मन चिरकाल से अभ्यस्त अज्ञानवाले घर में जाना ही चाहता था कि 'उठ-उठ' की आवाज आयी। फिरकर देखा, तो एक कठफोरा दूसरे महुए की सूखी डाल में खटाखट चोंच मार रहा था।

"इस समय कुछ चरवाहे बालक सामने आ, हाथ जोड़कर बोले, 'महाराज, गाँव जाइए। पास ही, वह देख पड़ता है।'

"रामकुमार उठकर खड़ा हो गया। भूख लग आयी। भिक्षा की इच्छा हुई। गाँव की ओर चला। मन आज की विश्व-प्रकृति के अद्भुत सत्य-परिचय में तन्मय था, स्वभाव एक सरल बालक का-सा बन रहा था। लज्जा लेश-मात्र न थी। घर-द्वार, पेड़-पौधे छायामय दिखायी दे रहे थे। उनका सत्य उसी के पास सिमटा हुआ था। गाँव पहुँचकर, एक द्वार पर खड़ा हो, मौन अंजलि फैला दी। उसे अब कोई आवश्यकता नहीं मालूम दी कि यह किस जातिवाले का घर है, जाँचकर भिक्षा ले। वह बाहरी दुनिया को इतना कम देख रहा था। जिसके द्वार पर उसने हाथ फैलाया था, वह नीच जाति का मनुष्य था। उसके यहाँ किसी साधु ने भोजन-भिक्षा

नही ली। उसके संस्कार भी ऐसे वन गये थे कि उसे भोजन देते हुए संकोच हुआ, गाँव के ऊँचे कुलवालो से डरा, प्रणाम कर भक्ति-पूर्वक उसने कहा, 'महाराज, आप उस तरफ जाइए, उधर ब्राह्मणो के मकान है।' रामकुमार उसी तरफ चला। कुछ दूर पर एक आदमी वैठा था, देखकर रामकुमार ने पूर्ववत् अंजलि फैला दी।

"इसी समय 'अरे रामकुमार! तुम्हारा यह हाल!!' कहकर वह युवक ऊँचे स्वर से रोने लगा। अव रामकुमार का भी ध्यान उसकी तरफ गया। उसने देखा, युवक उसका मित्र है। जव वह पिता के साथ परदेश मे रहता था, तव वहाँ यह युवक भी अपनी वहन के पास जाकर कुछ साल तक ठहरा था। दोनों घनिष्ठ मित्रता के पाश मे वँध चुके थे।

"परिचय के पश्चात् रामकुमार का मन नीचे उतर चला। उसे लाज लगने लगी। युवक एक धोती आप-ही-आप ले आया, और देकर कहा कि इसे पहनकर यही कुछ दिन रहो, और अपने समाचार कहो। उसकी स्नेहमयी मैत्री का दवाव रामकुमार हटा न सका। धोती पहनने लगा। गाँव के कुछ लोग एकटक यह स्नेह-संयोग देख रहे थे। वाद को युवक से उन्हें मालूम हुआ, यह भले घर का लिखा-पढ़ा लड़का है, भक्ति के आवेश मे इसने ऐसा किया है।

"जलपान तथा भोजन समाप्त कर युवक ने अपने पिता के स्वर्गवास का हाल तो कहा, पर वह भगवान् रामचन्द्रजी से रुपया माँगने के लिए चित्रकूट आया हुआ है, और इसी उद्देश से नग्न है, यह कुछ न कहा। उसी रात को सोते हुए उसने स्वप्न देखा, उसका वही मित्र सूर्य की तरह प्रकाशवान्, श्यामलाभ, धनुर्धर साक्षात् रामचन्द्र है, हँसता हुआ कह रहा है, तुमने अर्थ के लिए वड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया। इसी समय आँखें खुल गयी। देखा, उसका युवक मित्र उठ वैठा है, ठीक ब्राह्ममुहूर्त है। युवक ने कहा, रामकुमार, मैंने आज वड़ा खराव स्वप्न देखा, देखा कि तुम एक नदी तैरकर पार कर रहे हो, पर वीच धारा में पड़कर वहे जा रहे हो, तुम्हें वचाने के लिए मैं भी नदी मे कूदा, तव न वहाँ पानी था, न तुम, घवराकर उठ वैठा।

"दूसरे दिन रामकुमार को कर्वी-स्टेशन पर ले जाकर उसने घर तक का टिकट कटा दिया। प्रयाग उतरकर नौकरी की तालाश मे पूछ-ताछ करता हुआ वह 'नवयुग' प्रेस मे गया, वहाँ चिट्ठियाँ लिखने के लिए एक क्लर्क की आवश्यकता थी, जगह वीस रुपये की। उसकी वातचीत से मालिक को दया आ गयी, उसे रख लिया।

"वही से उसने पढना शुरू किया, और साल ही भर मे एक उपन्यास लिखा, और मुफ्त छापने को दे दिया। उपन्यास की भाषा वडी सजीव थी। भाव विलकुल नये। लोगो को वहुत पसन्द आया। खूव विका। नौकरी छोड़ दी। दूसरे साल तीन उपन्यास लिखे। चार ही साल मे वह उपन्यास-साहित्य की चोटी पर पहुँच गया। कई हजार रुपये उसने एकत्र कर लिये। सारा ऋण चुका दिया, और अव विद्या के साथ सुखपूर्वक रहता है।

"रामकुमार का कहना है कि ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते है; उसमे सूक्ष्म अर्थ वनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है।"

हीरालाल ने कहा, "संसार के व्यवसाय में भी सूक्ष्म अर्थ ही स्थूल अर्थ पैदा होने के कारण है।"

फिर दिनेश की ओर देखकर पूछा, "अच्छा, तोते की जगह आपको विश्वास होता है?"

"मुझे कुल आत्मकथा पर विश्वास है।" दिनेश ने उत्तर दिया।

"तो रामकुमार की तरह आपको भी हिन्दू-धर्म के गपोड़ो पर विश्वास करने की आदत है।"

"नही, इसलिए नही, वलिक रामकुमार—"

छूटते ही हीरालाल ने पूछा, "रामकुमार आप ही है?"

"नही, रामकुमार को वस्त्र देनेवाला उसका मित्र।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 सितम्बर, 1933। लिली मे संकलित]

न्याय

अभी ऊषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है—भास्कर-मुख अपर प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट। मुख का मृदु-स्पर्श, प्रकाश, लघुतम तूलि जैसे, पर दिगन्तशोभ से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी-वालिकाओं-सी स्वागत के लिए सजकर खड़ी हैं। पवन पुनः-पुनः ऊषा का दर्शन शुभ-मधुर सन्देश दे रहा है। निविड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रभाती गा रहे है।

इस सुख के समय गोमती-तट से क्षिप्र गति मे दो-एक भ्रमणशील शिक्षित युवक शंकाकुल लौटते हुए देख पडते है, जैसे शीघ्र घर लौटकर भ्रमण के लिए जाने का सत्य भी छिपाना चाहते हों। भय और उद्वेग का अशुभ कारण कोई किसी से नहीं कह रहा।

उसी रास्ते के दूसरी ओर वकील लाला महेश्वरीप्रसाद रहते हैं। रोज सुबह उसी रास्ते घड़ी और छड़ी लेकर टहलने जाते है। उधर चले, तो लौटनेवाले एक अनजाने आदमी को देखकर मन मे चौंके। उससे घबराकर चलने का कारण डरते-डरते पूछा। उत्तर में, सँभलकर उसने कहा, "आपको भ्रम हो रहा है, मैं घबराने क्यों लगा?"—फिर अपना रास्ता नापा। वकील महेश्वरीप्रसाद आगे बढे। गोमती के किनारे कुछ दूर जाने पर बड़ी करुण आवाज आयी, "भैया! मुझे निकाल लो, तीन आदमी सुन-सुनकर चले गये, दया करो, मैं आप नही निकल सकता, जख्मी हूँ, रात को मारकर डाल दिया है वदमाशों ने।"

वकील साहब के कलेजे में हूक-सी लगी। उल्टे पैर भगे। उनका बँगला पास

ही था। रास्ता छोड़कर खेतों से दौड़े। एक दूसरे बँगले से एक युवक उनकी चाल देखकर हँस रहा था। हाथ के इशारे से वकील साहब ने उसे पास बुलाया। युवक चला गया। घबराये हुए गोमती की तरफ उँगली उठाकर वकील साहब ने कहा, "वहाँ जाओ, देखो।" कहकर बँगले की तरफ बढ़े। युवक गोमती की तरफ गया।

घायल की दशा देखकर युवक को दया आ गयी। उसके सीने मे दोनों तरफ से छुरा भोंका गया था। गोमती के प्रवाह से देह का तमाम खून वह गया था। पर वह साधारण मनुष्य से ज्यादा सचेत था, आवाज ज्यादा साफ। वीर कर्त्तव्य की ओर देखता है, काल्पनिक भविष्य-विपत्ति की ओर नही। उस घायल की रक्षा के लिए उसके विशाल हृदय मे सहानुभूति पैदा हुई, व्यायाम से कसी बाँहें अपनी ही शक्ति से वासस्थल तक ले जाने को फड़कने लगी। आँखो ने अपने भाई को देखा।

एक हाथ जाँघों से, एक गर्दन से लगाकर अनायास युवक उसे निकालकर अपने डेरे को ले चला। जल से निकलते ही घावो की पीड़ा से घायल चीत्कार करने लगा। नजदीक ही युवक का डेरा था। अपने विस्तर पर ले जाकर लेटा दिया। कपड़े की रगड से पीडा बढ रही थी, घायल ने उतार देने के लिए कहा, सँभालकर युवक ने एक-एक कपडे उतार दिये।

फिर कागज लेकर उसके बयान लिखने लगा। घायल को बेहोशी आ रही थी, कहते-कहते भूल जाता था। कुछ असम्बद्ध उक्तियाँ युवक ने लिख ली। घायल मूर्छित हो गया।

युवक व्यग्रता से निश्चय न कर सका कि क्या करे, पहले थाने मे रिपोर्ट लिखवाये या अस्पताल ले जायें। घायल की प्रति-मुहूर्त बढती हुई बुरी हालत एक बार उसे थाने की ओर ढकेलती, फिर अस्पताल की ओर। अन्त में अस्पताल ले जाने का निश्चय किया। पास एक रईस रहते थे। उनके यहाँ जाकर उसने कुल किस्सा बयान किया और उनकी मोटर माँगी। उन्होने घड़ी देखकर कहा, "सिर्फ छ मिनट समय रह गया है, हमे डिप्टी-कमिश्नर साहब से मिलने के लिए जाना है।" कहकर निगाह फेर ली। एक बार उनकी तरफ देखकर युवक अपने कमरे में चला आया। उस बँगले में 3-4 भले आदमी किराये पर रहते थे। जब घायल को लेकर युवक आया था, तब वे लोग थे, घायल के मौन होते ही सब लोग उसकी साँसों से जाग्रत बँगले के शरीर से स्वप्न की तरह अदृश्य हो गये। घबराया हुआ युवक रास्ते पर आकर खडा हुआ। एक खाली ताँगा सवारी छोडकर कार्लटन होटल से निकला। कुछ हाल न कहकर युवक ने ताँगा बुला लिया। बँगले जाकर ताँगेवाला जख्मी को देखते ही बिगड़कर बोला, "आप हमें फँसाना चाहते हैं? यह रास्ते-भर को भी तो न होगा।" कहकर उसने अपना ताँगा बढ़ाया। युवक को काठ मार गया। कुछ देर बाद खड़ा कवियों के स्वर्गतुल्य, अप्सराओं के नूपुरों से मुखर, इस मनोहर संसार को भावना की अचपल दृष्टि से देखता रहा, फिर घायल के पास गया। देखा, सब खेल खत्म हो चुका है। साँस देखी, नाडी देखी, कही से भी

उसके अस्तित्व का प्रमाण नहीं मिल रहा है। सूख गया। सिर्फ उसका नौकर मालिक की आज्ञा-पूर्ति के लिए मुस्तैद उसकी तरफ देख रहा था। हताश होकर युवक कुर्सी पर बैठ गया। एक चिट्ठी लिखकर नौकर से 'वसन्तावास' दे आने के लिए कहा। नौकर चिट्ठी लेकर गया, युवक थाने की ओर चला।

रिपोर्ट अधूरी और ऐसी थी कि साथ-साथ दारोगाजी की तहकीकात की जरूरत हुई। वह युवक के साथ हो लिये। बँगले पहुँचकर देखा, एक लाश पलंग पर पड़ी है, सीने मे दोनों तरफ से छुरे की तरह कोई अस्त्र भोंका गया है।

पूरी मुस्तैदी से गोमती तट, मृतक के लेटने की विधि आदि की परीक्षा कर, निर्भय, निश्चिन्त होकर दारोगाजी कुर्सी पर बैठ गये और गम्भीर प्रभावोत्पादक स्वर से पुनः पूछने और बयान लिखने लगे।

"आपने इसे कहाँ देखा है ?"

"एक बार कह चुका हूँ।"

"आप वहाँ कैसे गये ?"

"मुझसे वकील बाबू महेश्वरीप्रसाद ने कहा। वह उस तरफ वाले बँगले में रहते हैं।"

थानेदार साहब ने बाबू महेश्वरीप्रसाद को कारण बताकर ले आने के लिए कान्स्टेबिल को भेज दिया।

"फिर आपने क्या किया ?"

"मैं इसे उठा लाया, यह निकाल देने के लिए मुझे देखते ही पुकारकर कहने लगा था।"

"आप कैसे ले आये ?"

"बाँहों पर उठाकर।"

दारोगाजी ने एक बार युवक के पुष्ट शरीर को देखा।

"फिर आपने क्या किया ?"

"इसके कहने पर कपड़े उतारे, फिर पूछ-पूछकर बयान लिखने लगा।"

"दिखलाइए वह कागज।"

युवक ने कागज दे दिया। पढ़कर थानेदार साहब जामे से बाहर हो गये। डाँटकर कहा, "यह कोई बयान है ? नाम है किरिश्नाचरन (कृष्णचरन), बस, बाप का नाम ? कौम ?"

"कौम के लिए मैं पूछ रहा था, पर वह बोल नही सका।"

पूरे सन्देह की दृष्टि से थानेदार साहब ने युवक को देखा। व्यंग्य करते हुए बोले, "आप जब गये थे, तब पानी में डूबा हुआ यह साफ आवाज निकाल रहा था, पर आपके यहाँ आते ही इसकी जबान में ताला पड़ गया।"

युवक ने भी व्यग्य किया, "जी हाँ, जब यहाँ मरा पड़ा है, तो वहाँ भी क्यों न मरा पड़ा होगा ?"

क्रूर दृष्टि से थानेदार साहब ने युवक को घूरा। कहा, "और 'चौक से आ'—इसके क्या मानी?"

"यह मैं क्या बताऊँ ? मैंने पूछा था, वह सवाल ऊपर लिखा हुआ है कि तुम कैसे मारे गये, तो 'चौक से आ' कहकर चुप हो गया।"

"फिर 'किसने मारा ?'—'मह'। 'मह' ने मारा ? 'मह' क्या बला है ?"

युवक थानेदार साहब की स्वगतोक्ति सुनकर मन-ही-मन भारतवर्ष की पुलिस के साथ विलायत की पुलिस को मिला रहा था, इसी समय सिपाही बाबू महेश्वरीप्रसाद के यहाँ से संवाद लेकर लौटा, दारोगाजी से कहा, "बाबू महेश्वरीप्रसाद बँगले में नहीं हैं, उनके नौकर ने कहा है, कल अदालत से लौटकर शामवाली गाड़ी से वकील साहब घर गये हैं।"

थानेदार साहब की शंका बढ़ गयी। पर रह-रहकर सोच रहे थे—'इसने वकील साहब का नाम क्यों लिया ?' समाधान करते थे—'मुमकिन है, किसी दुश्मन पर होनेवाली वारदात के लिए वकील ने पहले से कह रक्खा हो कि हम ऐसा कह देंगे, तो तुम छूट जाओगे।' निश्चय किया—'यह जैसा तगड़ा है, यह अकेला भी इसे मार सकता है।'

मन में विश्वास भर गया, इसलिए स्वर भी शंका के बाद निश्चय मे बदल गया, मृतक के कपड़ों की जाँच करते हुए दारोगाजी को जेब मे जनेऊ मिला। निश्चय पर जोर पड़ा—यह जनेऊ छिपाया गया है। पूछा, "यह जनेऊ किसने निकाला ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

दारोगाजी ने गम्भीर होकर पूछा, "फिर आपको क्या मालूम है ?"

युवक क्रोध से चुप हो गया। दारोगाजी ने पूछा, "तो आपने फिर क्या किया ?"

युवक ने सोचा—'अब मोटरवाली बात कहता हूँ, तो सम्भव है, मोटर-मालिक वकील साहब की तरह उस समय मौजूद न रहें।' फिर कहा, "फिर अस्पताल ले जाने के लिए रास्ते से एक ताँगा ले आया, पर ताँगेवाले ने ले जाना मंजूर न किया।"

"वह कितने नम्बर का ताँगा था ?" जमकर दारोगाजी ने पूछा।

"मुझे मालूम तो था नही कि आप नम्बर पूछेंगे।"

दारोगाजी गौर करने लगे। युवक दोषी है, ऐसा प्रमाण तो न था, पर निर्दोष है, ऐसा भी प्रमाण न था, बल्कि एक झूठ साबित हो चुका है। ऐसी हालत मे सन्देह को ही श्रेय देना उचित है। हत्या का एक विश्वसनीय कारण पुलिस को दिखाना पड़ता है, यदि प्रमाण अप्राप्य रह गया।

थाने मे रिपोर्ट लिखाने के समय युवक नाम-धाम आदि लिखा चुका था, पर इस समय दारोगाजी ने फिर उससे कुछ ऐसे प्रश्न किये। वह कौन है, इस प्रश्न का बहुत ही संक्षिप्त उत्तर सभ्यता के विचार से ह्रस्व स्वरों में उसने दिया। अतः उसकी स्थिति का भी कोई प्रभाव थानेदार साहब पर न पड़ा। फिर पढ़े-लिखे युवकों द्वारा हुई हत्या के कारण हैं भी—कुछ ऐसा इनमें भी रहस्य सम्भव है।

सोच-विचारकर दारोगाजी पंचनामे की कार्रवाई पूरी करने लगे। इस

सम्बन्ध से अपने को बिल्कुल अनभिज्ञ बतलानेवाले कुछ पंच भी मिले। इसी समय सिपाहियों की ओर थानेदार साहब ने एक इशारा किया। सिपाही युवक को चारो ओर से घेरे हुए खड़े थे। इशारा पाकर बाँध लिया। पंच डरे हुए काम के बहाने, चलने को हुए। लाश की हालत और युवक के कमरे की चीजें लिखकर पंचों के दस्तखत कराकर ताला लगा दिया गया।

युवक ने शून्य दृष्टि से एक बार थानेदार साहब को, फिर आकाश की ओर देखा।

हत्या का करण और कारण साथ लेकर थानेदार साहब थाने के लिए रवाना हुए।

थाने पहुँचे ही थे कि ताँगे से उतरकर इक्कीस-बाईस साल की एक सुन्दरी दारोगा-जी की कुर्सी की ओर बढती नजर आयी। केश-वेश अत्यन्त आधुनिक। चाल-ढाल संकोच से सोलहो आने रहित। दारोगाजी को रास्ते मे छोड़कर थाने मे ऐसा चमत्कार कभी नही देख पड़ा। युवती सीधे दारोगाजी के सामने जा, उन्हीं से पूछने लगी, "मुझे थाने के इंचार्ज दारोगाजी की सख्त जरूरत है, क्या आप बतला सकेंगे—वह कहाँ मिल सकते हैं?"

"हाँ, फर्माइए।"

"अच्छा, आप है, पोशीदा बातचीत है।" युवती मुस्करायी।

थानेदार साहब ने एकान्त कर लिया।

साग्रह देखते हुए दारोगाजी से युवती ने कहा, "आपने राजीव को गिरफ्तार किया है, पर वह बेकुसूर है।"

"कोई सुबूत तो नही।"

"मैं गोमती-किनारे से टहलती हुई आ रही थी, वकील महेश्वरीप्रसाद राजीव को उधर जाकर देखने के लिए कह रहे थे, और खुद डरे हुए कमरे की तरफ जा रहे थे।"

कुछ सोचकर दारोगाजी ने कहा, "वह कल शाम को घर चले गये है, उनके नौकर से मालूम हुआ।"

"अच्छा, मैं बहुत ज्यादा कुछ नही कहना चाहती। मेरे पास तीस गवाह है, लेडीज और जेण्टिलमेन, अदालत में आपको मालूम हो जायगा, साढे नौ बजे रात को कल मैं अपनी तीन सखियों और दो मित्रों के साथ छतरमंजिल की तरफ से आ रही थी. एक आदमी हम लोगों को देखकर भगा। हमें शक हुआ, हमारे साथ के मित्रो ने दौड़कर उसे पकड़ा। उसकी कमर में सात सौ रुपये थे, कुर्ता नहीं पहने था, अब मालूम होता है खून के धब्बों की वजह से कुर्ता कहीं फेंक दिया था। वही खूनी रहा होगा, मेरे मित्र बदमाश समझकर यहाँ ले आये, आपका नाम लेकर कहते थे कि दारोगाजी ने देखकर उसे पहचान लिया—वह चौक का भागा हुआ बदमाश महताबअली था। जान पड़ता है, आपने उसे छोड़ दिया, अच्छा, देखा जायगा।" कहकर लापरवाही से युवती उठी।

दारोगाजी सूख गये। घबराकर बोले, "यह सरासर झूठ है।"

चलती हुई युवती वोली, "आपके इस मुकद्दमे की तरह अदालत में यह भी सच साबित हो सकता है। मगर हाँ, तब आपके सुबूत से यह ज्यादा सही साबित होगा।" एड़ी के वल ज़रा लौटकर युवती वोली, "और वहुत-सी वातें हैं, आपने जिसे गिरफ्तार किया है, आप जानते नही, यह कितना वड़ा इज्जत का आदमी है।"

युवती फिर वढ़ी, तो दारोगाजी ने वड़े विनयपूर्ण शब्दो से वुलाया। युवती लौट पडी। पास आने पर पूछा, "वे आपके कोई होते हैं ?"

"मेरे कोई होते, तो मेरे यहाँ आने की जरूरत क्या थी ?"

इस अद्भुत स्त्री की ओर देखकर दारोगाजी ने कैदी को छोड़ देने के लिए कहा।

ताँगे पर वैठकर प्रतिमा ने राजीव से कहा, "पूरा प्लाट तुम्हारी चिट्ठी पर तैयार किया। तुमने लिखा भी खूब था। सिर्फ महताव के लिए रिसर्च करते कुछ देर लगी थी, यानी जितनी देर इस ताँगेवाले से वातचीत करने मे लगेगी। यह रिसर्च हो सकता है।"

थानेदार साहव ने लिखा, "जान पड़ता है, यह कोई क्रान्तिकारी था, वम लिये जा रहा था, एकाएक वम के धडाके से काम आ गया है।"

डाक्टर की परीक्षा मे जख्मों के भीतर से सीसे के कुछ नुकीले टुकड़े भी मिले।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 अक्तूवर, 1933। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में सकलित]

स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं

उन दिनों 1921 ई. थी। एक साधारण-से विवाद पर विशद महिषादल-राज्य की नौकरी नामंजूर-इस्तीफे पर भी छोडकर मैं देहात मे अपने घर रहता था। कभी-कभी आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी के दर्शनो के लिए जुही, कानपुर जाया करता था। इससे पहले भी, जव 1919 मे हिन्दी और वंगला के व्याकरण पर लिखा हुआ मेरा लेख शुद्ध कर, 'सरस्वती' में छापकर 1920 में उन्होने साहित्य-सेवा से अवसर ग्रहण किया, दौलतपुर में उनके दर्शन कर चुका था। साहित्य मे द्विवेदीजी का गुरुत्व मैं उन्ही के गुरुत्व के कारण मानता था (मानता भी हूँ), अपने किसी अर्थ-निष्कर्ष या स्वार्थ-लघुत्व के लिए नही। पर इष्ट तो निर्भर भक्त की भक्ति की ओर देखता ही है—द्विवेदीजी भी मेरी स्वतन्त्रता से पैदा हुई आर्थिक परतन्त्रता

पर विचार करने लगे। आज ही की तरह उन दिनों भी हिन्दी की मसजिदों पर मुरीद द्विवेदीजी की नमाज पढ़ते थे, लिहाजा उनकी कोशिश—मैं किसी अखबार के दफ्तर मे जगह पा जाऊँ—कारगर हुई। दो पत्र उन्होंने अपनी आज्ञा से चिह्नित कर गाँव के पते पर मेरे पास भेज दिये, एक काशी के प्रसिद्ध रईस राजनीतिक नेता का था, एक कानपुर ही का। काशीवाले मे आने-जाने का खर्च देने के विवरण के साथ योग्यता की जाँच के बाद जगह देने की बात थी, कानपुरवाले में लिखा था—'इस समय एक जगह 25) रुपये की है, अगर वह चाहें, तो आ जायँ।' मालूम हो कि यह सब उदारता पूज्य द्विवेदीजी अपनी तरफ से स्नेहवश कर रहे थे। अवश्य मेरे पास शिक्षा का जो प्रमाण-पत्र इस समय तक है, उस योग्यता की पूरी-पूरी रक्षा जगह देनेवालो ने की थी, तथापि सिपहगरी के समतल क्षेत्र से सुबेदारी तक के सुस्तर उन्नति-क्रम पर अविचल श्रद्धा न मुझे पहले थी, न अब भी है। फलतः उन पत्रों ही को मेरी अशिक्षा के कारण स्थान-प्राप्ति हुई, मेरी जेब मे प्रमाण के तौर पर अपने सुलेखकों के पास वापस जाने का सौभाग्य उन्हें न मिला। मेरे अन्दर मर्यादा का ज्ञान अत्यन्त प्रबल है, इनकी जानकारी पूज्य द्विवेदीजी को स्वतः उत्तरादायी पद दिलाने की ओर फेरने लगी। पर द्विवेदीजी करते भी क्या, प्रमाण जो न था। जो कुछ भी साहित्य-सेवा की प्रबल प्रेरणा से मैं लिखता था, वह एक ही सप्ताह के अन्दर सम्पादक महोदय की अस्वीकृति के साथ मुझे पुनः प्राप्त हो जाता था। केवल दो लेख और शायद दो कविताएँ तब तक छप पायी थीं, सो भी जब हिन्दी के छन्दो में बड़ी रगड़ की और लेखों में कलम की पूरी ऊँची आवाज से हिन्दी की प्रशंसा। अस्तु, इन्ही दिनों स्वामी माधवानन्दजी, प्रेसिडेण्ट, अद्वैत आश्रम (रामकृष्ण-मिशन), मायावती, अल्मोड़ा, हिन्दी में एक पत्र निकालने के विचार से पत्रों मे विज्ञापन करते हुए सम्पादक की तलाश में द्विवेदीजी के पास जूही आये। उस समय मेरी एक कविता, वह 'परिमल' में 'अध्यात्म-फल' के नाम से छपी है, 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी। उतने ही प्रत्यक्ष आधार पर आचार्य द्विवेदीजी स्वामीजी के पत्र के लिए मेरी योग्यता की सिफारिश कर चले। उनकी तकलीफ आप समझ सकते है। स्वामीजी ने मेरा पता नोट कर लिया, और मुझे एक चिट्ठी योग्यता के प्रमाण-पत्र भेजने की आज्ञा देते हुए लिखी। बंगाल में रहकर परमहंस श्रीरामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्दजी के साहित्य से मैं परिचय प्राप्त कर चुका था, दो-एक बार श्रीरामकृष्ण मिशन, बेलूड, दरिद्र नारायणों की सेवा के लिए भी जा चुका था, श्रीपरमहंसदेव के शिष्य श्रेष्ठ पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज को महिषादल मे अपना तुलसीकृत रामायण का सस्वर पाठ सुनाकर उनका अनुपम स्नेह तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था, स्वामी माधवानन्दजी को पत्रोत्तर में अपनी इसी योग्यता के हृष्ट-पुष्ट प्रमाण दिये। स्वामीजी का वह पत्र अँगरेजी में था और मेरा उत्तर बंगला में। कुछ दिनों बाद द्विवेदीजी के दर्शनों के लिए फिर गया तो मालूम हुआ कलकत्ता में एक सुयोग्य साहित्यिक स्वामीजी को सम्पादन के लिए स्वयं प्राप्त हो गये हैं। घर लौटने पर उनका एक पत्र मुझे भी बंगला मे लिखा हुआ मिला कि धैर्य धारण करो, प्रभु की इच्छा होगी, तो आगे देखा जायगा।

इसी समय महिषादल-राज्य से मुझे तार मिला कि जल्द चले आओ। मैंने सोचा, जब नामंजूर इस्तीफे पर हठवश चले आने का दोष ही हटा दिया गया, तो अब जाने मे दुविधा क्यो करूँ ? मैं महिषादल गया। पर राजा, जोगी, अग्नि, जल की उल्टी रीतिवाली याद न रही। यहाँ 'समन्वय' के सार्थक नाम से एक सुन्दर पत्र प्रकाशित हुआ। मेरे पास भी वह लेख के तकाजे के साथ गया। मैंने उसमें 'युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण' ऐसा एक लेख लिखा। जब वह प्रकाशित हुआ, तब मैंने द्विवेदीजी की राय माँगी। उन्होने उस लेख को पढकर बधाई दी। मैं मौलिक लेख लिख सकता हूँ, आचार्य द्विवेदीजी के इस आशीर्वाद का सदुपयोग मैं अपने ही भीतर तब से अब तक करता जा रहा हूँ। कई और भी मेरे साहित्यिक पूज्यपादो ने इस लेख की विचारणा और भाषा-शैली के लिए मुझे प्रोत्साहन दिया। 'समन्वय' को एक बड़ी अड़चन पडी और यह हिन्दी और बगला बोलने-वालो में, मेरे विचार से, शायद अभी बहुत दिनों तक रहेगी। इधर मेरे सामने भी राजावाली उल्टी रीति पेश हुई। इसी समय 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्म-बोधानन्दजी ने मुझे लिखा कि बंगालियों के भावो को समझने के लिए यहाँ ऐसा आदमी चाहिए, जो बगला जानता हो। हमें अडचन पडती है, तुम चले आओ। मैंने जाकर देखा, 'समन्वय' के आठ ही महीने में दो सम्पादक बदल चुके थे। सम्पादक की जगह नाम स्वामी माधवानन्दजी का छपता था, वह हिन्दी भी बहुत अच्छी जानते है, काम तथा हिन्दी की विशेषता की रक्षा के लिए 'समन्वय' मे एक हिन्दी-भाषी सम्पादक रहता था। इस तरह मैं 'समन्वय' मे जाकर स्वामीजी महाराज के साथ, 'उद्बोधन' कार्यालय, बागबाजार मे रहने लगा। यही पहले-पहल आचार्य स्वामी सारदानन्दजी महाराज के दर्शन किये। यह 1922 ई. की बात है।

स्वामी सारदानन्दजी इतने स्थूल थे कि उन्हें देखकर डर लगता था। यद्यपि डरवाली बात मेरे पास बहुत पहले ही से कम थी, भूतों से साक्षात्कार करने के लिए रात-रात-भर श्मशानों की सैर करता रहा था, और आधी रात को घर से निकलकर पैदल आठ-नौ कोस जमीन चलकर सुबह आचार्य द्विवेदीजी के दर्शन किये थे, फिर भी स्वामी सारदानन्दजी की ओर बहुत दिनो तक मैं देख नही सका। पर मैं आँखें झुकाकर, प्रणाम कर उनकी सभा में कभी-कभी बैठ जाता था—बात-चीत सुनने के लिए। किसी दर्शन या धर्मग्रन्थ का पाठ होने पर उठकर चला आता था, क्योंकि दार्शनिकता की मात्रा यों भी दिमाग़ मे बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था। स्वामीजी की वार्तालाप-सभा मे महीनो मैंने संयम रक्खा, कुछ बोल-कर बेवकूफ न बनूंगा, सिद्धान्त कर लिया था। बाहर के आये हुए विद्वानो को देखता भी था, अण्ट-सण्ट बकते जा रहे है, न सिर, न पूंछ, उनकी आवाज की किर-किराहट अर्थ से पहले अनर्थ व्यंजित करती थी। स्वामीजी मेरी 'यावत्किंचिन्न-भाषते' नीति पर प्रसन्न होकर मुस्कराते थे। एक रोज धैर्य जाता रहा। मैंने पूछा, "यह संसार मुझमे है, या मैं इस संसार मैं हूँ।" उन्होने बडे स्नेह से कहा, "इस तरह नही।"

हमारे यहाँ की जैसी संस्कृति थी, मैं बचपन से सन्तो की सूक्तियों पर भक्ति

करता हुआ विशेष रूप से ईश्वरानुरक्त हो चला था। इसलिए सो जाने पर देवताओं के स्वप्न बहुत देखता था। जो देव जाग्रत अवस्था में कभी नहीं बोले, मैं ही बात-चीत करता थकता, वे सो जाने पर दम न भरते थे। इसे धर्म-ग्रन्थों मे शुभ लक्षण कहा है। पर मेरे लिए यह उत्तरोत्तर अशुभ हो चला। क्योंकि बराबर यह प्रश्न जारी रहा कि मूर्तियाँ जाग्रत अवस्था मे क्यों नही बोलती ? रात की अनिद्रा और दिन की उधेड़बुन के शुभ लक्षण सहज की अनुमेय हैं। क्रमशः दार्शनिकता प्रबल हो चली। धीरे-धीरे देवताओं के कथोपकथन के फलस्वरूप घोर नास्तिक, शंकित-चित्त हो गया। जब 'समन्वय' के सम्पादन के लिए गया था, तब यही दशा थी। आस्तिकता पहले के उपार्जित संस्कार या धूप-छाँह की सार्थकता की तरह आती थी। एक दिन मैंने स्वामीजी से कहा, "सो जाने पर मेरे साथ देवता बातचीत करते हैं।" वह सस्नेह हँसकर बोले, "बाबूराम महाराज से भी करते थे।" (स्वामी प्रेमानन्दजी का पहला नाम श्रीबाबूराम था। इनका जिक्र मैं कर चुका हूँ कि श्रीरामकृष्ण के शिष्यों मे पहले इन्ही के दर्शन मैंने महिषादल में किये थे)। इस प्रसंग के कुछ ही दिनों मे मै अपने एक बगाली मित्र के बिस्तरे पर सो रहा था, दुपहर को सोने का मुझे अब भी अभ्यास है, देखता हूँ कि स्वामी सारदानन्दजी महाध्यान मे मग्न हैं, ईश्वरीय विभूति से युक्त ऐसी मूर्ति मैंने आज तक नही देखी—कमलासन बैठे हुए, ऊर्ध्वबाहु, मुद्रितनेत्र, मुख-मण्डल पर महानन्द की दिव्य ज्योति, जो कुछ है, सब ऊपर उठा जा रहा है, इसी समय उनके सेवक एक संन्यासी महाराज उन्हे खिलाने के लिए रसगुल्ले ले गये, उसी ध्यानावस्थित अवस्था में स्वामीजी ने मेरी ओर इशारा किया। सेवक महाराज ने लौटकर मुझे रसगुल्लों का कटोरा दे दिया। मैं गया और एक रसगुल्ला खिलाकर लौट आया। कटोरा सेवक संन्यासी महाराज को दे दिया।

बस, आँख खुल गयी। मेरा मस्तिष्क हिम-शीकरों-सा स्निग्ध हो गया। उसमें महाज्ञान का कितना बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने देखा है, मैं क्या कहूँ।

पर मेरी विरोधी शक्ति बराबर प्रबल रही! तीव्र तीक्ष्ण दार्शनिक वज्र-प्रहारों से बराबर मैं मन से उनका अस्तित्व मिटाता रहा—मिटा देता था, तभी काम कर सकता था, पर वह काम—जो घर के लिए, संसार के लिए बन्धनों से मुक्त होनेवाला सामाजिक और साहित्यिक उत्तरदायित्व लिये हुए था। पर आकाश से सीमावकाश में आकर भी मैं आकाश मे ही रहना हूँ, ज्यों-ज्यों लड़ता गया—जुदा होता गया, वह भाव प्रबल होता रहा। जीवन्मुक्त महापुरुष क्या है, मैं अब और अच्छी तरह समझने लगा। मैं प्रहार करता हुआ जब थक जाता था, तब मेरे मनस्तत्त्व के सत्य-स्वरूप स्वामी सारदानन्दजी मुझे रंगीन छाया की तरह ढककर हँसते हुए तर कर देते थे। इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिर-ब्रह्मचारी, संन्यासी, महापण्डित, सर्वस्वत्यागी, साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है। मैंने भी देश तथा प्रदेशों के बड़े-बड़े कवियों, दार्शनिकों, पण्डितो तथा पुरुषो के साथ एक सर्वश्रेष्ठ उपाधि से भूषित किये हुए अनेकानेक लोगो को देखा है, पर वाह रे संसार, सत्य की कितनी खरी जाँच तूने की—महाविद्या और महापुरुष-चरित्रो का कितने पोच मस्तिष्कों मे तूने पता

लगाया। मैं ब्राह्मण था, किसी मनुष्य को सिर नही झुकाया, मेरे चरित्र का पूरा अध्ययन कीजियेगा, चरित्र और ज्ञान, जीवन और परिसमाप्ति में जो 'एजति, न एजति' को सार्थक करनेवाले ब्रह्म थे, उन्होने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली। अब दोनों भाव उन्ही के है, एक से वह लड़ते हैं, दूसरे से बचते हैं—यही मेरा इस समय का जीवन है।

स्वामी सारदानन्दजी के जिन सेवक संन्यासी के हाथ से कटोरा लेकर स्वप्न में मैंने स्वामी को रसगुल्ला खिलाया था, उन्होने मुझसे एक रोज एकाएक कहा, "तुम मन्त्र नही लोगे?—जाओ।" मैंने सोचा, 'यहाँ महाप्रसाद की तरह मन्त्र भी बँटता होगा, लेने में हर्ज क्या है?' मुझे बड़े को गुरु मानने में आपत्ति कभी नही रही, रहा सिर्फ गुरुडम के खिलाफ, फिर मन्त्र लेने से कुछ मिलता ही है, जहाँ मिलनेवाली रचना हो, वहाँ पैर न बढ़ाये, वह ब्राह्मण का कोई बेवकूफ लडका ही होगा। मैं सपाटा-चाल सीढी तय करके स्वामीजी के कमरे में पहुँचा और बैठ गया। उन्होने पूछा, "क्या है?" मैंने कहा, "मन्त्र लेने आया हूँ।" मेरे स्वर में न जाने क्या था। मुझे तन्त्र-मन्त्र पर बिल्कुल विश्वास न था। स्वामीजी प्रसन्न गम्भीरता से बोले, "अच्छा, फिर कभी आना।"

मैंने मन मे कहा, अब इञ्जानिब नही जाने के। कई रोज हो गये, नहीं गया। वहाँ कभी-कभी माँ के कमरे मे (श्रीपरमहंसदेव की धर्मपत्नी श्रीसारदामणि देवी, तब माँ देह छोड़ चुकी थीं) तुलसीकृत रामायण पढ़ना था। पहले दिन पढ़ी थी, तब स्वामी सारदानन्दजी ने प्रसाद के दो रसगुल्ले दिलाये थे। सबको एक रसगुल्ला मिलता है। केवल शंकर महाराज (स्वामी सारदानन्दजी के बड़े गुरुभाई, श्रीरामकृष्णमिशन के प्रथम प्रेसीडेंट, पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी के प्रिय शिष्य) को दो रसगुल्ले पाते हुए बाद को मैंने देखा था, पर उन्होने एक रसगुल्ला मुझे दे दिया था। एक बार माँ को प्रणाम कर, प्रसाद लेकर मैं स्वामी सारदानन्दजी महाराज के जीने की तरफ से उतरने के लिए जा रहा था, प्रसाद मेरे हाथ में था, मन बडा प्रफुल्ल, फूल-सा खिला हुआ, हल्का, गोस्वामी तुलसीदासजी की भारतीय संस्कृति मन को ढके हुए। स्वामीजी आ रहे थे, मुझे भावावेश मे देखकर, रास्ता छोड़कर एक तरफ हट गये, मुझे होश था ही, मैं भी हटकर खडा हो गया कि यह चले जायँ, तो जाऊँ। स्वामीजी ने पूछा, "यह प्रसाद किसके लिए ले जा रहे हो?" (स्वामीजी से मेरी बंगला मे बातचीत होती थी) मैंने कहा, "अपने लिए।" उन्होने कहा, "अच्छा, खाकर आओ।" चटपट प्रसाद खाकर मैं ऊपर गया। स्वामीजी अपने कमरे के सामने उसी रास्ते पर खड़े थे। मुझे देखकर बड़े स्नेह से पूछा, "उस रोज तुम क्या कहनेवाले थे?" मैंने कहा, "मुझे तन्त्र-मन्त्र पर विश्वास नहीं।" उन्होने पूछा, "तुम गुरुमुख हो?" मैंने कहा, "हाँ, पर तब मैं नौ साल का था!" उन्होने कहा, "हम लोग तो श्रीरामकृष्ण को ही ईश मानते है।" मैने कहा, "ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।" उत्तर की मैंने कभी देर नही की, वह ठीक हो या गलत। पहले क्या कह गया हूँ, फिर क्या कह रहा हूँ, इसकी तरफ ध्यान देनेवाला सच्चा वक्ता लेखक, कवि या दार्शनिक नही —वह कला की मुक्ति में गण्य नही, कलाकारो के ऐसे कथन का मैं सजीव उदा-

हरण था। स्वामीजी के भारतीय कान ऐसे न थे, जो अँगरेजी वाजे के विवादों से भड़ककर उसे संगीत स्वीकार ही न करते। वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आये। मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठण्डी छाँह में मैं डूबता जा रहा हूँ। फिर मेरे गले मे अपनी उँगली से एक वीजमन्त्र लिखने लगे। मैंने मन को गले के पास ले जाकर क्या लिख रहे हैं, पढ़ने की वड़ी चेष्टा की, पर कुछ मेरी समझ में न आया।

परोक्ष रीति से ध्यान-धारणा के लिए स्वामीजी मुझे कभी-कभी याद दिला देते थे, पर मुझे यह धुन थी कि अब देखना है, गलेवाला मन्त्र क्या गुल खिलाता है। पूजा-पाठ जो कुछ कभी-कभी करता था, वह भी वन्द कर दिया। मुझे कुछ ही दिनों मे जान पड़ने लगा, मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे हो गया है, और रामकृष्ण मिशन के साधु मुझे खीच रहे है। अजीव घवराहट हुई। मैंने सोचा इन साधुओ ने मुझ पर वशीकरण किया। तव 'समन्वय' के कार्यकर्त्ता 'उद्वोधन' छोड़कर 'मतवाला' ऑफिस में (तव 'मतवाला' न निकलता था, वालकृष्ण प्रेस था, मालिक 'मतवाला' के सम्पादक वावू महादेवप्रसादजी सेठ थे) किराये के कमरों में रहते थे। मैं भी उनके साथ अलग कमरे मे रहता था। महादेव वावू से मैंने कहा, "ये साधु लोग मुझे जादूगर जान पड़ते है।" महादेव वावू गम्भीर होकर वोले, "यह आपका भ्रम है।" मैंने कुछ न कहा, पर मुझे भ्रम होता, तो विश्वास भी होता। एक रोज ऐसा हुआ कि उन्हीं साधुओं मे से एक की मेरे पास आकर यही हालत हुई। यह दर्शन-शास्त्र के एम. ए. है। आजकल अमेरिका में प्रचार कर रहे है। जव खिचने लगे, तो वोले, "पण्डितजी, क्या आप वशीकरण जानते है ?" मैंने मन में कहा, 'हूँ !' खुलकर वोला, "मैं मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सवमे सिद्ध हूँ।"

इसके वाद एक दिन स्वप्न देखा—ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की वाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।

फिर इतने चमत्कार इधर दस वर्षो में देखे कि अव वड़े-वड़े कवियों तथा दार्शनिकों की चमत्कारोक्तियाँ पढ़कर हँसी आती है। वह मन्त्र भी तीन साल हुए, आग-सा चमकता हुआ कुछ दिनो तक सामने आया, उसे मैंने पढ़ लिया है।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 नवम्बर, 1933। पहले **सखी** मे, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

देवी

वारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल वुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा। मुझे यह ख्याल था कि मैं साहित्य की रक्षा के लिए चक्रव्यूह तैयार कर रहा

हूँ। इससे उसका निवेश भी सुन्दर होगा और उसकी शक्ति का संचालन भी ठीक-ठाक। पर लोगो को अपने फँस जाने का डर होता था, इसलिए इसका फल उल्टा हुआ। जब मैं उन्हे साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बातें सोचते थे; यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नही हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे। पर फाकेमस्ती मे भी मैं परियो के ख्वाब देखता रहा—इस तरह अपनी तरफ से मैं जितना लोगो को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था, इसीलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गयी, अब मौत से जैसे दूसरी दुनिया मे जाकर मैं उसे लाश की तरह देखता होऊँ। "दूबर होत नही कबहूँ पकवान के विप्र, मसान के कुकर" की सार्थकता मैंने दूसरे मित्रों में देखी, जिनकी निगाह दूसरो की दुनिया की लाश पर थी। वे पहले फटीचर थे, पर अब अमीर बन गये है, दोमंजिला मकान खडा कर लिया है, मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरो मे कहते है—'हाँ, अच्छा आदमी है; ज़रा सनकी है।' फिर बड़े गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते है। वे उतनी दूर बढ़ गये है, मैं जिस रास्ते पर था, उसी पर खड़ा हूँ। जिसके लिए मेरी इतनी बदनामी हुई, दुनिया से मेरा नाम उठ जाने को हुआ, जो कुछ था, चला गया, उस कविता को जीते-जी मुझे भी छोड़ देना चाहिए। जिसे लोग खुराफात समझते है, उसे न लिखना हो तो लोगो की समझ की सच्ची समझ होगी? रतिशास्त्र, वनिता-विनोद, काम-कल्याण मे मश्क करते कौन देर लगती है? चार किताबो की रूह छानकर एक किताब लिख दूंगा। 'सीता', 'सावित्री', 'दमयन्ती' आदि की पावन कथाएँ आँख मूँदकर लिख सकता हूँ। तब बीवी के हाथ 'सीता' और 'सावित्री' आदि देकर बगल में, 'चौरासी आसन' दबानेवाले दिल से नाराज न होगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ। अब जरूर सँभलूंगा। राम, श्याम जो-जो थे पूजने-पुजानेवाले, सब बड़े आदमी थे। बग़ैर बड़प्पन के तारीफ कैसी? बिना राजा हुए राजर्षि होने की गुंजायश नही, न ब्राह्मण हुए बगैर ब्रह्मर्षि होने की है। वैश्यर्षि या शूद्रर्षि कोई था, इतिहास नही, शास्त्रो मे भी प्रमाण नही, अर्थात् नही हो सकता। बात यह कि बडप्पन चाहिए। बडा राज्य, ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप, तलवार, गोले-बारूद, बन्दूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टारपेडो, माइन, सबमेरीन-गैस, पल्टन-पुलीस, अट्टालिका-उपवन आदि-आदि सब बडे-बड़े—इतने कि वहाँ तक आँख नही फैलती, इसलिए कि छोटे समझें कि वे कितने छोटे है। चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुवेर, यम, जयन्त, इन्द्र, ब्रह्म, महेश तक बाकायदा बाहिसाब ईश्वर के यहाँ भी छोटे से बड़े तक मेल मिला हुआ है।

होटल के बरामदे मे एक आराम-कुर्सी पर पैर फैलाकर लेटा हुआ इस तरह के विचारो से मैं अपनी किस्मत ठोक रहा था। चूँकि यह तैयारी के बाद का भाषण न था, इसलिए इसके भाव मे बेभाव की बहुत पड़ी होगी, आप लोग सँभाल लीजियेगा। बड़े होने के ख्याल से ही मेरी नसें तन गयी, और नाम-मात्र के अद्भुत प्रभाव से मैं उठकर रीढ़ सीधी कर बैठ गया। सड़क की तरफ बड़े गर्व

से देखा, जैसे कुछ कसर रहने पर भी बहुत कुछ बड़ा आदमी बन गया होऊँ। मेरी नजर एक स्त्री पर पड़ी।

वह रास्ते के किनारे बैठी थी, एक फटी धोती पहने हुए। बाल कटे हुए। तअज्जुब की निगाह से आने-जानेवालों को देख रही थी। तमाम चेहरे पर स्याही फिरी हुई। भीतर से एक बड़ी तेज भावना निकल रही थी, जिसमें साफ लिखा था—"यह क्या है ?" उम्र पच्चीस साल से कम। दोनो स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारो से लड़ती हुई, मुरझाकर, मुमकिन है किसी को पच्चीस साल से कुछ ज्यादा जँचे, पास एक लड़का डेढ़ साल का खेलता हुआ, संसार की स्त्रियों की एक भी भावना नहीं, उसे देखते ही मेरे बड़प्पनवाले भाव उसी में समा गये,और फिर वही छुटपन सवार हो गया। मैं उसी की चिन्ता करने लगा—'यह कौन है, हिन्दू या मुसलमान ? इसके एक बच्चा भी है। पर इन दोनों का भविष्य क्या होगा ? बच्चे की शिक्षा, परवरिश क्या इसी तरह रास्ते पर होगी। यह क्या सोचती होगी, ईश्वर, संसार, धर्म और मनुष्यता के सम्बन्ध में ?'

इसी समय होटल के नौकर को मैंने बुलाया। उसका नाम है संगमलाल। मैं उसे संग-मलाल कहकर पुकारता था। आने पर मैंने उससे उस स्त्री की बाबत पूछा। संगमलाल मुझे देखकर मुस्कुराया। बोला, "वह तो पागल है, और गूँगी भी है, बाबू। आप लोगों की थालियों से बची रोटियाँ दे दी जाती हैं।" कहकर हँसता हुआ बात को अनावश्यक जानकर अपने काम पर चला गया।

मेरी बड़प्पनवाली भावना को इस स्त्री के भाव ने पूरा-पूरा परास्त कर दिया। मैं बड़ा हो भी जाऊँ, मगर इस स्त्री के लिए कोई उम्मीद नही। इसकी किस्मत पलट नही सकती। ज्योतिप का सुख-दुःख-चक्र इसके जीवन में अचल हो गया है। सहते-सहते अब दुःख का अस्तित्व इसके पास न होगा। पेड़ की छाँह या किसी खाली बरामदे में दोपहर की लू में, ऐसे ही एकटक कभी-कभी आकाश को बैठी हुई देख लेती होगी। मुमकिन है, इसके बच्चे की हँसी उस समय उसे ठण्डक पहुँचाती हो। आज तक कितने वर्षा-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नही। लोग नेपो-लियन की वीरता की प्रशंसा करते है। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता। सब इसे पगली कहते हैं, पर इसके इस परिवर्तन के क्या वही लोग कारण नही ? किसे क्या देकर, किससे क्या लेकर लोग बनते-बिगड़ते हैं, यह सूक्ष्म बातें कौन समझा सकता है ? यह पगली भी क्या अपने बच्चे की तरह रास्ते पर पली है ? सम्भव है, पहले सिर्फ गूँगी रही हो, विवाह के बाद निकाल दी गयी हो, या खुद तकलीफ पाने पर निकल आयी हो, और यह बच्चा रास्ते के किसी ख्वाहिश-मन्द का सुबूत हो।

मैं देख रहा था, ऊपर के धुएँ के नीचे दीपक की शिखा की तरह पगली के भीतर की परी इस संसार को छोड़कर कहीं उड़ जाने की उड़ान भर रही थी। वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभानेवाला उसमें कुछ न था, दूसरे लोग उसकी रुखाई की ओर रुख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों को उसमें वह रूप देख पडा, जिसे मैं कल्पना में लाकर साहित्य में लिखता हूँ; केवल वह रूप नहीं, भाव भी। इस मौन-महिमा आकार-इंगितों की बड़े-बड़े कवियो ने कल्पना न की होगी।

भाव-भाषण मैंने पढा था, दर्शनशास्त्रों मे मानसिक सूक्ष्मता के विश्लेषण देखे थे, रंगमंच पर रवीन्द्रनाथ का किया अभिनय भी देखा था, खुद भी गद्य-पद्य मे थोडा-बहुत लिखा था, चिडियों तथा जानवरो की वोली बोलकर उन्हे बुलानेवालो की भी करामात देखी थी; पर वह सब कृत्रिम था, यहाँ सब प्राकृत। यहाँ माँ-बेटे के मनोभाव कितनी सूक्ष्म व्यञ्जना मे संचारित होते थे, क्या लिखूँ। डेढ़-दो साल के कमजोर बच्चे को माँ मूक भाषा सिखा रही थी— आप जानते हैं, वह गूँगी थी। बच्चा माँ को कुछ कहकर न पुकारता था, केवल एक नजर देखता था, जिसके भाव मे वह माँ को क्या कहता आप समझिए; उसका माँ समझती थी; तो क्या वह पागल और गूँगी थी।

पगली का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया। उसे देखकर मुझे बार-बार महाशक्ति की याद आने लगी। महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे बढकर ज्ञान देनेवाला और कौन-सा होगा? राम, श्याम और संसार के बड़े-बड़े लोगो का स्वप्न सब इस प्रभात की किरणों मे दूर हो गया। बडी-बडी सभ्यता, बडे-बडे शिक्षालय चूर्ण हो गये। मस्तिष्क को घेरकर केवल यही महाशक्ति अपनी महत्ता मे स्थित हो गयी। उसके बच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, और उसमे—क्या कहूँ, क्या देखा।

देश मे शुल्क लेकर शिक्षा देनेवाले बड़े-बडे विश्वविद्यालय हैं। पर इस बच्चे का क्या होगा? इसके भी माँ है। वह देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है—हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तो को दी जाती थी। यही, यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है। वह माँ अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज जिस विषय को भी मनुष्य होकर मनुष्यों ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचिवाले पथिक को शिक्षा दे रही है—पर कुछ कहकर नही। कितने आदमी समझते हैं? यही न समझना संसार है—बार-बार वह यही कहती है। उसकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है—संसार ने उसे जगह नही दी—उसे नही समझा, पर संसारियो की तरह वह भी है—उसके भी बच्चा है।

एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। मैं उसी बरामदे पर खडा स्वागत देख रहा था। पगली भी उठकर खडी हो गयी थी। बडे आश्चर्य से लोगों को देख रही थी। रास्ते पर इतनी बड़ी भीड़ उसने नही देखी। मुँह फैलाकर, भौंहें सिकोडकर आँखो की पूरी ताकत से देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या था। क्या समझी, आप समझते हैं? भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द झाड़कर चुमकराने लगी और फिर कैसी ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखा। मैं यही समझना हूँ। नेता दस हजार की थैली लेकर गरीबो के उपकार के लिए चले गये—जरूरी-जरूरी कामों मे खर्च करेंगे।

एक दिन पगली के पास एक रामायणी समाज में कथा हो रही थी। मैंने देखा, बहुत से भक्त एकत्र थे। एतवार का दिन। दो बजे से साहित्य-सम्राट् गो.तुलसी-

दासजी की रामायण का पाठ शुरू हुआ, पाँज वजे समाप्त। उसमें हिन्दुओं के मँजे स्वभाव को साहित्य-सम्राट् गो. तुलसीदासजी ने और माँज दिया है, आप लोग जानते है! पाठ सुनकर, मँजकर भक्त-मण्डली चली। दुवली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली वच्चे के साथ वैठी हुई मिली। एक ने कहा, इसी संसार मे स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा, कर्म के दण्ड है। तीसरा वोला, सकल पदारथ है जग माही, कर्म-हीन नर पावत नाहीं। सव लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गये।

संगमलाल ने मुझसे कहा, "वावू, यह मुसलमान है।" मैंने उससे पूछा, "तुम्हे कैसे मालूम हुआ।" उसने बतलाया, "लोग ऐसा ही कहते हैं कि पहले यह हिन्दू थी, फिर मुसलमान हो गयी, इसका वच्चा मुसलमान से पैदा हुआ है; पहले यह पागल नही थी, न गूँगी; वाद को हो गयी।" मैंने सुन लिया। सगम ने किस ख्याल से कहा, मैं सोच रहा था। उन दिनों कई आदमियों से वाते करते हुए मैंने पगली का जिक्र किया; साहित्य, राजनीति आदि कई विषयों के आदर्श पर बहस थी; कुछ हँसकर चले गये, कुछ गम्भीर होकर और कुछ-कुछ पैसे उसे देने के लिए देकर।

मैंने हिन्दू, मुसलमान, बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा, रईस, सवको उस रास्ते में जाते समय पगली को देखते हुए देखा। पर किसी ने दिल से भी उसकी तरफ देखा, ऐसा नहीं देखा। जिन्हें अपने को देखने-दिखाने की आदत पड़ गयी है, उनकी दृष्टि मे दूसरे की सिर्फ तस्वीर आती है, भाव नही, यह दर्शन मुझे मालूम था। जिन्दा को मुर्दा और मुर्दा को जिन्दा समझना भ्रम भी है और ज्ञान भी, वाड़ियों में आदमी का पुतला देखकर हिरन और स्यार जिन्दा आदमी समझते हैं, उसी तरह ज्ञान होने पर गिलहरियाँ वदन पर चढ़ती है—आदमी उन्हें पत्थर जान पड़ता है। ऊपरवाले आदमी पगली को देखते हुए किस कोटि मे जाते थे, भगवान् जानें।

एक दिन शहर में पल्टन का प्रदर्शन हो रहा था। पगली फुटपाथ पर वैठी थी। मैं उसी वरामदे पर नगे वदन खड़ा सिपाहियो को देख रहा था। मेरी तरफ देख-देखकर कितने सिपाही मुस्कुराये। मेरे वालों के वाद मुँह की तरफ देखकर लोग मिस-फैशन कहते है। थिएटर, सिनेमा में यह सम्बोधन दशाधिक वार एक ही रोज सुनने को मिला है। रास्ते पर भी छेड़खानी होती है, मैं कुछ वोलता नही। क्योंकि सवसे अच्छा जवाब है वालों को कटा देना। पर ऐसा करूँ, तो मुझे दूसरों की समझ की खुराक न मिले। मै सोचता हूँ, आवाज कसनेवालों पर एक हाथ रक्खूँ, तो छठी का दूध याद आ जाय, यह वे नही देखते। मैं समझ गया, सिपाही भी मिस-फैशन से खुश होकर हँस रहे है। लत तो है। मेरे ग्रीक कट, पाँच फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्वे, जरूरत से ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढ़ो के कसरती वदन को देखकर किसी को आतंक नही हुआ। इसका निश्चय कर मैं पगली की तरफ देखने लगा। पगली वैठी थी। सिपाही मिलिटरी ढग से लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट दुरुस्त, दर्प से, जितना ही पृथ्वी को दहलाते हुए चल रहे थे, पगली उतना ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी। गोरे गम्भीर हो जाते थे। मैंने सोचा, मेरा वदला इसने चुका लिया।

पगली ने खुशी मे बच्चे को भी शरीक करने की कोशिश की—माँ अच्छी चीज, अच्छी तालीम बच्चे को देती ही है। पगली पास बैठे बच्चे की ओर देखकर चुटकी बजाकर सिपाहियों की तरह छँगुली से हवा को कोंच-कोंचकर दिखा रही थी, और हँसती हुई जैसे कह रही थी—'खुश तो हो ? कैसा अच्छा दृश्य है।'

कई महीने हो चुके। आदान-प्रदान से पगली की मेरी गहरी जान-पहचान हो गयी। पगली मुझे अपना शरीर-रक्षक समझने लगी। उसे लड़के बहुत तंग करते थे। मैं वहाँ होता था, तो विचित्र ढंग मे मुँह बनाकर मुझसे सहानुभूति की कामना करती हुई, अपार करुणा से देखती हुई लड़कों की तरफ इशारा करती थी मुझे देखकर लडके भग जाते थे। इस तरह मेरी उसकी घनिष्टता बढ़ गयी। वह मुझे अपना परम हितकारी मानने लगी। मैं खुद भी पैसे देता था और मित्रों से भी दिला देता था, पगली यह सब समझती थी। एक दिन मुझे मालूम हुआ, उसके पैसे बदमाश रात को छीन ले जाते हैं। यह मनुष्यों का विश्वव्यापी धर्म सोचकर मैं चप हो गया। चुरा जाने पर पगली भूल जाती थी, छिन जाने पर, कम प्रकाश में किसी को न पहचानकर रो लेती थी।

एक दिन मेरे एक मित्र ने पगली से मजाक किया। किसी ने उन्हें बतलाया था कि इसके पास बड़ा माल है, मिट्टी में गाड़-गाडकर इसने बड़े पैसे इकट्ठे किये हैं। मेरे मित्र पगली के पास गये, और मुस्कराते हुए ब्याजवाली बात समझाकर दो रुपये उधार माँगे। उनकी बात सुनकर पगली जी खोलकर हँसी, फिर कमर से तीन पैसे निकालकर नि:सकोच देने लगी।

गरमी की तेज लू और बरसात की तीव्र धार पगली और उसके बच्चे के ऊपर से पार हो गयी। लोग—जो समर्थ कहलाते हैं—केवल देखते रहे। पास एक खाली मकान के बरामदे मे, पानी बरसने पर, वह आश्रय लेती थी। जब तक वह उठकर बिस्तरा उठाकर जाय-जाय, तब तक उसका बिस्तरा भीग जाता था, वह भी नहा जाती थी। फिर उसी गीले मे पड़ी रहती। उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे टूटने लगा। उसे तपस्या करने की आदत थी, काम करने की नही। उसके हाथ-पैर बैठे-बैठे जकड़ गये थे। पानी पीने के लिए रास्ते के उस पार जाना पड़ता था। पानी की कल उसी तरफ थी। इस पार से उस पार तक इतना रास्ता पार करते उसे आधे घण्टे से ज्यादा लग जाता था। एक फर्लाङ्ग पर कोई इक्का या ताँगा आता होता, तो पगली खड़ी हुई उसके निकल जाने की प्रतीक्षा करती रहती। उसकी मुद्राएँ देखकर कोई मनुष्य समझ जाता कि उस एक्के या ताँगे से दब जाने का उसे डर हो रहा है। साधारण आदमी तब तक चार बार रास्ता पार करता। एक एक्का निकल जाता, फिर दूसरा आता हुआ देख पड़ता। पगली अपनी जगह जमी हुई चलने के लिए दो-एक दफे झूमकर रह जाती। उसकी मुख-मुद्रा ऐसी विरक्ति सूचित करती थी—वह इतनी खुली भाषा थी कि कोई भी उसे समझ लेता कि वह कहती है, 'यह सड़क क्या मोटर-ताँगे-इक्केवालो के लिए ही है ? इन्हें देखकर मैं खडी होऊँ, मुझे देखकर ये क्यों न खड़े हो ?' बडी देर बाद पगली को रास्ता पार करने का मौका मिलता। तब तक उसकी प्यास कितनी बढ़ती थी, सोचिए।

एक दिन हम लोग ब्लैक कुइन खेल रहे थे। शाम को पानी बरस चुका था। पगली उसी खाली मकान के बरामदे पर थी। हम लोगों ने खाना खाकर खेल शुरू किया था। होटल के गेट की बिजली जल रही थी। फुटपाथ पर मेज और कुर्सियाँ डाल दी गयी थीं। दस बज चुके थे। बच्चे को सुलाकर पगली किसी जरूरत से बाहर गयी थी। उसका बच्चा सोता हुआ करवट बदलकर दो हाथ ऊँचे बरामदे से नीचे फुटपाथ पर आ गिरा, जोर से चीख उठा। मेरे साथ के खिलाडी आलोचना करने लगे, "जान पड़ता है, पगली कहीं गयी है, है नहीं।" होटल के एक अमीर-दिल बोर्डर ने संगम से कहा, "देख रे पगली कहीं हो, तो बुला तो दे।"

इनकी बातचीत में वह भाव था, जिसके चाबुक ने मुझे उठने को विवश कर दिया। मैंने उस बच्चे को दौड़कर उठा लिया। मेरे एक मित्र ने कहा, "अरे, यह गन्दा रहता है।" मैं गोद में लेकर उसे हिलाने लगा। उतनी चोट खाया हुआ बच्चा चुप हो गया, क्योंकि इतना आराम उसे कभी नहीं मिला। उसकी माँ इस तरह बच्चे को सुख के झूले में झुलाना नहीं जानती। जानती भी हो तो उसमे शक्ति नहीं। बच्चे को आँखों के प्यार से गोद का सुख ज्यादा प्यारा है। इसे इस तरह की मारें बहुत मिली होंगी, पर इस तरह का सुख एक बार भी न मिला होगा। इसलिए वह चोट की पीड़ा भूल गया, और सुख की गोद मे पलकें मूँदकर बात-की-बात मे सो गया। मैंने उसे फिर उसकी जगह पर सावधानी से सुला दिया।

अब धीरे-धीरे जाडा पड़ने लगा था। मेरे मित्र श्रीयुत नैथाणी ने कहा, "एक रोज पगली का बच्चा गिर गया था, आपने गोद मे उठा लिया था। दीवान साहब तब जग रहे थे, मुझे भी देखने को जगा दिया।" मैं चुप रहा। मन में कहा, 'यह कोई बड़ी बात तो थी नहीं, बुद्ध एक बकरे के लिए जान दे रहे थे। जब हममे बड़ी-बड़ी बातें पैदा होंगी, तब हम इन बातों की छुटाई समझेंगे। आज तो तरीका उल्टा है। जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह नहीं पुजता; जो कुछ पूजता है, वही अधिक पुजने लगता है!'

जाड़ा जोरों का पड़ने लगा। एक रोज रात बारह बजे के करीब रास्ते में पिल्ले की-सी कूँ-कूँ सुन पड़ी। मैं एक कहानी समाप्त करके सोने का उपक्रम कर रहा था। होटल में और सब लोग सो चुके थे। मैं नीचे रास्ते के सामनेवाले कमरे में रहता था। होटल का दरवाजा बन्द हो चुका था। पर मैं अपना दरवाजा खोलकर बाहर गया। देखता हूँ, एक पाया हुआ मामूली काला कम्बल ओढ़े बच्चे को लिये पगली फुटपाथ पर पड़ी है। जब उसे दुनिया का, अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है, तब हाड़ तक छिद जानेवाले जाड़े से काँपकर वह ऐसे करुण स्वर से रोती है। जमीन पर एक फटी-पुरानी ओस से भीगी कथरी बिछी, ऊपर पतला कम्बल। ईश्वर ने मुझे केवल देखने के लिए पैदा किया है। मेरे पास जो ओढना है, वह मेरे लिए भी ऐसा नहीं कि खुली जगह सो सकूँ। पुराने कपड़े होटल के नौकर माँग लेते हैं—मथुरा मेरा कुर्ता, जो उसके अचकन की तरह होता है, बाँहे काटकर रात को पहनकर सोता है, सगम मेरी धोती से अपनी धोती साँटकर ओढ़ता है, महाराज ने राखी बाँधकर कम्बल माँगा था, अभी तक मैं नहीं दे सका। मैं सोचने लगा, यह कम्बल पगली को किसने दिया होगा? याद आया, सामने के धनी बंगाली-घराने

की महिलाएँ बडी दयालु है, कभी-कभी पगली को धोती और उसके लड़के को अँगरेजी फ्राक पहना देती थी—उन्ही ने दिया होगा। ऐसे ही विचार मे मेरी आँख लग गयी।

होटल के मालिक से नाराज होकर, गुट्ट बाँधकर एक रोज बारह-तेरह बोर्डर निकल गये। सब विद्यार्थी थे। मुझे जानते थे। कुछ कैनिंग कालेज के थे, कुछ क्रिश्चियन कालेज के। मुझसे उनके प्रमुख दो लॉ-क्लास के विद्यार्थियों ने आकर कहा, "जनाब, ऐसा तो हो नही सकता कि हम उस महीने का ख़र्च यहाँ देकर, वहाँ पेशगी फिर एक महीने का खर्च दे—धीरे-धीरे प्रोप्राइटर को रुपये देंगे, हमारे पास घर से ख़र्च तो एक महीने का आता है, अब वहाँ जाकर लिखेंगे, ख़र्च आयेगा, तब देंगे। होटल तोड़ने के लिए कई बार हम लोगो से मैनेजर कह चुके हैं। बीच मे तोड़ दिया, तो हम कहीं के न हुए। इम्तहान सिर पर है। हमने पहले से अपना इन्तजाम कर लिया।" मुझे ख्याल आया अब पगली की रोटियाँ भी गयीं। वह अब चल भी नही सकती कि दूसरी जगह से माँग लाये। विद्यार्थी मन मे सोचते हुए गये (अब मालूम हो रहा है) कि जैसा सड़ा खाना खिलाया है, दामों के लिए वैसे ही सड़क पर चक्कर खिलवायेंगे।

उनके जाने से होटल सूना हो गया। निश्चय हुआ कि इस महीने के बाद बन्द कर दिया जायगा। संगम मेरे पास उस जाड़े में दी हुई एक बनियानी पहने हुए मुट्ठियाँ दोनो बगलों मे दबाये संसार का एक्स (X) बना हुआ सुबह-सुबह आकर बोला, "बाबूजी, मेरी दो महीने की तनख्वाह बाकी है, आप दस रुपया काटकर मैनेजर साहब को बिल चुकाइयेगा।" मैंने उसे धैर्य दिया। दस रुपये की कल्पना से खुलकर हँसता हुआ बड़े मित्र-भाव से संगम मुझे देखने लगा। मैंने देखा, हँसते वक्त उसका मुँह नवयुवतियों की आँखों को मात कर कानो तक फैल गया है।

दो-तीन दिन बाद एक मकान किराये पर लेकर मैनेजर को अपनी बेयरर चेक दस्तखत करके देने से पहले मैंने कहा, "आपको चेक दिलवाने के लिए गंगा-पुस्तकालय जाता हूँ, चेक मे दस रुपये कम होगे, संगम की दो महीने की तनख्वाह बाकी है ? उसने कहा है—मेरे रुपये रोककर होटल को रुपये दीजियेगा।" मैनेजर यानी प्रोप्राइटर साहब ने संगम को बुलाया। कहा, "क्यों रे, तू हमे बेईमान समझता है?" संगम सिटपिटा गया, मारे डर के उसकी जबान बन्द हो गयी। मैनेजर साहब उसे घूरकर मेरी ओर देखकर बोले, "आप मुझे ही दीजियेगा. नौकरो की इस तरह आदत बिगड जायेगी।" मैं सतहत्तर रुपये का चेक मैनेजर साहब को देकर किराये के दूसरे मकान में चला आया। मेरे साथ मेरे मित्र कुँवर साहब भी आये।

एक रोज पगली का हाल सुनकर उनके मामा साहब एक नफीस बारीक कम्बल पगली को देने के लिए दे गये। मैंने कुँवर साहब से कहा, "रजाई ठीक थी, इससे कीमत मे भी ज्यादा नही होगी, और पगली का जाड़ा भी छूट जायगा।" कुँवर साहब अपनी रजाई देने के लिए देकर बडे दिन की छुट्टियो मे घर गये। मै रजाई लेकर पगली को उढा आया। दो-तीन दिन बाद मेरे मित्र श्रीयुत नैथाणी मिले। कहा, "पगली अस्पताल भेज दी गयी। डाक्टर का कहना है, उसे डबल निमोनिया हो गया है। बचेगी नही। उसका बच्चा श्रीदयानन्द अनाथालय भेज दिया गया है।

पगली बच्चे को छोड़ती न थी। पगली को ले जानेवाले एक्के की बगल से निकलती हुई मोटर के धक्के से एक स्वयंसेवक के पैर मे सख्त चोट आ गयी है, इसी ने सबसे पहले गन्दगी से न डरकर पगली को उठाया था।"

एक रोज सुबह उसी तरह बगल में मुट्ठी दबाये हुए संगम ने आकर कहा, "बाबू आपका चेक भुनाकर मैनेजर साहब भाग गये हैं।"

"नही, संगम," मैंने समझाया, "मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी है। घर रुपये लेने गये हैं। उन्हें कई सौ रुपये देने हैं—लकडी, घी, आटा, दूध और किराये के। लौटकर रुपये दे देंगे।" संगम वैसा ही फिर हँसा।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 फरवरी, 1934। पहले सखी मे, फिर **चतुरी चमार** मे संकलित]

चतुरी चमार

चतुरी चमार डाकखाना चमियानी, मौजा गढ़ाकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी बाशिन्दा है। मेरे ही नहीं, मेरे पिताजी के, बल्कि उनके भी पूर्वजों के मकान के पिछवाड़े, कुछ फासले पर, जहाँ से होकर कई और मकानों के नीचे और ऊपरवाले पनालों का, बरसात और दिन-रात का शुद्धाशुद्ध जल बहता रहता है, ढाल से कुछ ऊँचे एक बगल चतुरी चमार का पुश्तैनी मकान है। मेरी इच्छा होती है, चतुरी के लिए 'गौरवे बहुवचनम्' लिखूँ, क्योंकि साधारण लोगो के जीवन-चरित या ऐसे ही कुछ लिखने के लिए सुप्रसिद्ध सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा दिया हुआ आचार्य द्विवेदीजी का प्रोत्साहन पढकर मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है, पर एक अड़चन है, गाँव के रिश्ते में चतुरी मेरा भतीजा लगता है। दूसरो के लिए वह श्रद्धेय अवश्य है, क्योंकि वह अपने उपानह-साहित्य में आजकल के अधि-कांश साहित्यिको की तरह अपरिवर्तनवादी है। वैसे ही देहात में दूर-दूर तक उसके मजबूत जूतों की तारीफ है। पासी हफ्ते में तीन दिन हिरन, चौगड़े और बनैले सुअर खदेड़कर फांसते है, किसान अरहर की ठूँठियो पर ढोर भगाते हुए दौडते हैं—कँटीली झाडियों को दबाकर चले जाते हैं, छोकड़े बेल, बबूल, करील और बेर के काँटों के भरे रुँधवाये बागो से सरपट भागते हैं, लोग जेंगरे पर मड़नी करते है, द्वारिका नाई न्योता बाँटता हुआ दो साल में दो हजार कोस से ज्याद' चलता है, चतुरी के जूते अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस से मस नहीं होते; यह जरूर है कि चतुरी के जूते जिला बाँदा के जूतों से वजन में हल्के बैठते है, सम्भव है, चित्रकूट के इर्द-गिर्द होने के कारण वहाँ के चर्मकार भाइयों पर रामजी की तपस्या का प्रभाव पड़ा हो, इसलिए उनका साहित्य ज्यादा ठोस हुआ, चतुरी

वगैरह लखनऊ के नजदीक होने के कारण नवाबों के साये में आये हों। उन दिनों मैं गाँव मे रहता था। घर बगल मे होने के कारण, घर बैठे ही मालूम कर लिया कि चतुरी चतुर्वेदी आदिकों से सन्त-साहित्य का कहीं अधिक मर्मज्ञ है, केवल चिट्ठी लिखने का ज्ञान न होने के कारण एक क्रिया होकर भी भिन्नफल है, वे पत्र-पुस्तकों के सम्पादक हैं, यह जूतों का। एक रोज मैंने चतुरी आदि के लिए चरस मँगवाकर अपने ही दरवाजे पर बैठक लगवायी। चतुरी उम्र में मेरे चाचाजी से कुछ ही छोटा होगा, कई घरों के लड़के-बच्चे समेत 'चरम-रसिक रघुपति-पद-नेहु' लोध आदि के सहयोग से मजीरेदार डफनियाँ लेकर वह रात आठ बजे आकर डट गया। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, पलटूदास आदि ज्ञात-अज्ञात अनेकानेक सन्तों के भजन होने लगे। पहले मैं निर्गुण शब्द का केवल अर्थ लिया करता था, लोगों को 'निर्गुण पद है' कहकर संगीत की प्रशंसा करते हुए सुनकर हँसता था, अब गम्भीर हो जाया करता हूँ—जैसे उम्र की बाढ़ के साथ अक्ल बढ़ती है। मैं मचिया पर बैठकर भजन सुनने लगा। चतुरी आचार्य-कण्ठ से लोगों को भूले पदों की याद दिला दिया करता। मुझे मालूम हुआ, चतुरी कबीर-पदावली का विशेषज्ञ है। मुझसे उसने कहा, "काका, ये निर्गुण-पद बड़े-बड़े विद्वान नहीं समझते।" फिर शायद मुझे भी उन्हीं विद्वानों की कोटि में शुमारकर बोला, "इस पद का मतलब—" मैंने उतरे गले से बात काटकर उभड़ते हुए कहा, "चतुरी, आज गा लो, कल सुबह आकर मतलब समझाना। मतलब से गाने की तलब चली जायगी।" चतुरी खखारकर गम्भीर हो गया। फिर उसी तरह डिक्टेट करता रहा। बीच-बीच में ओजस्विता लाने के लिए चरस की पुट चलती रही। गाने मे मुझे बड़ा आनन्द आया। ताल पर तालियाँ देकर मैंने भी सहयोग दिया। वे लोग ऊँचे दर्जे के उन गीतों का मतलब समझते थे, उनकी नीचता पर यह एक आश्चर्य मेरे साथ रहा। बहुत-से गाने आलंकारिक थे। वे उनका भी मतलब समझते थे। एक बजे रात तक मैं बैठा रहा। मुझे मालूम न था कि 'भगत' कराने के अर्थ रात-भर गँवाने के हैं। तब तक आधी चरस भी खत्म न हुई थी। नींद ने जोर मारा। मैंने चतुरी से चलने की आज्ञा माँगी। चरस की ओर देखते हुए उसने कहा, "काका, फिर कैसे काम बनेगा?" मैंने कहा, "चतुरी, तुम्हारी काकी तो भगवान् के यहाँ चली गयीं, जानते ही हो—भोजन अपने हाथ पकाना पड़ता है, कोई दूसरा मदद के लिए है नहीं, जरा आराम न करेंगे, तो कल उठ न पायेंगे।" चतुरी नाराज होकर बोला, "तुम ब्याह करते ही नहीं, नहीं तो तेरह काकी आ जायँ, हाँ वैसी तो…।" मैंने कहा, "चतुरी, भगवान् की इच्छा।" दुखी हृदय से सहानुभूति दिखलाते हुए चतुरी ने कहा, "काकी बहुत पढ़ी-लिखी थीं। मैंने कई चिट्ठियाँ उनसे लिखवायी हैं।" फिर जलती हुई चिलम में दम लगाकर धुवाँ पीकर, सिर नीचे की ओर जोर से दबाकर, नाक से धुवाँ निकालकर बैठे गले से बोला, "काकी रोटी भी करती थीं, बर्तन भी मलती थीं और रोज रामायण भी पढ़ती थीं, बड़ा अच्छा गाती थीं काका, तुम वैसा नहीं गाते, बुढऊ बाबा (मेरे चाचा) दरवाजे बैठते थे। भीतर काकी रामायण पढ़ती थीं। गजलें और न जाने क्या-क्या—टिल्लाना गाती थीं—क्यों क़ाका?" मैंने कहा, "हूँ; तुम लोग चतुरी गाओ, मैं दरवाजा बन्द करके सुनता हूँ।"

जगने तक भगत होती रही। फिर कब बन्द हुई, मालूम नही। जब आँख खुली, तब काफी दिन चढ़ आया था। मुँह धोकर दरवाजा खोला, चतुरी बैठा एकटक दरवाजे की ओर देख रहा था। कबीर-पदावली का अर्थ उससे किसी ने नही सुना। मैंने सुबह सुनने के लिए कहा था, वह आया हुआ है। मैंने कहा, "क्यो चतुरी, रात सोये नहीं ?" चतुरी सहज-गम्भीर मुद्रा से बोला, "सोकर जगे तो बड़ी देर हुई, बुलाने की वजह से आया हुआ हूँ।" जिनमे शक्ति होती है अवैतनिक शिक्षक वही हो सकते है। मैंने कहा, "मैं तैयार हूँ, पहले तुम कबीर साहब की कोई उल्टबाँसी सीधी करो।" "कौन सुनाऊँ।" चतुरी ने कहा, "एक से एक बढ़कर है। मैं कबीरपन्थी हूँ न काका, जहाँ गिरह लगती है, साहब आप खोल देते है।" मैंने कहा, "तुम पहुँचे हुए हो, यह मुझे कल ही मालूम हो गया था।" चतुरी आँख मूँदकर शायद साहब का ध्यान करने लगा, फिर सस्वर एक पद गुनगुनाकर गाने लगा, फिर एक-एक कड़ी गाकर अर्थ समझाने लगा। उसके अर्थ मे अनर्थ पैदा करना आनन्द खोना था, जब वह भाष्य पूरा कर चुका, जिस तरह के भाष्य से हिन्दीवालों पर 'कल्याण' के निरमिष लेखों का प्रभाव पड़ सकता है, मैंने कहा, "चतुरी, तुम पढे-लिखे होते, तो पाँच सौ की जगह पाते।" खुश होकर चतुरी बोला, "काका, कहो तो अर्जुनवा (चतुरी का सत्रह साल का लड़का) को पढ़ने के लिए भेज दिया करूँ, तुम्हारे पास पढ़ जायगा, तुम्हारी विद्या ले लेगा, मैं भी अपनी दे दूँगा, तो कहो भगवान् की इच्छा हो जाय तो कुछ हो जाय।" मैंने कहा, "भेज दिया करो। दिया घर से लेकर आया करे। हमारे पास एक ही लालटेन है, बहुत नजदीक घिसेगा, तो गाँववाले चौंकेंगे। आगे देखा जायगा। लेकिन गुरु-दक्षिणा हम रोज लेंगे। घबराओ मत। सिर्फ बाजार से हमारे लिए गोश्त ले आना होगा, और महीने मे दो दिन चक्की से आटा पिसवा लाना होगा। इसकी मेहनत हम देंगे। बाजार तुम जाते ही हो।" चतुरी को इस सहयोग से बड़ी खुशी हुई। एक प्रसंग पर आने के विचार से मैंने कहा, "चतुरी, तुम्हारे जूते की बड़ी तारीफ है।" खुश होकर चतुरी बोला, "हाँ, काका, दो साल चलता है।" उसमे एक दर्द भी दबा था। दुखी होकर कहा, "काका, जमीदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक जोड़ा पंचमा। जब मेरा ही जोड़ा मजे मे दो साल चलता है, तब ज्यादा लेकर कोई चमडे की बरबादी क्यों करे ?" कहकर डबडबायी आँखों देखता हुआ जुड़े हाथों सेवई-सी बटने लगा।

मुझे सहानुभूति के साथ हँसी आ गयी। मगर हँसी को होंठों से बाहर न आने दिया। सँभलकर स्नेह से कहा, "चतुरी, इसका वाजिब-उल-अर्ज मे पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा, तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने पड़ेंगे।"

चतुरी सोचकर मुस्कराया। बोला, "अब्दुल-अर्ज मे दर्ज होगा, क्यो काका ?" मैंने कहा, "हुँ, देख लो, सिर्फ एक रुपया हक लगेगा।"

वक्त बहुत हो गया था। मुझे काम था। चतुरी को मैंने विदा किया। वह गम्भीर होकर सिर हिलाता हुआ चला। मैं उसके मनोविकार पढ़ने लगा—'वह एक ऐसे जाल मे फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका, पूरा जोर

उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है।'

अर्जुन का आना जारी हो गया। उन दिनों बाहर मुझे कोई काम न था, देहात मे रहना पड़ा। गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारो का ब्रह्मभोज भी चलता रहा। घृतपक्व मसालेदार मांस की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमन्त्रित होने को पूछा। इस तरह मेरा मकान साधारण जनों का अड्डा, बल्कि House of Commons हो गया। अर्जुन की पढाई उत्तरोत्तर बढ़ चली। पहलेपहल जब 'दादा, मामा, काका, दादी, नानी' उसने सीखा, तो हर्ष में उसके माँ-बाप सम्राट्-पद पाये हुए को छापकर छलके। सब लोग आपस मे कहने लगे, अब अर्जुनवा 'दादा-दीदी' पढ़ गया। अर्जुन अपने बाप चतुरी को दादा और माँ को दीदी कहता था। दूसरे दिन उसके बड़े भाई ने मुझसे शिकायत की। कहा, "बाबा अर्जुनवा और तो सब लिख-पढ़ लेता है, पर भैया नही लिखता।" मैने समझाया कि किताब मे 'दादा-दादी' से भैया की इज्जत बहुत ज्यादा है, 'भैया' तक पहुँचने मे उसे दो महीने की देर होगी।

धीरे-धीरे आम पकने के दिन आये। अर्जुन अब दूसरी किताब समाप्त कर अपने खानदान में विशेष प्रतिष्ठित हो चला। कुछ नाजुक-मिजाज भी हो गया। मोटा काम न होता था। आम खिलाने के विचार से मैं अपने चिरंजीव को लिवा लाने के लिए ससुराल गया। तब उसकी उम्र 9-10 साल की होगी। सोम या चहरुम मे पढ़ता था। मेरे यहाँ उसके मनोरंजन की चीज न थी। कोई स्त्री भी न थी, जिसके प्यार से वह बहला रहता। पर दो-चार दिन के बाद मैंने देखा, वह ऊबा नही, अर्जुन से उसकी गहरी दोस्ती हो गयी है। वह अर्जुन का काका लगता था, जैसे मैं अर्जुन के बाप का। यद्यपि अर्जुन उम्र मे उससे पौने दो पट था, फिर भी पद और पढाई मे मेरे चिरंजीव बड़े थे, फिर यह ब्राह्मण के लड़के भी थे। अर्जुन को नयी और इतनी बड़ी उम्र मे उतने छोटे से काका को श्रद्धा देते हुए प्रकृति के विरुद्ध दबना पडता था। इसका असर अर्जुन के स्वास्थ्य पर तीन ही चार दिन में प्रत्यक्ष हो चला। तब मुझे कुछ मालूम न था, अर्जुन शिकायत करता न था। मैं देखता था, जब मैं डाकखाना या बाहर गाँव से लौटता हूँ मेरे चिरंजीव अर्जुन के यहाँ होते हैं, या घर ही पर उसे घेरकर पढ़ाते रहते है। चमारों के टोले मे गोस्वामीजी के इस कथन को 'मनहु मत्त गजपन निरखि सिंह किसोरहिं चोप' वह कई बार सार्थक करते देख पड़े। मै ब्राह्मण-संस्कारो की सब बातों को समझ गया। पर उसे उपदेश क्या देता? चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबायेंगे। दवा है, दोनों की जड़ें मार दी जायँ, पर यह सहज-साध्य नही। सोचकर चुप हो गया।

मैं अर्जुन को पढ़ाता था तो स्नेह देकर, उसे अपनी ही तरह का एक आदमी समझकर, उसके उच्चारण की त्रुटियो को पार करता हुआ। उसकी कमजोरियों की दरारें भविष्य मे भर जायँगी, ऐसा विचार रखता था। इसलिए कहाँ-कहाँ उसमे प्रमाद है, यह मुझे याद भी न था। पर मेरे चिरंजीव ने चार ही दिन में अर्जुन की सारी कमजोरियो का पता लगा लिया, और समय-असमय उसे घर बुलाकर मेरी गैरहाजिरी में उन्ही कमजोरियो के रास्ते उसकी जीभ को दौड़ाते

हुए अपना मनोरंजन करने लगे। मुझे बाद को मालूम हुआ।

सोमवार मियाँगंज के बाजार का दिन था। गोश्त के पैसे मैंने चतुरी को दे दिये थे। डाकखाना तब मगरायर था। वहाँ से बाजार नजदीक है। मैं डाकखाने से प्रबन्ध भेजने के लिए टिकट लेकर टहलता हुआ बाजार गया। चतुरी जूते की दूकान लिये बैठा था। मैंने कहा, "कालिका (धोबी) भैया आये है, चतुरी, हमारा गोश्त उनके हाथ भेज देना। तुम बाजार उठने पर जाओगे, देर होगी।" चतुरी ने कहा, "काका एक बात है, अर्जुनवा तुमसे कहते डरता है, मैं घर आकर कहूँगा, बुरा न मानना लडकों की बातो का।" 'अच्छा' कहकर मैंने बहुत-कुछ सोच लिया। बकर-कसाई के सलाम का उत्तर देकर बादाम और ठण्डाई लेने के लिए बनियो की तरफ गया। बाजार मे मुझे पहचाननेवाले न पहचाननेवालो को मेरी विशेषता से परिचित करा रहे थे। चारो ओर से आँखें उठी हुई थी। तअज्जुब यह था कि अगर ऐसा आदमी है, तो मांस खाना-जैसा घृणित पाप क्यो करता है। मुझे क्षण-मात्र में यह सब समझ लेने का काफी अभ्यास हो गया था। गुरुमुख ब्राह्मण आदि मेरे घड़े का पानी छोड चुके थे। गाँव तथा पडोस के लड़के अपने-अपने पिता-पितामहों को समझा चुके थे कि 'बाबा (मैं) कहते है, मै पानी-पाँडे थोडे ही हूँ, जो ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सबको पानी पिलाता फिरूँ।' इससे लोग और नाराज हो गये थे। साहित्य की तरह समाज मे भी दूर-दूर तक मेरी तारीफ फैल चुकी थी—विशेष रूप से जब एक दिन विलायत की टोरी-पार्टी की तारीफ करनेवाले, एक देहाती स्वामीजी को मैंने कबाब खाकर काबुल मे प्रचार करनेवाले, रामचन्द्रजी के वक्त के, एक ऋषि की कथा सुनायी, और मुझसे सुनकर वही गाँव के ब्राह्मणों के सामने बीडी पीने के लिए प्रचार करके भी वह मुझे नीचा नही दिखा सके—उन दिनों भाग्यवश मिले हुए अपने आवारागर्द नौकर से बीडी लेकर, सबके सामने दिया-सलाई लगाकर मैंने समझा दिया कि तुम्हारे इस जूठे धुएँ से बढकर मेरे पास दूसरा महत्त्व नही।

मैं इन आश्चर्य की आँखो के भीतर बादाम और ठण्डाई लेकर ज़रा रीढ़ सीधी करने को हुआ कि एक बुड्ढे पण्डितजी एक देहाती भाई के साथ मेरी ओर बढते नजर आये। मैंने सोचा, शायद कुछ उपदेश होगा। पण्डितजी सारी शिकायत पीकर, मधु-मुख हो अपने प्रदर्शक से बोले, "आप ही है?" उसने कहा, "हाँ, यह हैं।" पण्डितजी देखकर गद्गद हो गये। ठोडी उठाकर बोले, "ओहोहो! आप धन्य है।" मैंने मन में कहा—'नहीं, मैं वन्य हूँ। मजाक करता है खूसट।' पर गौर से उनका पग और खौर देखकर कहा, "प्रणाम करता हूँ पण्डितजी।" पण्डितजी मारे प्रेम के संज्ञा खो बैठे। मेरा प्रणाम मामूली प्रणाम नही—वड़े भाग्य से मिलता है। मैं खड़ा पण्डितजी को देखता रहा। पण्डितजी ने अपने देहाती साथी से पूछा, "आप बे-मे सब पास हैं?" उनका साथी अत्यन्त गम्भीर होकर बोला, "हाँ। जिला मे दूसरा नही है।" होंठ काटकर मैंने कहा, "पण्डितजी, रास्ते मे दो नाले और एक नदी पड़ती है। भेडिए लागन है। डण्डा नही लाया। आज्ञा हो, तो चलूँ—शाम हो रही है।" पण्डितजी स्नेह से देखने लगे। जो शिकायत उन्होने सुनी थी, आँखों मे उस पर सन्देह था, दृष्टि कह रही थी—'यह वैसा नही—

जरूर गोश्त न खाता होगा, बीडी न पी होगी, लोग पाजी है।' प्रणाम करके, आशीर्वाद लेकर मैंने घर का रास्ता पकड़ा।

दरवाजे पर आकर रुक गया। भीतर बातचीत चल रही थी। प्रकाश कुछ-कुछ था। सूर्य डूब रहा था। मेरे पुत्र की आवाज आयी —"बोल रे, बोल।" इस वीर-रस का अर्थ मैं समझ गया। अर्जुन बोलता हुआ हार चुका था, पर चिरंजीव को रस मिलने के कारण बुलाते हुए हार न हुई थी। चूंकि बार-बार बोलना पड़ता था, इसलिए अर्जुन बोलने से ऊबकर चुप था। डाँटकर पूछा गया, तो सिर्फ कहा, "क्या?"

"वही—गुण, बोल।"

अर्जुन ने कहा, "गुण।"

बच्चे के अट्टहास से घर गूंज उठा। भरपेट हँसकर, स्थिर होकर फिर उसने आज्ञा की—"बोल—गणेश।"

रोनी आवाज में अर्जुन ने कहा, "गडेस।" खिलखिलाकर, हँसकर, चिरंजीव ने डाँटकर कहा, "गड़ेस-गड़ास करता है—साफ नहीं कह पाता क्यों रे, रोज दातौन करता है?"

अर्जुन अप्रतिभ होकर, दबी आवाज मे एक छोटी-सी 'हूँ' करके, सिर झुकाकर रह गया। मैं दरवाजा धीरे-से ढकेलकर भीतर खम्भे की आड़ से देख रहा था। मेरे चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं। ज़रा देर चुप रहकर फिर आज्ञा की—"बोल, वर्ण।"

अर्जुन की जान की आ पड़ी। मुझे हँसी भी आयी, गुस्सा भी लगा। निश्चय हुआ, अब अर्जुन से विद्या का धनुष नही उठने का। अर्जुन वर्ण के उच्चारण में विवर्ण हो रहा था। तरह-तरह से मुँह बना रहा था। पर खुलकर कुछ कहता न था। उसके मुंह बनाने का आनन्द लेकर चिरजीव ने फिर डाँटा—"बोलता है, या लगाऊँ झापड़। नहा लूंगा, गरमी तो है।"

मैंने सोचा, अब प्रकट होना चाहिए। मुझे देखकर अर्जुन खड़ा हो गया, आँखें मल-मलकर रोने लगा। मैंने पुत्र-रत्न से कहा, "कान पकड़कर उठो-बैठो दस दफे।" उसने नजर बदलकर कहा, "मेरा कुसूर कुछ नही और मैं यो ही कान पकड़कर उठूं-बैठूं!" मैंने कहा, "तुम इससे गुस्ताखी कर रहे थे।" उसने कहा, "तो आपने भी की होगी। इससे 'गुण' कहला दीजिए, आपने पढ़ाया तो है, इसकी किताब मे लिखा है।" मैंने कहा, "तुम हँसते क्यों थे?" उसने कहा, "क्या मैं जान-बूझकर हँसता था?" मैंने कहा, "अब आज से तो तुम इससे बोल न सकोगे।" लड़के ने जवाब दिया, "मुझे मामा के यहाँ छोड़ आइए, यहाँ डाल के आम खट्टे होते है—चोपी होती है। मुँह फदक जाता है, वहाँ पाल के आम आते हैं।"

चिरंजीव को नाई के साथ भेजकर मैंने अर्जुन और चतुरी को सान्त्वना दी।

कुछ महीने और गांव मे रहना पड़ा। अर्जुन कुछ पढ गया। शहरों की हवा मैंने बहुत दिनों से न खायी थी—कलकत्ता, बनारस, प्रयाग आदि का सफर करते हुए लखनऊ मे डेरा डाला—स्वीकृत किताबें छपवाने के विचार से। कुछ काम लखनऊ

में और मिल गया। अमीनाबाद होटल में एक कमरा लेकर निश्चिन्त चित्त से साहित्य-साधना करने लगा।

इन्ही दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला—यही, जो चतुरी आदिक के कारण फिस्स हो गया है। होटल मे रहकर, देहात से आनेवाले शहरी युवक मित्रों से सुना करता था, गढ़ाकोला में भी आन्दोलन जोरों पर है—छ:-सात सौ तक की जोत किसान लोग इस्तीफा कर छोड चुके हैं—वह जमीन अभी तक नही उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झण्डा-गीत गाया करते हैं। साल-भर बाद, जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, जमीदारों ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया, तब गाँव के नेता मेरे पास मदद के लिए आये, बोले—"गाँव में चलकर लिखो। तुम रहोगे, तो मार न पड़ेगी, लोगों को हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है।" मैंने कहा, "मैं कुछ पुलिस तो हूँ नही, जो तुम्हारी रक्षा करूँगा, फिर मार खाकर चुपचाप रहनेवाला धैर्य मुझमे बहुत थोड़ा है, कही ऐसा न हो कि शक्ति का दुरुपयोग हो।" गाँव के नेता ने कहा, "तुम्हें कुछ करना तो है नही, बस बैठे रहना है।" मैं गया।

मेरे गाँव की कांग्रेस ऐसी थी कि जिले के साथ उसका कोई तअल्लुक न था -- किसी खाते में वहाँ के लोगों के नाम दर्ज न थे। पर काम में पुरवा-डिवीजन में उससे आगे दूसरा गाँव न था। मेरे जाने के बाद पता नही, कितनी दरख्वास्तें साहब ने इधर-उधर लिखी।

कच्चे रंगों से रँगा तिरंगा झण्डा महावीर स्वामी के सामने एक बड़े बाँस मे गडा, बारिश से धुलकर धवल हो रहा था। इन दिनो मुकद्दमेबाजी और तहकीकात जोरों से चल रही थी। कुछ किसानों पर एक साल के हरी-भूसे को तीन साल की बाकी बनाकर, जमीदार ने आनरेरी दावे दायर किये थे, जो अपनी क्षुद्रता के कारण जमींदार साहब से मजिस्ट्रेट के पास आकर किसानो की दृष्टि मे और भयानक हो रहे थे एक दिन दरख्वास्तों के फलस्वरूप शायद, दारोगाजी तहकीकात करने आये। मैं मगरायर डाक देखने जा रहा था। बाहर निकला तो लोगों ने कहा—"दारोगाजी आये हैं, अभी रहो।" आगे दारोगाजी भी मिल गये। जमीदार साहब ने मेरी तरफ दिखाकर अँगरेजी मे धीरे से कुछ कहा। तब मैं कुछ दूर था, सुना नही। गाँववाले समझे नही, दारोगाजी झण्डे की तरफ जा रहे थे। जमीदार शायद उखडवा देने के इरादे से लिये जा रहे थे। महावीरजी के अहाते मे झण्डा देखकर दारोगा कुछ सोचने लगे, बोले, "यह तो मन्दिर का झण्डा है।" अच्छी तरह देखा, उसमे कोई रंग न देख पड़ा। जमीदार साहब को गौर से देखते हुए लौटकर डेरे की तरफ चले। जमीदार साहब ने बहुत समझाया कि 'वह बारिश से धुलकर सफेद हो गया है, लेकिन है यह कांग्रेस का झण्डा।' पर दारोगाजी बुद्धिमान थे।

महावीरजी के अहाते मे सफेद झण्डे को उखडवाकर वीरता प्रदर्शित करने की आज्ञा न दी। गाँव मे कांग्रेस है, इसका पता न सब-डिवीजन मे लगा, न जिले मे, थानेदार साहब करें क्या ?

उन दिनों मुझे उन्निद्र-रोग था। इसलिए सिर के बाल साफ थे। मैंने

सोचा—'वेश का अभाव है, तो भाषा को प्रभावशाली करना चाहिए, नहीं तो थानेदार साहब पर अच्छी छाप न पड़ेगी। वहाँ तो महावीर स्वामी की कृपा रही, यहाँ अपनी ही सरस्वती का सहारा है।' मैं ठेठ देहाती हो रहा था; थानेदार साहब ने मुझसे पूछा, "आप कांग्रेस में है ?" मैंने सोचा, इस समय राष्ट्रभाषा से राजभाषा का महत्त्व बढकर होगा। कहा, "मैं तो विश्व-सभा का सदस्य हूँ। इस सभा का नाम भी थानेदार साहब ने न सुना था। पूछा, "यह कौन-सी सभा है !" उनके जिज्ञासा-भाव पर गम्भीर होकर नोबुल पुरस्कार पाये हुए कुछ लोगों के नाम गिनाकर मैंने कहा, "ये सब उसी सभा के सदस्य है।" थानेदार साहब क्या समझे, वह जानें। मुझसे पूछा, "इस गाँव मे कांग्रेस है।" मैंने सोचा—'युधिष्ठिर की तरह सत्य की रक्षा करूँ तो असत्य भाषण का पाप न लगेगा।' कहा, "इस गाँव के लोग तो कांग्रेस का मतलब भी नही जानते।" इतना कहकर मैंने सोचा—'अब ज्यादा बातचीत ठीक न होगी।' उठकर खड़ा हो गया, और थानेदार साहब से कहा, "अच्छा, मैं चलता हूँ। ज़रा डाकखाने मे काम है। चिट्ठीरसा हफ्ते में दो दिन गश्त पर आता है। मेरी जरूरी चिट्ठियाँ होती हैं और रजिस्ट्री, अखबार, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती है, फिर उस गाँव में हम लोगों की लाइब्रेरी भी है, जान पड़ता है।" थानेदार साहब ने पूछा, "कांग्रेस की चिट्ठियाँ आती हैं ?" मैंने कहा, "नही, मेरी अपनी।" मैं चला आया। थानेदार साहब जमीदार साहब से शायद नाराज होकर गये।

इससे तो बचाव हुआ, पर मुकद्दमा चलता रहा। आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने, जिनके एक रिश्तेदार जमीदार की तरफ से वकील थे, किसानों पर जमींदार की डिगरी दे दी। बाद को चतुरी वगैरह की बारी आयी। दावे दायर हो गये, अब तक जो सम्मिलित धन मुकद्दमो मे लग रहा था, सब खर्च हो गया। पहले की डिगरी में कुछ लोगो के बैल वगैरह नीलाम कर लिये गये। लोग घबरा गये। चतुरी को मदद की आशा न रही। गाँववालो ने चतुरी आदि के लिए दोबारा चन्दा न लगाया।

चतुरी सूखकर मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने कहा, "चतुरी, मैं शक्ति-भर तुम्हारी मदद करूँगा।"

"तुम कहाँ तक मदद करोगे, काका ?" चतुरी जैसे कुएँ में डूबता हुआ उभड़ा।

"तो तुम्हारा क्या इरादा है ?" उसे देखते हुए मैंने पूछा।

"मुकद्दमा लडूँगा। पर गाँववाले डर गये हैं, गवाही न देंगे।" दिल से बैठा हुआ चतुरी बोला।

उस परिस्थिति पर मुझे भी निराशा हुई। उसी स्वर से मैंने पूछा, "फिर, चतुरी?"

चतुरी बोला, "फिर छेदनी-पिरकिया आदि मालिक ही ले लें।"

मैंने गाँव में कुछ पक्के गवाह ठीक कर दिये। सत्तू बाँधकर, रेल छोड़कर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर, दूसरी पेशी के बाद पैदल ही लौटकर हँसता हुआ चतुरी बोला, "काका, जूता और पुरवाली बात अब्दुल-अर्ज मे दर्ज नही है।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 मई, 1934। पहले सखी में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

राजा साहब को ठेंगा दिखाया

लोग कहते है, ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ मे आ जाय, अपढ़ लोग भी समझें। बात बहुत सीधी है। मुझे एक उदाहरण याद आया। लिखता हूँ। यह लिखा हुआ, उद्धृत नही, देखा हुआ है। तब तक आप लोग ठेंगा दिखाने का मुहावरा याद रक्खें।

बङ्गाल और उड़ीसा को जोडनेवाली एक नहर है। रूपनारायण (नद) से काटकर कटक तक निकाली गयी है। यह केवल आबपाशी के लिए नही, इससे व्यवसाय भी होता है, बड़ी-बड़ी नावें चलती है।

इसके किनारे पद्मदल राजधानी है। राजा साहब के छोटे-छोटे स्टीमर. बोट, लांच, बजरे, किश्ती, डोंगी आदि राजधानी के पास चौड़ी की हुई नहर के एक तरफ बँधी रहती हैं।

जेठ का महीना, सूरज डूब रहा है। जोरों से बहती हुई मलय वायु में षोडशी का स्पर्श मिलता है। यह अकेली दक्षिणी हवा बङ्गाल की आधी कविता है। प्रासाद-शिखरों से सुनहली किरणें लिपटी है, उन्ही के प्रेम की साँस जैसे दक्षिणी हवा मे बह रही है। बडे-बड़े तालाबों में श्वेत और रक्त कमल, खुले हुए अनुभव-जैसे, लोट रहे हैं। स्वच्छ, कीमती, चौड़ी किनारीवाली, बारीक, ठोस-बुनी, बंगला-ढंग से कोंछीदार शान्तिपुरी धोती, रेशमी शर्ट और सुनहरे स्लीपर पहने चश्मा लगाये राजा साहब नाव की सैर के लिए चले। रास्ते मे तीन ड्योढ़ियाँ पड़ती है, हौदा-कसे हाथियो के निकलते आधी और ऊँची; रास्ते के दोनों तरफ बड़े-बड़े तालाब; साफ-सुथरे दूब जमाये पार्क; दोनो बगल बटम-पाम की कतारें; दूर के देशी बागीचों से बेला, जूही और कमलो की खुशबू आती हुई। पहली ड्योढ़ी मे बैठे हुए राजा साहब के मुसाहब उनके आने पर कतार बाँधकर भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके उद्दण्ड प्रसन्नता से साथ हो गये। अर्दली, सिपाही, खानसामे प्रासाद के साथ आये थे। पहली, दूसरी और तीसरी ड्योढ़ी के सिपाही क्रमशः किर्च निकाल-निकालकर राजा साहब को बायें रखकर दाहिने हाथ से सलामी देते गये। तीसरी ड्योढ़ी प्रासाद के अहाते को घेरनेवाली जलाशय चौडी खाई के किनारे है—खाई के ऊपर से पुल है।

राजा साहब निकलकर नहर-घाट की तरफ चले। स्टीमर, लांच, मोटर-बोट और देशी किश्तीवाले मुसलमान नौकर कप्तान और माझियों ने भी उसी प्रकार कतार बाँधकर सलाम किया। राजा साहब खुली छतवाली एक अँगरेजी कट की देशी किश्ती पर पतवार पकड़कर बैठ गये। पीछे-पीछे मनोरंजन के लिए पले पहलवान-जैसे मुसाहब आकर एक-एक तख्ते पर डाँड़ सँभालकर बैठे। माझी खड़े रहे। सिपाही और अर्दली नहर के किनारे-किनारे बोट के साथ दौड़ लगाकर रहने के लिए लाँग समेटने लगे। किश्ती चली, किनारे-किनारे सिपाही दौडे।

डेढ मील के फासले पर शक्तिपुर नाम का एक बागी गाँव है। वहाँ विश्वम्भर भट्टाचार्य नाम का एक ब्राह्मण रहता है। राजा साहब कई रोज से किश्ती पर

हवाखोरी करते है, देखकर, सोच-विचारकर, लाँग चढाकर, अपने गाँव के पास नहर के बाँध पर खडा विश्वम्भर राजा साहब की प्रतीक्षा कर रहा है।

सिपाही लोग दौडकर कुछ ही दूर तक साथ रहते हैं, आठ-आठ दस-दस पट्ठों की डाँड़मारी किश्ती तीर-सी चलती है, तीन-चार फर्लांग के बाद सिपाहियों का दम खुल जाता है, किश्ती आगे निकल जाती है, वे पीछे-पीछे लट्ठ लिये दुलकी दौड़ते आते हैं।

जब शक्तिपुर के पास किश्ती पहुँची, तब सिपाही तीन-चार फर्लांग पीछे थे। विश्वम्भर राजा साहब की ताक मे खडा ही था; जब किश्ती आती हुई सौ गज फासले पर रह गयी, तब उसने एक अद्भुत प्रकार की ध्वनि की, जिससे राजा साहब का ध्यान आकर्षित हो। राजा साहब को अपनी तरफ देखते हुए देखकर उसने हवा मे उँगली से लिखकर राजा साहब की ओर कोंचा, फिर पेट खलाकर दोनों हाथो को मरोडा, फिर दाहने हाथ से मुँह थपथपाया, फिर दोनो हाथो के ठेंगे हिलाकर राजा साहब को दिखाया।

राजा साहब देख रहे थे। डांड धीमे कर देने को कहा। फिरकर देखा, सिपाही दूर थे। किश्ती धीरे-धीरे चलती गयी। विश्वम्भर पीछे-पीछे दोनो हाथों से पेट दिखाता, ठेंगे हिलाता दौडा। राजा साहब जब सिपाहियों को फिरकर देखते थे, तब पहले विश्वम्भर ठेंगे हिलाता हुआ देख पड़ता था। बांध पर और भी आ-जा रहे थे। कुछ भले आदमी हवाखोरी को निकले हुए मुस्कुरा रहे थे। किश्ती की चाल धीमी देखकर सिपाहियो ने जल्दी की। नजदीक आकर एक अनजाने को बेअदबी करते देखकर राजा साहब की तरफ देखा। राजा साहब ने इशारे से सिर हिलाया। सिपाही विश्वम्भर को पकडकर प्रहार करने लगे। किश्ती लौट चली।

सिपाहियो ने आते हुए विश्वम्भर की मुद्राएँ देखी थी, जिनका अर्थ समझने में उन्हें देर नही हुई। उसे मारते हुए कहने लगे, "क्यो रे'''हमारे महाराज रियाया की जबान बन्द करते हैं ?—पेट भी मारते हैं ?—ठेंगा दिखाता है हमारे महाराज को, इतना भी नही समझता ?"

विश्वम्भर को पीटकर दोनो गदोरी और उँगलियाँ कुचलकर सिपाही चले गये। खबर विश्वम्भर के घर पहुँची। उसकी पत्नी, सत्रह साल की विधवा बेटी और दो (नौ और पाँच साल के) छोटे लड़के फटे कपडे पहने, रोते हुए बाँध पर पहुँचे। गाँव के और लोग भी गये। विश्वम्भर को सँभालकर उठा लाये। खाट पर लिटा दिया। गर्म हल्दी-चूना लगाने लगे। राजा साहब के जासूस छद्मवेश से पता लगाते रहे।

गाँव के कुछ भलेमानस गर्म पड़े। पर कुछ कर न सके। राजा साहब का प्रताप बडा प्रबल है। उनके विरोध मे कुछ करने की अपेक्षा विश्वम्भर के समर्थन मे कुछ करना अच्छा है, यह सोचकर उसी की सेवा करने लगे।

विश्वम्भर बड़ा सीधा, सच्चा ब्राह्मण है। विशेष पढ़ा-लिखा नही, किसी तरह पूजा कर लेता था। शक्तिपुर से तीन कोस दूर रंगनगर में राज्य की विशालाक्षी देवी है। विश्वम्भर इनका पूजक है। तीन रुपया महीना और रोज पूजा के लिए तीन पाव चावल और चार केले पाता है। घर में पाँच आदमी खाने-

वाले है । बड़े दुःख के दिन होते है । इधर बीस महीने से उसे वेतन नहीं मिलता। केवल तीन पाव चावल का सहारा रहा । कुछ और काम वह, उसकी पत्नी और बेटी, तीनो अलग-अलग कर लेते थे । फिर भी पेट-भर को न होता था । विश्वम्भर ने तनख्वाह के लिए इधर साल-भर में दो दर्जन से ज्यादा दरख्वास्तें दी थीं, पर सुनवाई नही हुई । इस बार प्राणों की भाषा में उसने अपने भाव प्रकट किये थे—हवा में लिखकर, कोंचकर बताया था, तुम्हें लिख चुका हूँ, पेट मलकर कहा था, भूखों मर रहा हूँ; मुँह थपथपाकर और ठेंगे हिलाकर बतलाया था, खाने को कुछ नही है । उतने प्रकाश में, इतनी स्पष्ट भाषा से समझाया था, पर राजा साहब ने अपमान समझा । सिपाहियो ने दूसरे अर्थ लगाये ।

जासूसों ने राजा साहब को समझाया कि शक्तिपुर के बागी विश्वम्भर से मिले है, उन्होंने उसे बेवकूफ जानकर महाराज का उससे अपमान कराया। विश्वम्भर सरकार की नौकरी का ख्याल छोड़कर बागियों से मिला है । जासूसों ने इस प्रकार अपनी रोटियों का प्रबन्ध किया ।

कुछ दिनों बाद, घाव पुरने पर स्टेट की तरफ से विश्वम्भर को आज्ञा-पत्र मिला, "अब तुम्हारी नौकरी की सरकार को आवश्यकता नहीं रही ।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 जुलाई, 1934 । पहले सखी में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

सफलता

जो हवा दिए के जलते रहने की वजह है, वह दिए को बुझा भी देती है । आभा के सस्नेह अकलुष प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने साल-भर तक जला रक्खा था, वह साल-भर से उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष की ओर तिरोहित हो गयी है । साल-भर ही मे सुहाग का काजल उस दीपक-प्रकाश के ऊपर, रतनार आँखों में प्रिय-दर्शन के अंजन-रूप नही रह गया । आभा आज की शरद् की तरह अपनी सारी रंगीनियों को धोकर शुभ्र हो रही है—श्वेत शेफाली-सी रँगे प्रभात के रश्मि-पात्र-मात्र से वृंतच्युत—जैसे केवल देवार्चन के लिए चुनी हुई । पर, प्राणों के नीचे, डण्ठल मे, जो रंग लाया हुआ है, वह तो शरद् का नही —वसन्त का है । उसी के ऊपर वसन्त के बादवाले महीनों के ये दल जैसे शरद् की आभा से शुभ्र हो रहे है । लालसा-चपल क्या कोई उस पूर्ण विकसित स्खलित शेफालिकाराशि को केसरिए सुगन्ध रंग से अपनी वसन्त की पाग रँगने के लिए वृक्ष के नीचे से चुपचाप चुन ले जायगा ? हाय, यह वह सत्य शेफालिका तो नहीं ! यह तो केवल देव-चरणों पर चढ़ने के लिए है—

माला होकर हृदय पर या रंग बनकर आँखों पर चढ़ने के लिए नहीं। तभी आभा गाँव के किनारे घुने धवल शिवालय मे देवता-पदों पर प्रत्यह पुष्प-स्वरूप अर्पित होने के लिए जाती है। उसके भीतर हृदय का दीप तो गुल हो चुका है, पर, बाहर अन्ध मन्दिर-हृदय का दीप वह जला आती है।

यशस्वी साहित्यिक नरेन्द्र ने उधर से जाते हुए, दीपक जलाकर देवता को प्रणाम करते समय कई बार आभा का दिव्य मुख और विशाल आँखों की सकरुण दृष्टि देखी। कई शुभ सान्ध्य क्षण उसे कारुण्य से ओतप्रोत कर चुके—उसके हृदय मे सहानुभूति का तैल संचित हुआ; वेदना की वर्तिका मे समाज की कुप्रथा की आग—उसके हृदय का दीप जला।

यह प्रकाश कई बार, रास्ते मे, मन्दिर की सीढियों पर, आभा के म्लान मुख पर पडा, प्रतिफलित हुआ। आभा के अन्तःपुर की रूपसी ने अन्त पुर में उसे उतने ही निकट सम्बन्ध से पहचाना, जितने दूर व्यवहार से आभा धारा से दूर हो गयी थी।

हाय रे जीवन! कितने आवर्तो से तू प्रवाहित होता है। जिन कारणों से आभा पथ्वी से छूटी थी, वे ही उसे नरेन्द्र के साथ लपेटने लगे। मन से वह नरेन्द्र की दृष्टि की तरह उसके नजदीक हो गयी। वह आज एकान्त मे नरेन्द्र से पूछना चाहती है—इस संसार-दुख से मुक्ति पाने का कौन-सा मार्ग है। वह विद्वान् होकर उसे वचित न करेगा—न, वह धोखा नहीं दे सकता—उसकी आँखें इसका विशद साक्ष्य देती हैं, फिर वह भी तो उसी की तरह विधुर है—जानता है व्यर्थ स्नेह कितना दु:खद, कितना कठोर है। होगा कि स्त्री न होने के कारण वह इतना दु.ख, इतना अपमान न पा रहा हो; पर स्त्री न होने के कारण कभी उसने कल्पना तो की होगी कि उसके न रहने पर उसकी स्त्री को क्या होगा। आभा का हृदय भर आया।

पर, आज-आज करके कई आज पार कर चुकी। नरेन्द्र आज मिला। वह सोपान-सोपान उतर रही थी, नरेन्द्र चढ़ रहा था। बहुत कुछ कहना चाहा था, पर कुछ भी कह न सकी। कितना हृदय धड़का। चुपचाप खड़ी रही। नरेन्द्र ऊपर चला गया।

नरेन्द्र बीसवी सदी का मनुष्य है। वह न कर सके, ऐसा कोई काम नही, ऐसा कुछ किया भी नहीं। वह तन के धर्म और अधर्म को पार कर दूर निकल गया है, पर मन मे धर्म से श्रद्धा और अधर्म से घृणा करता है। वह भौंरे की तरह खुली कली पर नही बैठा, पर भौंरे की तरह कलियो का यश बहुत गा चुका है, उनके चारों ओर बहुत मँडलाया। उसकी कल्पना मे आभा उतने रंग भर चुकी है जितने किरण भरती है—फूलो में, पहाड पर, बादलो में, दिशाकाश में, तरह-तरह के सुघर विचारो मे। पर आभा को वरण करने की कोई शहजोरी भी उसमे पैदा हुई, ऐसा लक्षण नही देख पड़ा। सोचा जरूर, पर उठे सिर का झुक जाना देखा और डरा।

त्यों-त्यो आभा दृढ होती गयी। उसकी धडकन जाती रही। चुपचाप स्नेह का एक लेख नरेन्द्र के स्मरण-मात्र से लगने लगा। लाज फिर भी रही। एक रोज

उसी तरह एकान्त मिला। कण्ठ की देवी कण्ठ मे निर्भय बैठी रही। शब्द जैसे आप बनकर, तुले हुए निकले, "मुझे संसार मे बड़ा दुख है।"

"दुख को देवता समझो।" नरेन्द्र ने जैसे लेख की एक पंक्ति लिखी।

आभा का सारा दुख जैसे एक साथ वाष्प बन गया—उस महाशक्ति का धड़का हुआ, "अर्थात् राक्षस को देवता मानूं?"

नरेन्द्र काँप उठा। क्यों डरा, न समझा। आभा ने फिर कहा, "केवल दुख नही सहा जाता। रोज का अपमान भार हो जाता है।"

धड़कन के बाद भाव स्पष्ट हुआ। नरेन्द्र ने सोचा, यह भागना चाहती है। कृत्रिम गले से बोला, "धैर्य रक्खो!"

एक बार आभा ने अच्छी तरह नरेन्द्र को देखा। खुलकर बोली, "आपको लोग बहुत बड़ा विद्वान् कहते हैं—पर मैं क्या समझूं, पर बड़े भी छोटों को नही समझ पाते।"

नरेन्द्र ने फिर कहा, "धैर्य रक्खो।"

सिर झुकाकर आभा ने उत्तर दिया, "अच्छा।"

आभा की इच्छा निकल जाने की न थी, न किसी विषय-वासना से वह खिंची थी। नरेन्द्र की तरफ उसके भाव ने उसे खींचा, और स्त्रियों की अवहेलना, अवज्ञा, जीती हुई एक प्रतिमा को मृत प्रेम से भी भयंकर—इतर पशु से भी तुच्छ समझनेवाली धारणा और व्यवहार ने उसे धकेला था। वह विद्वान् आचार्य से शिष्या की तरह मुक्ति की शिक्षा लेने गयी थी, बस। हृदय मे जो भाव नरेन्द्र की प्रीतिवाले, कुछ काल के लिए उसे एक आवेश में भुला रखते थे, वे इतने पूर्ण थे कि उनसे अधिक की कामना वह कहकर नही कर सकती थी, करना सीखा भी न था। मुक्ति का पथ परिष्कृत होने पर वह हृदय की तुला पर तोलकर अवश्य देखती कि वह कितना प्रशस्त और कितना पवित्र है, तब आगे पैर बढ़ाती, तो बढाती। यदि विद्वान् की बतलायी राह मे उसे वैसा ही लांछन और अपमान देख पड़ता, जैसा वह घर मे देख रही थी, तो घर और वाहर, दोनो के रास्तो को पार कर जाने का गौरव प्राप्त करती। विद्वान् नरेन्द्र— सहृदय नरेन्द्र की 'धैर्य रक्खो' यह उक्ति उस दुख के प्रवाह में हृदय से लगा रखने के लिए एक उतराती कुछ भार सँभालनेवाली लकड़ी हुई। धैर्य रखकर भविष्य मे सत्य-निर्देश पाने की कल्पना लिये वह घर जाकर चुपचाप पहले के अपमान सहने लगी।

इधर नरेन्द्र ने सोचा, वह उसके साथ निकल जाने को एक पर से तैयार थी। नरेन्द्र को बड़ी घृणा हुई। कुछ आत्मप्रसाद भी हुआ कि उसकी धैर्य रखने की सलाह उसे मंजूर हुई। नरेन्द्र गाँव मे रह रहा था, अधिक दिनो तक रहने की गुंजाइश न थी; कारण, वृत्ति लिखायी थी, जो घर बैठे मनिआर्डर द्वारा काम आती थी; शहर मे रहकर आर्डर पूरे करने पड़ते थे; तब पेट-भर को कही होता। पेट भी दो-चार नही, सिर्फ एक। नरेन्द्र को इस दुर्दशा की चिन्ता न थी। कारण, वह साहित्य का सुधार कर रहा था। आदर्शवाद को साहित्य मे दर्शाकर तब वह दम लेता था—उसके लेख और पुस्तकें प्रमाण हैं। बीसवीं सदी की समस्त

विचारधाराएँ उसकी धरा से बह चुकी थी, पर जो कुछ उसने धारण किया था, वह था मनुष्य-धर्म, जिसे अँगरेजी मे 'Religion of man' नये रक्तपात से, जोर देकर कहते है। इसमे भूत, वर्तमान और भविष्य के सब धर्म वह धर देता था।

अस्तु, नरेन्द्र घर से कलकत्ते के लिए रवाना हुआ। रास्ते मे कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी, पटना, गया होता गया। मित्रों से और प्रकाशको ने मिलकर साहित्य तथा बाजार के हाव-भाव समझता रहा। 'आरती' के प्रकाशक ने कहा, "हमारे यहाँ 8) फार्म से अधिक मौलिक पुस्तक के लिए देने का नियम नहीं, रुपया पुस्तक प्रकाशित होने के तीन महीने बाद से दिया जाना शुरू होता है।" सम्पादक ने कहा, "हम कोई लेख बिना पुरस्कार का नही छापते, अवश्य नये लेखको को 2) रुपये ही प्रति लेख देने का नियम है, पर आपको हम 1।।) पृष्ठ देगे।" फिर बड़ी सहृदयता से बोले, "इससे अधिक 'आरती' दे नही सकती।" सम्पादक को लेख देने का वादा कर प्रकाशक से नरेन्द्र ने कहा, "आप लोग पुस्तकें बेचने के विचार से 50 और 60 प्रतिशत कमीशन बेचनेवाले को देते है—यह आपकी साहित्य-सेवा नहीं, अर्थ-सेवा हुई। यदि लेखकों को अधिक देने लगें, तो किताबें अच्छी-अच्छी लिखी जायें, और साहित्य का उद्धार भी हो।" प्रकाशक ने आँखें मूँदकर कहा, "साहित्य का उद्धार हम आपसे ज्यादा समझते है।" इस प्रकार अड़ता-छूटता नरेन्द्र कलकत्ता गया। वहाँ बीसवी सदी-पुस्तक-एजेंसी में 6) फार्म का बगला के रद्दी उपन्यासों के अनुवाद का काम मिला। कुछ करना ही था। काम लेकर, एक रोज निश्चित होकर जॉन बाजार-लाइब्रेरी मे बैठा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ देख रहा था। अँगरेजी, बंगला, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, मराठी सभी भाषाओं मे एक विशेष आदर-भाव देखा—सिनेमा स्टारो के सभी स्टोर हो रहे थे। देख-भालकर नरेन्द्र डेरे पर लौटा।

बीसवी सदी पुस्तक एजेंसी का अनुवाद शुरू तो किया, पर हाथ बन्द हो गया। बार-बार आँखो के सामने सिनेमा के सितारे चमकने लगे। साथ मन सोचने लगा—'यह अनुवाद का काम भी क्यो? इससे किस आदर्श की पुष्टि होती है? अर्थ मुझे भी तो चाहिए। बडा अर्थ अगर लोग नही लेते, तो जो लोग लेते है, उसे ही बढ़ाओ।' साथ-साथ, जो सफल हुए थे, सामने आने लगे। फिर दीन हिन्दी के लेखको की सूरत आयी। उसका मित्र स्नेहशरण एक सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक है, पर कदाचित् सबसे बडा दरिद्र और उपेक्षित। उसका भाव, जो अब तक उसे बड़ा बनाये हुए, दिन-रात उसे छोटा करता जा रहा था, सामने आया। देखकर उसे बड़ी घृणा हुई। कितने प्रकाशक उसका अपमान कर चुके है, कोई-कोई आफिस से भी निकाल चुके है, पर बराबर वह अपने नाम को मरता रहा, जो वास्तव में अपमान था। उसे नामी कहकर, कहाकर किसी शाप ने उसे ऊँचे शासन से गिरने का धोखा दिया है। जो नाम स्वरूप श्रेष्ठ वैभव का भोक्ता हो, वह कौड़ी-कौड़ी का मोहताज भी रहे, ऐसा हो नही सकता; छोटे वैभव उसके पास जरूर होगे, या वह चाहता न होगा। याद आया, छोटे वैभवों की उसने पर-वाह कब की; इसलिए छोटो ने उसे बराबर धोखा दिया—नीचा दिखाया और

अन्त में आज यह प्रमाण भी दे रहे हैं कि वे छोटे उससे कितने बड़े हैं—उनके बिना उसका जीवन कितना अधूरा, कितना छोटा है !

नरेन्द्र ने अनुवाद बन्द कर दिया। सोचने लगा, किस प्रकार छोटा होकर वह बड़ा होगा। उसी क्षण आँखों के सामने यह सोलह सालवाली साक्षात् आभा अपने पूर्ण यौवन मे उभरी स्वर्ग की अप्सरा-सी झलमलाने लगी। वह मधुर ध्वनि याद आयी। वह 'अच्छा' प्राणो मे घुलकर अमृत बन गया।

तरंग के तृण की तरह अब नरेन्द्र अपने सोचे हुए विचारों मे नही बह रहा—एक दूसरी विचारधारा उसे बहाये लिये जा रही है। जो सचाई आज तक दूसरों को रास्ता बताने मे लगी थी, उसने आज अपना रास्ता पहचाना। एकाएक नरेन्द्र जैसे रात के शुभादर्श स्वप्न से जगकर दिन के प्रकाश में आया, जहाँ सबकुछ खुला हुआ है।

बक्स खोलकर रुपये गिने—लौटने का खर्च था।

गाँव में खबर उड़ी—नरेन्द्र बाबू ने आवारगी पर कमर कस ली—बाप-दादे का नाम मिटा दिया। घर-द्वार, जर-जमीन, जो कुछ था, बेच डाला—पाप कही छिपता है ? अब वह चेहरा ही नही रहा। आभा ने भी सुना। आँखों में गुनकर चुप हो गयी।

शाम को समय पर, नरेन्द्र मन्दिर में गया। जैसे ही दीपक जला, वैसे ही मुख प्रकाश मे ज्योतित हुआ। उतरने के वक्त उसी तरह चढ़ता हुआ मिला, आभा उसी तरह खड़ी हो गयी।

"आभा, मैंने रास्ता ठीक कर लिया है।" यह आचार्य का कण्ठ न था, एक घनिष्ठ मित्र का था, जिसकी ध्वनि प्राणो में बहुत निकट पहुँचती है।

आभा ने सुना, और तोलकर देखा, यह स्वर वहीं पहुँचा है, जहाँ कभी आँखों की सहानुभूति से स्नेह पहुँचा था। इसमें उपदेश की गुरुता नही, मनुष्य के प्रति मनुष्य का समभाव है। वीणा स्वर से झंकृत हुआ, "क्या है वह रास्ता ?"

"तुम्हारे और मेरे जीवन से बँधकर बिल्कुल एक नया, जिससे आगे और लोग आयँगे, मनुष्य के लिए मनुष्य होने को।"

आभा ने नरेन्द्र को देखा, फिर निगाह फेरकर दीपक-प्रकाश में श्वेत शिव को देखने लगी। प्राणो मे कैसी गुदगुदी हुई। बोली, "आप मुझे भगाना चाहते हैं ?"

"नही।" नरेन्द्र का कण्ठ बिल्कुल स्थिर था।

आभा ने फिर नरेन्द्र को देखा, "गाँववाले आपको आवारा कहते है।" कण्ठ में सहानुभूति बज उठी।

"यह भ्रम गाँववालों को बराबर रहेगा।" नरेन्द्र की आँखो से बिजली निकल रही थी।

"मेरे लिए आपकी जैसी आज्ञा हो—"

"हाँ, मैं तुम्हे वही अधिकार लेने के लिए कहता हूँ, जो तुमसे छिन चुका है।"

अज्ञात आँखो से आभा ने देखा।

"जिस दुनिया ने तुम्हें छोटी, अधम, भाग्य से रहित कहा, क्या उसे तुम नहीं समझाना चाहती कि तुम बहुत बड़ी—बहुत बड़ी, भाग्य से भरी हुई हो।"

"ऐसा तो अब क्या होगा ?"

"होगा आभा। वही रास्ता देखकर मैं आ रहा हूँ। विश्वास करो, और आज से दुनिया को ठोकर मार दो—इसे जो जितनी ठोकरें लगा सका, इसकी आँखों में वह उतना ही बड़ा हुआ—उतना ही इसने उसके पैर पकड़े।"

ध्वनि जैसी होती है, प्रतिध्वनि भी वैसी ही होती है। आभा इस सम्पूर्ण शक्ति को भरकर एक दूसरे रूप में बदल गयी। तन्मय खड़ी सुनती रही—

"यह संसार तुम्हारे लिए जैसा था, मेरे लिए भी वैसा ही था। तुम दुख को समझती थी, मैं न समझ पाता था या समझकर भी न समझता था। अब हमें इस संसार को वैसे ही दुख के भीतर से उचित शिक्षा देनी है।"

आभा की आँखें, हृदय, वह सम्पूर्ण निश्चलता कह रही थी—'यह ठीक कह रहे हैं।'

नरेन्द्र ने आभा को देखा, फिर देखा—वह निगाह बदल चुकी थी, जो झुकती है। यह वह निगाह है, जो धूप की तरह लोगों को उठाती हुई उठ जाती है—फिर पृथ्वी पर नहीं झुकती। आभा हृदय से इतना कभी नहीं उठी।

'यह', नरेन्द्र ने मन में कहा—'यह आभा है।' खुलकर बोला, "आभा, चलो; मेरे घर में बहुत दिनों से अँधेरा है; उसमें प्रकाश भर दो। मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जायदाद बेची है।"

होश में आते ही हृदय हिल उठा। आँखों में शंका आयी, "आपको लोग क्या कहेंगे ?"

"मुझे कुछ नहीं कह सकते; अब अपनी-अपनी किस्मत को रोयेंगे, जिसे किसी तरह वे फूटा नहीं समझ पाये—थाने जायेंगे, दारोगा के आगे-पीछे दुम हिलायेंगे—कुत्तों की तरह भोंकेंगे, पर कुछ कर नहीं सकते। सामने आकर काटना देशी कुत्ते जानते नहीं। मैं मुँह पर विलायती ठोकरें लगाना सीख चुका हूँ, तुम्हें भी सिखाना चाहता हूँ। आओ—"

नरेन्द्र आगे-आगे था; इस दृढ़ता को सर्वस्व सौंपकर आभा पीछे-पीछे चली। बारहदरी की बगल में तीन आदमी खड़े थे, इनके आने से ये पहले ही चल दिये। नरेन्द्र ने देखा, पर उपेक्षा में भरकर रह गया। आभा ने देखा, मन में कहा—'ये वे ही हैं, जिन्हें रोज देखती और रोज समझती थी।'

द्वार खोलकर, दीपक जलाकर नरेन्द्र ने कहा, "आभा, अभी हमें कुछ रोज यहाँ रहना होगा। गाँववालों को बता जाना है कि हम भागनेवाले नहीं थे—तुम्हें, भगानेवाला रास्ता बतलानेवाले थे।"

आभा प्रकाश में मुस्कुरा दी।

दूसरे दिन से कई दिनों तक लगातार नरेन्द्र को देख-देखकर गाँववालों ने घृणा से अपना ही सिर झुका-झुका लिया, और घर-घर राय कायम हो गयी कि आभा के बाप की नाक कट गयी। कीच पर ढेले चलाने से छींटे अपने ऊपर आयेंगे, यह

समझाकर वयोवृद्धों ने आभा के घरवालों को थाने जाने से रोका।

इस तरह की अनेक अड़चनों को आसानी से पार कर नरेन्द्र आभा को लेकर साल-भर से दिल्ली मे है। आने के साथ ही, अपनी और आभा की एक साथ उतरवायी तस्वीर, व्याह के सूक्ष्म स्वतन्त्र व्यौरे से मासिक तथा साप्ताहिकों के सम्पादको के पास भेज दी। 'भारत' तथा स्त्री-जाति के उद्धार कल्प से सम्पादकों की लिखी ओजस्विनी टिप्पणियो के साथ दोनों का सुन्दर चित्र प्रकाशित हुआ। छोटे-छोटे पत्रवालों ने ब्लाक मँगा-मँगाकर और ऊँची आवाज लगायी। आभा तस्वीरें देख-देख, तारीफ पढ़-पढ़कर मुस्कुराती रही।

घर पर उस्तादो को बुलाकर नरेन्द्र आभा को नृत्य-गीत की शिक्षा दिलवाने लगा—इसको भी एक साल हो चुका। अक्षर-विज्ञान का खुद शिक्षक बना। साल-भर मे आभा अच्छी तरह हिन्दी और उर्दू समझ लेने लगी है। बुद्धि मे इतनी बढ़ गयी है, जैसे कई साल से तालीम पा रही हो। जैसा सुरीला, कोमल गला उसका था, स्टेज पर उतारने पर दर्शक ताँगेवालों और प्रशंसक पत्रवालों में उसके उतर जाने की नरेन्द्र को शंका न हुई।

आभा का बड़े-बडे चित्रों, पोस्टरों, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों मे बड़ा विज्ञापन हुआ। 'लीडर' में विज्ञापन के दाम अग्रिम भेजकर नरेन्द्र ने सम्पादकीय कालम में तारीफ छापने का अनुरोध किया। लोगो की तो आज भी बँधी धारणा है कि आँखें मूँदने पर ज्यादा देख पडता है। फलतः सम्पादक के कलम ने कालम-के-कालम रँग डाले। आभा उतरी भी। और, दर्शकों का क्या कहना, सहृदय तारीफ के बोझ से औंधे हो गये। स्त्रियों की पत्रिका 'पतिव्रता' ने लिखा, 'हमारी देवियो को इस. बढ़कर दूसरा आदर्श नही मिल सकता कि पति और पत्नी सम्मिलित रूप से कला की सेवा मे लगें।' साहित्यिक पत्रों ने लिखा, 'नरेन्द्रजी प्रतिभाशाली तो पहले से थे, परन्तु अब वह विशेष रूप से राष्ट्र-भाषा को समुन्नत कर रहे हैं। दिल्ली में उनका अर्धनारीश्वर नाटक बड़ी सफलता से खेला गया, जिसमें पति-पत्नी दोनों उतरे।' यह पिछडे हुए हिन्दीवालों को पढ़ने की उचित शिक्षा इस धन्यवादार्ह दम्पति ने दी। तीन साल मे आभा और नरेन्द्र का भारत के कोने-कोने मे नाम और बङ्क-बङ्क में रुपया हो गया। नरेन्द्र ने एक आश्वासन की साँस ली।

अपना 'सुभद्रार्जुन' नया नाटक शहर-शहर चलकर दिखाने के अभिप्राय से नरेन्द्र ने प्रोग्राम बनाना और विज्ञापन करना शुरू किया। कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी आदि शहरों से क्रमशः कलकत्ते तक का निश्चय हुआ। केवल काशी के लिए ज़रा सन्देह रहा। स्टेज के मालिक ने किराये पर स्टेज न देकर कमीशन पर देने की बात लिखी।

कम्पनी चली, साथ-साथ पत्रों में सुभद्रा की भूमिका में आभादेवी की आभा-सी तारीफ! प्रोग्राम बदल देना पड़ा। निश्चित दिनों से अधिक दिन लोगों को तृप्त करने में लगते रहे। सरकारी अफसर चलने मे सबसे पहले बाधक होते थे। पत्रों की विपुल प्रशंसा और नागरिको की ऊर्ध्व-कण्ठ प्रतीक्षा को लिये कम्पनी काशी आयी।

'आरती' के प्रकाशक ने पुस्तको की वदौलत आज के सिनेमा-साहित्य के उद्धार के विचार से अपनी एक रगशाला वनवायी है, जिसका नाम भारतीय भावों से, काशी के एक कलाकार से सलाह लेकर 'पवित्रा' रक्खा है। इस स्टेज मे नाटक भी खेला जाता है। इन्ही से नरेन्द्र की शर्तें तय न हुई थी।

कम्पनी के काशी पहुँचने पर 'पवित्रा' के मालिक स्वयं नरेन्द्र से मिले। पुरानी पहचान थी ही। वडा सम्मान-प्रदर्शन किया। नरेन्द्र ने कहा, "आपसे भाड़े का स्टेज नही मिला, अतः लाचार होकर मुझे दूसरा प्रवन्ध करना पड़ेगा।" नम्र भाव से मुस्कुराते हुए 'पवित्रा' के मालिक ने कहा, "पवित्रा आप ही की है। आप कुछ भी न दें।"

नरेन्द्र ने कहा, "नही, ऐसी तो कोई वात है नही, आप अगर लेना चाहे।"

वैसा ही नम्र उत्तर आया, "पचास नही, तो चालीस सैकड़ा तो दीजिए।"

नरेन्द्र ने भौहें सिकोड़ ली। कहा, "हमारे चालीस सैकडे के मानी हैं, भाड़े के अलावा आपको सात-आठ सौ रुपये रोज मिलेंगे। अगर यही है, तो पन्द्रह सैकड़ा ले लीजिए।"

"पन्द्रह सैकड़ा।"

नरेन्द्र अट्टहास हँसा। संयत होकर कहा, "वावू धनीरामजी, मैं 6 महीने में एक किताव लिखता था, पर उसके लिए आपने मुझे 15 सैकड़ा भी नही दिया!"

एक दिन, वाहर की पृथ्वी में प्रकाश की तरह प्रसिद्ध हो चुकने पर, आभा ने नरेन्द्र के पास एकान्त मे वैठकर हाथ में हाथ लेते हुए कहा, "नरेन्द्र, तुम वुरा तो न मानोगे, मैं देखती हूँ, दुःख वहुत थे जरूर; पर मन्दिर का वह दीप जलानेवाला जीवन मुझे वड़ा सुखमय लग रहा है।"

['सुधा', मासिक, लखनऊ, अक्तूवर, 1934। पहले सखी में, फिर चतुरी चमार मे सकलित]

भक्त और भगवान्

भक्त साधारण पिता का पुत्र था। सारा सांसारिक ताप पिता के पेड़ पर था, उस पर छाँह। इसी तरह दिन पार हो रहे थे। उसी छाँह के छिद्रों से रश्मियो के रंग, हवा से फूलों की रेणु-मिश्रित गन्ध, जगह-जगह ज्योतिर्मय जल में नहाई भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखता रहता था। स्वभावतः जगत् के करण-कारण भगवान् पर उसकी भावना वँध गयी।

पिता राजा के यहाँ साधारण नौकर थे। उसे इसका ज्ञान रहने पर भी न था।

लिखने के अनुसार उसकी उम्र का उल्लेख हो जाता है। इस समय एक घटना हुई। गाँव के किनारे, कुएँ पर एक युवती पानी भर रही थी। पकरिए के पेड़ के नीचे एक बाबा तन्मय गा रहे थे—'कौन पुरुष की नार झमाझम पानी भरे ?' युवती घड़ा खींचती दाहिनी ओर के दाँतों से घूँघटका छोर पकड़े, बायें झुकी आँखों में मुस्कुरा रही थी। तरुण भक्त की ओर मुँह था। बाबाजी की ओर दाहने अंगों से पर्दा।

भक्त का विद्यार्थी-जीवन था। उसने पढ़ा। विस्मित हो गया। देवी को मन में प्रणाम कर आगे बढ़ा। गाँव की गली में साधारण किसानों की भजन-मण्डली जमी थी। खँझड़ी पर लोग समस्वर से गा रहे थे—

'कहत कोउ परदेशी की बात—
कहत कोउ परदेशी की बात !
वइ तरु-लता, वइ द्रुम-खंजन,
वइ करील, वइ पात !
जब ते बिछुरे स्याम साँवरे,
ना कोउ आवत जात !'

तरुण युवक खडा हो गया। अच्छा लगा। एक पेड़ की जड़ पर बैठकर एक-चित्त सुनता रहा। कितने भाव प्राणों मे जगकर उथल-पुथल मचाने लगे—'यह परदेशी की बात कौन कहता है ? क्या कहता है ? तरु-लता-द्रुम-खंजन आदि वही सब अब भी हैं, पर श्याम बिछुड़ गये है, इसलिए तो वह सब सूना हो रहा है ? वहाँ कोई नही आता-जाता।—यह परदेशी की कैसी बात है ?' कितने विचार बह गये। वह सुनता रहा—अज्ञात भी कितना कह गये। फिर सब भूल गया। एक होश रहा—यह परदेशी कौन है—क्या कहा—यह साँवरे श्याम कैसे बिछुड़े ? —फिर भी परदेशी की बात कहने मे इनका अस्तित्व है।

चुपचाप उठकर वह चला गया। गाँव से बाहर एकान्त में, एक रास्ते के किनारे, चढ़ी मालती के बड़े पीपल के नीचे बँधे पक्के चबूतरे पर महावीरजी की सुन्दर मूर्ति स्थापित थी, वही जाकर बैठ गया। विशद विचार का नशा था ही। लडी आप फैल चली। तुलसीदास की याद आयी। महावीरजी, तुलसीदासजी और श्रीरामायण से हिन्दी-भाषी पठित हिन्दू-मात्र का जीवन-सम्बन्ध है। मन सोचने लगा। तुलसीदास की सिद्धि के कारण महावीरजी है। सामने सिन्दूर की सजी सुन्दर मूर्ति पर सूर्य की किरणें पड़ रही थी। देखकर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। अर्थ कुछ नही समझा। पर उस पत्थर की मूर्ति पर प्राण मुग्ध हो गये। यह एक संस्कार था—एक मूर्ख सस्कार, जिसे ब्रह्मभाव के लोग आज कुसंस्कार कहते हैं, वृहत्तर के निर्माण के लिए प्रयत्नपर हैं।

'खसी माल मूरति मुसकानी' वह नही समझा; पर खसी मालवाली—बिना माला की मूर्ति मुस्कुरायी। उसने केवल देखा—सामने एक पुराने कलमी आम के पेड पर नयी जंगली बेले की लता पूरी फूली हवा मे हिल रही है। तरुण भक्त की इच्छा हुई, माला गूँथकर महावीरजी को पहनायें। सामने केले लगे थे। एक पत्ता बीच से तोड़कर पैनी लकड़ी से काट लिया और पेड पर चढ़कर, उसी के बनाये दोनों मे फूल तोड़-तोड़कर रखने लगा। फिर गुर्च-जैसी एक लता की पतली लड़ी

तोडकर, उसी चबूतरे पर बैठकर माला गूँथने लगा। पूरी होने पर महावीर को पहनाकर देखा। कोई हँस दिया—वह नही समझा। प्रणाम कर चला गया।

वह विवाहित था। घर आया। सिन्दूर का सुहाग धारण किये नवीन पत्नी खडी थी, आँखो में राज्य-श्री उतरकर अभिनन्दन कर रही थी—वह मुस्कुरायी; पर वह फिर भी नही समझा।

भक्त की ऋतुएँ बहुत धीरे-धीरे वेश बदलती हुई चलती है। पर इतनी सुन्दर हैं, इतनी कोमल और इतनी मनोरम कि वहाँ प्रखरता का कोई भी निर्झर-स्वर नही, जो शैलोच्च प्रकृति से उतरता हुआ हरहराता हो, वहाँ केवल मर्मरोज्ज्वल तरग भंग है।

भक्त का नाम निरंजन था। सम्पत्ति के सम्बन्ध मे भी वह निरंजना था। केवल भक्ति थी। भक्ति बुद्धि नही, पर पूजा चाहती है। पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने की विधि वह नही बताती, विधि आप विधान देते हैं।

भक्त ने देखा, राजा का सरोवर सरोरुहों से पूर्ण है। नील जलराशि पर हरे पत्र, उनके बीच वृन्त उठे, उन पर डोलते हुए कमल, उन पर काँपती हुई किरणें। भक्त ने देखा—ये श्वेत-कमल श्वेत होकर भी कैसी अंजलि बाँधे हुए है; इच्छा हुई, इन्हे महावीर पर चढ़ावें। लाँग मारकर पानी में कूद पड़ा। जल 'छल-छल' करता छलकता हुआ, तरंगो से वर्तित हो चला। वह तैरने लगा। नाल और नालों के काँटे रोकने लगे—लिपटकर, छिदकर, खरोंचते रहे; पर उसे केवल महावीर-जी, पूजा और कमलों का ध्यान था—तैरता-तोडता, तट-जल पर फेंकता रहा। फिर निकलकर उठा लिये। चबूतरे पर जाकर भक्ति-भाव मे सजाने लगा। मूर्ति वीर-मूर्ति न थी। हाथ जोडे हुए थी। दोनो बगलो मे, कन्धे के बीच कानों के नीचे, पैरोंके नीचे, पैरो से लेकर ऊपर तक मूर्ति को श्वेत-कमलो से सुवासित कर दिया। सिर के लिए एक सनाल कमल की गुडरी बनायी। पहनाने लगा, आगे भार अधिक होने के कारण अर्द्धविकच कमल गिरने लगा—सँभालकर, दबाकर पहना दिया। देर तक तृप्ति की दृष्टि से देखता रहा, जैसे कमल उसी के हो, इस सारी शोभा पर उसी की दृष्टि का पूरा अधिकार हो।

घर आकर बडी प्रसन्नता से रात के भोजन के बाद सोया। मस्तिष्क स्निग्ध था। बात-की-बात नींद आ गयी। रात पिछले पहर की थी। स्वप्न देखने लगा। इसे आजकल के लोग संस्कार कहेंगे। पर इसकी पूरी व्याख्या करते नही पढ़ा गया। देखा, महावीरजी की वही भक्तिमूर्ति सामने मुस्कुराती हुई खड़ी है। कह रही है—'बन्धु, तुमने अपनी पूजा का स्वार्थ देखा, पर मेरे लिए कुछ भी विचार नही किया। कमल-नाल की गुडरी इतनी जोर से तुमने गड़ायी कि उसके काँटे मेरे रस में छिद गये है, दर्द हो रहा है।' भक्त वज्रांग की वाणी सुनकर चकित था, साथ आनन्द में मत्त कि वज्रांग इतने कोमल हैं।

वह मूर्ति धीरे-धीरे अदृश्य हो चली। साथ भक्त की पत्नी अँधेरे के प्रकाश में उठती हुई सामने आयी। सिर पर सिन्दूर चमक रहा था। महावीरजी अदृश्य होते हुए बदल गये—'इनके मस्तक पर क्या है ?' भक्त को ताज्जुब मे देखकर पत्नी

बोली, "प्रिय, महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ।" स्वप्न में भक्त ने पूछा, "मैं नही समझा—अर्थ क्या है ?" बड़ी रहस्यमयी मुस्कान आँखो में दिखायी दी। "उठो" पत्नी ने कहा, "अर्थ सब मैं हूँ—मुझे समझो।" भक्त की आँखें खुल गयीं। जगकर देखा, पत्नी घोर निद्रा मे सो रही है। उसका दाहना हाथ उसके हृदय पर रक्खा है, जैसे उसके हृदय के यन्त्र को स्वप्न के स्वरों में उसी ने बजाया हो। खिड़की से ऊपा का अन्धकार पार करनेवाली तैरती छवि, दूर जगत की मधुर ध्वनि की तरह, अस्पष्ट भी स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। भक्त ने उठकर बाहर जाना चाहा। धीरे-से, हृदय से प्रिया का हाथ उठाकर चूमा; फिर सघन जाँघ पर सहारे से प्रलम्ब कर एक बार मुँह देखा—खुले, प्रसन्न, दिव्य, भाल पर अन्धकार वालों को चीरनेवाली माँग मे वैसा ही शोभन सिन्दूर दीपक-प्रकाश मे जाग्रत था। कमल आँखें मुँदी हुई। कपाल, भौंह, गाल, नाक, चिबुक आदि के कितने सुन्दर कमल सोहाग सिन्दूर पर चढ़े हुए है। देखकर चुपचाप उठकर बाहर चला गया।

भक्त की भावना बढ़ चली। प्राणों मे प्रेम पैदा हो गया। यह बहुत दूर का आया प्रेम है; यह वह न जानता था। क्योकि वह जाग्रत लोक मे ज्यादा बँधा था। उसकी मुक्ति जाग्रत की मुक्ति थी। खाने-पीने रहने-सहने की मामूली बातो से निवृत्त हो, इतना ही समझता था। स्वप्न के बाद तमाम दिन एक प्रसन्नता का प्रवाह बहा—पहले-पहल जवानी मे व्याह होने पर जैसा होता है।

आज फिर अच्छी पूजा की इच्छा हुई। सरोवर के किनारे से दूसरो की आँख बचाकर ऊँची चारदीवार की बगल-बगल जाने लगा। बारहदरी के पिछवाड़े, एक दूसरे सरोवर के किनारे, गुलाब-बाग था। दाहने आमो की श्रेणी। बीच से बड़ा रास्ता। राहियों की नजर से ओझल पड़ता था। चुपचाप, केले का एक वैसा ही आधार लिये बाग मे पैठा। बसरा, विलायत, फ्रांस आदि देशों के तरह-तरह के, घने और हल्के लाल, गुलाबी, पीले गुलाब हिल रहे थे, जैसे हाथ जोड़े आकाश की स्तुति कर रहे हो—'खेसंभवं शंकरम्—खेसंभवं शंकरम्', मौन वीणा बजा रही हो सुगन्ध की झंकारें दिशाओं को आमोद-मुग्ध करती हुई।

क्षण भर शोभा देखकर गुलाब तोड़ने लगा। ध्यान महावीरजी की ओर बह रहा था। साक्षात् भक्ति जैसे वीर की सेवा में रत हो।

लौटकर आज लाल को लाल करने चला। सिन्दूर पर गुलाब की शोभा चढ़ी। सुन्दर सब समय सुन्दर है। सजाकर देर तक देखता रहा। यही पूजा थी।

घर आया। पत्नी ने नयी साडी पहनी थी, गुलाबी। देखकर भक्त हँसा। रात का स्वप्न मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा। कहा, "तुम मन की बात समझती हो।"

सहज सरलता से पत्नी ने कहा, "तुम जैसा पसन्द करते हो, मैं वैसा करती हूँ।"

भक्त की इच्छा हुई रात की बात कहे; पर किसी ने रोक दिया। सिर झुकाने लगा—न झुकाया। पत्नी सिर झुकाये मुस्कुरा रही थी। मस्तक का सिन्दूर चमक रहा था। देखकर भक्त चुप हो गया।

उसकी पत्नी का नाम सरस्वती था। पति को चुप देखकर बोली, "मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गयी हूँ।" यह छल भक्त को हँसाने के लिए था, पर भक्त ने सोचा, यह मुझे समझना है कि तुम विष्णु हो। वह और गम्भीर हो गया। मन में सोचा, यह सब समझती है।

कुछ दिनों बाद एक आवर्त आया। भक्त के घरवाले ईश्वर के घर चले गये। धैर्य से उसने यह प्रहार सहा। पहले उसकी पत्नी मरी थी। घर बिल्कुल सूना हो गया।

एक दिन पड़ोस की एक भाभी मिली। कहने लगी, "भैया, ऐसी देवी तुम्हें दूसरी नहीं मिल सकती, चाहे तुम दुनिया देख डालो। उसने दो साल पहले मुझसे कहा था, 'दीदी, मैं दो साल और हूँ।' " भक्त दंग हो रहा। पहले के उसके भी संस्कार उग-उगकर पल्लवित हो चले। वह नहीं समझा कि एक अपनी जन्म-पत्रिका पढ़ते हुए पत्नी ने उससे कहा था कि दो साल बाद दारा और बन्धुओं से वियोग होगा, लिखा है; इसे उसकी पत्नी प्रमाण की तरह ग्रहण किये हुए थी, और इसी के आधार पर दीदी से भविष्यवाणी की थी।

पत्नी की समझ को उसी से सिन्दूर की तरह सिर पर धारण कर वह महावीरजी की सेवा में लीन हुआ। अब रामायण भी उन्हें पढ़कर सुनाया करता था। रामायण के ऊँचे गूढ़ अर्थ अभी मस्तिष्क में विकास प्राप्त नहीं कर सके। पत्नी के बाद पिता तथा अन्य बन्धुओं का भी वियोग हुआ था। राजा ने दया करके एक साधारण नौकरी उसे दी।

उन्हीं दिनों श्रीपरमहंस देव के शिष्य स्वामी प्रेमानन्दजी को राजा के दीवान अपने यहाँ ले गये। राजा की परमहंसदेव के शिष्यों पर विशेष श्रद्धा न थी। वह समझते थे, साधु महात्मा वह है ही नहीं, जिसके तीन हाथ की जटा, चिमटा न हो, चिलम भी होनी चाहिए और धूनी भी, तभी राजा भक्तिपूर्वक गाँजा पिलाने को राजी होते। परन्तु राजा के पढ़े-लिखे नौकर पुराने महात्माओं को जगा घोंघा समझते थे, राजा को उससे बढ़कर गाजा।

स्वामी प्रेमानन्दजी का बड़े समारोह से स्वागत हुआ। भक्त भी था। दीवान साहब भक्त की दीनता से बड़े प्रसन्न थे। भक्त ने स्वामीजी की माला तथा परमहंसदेव की पूजा के लिए खूब फूल चुने। स्वामीजी मालाओं में भर गये। हँसकर बोले—'तोरा आमा के काला करे दिली।' (तुम लोगों ने मुझे काली बना दिया।)

भक्त नहीं समझा कि उस दिन उसके सभी धर्मों का वहाँ समाहार हो गया—ब्रह्मचारी महावीर, उनके राम, देवी और समस्त देव-दर्शन उन जीवित संन्यासी में समाकृत हो गये।

बड़ी भक्ति से परमहंसदेव का पूजन हुआ। दीवान साहब कबीर साहब का बंगला-अनुवाद स्वामीजी को सुना रहे थे, राज्य के अच्छे-अच्छे कई अफसर एकत्र थे, भक्त तुलसीकृत रामायण सुनाने को ले गया और स्वामीजी की आज्ञा पा पढ़ने लगा। स्थल वह था, जहाँ सुतीक्ष्ण रामजी से मिले हैं, फिर अपने गुरु के पास

उन्हें ले गये है। स्वामीजी ध्यानमग्न बैठे सुनते रहे। "श्यामतामरस-दाम-शरीरम्; जटा-मुकुट-परिधन-मुनि-चीरम्।" आदि साहित्य-महारथ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की शब्द-स्वर-गंगा वह रही थी, लोग तन्मय मज्जित थे। स्वामीजी के भाव का पता न था। भक्त कुछ थक गया था। पूर्ण-विरामवाला दोहा आया, स्वामीजी ने बन्द कर देने के लिए कहा।

फिर तरह-तरह के धार्मिक उपदेश होने लगे। स्वामीजी ने दीवान साहब से हर एकादशी महावीर-पूजन और रामनाम-संकीर्तन करने के लिए कहा।

भक्त को नौकरी नही अच्छी लगती थी। मन पूजा के सौन्दर्य-निरीक्षण की ओर रहता था। तहसील-वसूल, जमा-खर्च, खत-किताव, अदालत-मुकद्दमा आदि राज्य के कार्य प्रतिक्षण सर्प-दंशवत् तीक्ष्ण ज्वालामय हो रहे थे, हर चोट महावीरजी की याद दिलाने लगी। मन मे घृणा भी हो गयी, राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजा का रक्त-शोषण ही उसका धर्म है।

उसने नौकरी छोडने का निश्चय कर लिया। उस रोज शाम को महावीरजी को प्रणाम करके चिन्तायुक्त घर लौटा। घर में दूसरा कोई न था, भोजन स्वयं पकाता था। खा-पीकर सोचता हुआ सो रहा।

समय समझकर महावीरजी फिर आये। उसने आज महावीरजी की वीरमूर्ति देखी। मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा; पर यह भारत न था—साक्षात् महावीर थे, पंजाव की ओर मुँह, दाहने हाथ में गदा—मौन शब्द-शास्त्र, वंगाल के ऊपर दायें वायें पर हिमालय-पर्वत की श्रेणी, वगल के नीचे वंगोपसागर, एक घुटना वीर-वेश-सूचक—टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलम्व—अँगूठा कुमारी-अन्तरीप, नीचे राक्षस-रूप लङ्का-कमल—समुद्र पर लिखा हुआ।

ध्वनि हुई, "वत्स, यह वीर-रूप समझो।" इसके वाद स्वामी प्रेमानन्दजी की प्रशान्त मूर्ति ऊपा के अरुण प्रकाश की तरह भक्त के सुन्दर मन के आकाश से भी ऊँचे उगी। ध्वनि हुई, "वत्स, यह सूक्ष्म भारत है, इससे नीचे नही उतर सकते; इनका प्रसार समझ के पार है।" एक वार सूर्य दिखायी दिया, फिर अगणित तारे, प्रकाश मन्दतर होता हुआ विलीन हो गया।

फिर उसके पूजित महावीरजी की वही भक्त-मूर्त्ति आयी, हाथ जोडे हुए। उसी मुख से निर्गत हुआ, "मैं इसी तत्त्व को हाथ जोड़े हुए हूँ—यही मेरे राम हैं, तुम इसी तरह रहो। किसी कार्य को छोटा न समझो, न किसी की निन्दा करो।"

अन्धकार जल पर एक कमल निकला, हाथ जोड़े हुए वोला, "मैं तो राजा का था, तुमने मुझे क्यो तोड़ा ?" फिर गुलाव हिल-हिलकर कहने लगे, "मुझे छूने का तुम्हें क्या अधिकार था ?" हाथ जोड़े हुए महावीरजी वोले, "वत्स, यहाँ कौन-सी चीज राजा की नही है—यह मूर्त्ति किसकी खरीदी है ? कौन पुजवाता है ?"

स्वप्न में आतुर होकर भक्त ने कहा, "ये गरीव मरे जा रहे हैं—इनके लिए क्या होगा।"

"ये मर नहीं सकते, इनके लिए वही है, जो वहाँ के राजा के लिए, इन्हे वही

उभाड़ेगा, जो वहाँ के राजा को उभाड़ता है, तुम अपने में रहो। दूर मत आओ।"

मन धीरे-धीरे उतरने लगा। देखा, आकाश की नीली लता में सूर्य, चन्द्र और ताराओं के फूल हाथ जोड़े खिले हुए एक अज्ञात शक्ति की समीर से हिल रहे हैं, पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल हाथ जोड़े आकाश को नमस्कार कर रहे हैं। आशीर्वाद की शुभ्र हिम-धारा उन पर प्रवाहित है; समुद्रों की फैली लता में आवर्तो के फूल खुले हुए अज्ञात किसी पर चढ रहे है; डाल-डाल की बाहें अज्ञात की ओर पुष्प बढ़ाये हुए हैं। तृण-तृण पूजा के रूप और रूपक है। इसके बाद उन्ही-उन्ही पुष्पो के पूजा-भावों मे छन्द और ताल प्रतीयमान होने लगे—सब जैसे आरती करते, हिलते, मौन भाषा मे भावना स्पष्ट करते हों, सबसे गन्ध निर्गत हो रही है, सत्य की समीर वहन कर रही है, पुष्प-पुष्प पर कही से अज्ञात आशीर्वाद की किरणें पड़ रही है, इसके बाद उसकी स्वर्गीया प्रिया वैसी ही सुहाग का सिन्दूर लगाये हुए सामने आयी।

"वत्स, यह मेरी माता देवी अंजना है। इनके मस्तक पर देखो।" उसी भक्त-मूर्ति की ध्वनि आयी।

मस्तक पर वीर-पूजा का वही सिन्दूर शोभित था। मुस्कुराकर देवी सरस्वती ने कहा, "अच्छे हो ?"

आँख खुल गयी, कही कुछ न था।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, दिसम्बर, 1934। पहले **सखी** मे, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

सखी

आज थिएटर जाने की बात है। माडल हौसेज की छात्रा-तरुणियों में निश्चय हो गया है, सब एक साथ जायेंगी। निर्मला, माधवी, कमला, ललिता, शुभा और श्यामा आदि सज-सजकर एक-दूसरी से मिलती हुई एकत्र होने लगी। कमला के मकान मे पहले से सबके मिलने का निश्चय हो चुका था। ज्योतिर्मयी उर्फ जोत अभी नही आयी। समय थिएटर जाने का करीब आ गया।

ललिता बोली, "वह आज कालेज में इतनी खुश थी कि अवकाशवाली लड़कियों से गप लड़ाती, मजाक करती हुई, समय से पहले घर चली आयी थी। पूरे उच्छ्वास से थिएटर चलना स्वीकार किया था। मैंने पूछा भी कि क्या है, जो आज जमीन पर कदम नही पड़ रहे हैं। जवाब न देकर मेरी ओर देखकर हँसने लगी।"

शुभा—"तो क्लास नही किया ?"

"ना," ललिता बोली।

श्यामा—"मुझसे कहा कि पढ़ना-लिखना तो अब यही तक समझो।"

निर्मला--"क्यो, उसे कोई अड़चन तो है नही; फिर पढ़ाई क्यो बन्द कर रही है?"

श्यामा हँसने लगी। बोली, "वह कहती है, अब पढ़ना छोड़कर पढ़ाना पड़ेगा, इसकी तैयारी करनी है।"

सब हँसती हुई एक-दूसरों की ओर देखने लगीं।

माधवी—"इसका मतलब?"

श्यामा हँसकर बोली, "उसे बड़ी चिन्ता है कि शिक्षा आई. सी. एस. है।"

"अच्छा," कई एक साथ कह उठी, "यह बात है?"

ललिता—"तो चलो, उसी के मकान से चला जाय। देखें, आपने अपनी तैयारी में कहाँ तक तरक्की की?"

सब जोत के मकान चली। सब आइसाबेला थार्बन कालेज की छात्राएँ है। कोई तीसरे, कोई चौथे, कोई छठे साल में है। जोत का तीसरा साल है।

घर पहुँचकर दंगल-का-दगल जोत के कमरे मे पैठा। वह जैसी जोत है, उसका पहनावा भी वैसा ही जगमगाता हुआ था। उस समय वह आइने के सामने खडी मुस्करा रही थी। एकाएक संगिनियो को देखकर लजा गयी। बोली, "मुझे जरा देर हो गयी।" वजह कोई न थी। सोचकर कुछ कह दे, हृदय और मस्तिष्क मे उतनी जगह न थी···एक अजीव भाव मे सारी देह भरी हुई थी, अतः देर के लिए दबनेवाले स्वर मे भी उच्छ्वास उमड़ रहा था।

श्यामा बोली "अब तो हर काम के लिए देर होगी। जल्दबाजी सिर्फ खास विद्यार्थी को अवैतनिक पढाने के वक्त हो तो हो।"

सब हंसने लगीं। ललिता ने देखा—मेज पर एक खुला अंग्रेजी लिफाफा पड़ा हुआ है। उठा लिया।

उठाते ही जोत तीर-सी ललिता पर टूटी। पर श्यामा ने पकड लिया, "अरे-अरे, अभी से। अभी तो पढ़ने की दरख्वास्त मंजूर होने को आयी होगी।"

ललिता ऊँचे स्वर से पढ़ने लगी। श्यामा जोत को पकड़े रही। चिट्ठी अंग्रेजी में थी। आवश्यकता से अधिक लम्बी। बायरन, शेली आदि के उद्धरण थे ही, विद्यापति भी नही बचे थे। पकडी हुई जोत खुशी मे छलक रही थी।

पत्र समाप्त कर सब चलने को हुईं, अमीनाबाद से ताँगे कर लेंगी, एक जोत की मोटर में सब अट नही सकती, क्योंकि सामने ड्राइवर की वजह से सीट खाली रहेगी।

जोत को लीला की याद आयी। बोली, "भई, लीला रही जाती है उसे भी ले लें।"

"उससे चलने की बात तो हुई नही, वह शायद ही जाय।" माधवी बोली।

"पक्की कंजूस है। पैसा दाँत से पकडती है!" श्यामा ने कहा, "सौ रुपये कम-से-कम ट्यूशन से पाती है, पर हालत देखो, तो मालूम होगा महादरिद्र।"

जोत लजाकर बोली, "तुम्हें तो उसका जीवन-चरित्र लिखने को मिले, तो

चौपट करके छोडो। हमारे कॉलेज में एक ही कैरेक्टर है। कहो तो, उसके यहाँ पैदा करनेवाला कौन है ? ट्यूशन से अपना खर्च चलाती है, छोटे भाइयों को भी पढ़ाती है, साथ घर का खर्च भी है। बूढी माँ को कोई तकलीफ न हो, इसके लिए बेचारी कितना खटती है। मेहनत की मारी सूखकर काँटा हो रही है। चेहरे में आँखें ही आँखें तो है।"

लीला का घर आ गया। सब भीतर धँस गयीं। लीला पढ रही थी।

जोत ने हाथ से किताब छीन ली, थप से मेज पर रखकर बोली, "मिस लैला, मजनू के मजमून मे दीवानी न बनो। प्रेम का परिणाम बुरा होता है प्यारी ! चलो, कलकत्ते से पारसी कम्पनी आयी हुई है, वहाँ हम लोग धार्मिक शिक्षा ग्रहण करें।"

लीला जोत से दो साल आगे एम. ए. मे है। जोत चंचल है। लीला क्षमा करती है। बड़ी-बड़ी सकरुण आँखो से देखती हुई बोली, "भाई, तुम लोग जाओ। मुझे इतना समय कहाँ ?"

"समय नही, पैसे कहो।" श्यामा बोली।

"अच्छा, पैसे सही। कालेज के अलावा पाँच घण्टे पढाती हूँ। डाक्टर साहब बड़े आदमी है। लड़कियो की पढाई के लिए साठ देते हैं। मेरी हालत भी जानते है। तअल्लुकदार रघुनाथसिह की नयी पत्नी को पढाती हूँ, चालिस वहाँ मिलते है। इसी मे घर का कुल खर्च है। इतने के बाद अपने पढ़ने के लिए भी समय निकालना पडता है। दिक्कत तुम लोग समझ सकती हो। ऐसी हालत मे समय और पैसो की मुझे कितनी तंगदस्ती हो सकती है।"

"अच्छा महाशयाजी, चलिए।" जोत बोली, "आपके लिए फ्री पास का प्रबन्ध हो जायगा।"

"तुम तो आज म्यान से निकली तलवार-सी चमक रही हो जोत ! क्या खुशी है ?" लीला ने धीर स्नेह-कण्ठ से पूछा।

"महाशयाजी, जो किसी के हलक से नीचे उतरकर सिर चढ़ी हो, वह शराब है यह अब।" मुस्कुराकर शुभा ने कहा।

"नही," कमला बोली, "अभी तो—देख लो न, इनकी तरफ—होठो पर हँसी, आबरू पर खम, इसलिए इकरार भी है, इनकार भी है।"

"बात क्या है ?" अनजान की तरह देखते हुए लीला ने पूछा।

"पूरा रहस्यवाद उर्फ छायावाद।" निर्मला ने कहा, "वाद-विवाद में देर हो रही है। प्रकाशवाद यह है कि इनके पास मिस्टर श्यामलाल आई. सी. एस. का पत्र आया है कि आप अगर मंजूर करें, आपको अपना सर्वस्व—तीन हजार मासिक—प्रेम की पर्मानेण्ट शिक्षा के लिए देकर मिस्ट्रेस बनने की प्रार्थना करता हूँ। अब तो आया समझ में ?"

"तो क्या तुम्हारे पिताजी राजी हो गये ?" लीला ने जोत से पूछा।

"खूब कही !" जोत बोली, "जहाँ आई. सी. एस. वर मिलता हो, वहाँ पिताजी खुद ब्याह करने को तैयार हो जायँ।"

कमरा खिलखिलाहट से गूँज उठा।

"तुम लोग भई जाओ, माफ करो, मुझे समय नही।"

"नहीं महाशयाजी, आप तो फर्स्ट क्लास लें, और हम लोग वही पैर रगड़ते रहें, ऐसा नही होने को। आपको चलना होगा, कपड़े वदलिए।"

जोत लीला को प्यार करती है, सम्मान भी देती है। लीला भी जानती है, जोत की खुली जवान में हृदय की कीमती वहुत-सी चीजें खुली रहती है। इसलिए उसका प्रस्ताव मंजूर कर, कपड़े वदलकर साथ चल दी।

तीन वजे से पहले ही लीला का क्लास खत्म हो जाता है। वहाँ से वह तअल्लुकदार साहव की पत्नी को पढ़ाने के लिए भैंसाकुण्ड जाया करती है। रोज वहुत चलना पड़ता है। किसी तरह साइकिल खरीद सकती है। पर सीखने की लाज कि मैदान में मर्दों के सामने वेहयाई होगी, कौन पकड़कर चलायेगा, गिरूँगी तो लोग हँसेंगे आदि-आदि—वाधक होती है। इसलिए चलने की काफी मेहनत गवारा करती है।

भैंसाकुण्ड से साढ़े पाँच-छः के करीव लौटती हुई कई रोज से देखती है—दो मुसलमान उसका पीछा करते हैं। वे आपस मे न जाने क्या वातचीत करते है। कभी-कभी पास आ जाते हैं। हृदय धडकने लगता है। पर वह जल्द-जल्द चली आती है। ज्यों-ज्यों तेज चलती है, वे भी त्यों-त्यो तेज पीछा करते है। किससे कहे? भैंसाकुण्ड का वहुत-सा रास्ता वँगलों तथा वगीचों के कारण सुनसान निर्जन रहता है। धडकते कलेजे से साधारण वस्ती के पास आकर साँस लेती है।

मन-ही-मन अपनी असमर्थता पर लीला को वड़ा क्षोभ हुआ। दुर्वलो को सव सताते हैं। पर आप ही शान्त हो जाना पड़ा, क्योंकि अपनी हद में वही अपना उपाय सोचनेवाली थी। माता से नही कहा कि कहीं वह रोक न दें, खर्च के लिए फिर क्या होगा?

एक दिन लौटते हुए उन्ही मे एक को अश्लील वकते हुए सुना—जैसे सुनाकर वातें कही जा रही हों। वह तेज कदम चलने लगी। वे भी उसी हिसाव से वढ़ते गये—तीन ही चार हाथ का फासला था। ऐसे समय उनके साहस की ऐसी वात उसने सुनी, जो उसकी मर्यादा के प्रतिकूल थी। भय से एक प्रकार दौड़ने लगी। सामने एक हैट-कोट पहने देशी साहव आते हुए देख पड़े। लीला उनकी तरफ कुछ तेज वढ़ी। उन्हें देखकर वदमाश लौट गये। लीला उनके पास पहुँचकर हाँफती हुई वोली, "आज कई रोज से दो वदमाश मेरा पीछा करते है। मैं तअल्लुकदार रघुनाथसिंह की पत्नी को पढाने जाती हूँ। लौटते समय राह पर मिल जाते हैं। मुझे ऐसी-ऐसी वातें आज कही—" कहकर अपने को सँभालने लगी।

विजली की रोशनी मे वड़ी-वड़ी आँखों से आँसू गिरते हुए देखकर साहव क्रोध से रास्ते की ओर देखने लगे। वोले, "वे लोग मुझे देखकर भाग गये शायद। यह सामने मेरा ही वँगला है। आइए आपको मोटर पर भेज दूँ। कोई डर की वात नहीं।" साहव सोचते चले, पीछे-पीछे लीला।

अहाते के भीतर बगीचे के पास साहब खड़े हो गये। बँगले के सामने की बिजली में लीला का दुबला सुन्दर कुछ लम्बा गोरा मुख, बड़ी-बड़ी आँखें दीख रही हैं। साहब ने दुख के कारण चित्र का सौन्दर्य देखकर पूछा, "आपका शुभ नाम ?"

"मुझे लीला कहते है।" निगाह झुकाती हुई लीला बोली।

"आप ही को अपनी सँभाल करनी पड़ती है; आप—आप शादीशुदा तो है ?"

"जी नही, मैं आइसाबेला थाबर्न कालेज की छात्रा हूँ।"

"किस क्लास में आप हैं ?"

"एम. ए. मे।" धीमे स्वर से कहकर समझ की लाजभरी पलकें झुका ली।

कुछ आग्रह से साहब ने पूछा, "आप ब्राह्मण हैं ?"

"जी नही, कायस्थ हूँ।"

"यहाँ कहाँ रहती है ?"

"माडेल हौसेज मे।'

साहब कुछ चौंके। पूछा, "आपके वहाँ कोई ज्योतिर्मयी रहती हैं। आपके कालेज की बी. ए. पहले साल की छात्रा हैं।"

लीला भी चौंकी। कुछ हिम्मत हुई। लजाकर पूछा, "जनाब का नाम ?"

"मुझे श्यामलाल कहते हैं।—अरे ए, कार तो ले आने को कह दे।"

लीला का संकोच बहुत कुछ दूर हो गया। बोली, "हाँ, आपका जिक्र मैंने सुना है।"

साहब की उत्सुकता बढ़ गयी। बड़ी उतावली से पूछा, "कहाँ सुना ?"

लीला मुस्कुरायी। कहा, "जोत की सखियों से, उसकी एक चिट्ठी देखी थी।"

साहब उतरे स्वरों मे बोले, "उसका कोई जवाब अभी नही मिला। उनके पिताजी मेरे विलायत रहते समय मेरे पिताजी से मिले थे। मेरे पास उनका चित्र गया था। विलायत से लौटकर एक पत्र मे मैंने लिखा था अभी मैंने उन्हे देखा नही। तारीफ सुनी है।" कहकर साहब कुछ चिन्ता करने लगे।

मोटर आ गयी।

मुस्कुराकर लीला ने वादा किया कि वह जोत से पत्र लिखने के लिए कहेगी। साहब आँखें झुकाये चुपचाप खड़े रहे। कुछ देर बाद बोले, "नही, आप ऐसा कुछ मत कहें।" फिर मोटर पर चढ़ने के लिए लीला को आमन्त्रित किया।

नमस्कार कर लीला बैठ गयी। मोटर चल दी।

तीसरे दिन बाबू श्यामलाल को जोत का उत्तर मिला। लिखा था—

जनाब,

मैंने आपको जवाब इसलिए नही दिया कि जवाब देना सभ्यता के खिलाफ है। आज लीला दीदी से आपके मिलने की सांगोपांग बातें मालूम हुई। जिस मजनू की जो लैला होती है, वह इसी तरह उसे अपने आप मिलती है। अपनी

लैला की आप हमेशा रक्षा करें, आपसे सविनय मेरी प्रार्थना है। तब मेरा और आपका रिश्ता और मधुर हो जायगा, क्योंकि बहन जिसे ब्याहती है, वह अगर पत्नी की बहन को साली कह सकते हैं, तो पत्नी की बहन भी उन्हें वही पुरुष-सम्बोधन कर सकती है। आशा है, मेरा-आपका यह सम्बन्ध स्थायी होगा।

आपकी

जोत।

[पहले सखी में, फिर **चतुरी चमार** मे संकलित]

कला की रूप-रेखा

(सत्य घटना)

प्रयाग में था, लूकरगंज मे, पं. वाचस्पति पाठक के यहाँ। 'लीडर प्रेस' मे 'निरुपमा' बेचने गया था। जाड़े के दिन। 1936 का प्रारम्भ। चाय पीने की लत है। चाय के साथ हिन्दू मिठाई, फल, टोस्ट वगैरह खाते हैं, मैं अण्डे खाता हूँ—बायल्ड, हाफ-बायल्ड या पोच, समय रहा तो आमलेट; अण्डे बत्तख के नहीं, मुर्गी के। पाठक की मा मुर्गी का पैर देख लें तो मकान छोड़ दें, लिहाजा सुबह उठकर स्टेशन जाता था, एक मुसलमान की दूकान में, पाठक देखते थे, मैं खाता-पीता था।

जाते-आते रास्ते में बातचीत होती थी, तरह-तरह की। पाठक मुझसे ग्यारह-बारह साल छोटे हैं। इस समय, अट्ठाईस और चालीस की पटरी बैठ सकती है, उस समय जब पाठक पाँच के और मैं सत्रह का था, अवश्य कोई साम्य न रहा होगा। आज इंगलैण्ड की निगाह में भारत जितना समझदार और शक्तिशाली है, मेरी निगाह मे पाठक उतने भी न रहे होंगे; मैं 'जुही की कली' का कवि था और पाठक पहली किताब के पाठक। लेकिन पहलेपहल जब मेरी पाठक से मुलाकात हुई, काशी में—मैं तीस का और पाठक अट्ठारह के, वह मेरे घनिष्ठ, कवि-प्रिय मित्र होकर मिले। मेरी विशेषता मेरे काशी जाने से पहले पहुँच चुकी थी, इस-लिए अपने एक मित्र के यहाँ, जिन्होने एक वेश्या को पत्नी-रूप से रखकर सामाजिक श्रेय प्राप्त किया है—बड़े भगवद्भक्त हैं, मुझे मछली पकवाकर खिलायी।

एक रोज जब लूकरगंज से हम लोग स्टेशन की तरफ चले, उन्होंने मुझसे पूछा, "कला क्या है?"

मैंने कहा, "कुछ नही।"

पाठक उड़ी निगाह से मुझे देखने लगे। मालूम नही, क्या सोचा। मुमकिन,

जैसा सब सोचते है, उन्होने भी सोचा हो ।

मैंने फिर कहा, "जो अनन्त है, वह गिना नही जा सकता। इसलिए 'कुछ नही' कहा। इसका बडा अच्छा उदाहरण है। कला उसी तरह की सृष्टि है, जैसे आप सामने देखते है, बल्कि यही सृष्टि लिखने की कला की जमीन है। अनादि-काल से अब तक सृष्टि को गिनने की कोशिश जारी है, पर अभी तक यह गिनी नही जा सकी, अधिकांश मे बाकी है। यह एक-एक सृष्टि एक-एक कला है। फलतः कला क्या है, यह बतलाना कठिन है। अद्वैतवाद मे, सृष्टि के गिनने की असमर्थता के कारण, सृष्टि का अस्तित्व ही उड़ा दिया गया है। इसलिए कहा, कला कुछ नही है। कला के दो-चार, दो-चार सौ, दो-चार हजार, दो-चार लाख, दो-चार करोड रूप ही बतलाये जा सकते है। पर इससे कला पूरी-पूरी न बतलायी गयी। पर एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपों की बात नही कही गयी, केवल 'सच्चिदानन्द' कह दिया गया है। इसी को साहित्यिकों ने 'सत्य, शिव और सुन्दर' कहकर अपनाया है। बोध वह है, जैसी कला हो, उसके विकास-क्रम का वैसा ज्ञान। इसके लिए प्राचीन और नवीन परम्परा भी सहायक है और स्वजातीय और विजातीय ज्ञान के साथ मौलिक अनुभूति और प्रतिभा भी।"

फिर हिन्दी के भिन्न-भिन्न अंगो की बातचीत होती रही। हिन्दी-भाषियो का मस्तिष्क दुर्बल है, रूढ़िग्रस्त होने के कारण वहाँ नवीन विचारधारा जल्द नही प्रवेश पाती, यद्यपि भारतीय समस्त साहित्य का इतिहास समस्त प्रकार की मौलिकता लिये हुए है। हिन्दी का समाज-संस्कार अनुरूप न होने के कारण उपन्यास उच्चता तक नही पहुँच रहे—बहुत जगह भविष्य-समाज की कल्पना कर लिखा जाता है। काव्य, कहानी, प्रबन्ध, नाटक इन सबका लेखक जो मनुष्य है, वह अनेक रूपो मे अभी विकसित नही हुआ, बड़ी कमजोरियाँ है, फलतः साहित्य अभी साहित्य नही हो सका। मैं कहता गया, ये सब नाई हैं अपनी बारात मे ठाकुर बने हुए। कुछ नाम भी गिनाये, कलकत्ते से लाहौर तक। तब तक स्टेशन आ गया। मेरा मुसलमान दूकानदार आदर की दृष्टि से मुझे देखकर अण्डे फोड़ने चला। अण्डे उबाले हुए रक्खे थे; मैं बैठ गया, पाठक वही दो-चार कदम इधर-उधर टहलते रहे। कुछ और भी चाय पीनेवाले मुसलमान सज्जन थे।

एक दुबले-पतले प्रायः पचास साल के मुसलमान सज्जन गौर से मुझे देखते रहे। उनकी आँखो के आश्चर्य का मैं चुपचाप आनन्द लेता रहा। अन्त तक उनसे न रहा गया, पूछा—

"जनाब पंजाबी हैं ?"

मैंने सोचा, जितनी कम मिहनत हो, अच्छा है; कहा, "जी।"

उन्होने पूछा, "कारोबार करते है ?"

मैंने कहा, "जी।"

उन्होने पूछा, "यही ?"

मैंने कहा, "नही, लखनऊ मे।" मैं अण्डेवाला प्लेट उठाकर काँटे से खाने लगा। प्रश्नकर्ता को अभी पूरी-पूरी दिलजमई न हुई थी।

पूँछा, "काहे का कारोवार करते है ?"

मैंने विना विचार किये कह दिया, "रेशम का।"

ज्यो मुसलमान सज्जन का आश्चर्य वढ़ा त्यों ही मैंने भी सोचा, 'यार, पंजाव मे रेशम की पैदावार कहाँ होती है, कारखाने कहाँ है, यह तो नही मालूम; उधर से पश्मीने आते हैं, जानता हूँ, पेशावर, काश्मीर वगैरह के पश्मीने मशहूर हैं।' वदलकर वोला, "लेकिन मैं स्वीजरलैण्ड से रेशम मँगाता हूँ।" कहकर मैं गम्भीर भाव से अण्डे खाने लगा। सोचा—

'स्वीजरलैण्ड एक सुन्दर देश है, वहाँ रेशम जरूर वनता होगा, और न भी वनता हो तो क्या ?—मियाँ खतव खाल से मालूम देते है, उन्होने स्वीजरलैण्ड का नाम पहले-पहल सुना है।'

"जनाव का इस्मशरीफ ?"

एक वार इस 'इस्मशरीफ' शब्द से वड़ा धोखा खाया था; सोचा था, वह 'दौलतखाने' का पर्यायवाची है, लेकिन जैसा धोखा मैंने खाया, जवाव सुनकर वैसा ही पूछनेवाले ने। मेरे विशुद्ध संस्कृत में दिये स्थान-परिचय को उन्होने नाम-परिचय समझा। तव मैं मेदिनीपुर मे रहता था। जानता था, 'पुर' कहूँगा तो मेरी तरह ये संशय में न रहेंगे। कहा, "मैदिनीदल।" उन्होने 'जुझारमल' की तरह का एक नाम यह भी होगा, सोच लिया।

इस वार जल्दी-जल्दी मुसलमानी नाम याद करने लगा तो एक भी नाम न आया। पेट मे 'महम्मद-महम्मद' हो रहा था, लेकिन कहने की हिम्मत नही पड़ती थी, वंकिमचन्द्र की याद आयी, उन्होने अपने एक हिन्दू पात्र से 'महम्मद' के नाम एक प्रेम-पत्रिका शाही कैम्प मे भिजवायी है, इस निश्चय से कि इस नाम का कोई सैनिक अवश्य होगा। वहाँ कई महम्मद निकले, एक-दूसरे से लड़ने लगे। नाम वताने मे जरा भी देर शंका पैदा करती है। मुझे नाम तो न याद आया, पर समझ ने साथ न छोड़ा।—मुँह का अण्डा निगला जा चुका था, पर मै मुसलमान सज्जन की ओर मुँह किये विराट रूप से मुँह चलाये जा रहा था, सिर हिलाता हुआ उन्हें आश्वासन दे रहा था कि जरा देर ठहर जाइए। फिर भी नाम न आया। अन्त मे वड़ी मुश्किल से एक शब्द याद आया। पर वैसा नाम मैंने स्वयम् कभी नही सुना। उधर मियाँ का धैर्य छूट रहा था—मेरी पागुर वन्द नही हो रही थी।

मैंने कहा, "जनाव, मुझे वकूफ हुसेन कहते है।" मियाँ उसे और मुलायम करके वोले, "उकूफ हुसेन ?"

मैंने कहा, "जी।"

मियाँ वढ़े। मैंने चाय पीना शुरू किया। पाठक पीछे थे। शायद सामने से ज्यादा हँसी आती थी।

जव चाय पीकर दाम देकर चला, तव रास्ते में, पाठक ने मुझसे कहा, "आपने 'वकूफ' शब्द का एक अक्षर छोड़ क्यो दिया ?"

मैंने वैसवाड़ी मे कहा, "तुम थे, इसलिए।"

अभी हम लोगो ने स्टेशन का अहाता पार नही किया था। अहाते मे मदरासियो का एक दल वैठा हुआ देख पड़ा। मैंने सोचा, शायद ये लोग कुम्भ

नहाने आये थे। इतने ही में कि उनमें से एक आदमी, उम्र पैंतालीस के लगभग, भौंरे का रंग, खासा मोटा-तगड़ा, एक लँगोटी से किसी तरह लाज बचाये हुए, उतने जाड़े में नंगा बदन, दौड़ा हुआ मेरे पास आया और एक साँस में इतना कह गया कि मैं कुछ भी न समझा। मैंने फिर पूछा। टूटी-फूटी हिन्दी में पूरे उच्छ्वास से वह फिर कहने लगा। इस बार मतलब मेरी समझ में आया। वह यात्री है, मदरास का रहनेवाला, कुम्भ नहाने आया था, यहाँ चोर उसके कपड़े-लत्ते, माल-असबाब उठा ले गये, गठरियों में ही रुपये-पैसे थे, अब वह (अपने आदमियों के साथ) हर तरह लाचार है, दिन तो किसी तरह धूप खाकर, भीख माँगकर पार कर देता है, पर रात काटी नहीं कटती। जाड़ा लगता है। वह एक दृष्टि से मेरा मोटा खद्दर का चादरा देख रहा था। मैं विचार न कर सका, उतारकर दे दिया। वह मारे आनन्द के दौड़ा हुआ अपने साथियों के पास गया और इस महादान की तारीफ करने लगा, मेरी तरफ उँगली उठाकर बतलाता हुआ।

पाठक ससार के चक्रान्त की बातें सोच रहे थे—देश दुर्दशा-ग्रस्त है, इसलिए कितने चक्कर रोज देशवासियों को खाने पड़ते हैं—कितने लोग उन्हें छलते रहते हैं—कितने प्रकार प्रचलित हैं। मुझसे बोले, "आखिर आपने अपना बतलाया नाम यहाँ सार्थक कर दिया न ?—यह अभी दोपहर को, गुदड़ीबाजार में, चार आने में, यह चादरा बेचेगा।"

मैंने कहा, "धोखा भी हो सकता है और इसकी बात भी सच हो सकती है ? यह मदरास से यह सोचकर चला नहीं होगा कि गुदड़ीबाजार में कपड़ा बेचेगा।"

पाठक अप्रसन्न होकर बोले, "मैं आपके देने का विरोध नहीं करता, लेकिन— "

मेरे पास कपड़े कम रहते हैं, कम थे, 'लेकिन' के बाद वह इसी भाव की पूर्ति करना चाहते थे, पर रुक गये।

हम लोग लूकरगंज आये। धीरे-धीरे दो महीने बीते। लखनऊ कांग्रेस के समय सत्ताईस मार्च को वह मेरे साथ लखनऊ आये और मेरे मकान में ठहरे। धीरे-धीरे कांग्रेस का समय आया। उनके दो मित्र, जो मेरे भी मित्र हैं, आकर ठहरे। जहाँ तक बिना टिकट के देखा जा सकता था, मैंने घूम-फिरकर कई रोज देखा। दो-तीन रुपये प्रदर्शनी देखने और महात्माजी के व्याख्यान सुनने में खर्च किये। प्रदर्शनी के कवि-सम्मेलन में नहीं जाता, यहाँ भी नहीं गया। जो कुछ हुआ, संवाद मालूम कर लिया। सब्जेक्ट-कमेटी की बैठकें देखने की इच्छा थी, पर वह दृश्य अप्सराओं के नृत्य देखने से भी महँगा था। पाठक बोले, "मेरा पास लेकर देख आइए।" मैंने कहा, "वहाँ बहुत-से लोग होंगे, जो मुझे पहचानते होंगे। फिर प्रेस-रिपोर्टरों की जगह मुझे कोई अपने पास से भी कुछ देकर बैठने के लिए कहे तो मैं न बैठूं।"

पाठक लड़ने लगे। बोले, "वह सबसे बढ़िया जगह होती है!" कहा, "होगी। मैं न जाऊँगा।"

कांग्रेस शुरू हुई। पहले दिन मैं न गया। आगे भी जाने का विचार न था। कारण, प्रेस-रिपोर्टर की हैसियत से जाना मुझे पसन्द न था, और तीन दिन तक

दाम खर्च कर जाने में अड़चन थी। प्रयाग से ढाई सौ रुपये ले आया था। प्रायः सब खर्च हो चुका था, कई महीने के बाकी मकान किराये और भोजन के खर्च मे।

दूसरे दिन जब कांग्रेस की बैठक शुरू होने को हुई, मेरे मकान से लोग चलने को हुए तो मैं सोने का सुबीता करने लगा।

जो मारवाड़ी सज्जन आये हुए थे, उन्होने कहा, "निरालाजी, मैं कई दिनो से देख रहा हूँ आप सोते बहुत हैं।"

मैंने कहा, "हाँ, यह तो है, पर जब जागता हूँ, तब पन्द्रह-पन्द्रह रात लगातार नही सोता।"

मारवाडी सज्जन हँसे। बोले, "चलिए।"

मैं बडे संकट मे पड़ा, कैसे कहूँ मेरे पास खर्च की कमी है। कहा, "कांग्रेस में बड़ी गरमी है।"

"हाँ, पर हवा अच्छी चलती है।" मारवाड़ी सज्जन बड़े मजेदार आदमी मालूम दिये। मैं उनके उत्तर पर मुस्करा रहा था, तब तक एक पच्चीस रुपये का टिकट निकालकर उन्होने कहा, "यह टिकट आपके लिए है।"

मैं चला। मैं और मारवाड़ी सज्जन एक ही जगह पर थे। वह जगह कुछ ऊँची थी। कुछ दूर पर बड़े-बड़े नेता और नेत्रियाँ। देखा, एक-एक छोटी मेज के पीछे प्रेस-रिपोर्टर बैठे थे। पं. दुलारेलाल भार्गव, ठाकुर श्रीनाथसिंह आदि-आदि परिचित-अपरिचित। श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय को मै गौर से देख रहा था। उन्हे पहले ही पहल देखा था। कभी-कभी श्रीमती सरोजिनी नायडू से बातें करती थी, उठकर उनके पास जाकर। रह-रहकर उस समर्पण की याद आ रही थी, जो मिस्टर चट्टोपाध्याय ने अपने एक अंग्रेजी पद्य-सग्रह का किया है, इस तरह का—To K, the first sunshine of my life (मेरे जीवन की प्रथम सूर्य-किरण 'क' को)। फिर इस राजनीतिक जीवन के घोर परिवर्तन पर सोच रहा था, जहाँ दोनों एक-दूसरे के काव्य के विषय नही—जीवन के अन्तरंग नही, स्पर्द्धा के विषय हो गये है।

शाम को बाहर निकला। एकाएक एक ऊंची आवाज आयी। देखा, एक स्वयंसेवक दौड़ा आ रहा है, स्वयंसेवक की वर्दी पहने हुए। मुझे देखकर दोनों हाथ उठाकर फिर उसने हर्षध्वनि की। मुझे ऐसा मालूम देने लगा जैसे उसे स्वप्न में कभी देखा हो। मुझे पहचानता हुआ न जानकर उसने आनन्दपूर्ण लड़खड़ाती हिन्दी में कहा, "मैं वही हूँ, जिसे आपने चादरा दिया था।"

मुझे कला का जीवित रूप जैसे मिला। प्रसन्न आँखों से देखता हुआ मैं तत्काल कुछ कह न सका। संयत होकर बोला, "आप कांग्रेस में आ गये, अच्छा हुआ।" उसने कहा, "फिर मैं वहाँ स्वयंसेवकों में भरती हो गया।"

प्रसन्न-चित्त बाहर निकलकर मन मे मैंने कहा, 'पाठक मिलें तो बताऊँ कैसे गुदड़ीबाजार मे इसने चादरा बेचा।'

कई दिन हो गये। कांग्रेस खत्म हो गयी। पाठक वगैरह चले गये। मैं शाम को कैसर बाग मे टहल रहा था कि वह मनुष्य मेरी ओर तेज कदम आता देख पड़ा,

मैं खड़ा हो गया। मेरे पास आकर उसने कहा, "अब गरमी बहुत पड़ने लगी है। देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा ? पैदल जाना चाहता हूँ।"

मैंने बीच में बात काटकर कहा, "क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर दे सकते !"

उसने कहा, "नहीं, कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। खैर, मैं भीख माँगता-खाता पैदल चला जाऊँगा। पर"—(अपने) पैरों की ओर देखकर कहा, "गरमी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं, अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।"

मुझ पर जैसे वज्रपात हुआ। मैं लज्जा से वहीं गड़ गया। मेरे पास तब केवल छः पैसे थे। इससे चप्पल नहीं लिये जा सकते। अपने चप्पल देखे, जीर्ण हो गये थे। लज्जित होकर कहा, "आप मुझे क्षमा करें, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

उसने वीर की तरह मुझे देखा। फिर बड़े भाई की तरह आशीर्वाद दिया और मुस्किराकर अमीनाबाद की ओर चला। मैं खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

['माधुरी', मासिक, लखनऊ, नवम्बर, 1936। **सुकुल की बीवी में संकलित**]

सुकुल की बीवी

बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मन्थन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करनेवाले अकेले महादेव बाबू ('मतवाला'-सम्पादक)।—शीघ्र रत्न और रम्भा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदान्त-विषयक नीरस एक साम्प्रदायिक पत्र का सम्पादन-भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा। इस चिरन्तन चिन्तन का कुछ ही महीने में फल प्रत्यक्ष हुआ; साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी की मदन-दहन-समयवाली दर्शन-सत्य उक्ति हेच मालूम दी, क्योंकि गोस्वामीजी ने, उस समय, दो ही दण्ड के लिए, कहा है—'अबला बिलोकहिं पुरुषमय अरु पुरुष सब अबलामयम्।' पर मैं घोर सुषुप्ति के समय को छोड़कर, बाकी स्वप्न और जाग्रत् के समस्त दण्ड, ब्रह्माण्ड को अबलामय देखता था।

इसी समय दरबान से मेरा नाम लेकर किसी ने पूछा, "है ?"

मैंने जैसे वीणा-झंकार सुनी। सारी देह पुलकित हो गयी, जैसे प्रसन्न होकर पीयूषवर्षी कण्ठ से साक्षात् कविता-कुमारी ने पुकारा हो, बड़े अपनाव से मेरा नाम लेकर। एक साथ कालिदास, शेक्सपियर, बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ की नायिकाएँ दृष्टि के सामने उतर आयीं। आप ही एक निश्चय बँध गया—यह वही है, जिन्हें कल कार्नवालिस स्क्वायर पर देखा था—टहल रही थीं। मुझे देखकर पलकें झुका ली थीं। कैसी आँखें वे!—उनमें कितनी बातें!—मेरे दिल के साफ आईने में उनकी सच्ची तस्वीर उतर आयी थी, और मैं भी वायु-वेग से उनकी बगल से निकलता हुआ, उन्हें समझा आया था कि मैं एक अत्यन्त सुशील, सभ्य, शिक्षित और सच्चरित्र युवक हूँ। बाहर आकर, गेट पर, एक मोटर खड़ी देखी थी। जरूर वह उन्हीं की मोटर थी। उन्होंने ड्राइवर से मेरा पीछा करने के लिए कहा होगा। उससे पता मालूम कर, नाम जानकर, मिलने आयी हैं। अवश्य यह बेथून-कालेज की छात्रा हैं। उसी के सामने मिली थीं। कविता से प्रेम होगा। मेरे छन्द की स्वच्छन्दता कुछ आयी होगी इनकी समझ में, तभी बाकी समझने के लिए आयी हैं।

उठकर जाना अपमानजनक जान पड़ा। वहीं से दरबान को ले आने की आज्ञा दी।

अपना नंगा बदन याद आया। ढकता, कोई कपड़ा न था। कल्पना में सजने के तरह-तरह के सूट याद आये, पर, वास्तव में, दो मैले कुर्ते थे। बड़ा गुस्सा लगा, प्रकाशकों पर। कहा, नीच हैं, लेखकों की कद्र नहीं करते। उठकर मुंशीजी के कमरे में गया, उनकी रेशमी चादर उठा लाया। कायदे से गले में डालकर देखा, फबती है या नहीं। जीने से आहट नहीं मिल रही थी, देर तक कान लगाये बैठा रहा। बालों की याद आयी—उकस न गये हों। जल्द-जल्द आईना उठाया। एक बार मुँह देखा, कई बार आँखें सामने रेल-रेलकर। फिर शीशा बिस्तरे के नीचे दबा दिया। शॉ की 'गेटिंग मैरेड' सामने करके रख दी। डिक्शनरी की सहायता से पढ रहा था, डिक्शनरी किताबों के अन्दर छिपा दी। फिर तनकर गम्भीर मुद्रा से बैठा।

आगन्तुका को दूसरी मंजिल पर आना था। जीना गेट से दूर था।

फिर भी देर हो रही थी। उठकर कुछ कदम बढ़ाकर देखा, बचपन के मित्र मिस्टर सुकुल आ रहे थे।

बड़ा बुरा लगा, यद्यपि कई साल बाद की मुलाकात थी। कृत्रिम हँसी से होंठ रँगकर उनका हाथ पकडा, और लाकर उन्हें बिस्तरे पर बैठाला।

बैठने के साथ ही सुकुल ने कहा, "श्रीमतीजी आयी हुई हैं।"

मेरी रूखी जमीन पर आषाढ का पहला दौंगरा गिरा। प्रसन्न होकर कहा, "अकेली हैं, रास्ता नहीं जाना हुआ, तुम भी छोडकर चले आये, बैठो तब तक, मैं लिवा लाऊँ—तुम लोग देवियों की इज्जत करना नहीं जानते।"

सुकुल मुस्कराये। कहा, "रास्ता न मालूम होने पर निकाल लेंगी—ग्रैज्युएट हैं, ऑफिस में 'मतवाला' की प्रतियाँ खरीद रही हैं, तुम्हारी कुछ रचनाएँ पढकर—खुश होकर।"

मैं चल न सका। गर्व को दवाकर वैठ गया। मन मे सोचा, कवि की कल्पना झूठ नही होती। कहा भी है, 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।'

कुछ देर चुपचाप गम्भीर वैठा रहा। फिर पूछा, "हिन्दी काफी अच्छी होगी इनकी ?"

"हाँ," सुकुल ने विश्वास के स्वर से कहा, "ग्रैज्युएट हैं।"

वडी श्रद्धा हुई। ऐसी ग्रैज्युएट देवियों से देश का उद्धार हो सकता है, सोचा। निश्चय किया, अच्छी चीज का पुरस्कार समय देता है। ऐसी देवीजी के दर्शनो की उतावली वढ चली, पर सभ्यता के विचार से वैठा रहा, ध्यान में उनकी अदृष्ट मूर्ति को भिन्न-भिन्न प्रकार से देखता हुआ।

एक बार होश मे आया, सुकुल को धन्यवाद दिया।

सुकुल का परिचय आवश्यक है। सुकुल मेरे स्कूल के दोस्त है, साथ पढे। उन लडको में थे जिनका यह सिद्धान्त होता है कि सिर कट जाय, चोटी न कटे। मेरी समझ मे सिर और चोटी की तुलना नही आयी; मैं सोचता था, पूँछ कट जाने पर जन्तु जीता है, पर जन्तु कट जाने पर पूँछ नही जीती; पूँछ मे फिर भी खाल है, खून है, हाड और मांस है, पर चोटी सिर्फ वालों की है, वालो के साथ कोई देहात्म-वोध नही। सुकुल-जैसे चोटी के एकान्त उपासकों से चोटी की आध्यात्मिक व्याख्या कई वार सुनी थी, पर सग्रन्थि वालो के वल्व मे आध्यात्मिक इलेक्ट्रिसिटी का प्रकाश न मुझे कभी देख पडा, न मेरी समझ मे आया। फलतः सुकुल की और मेरी अलग-अलग टोलियाँ हुईं। उनकी टोली में वे हिन्दू-लड़के थे, जो अपने को धर्म की रक्षा के लिए आया हुआ समझते थे, मेरी में वे लडके, जो मित्र को धर्म से वडा मानते है, अतः हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान सभी। हम लोगो के मैदान भी अलग-अलग थे। सुकुल का खेल अलग होता था, मेरा अलग। कभी-कभी मैं मित्रों के साथ सलाह करके सुकुल की हाकी देखने जाता था, और सहर्ष, सविस्मय, सप्रशंस, सक्लैप और सनयन-विस्तार देखता था। सुकुल की पार्टी-की-पार्टी की चोटियाँ, स्टिक वनी हुई, प्रतिपद-गति की ताल-ताल पर, सिर-सिर से हाकी खेलती है, वली मोहम्मद कहता था, जव ये लोग हाकी मे नाचते है, वे चोटियाँ सिर पर ठेका लगाती है। फिलिप कहता था, See, the Hunter of the East has caught the Hindoos' forehead in a noose of hair. (देखो, पूरव के शिकारी ने हिन्दुओं के सिर को वालो के फन्दे मे फँसा लिया है)। इस तरह शिखा-विस्तार के साथ-साथ सुकुल का शिक्षा-विस्तार होता रहा। किसी से लड़ाई होने पर सुकुल चोटी की ग्रन्थि खोलकर, बालो को पकड़कर ऊपर उठाते हुए कहते थे, मैं चाणक्य के वंश का हूँ।

धीरे-धीरे प्रवेशिका-परीक्षा के दिन आये। सुकुल की आँखें रक्त मुकुल हो रही थी। एक लडके ने कहा, सुकुल वहुत पढ़ता है; रात को खूंटी से वँधी हुई एक रस्सी से चोटी बाँध देता है, ऊँघने लगता है, तो झटका लगता है, जगकर फिर पढ़ने लगता है। चोटी की एक उपयोगिता मेरी समझ में आयी।

मैं कवि हो चला था फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा

देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिए सिर के बल हो रहे हैं, वे उद्भिद्कोटि के हैं। लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते हुए।

पर मेरा भाव बहुत दिनों तक नहीं रहा। जब आठ-दस रोज इम्तहान के रह गये, एक दिन जैसे नाड़ी छूटने लगी। खयाल आते ही कि फेल हो जाऊँगा, प्रकृति में कहीं कविता न रह गयी; संसार के प्रिय मुख विकृत हो गये; पिताजी की पवित्र मूर्ति प्रेत की-जैसी भयकर दिखी; माताजी की स्नेह की वर्षा में अविराम बिजली की कड़क सुनायी देने लगी; वंश मर्यादा की रक्षा के लिए विवाह बचपन में हो गया था—नवीन प्रिया की अभिन्नता की जगह बंकिम दृगों का वैमनस्य-हलाहल क्षिप्त होने लगा; पुरजनों के प्रगाढ़ परिचय के बदले प्राणों को पार कर जानेवाली अवज्ञा मिलने लगी। इस समय एक दिन देखा, सुकुल के शीर्ण मुख पर अध्यवसाय की प्रसन्नता झलक रही है।

किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जानेवाली चिन्ता। फलतः कल्पना में पृथ्वी-अन्तरिक्ष पार करने लगा। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ा। वह मसाला ही नहीं मिला। अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लडके की तरह लौट आऊँगा, अस्तु, सबके साथ गया। और-और लड़कों ने पूरी शक्ति लगायी थी, इसलिए, परीक्षा-फल के निकलने से पहले, तरह-तरह से हिसाब लगाकर अपने-अपने नम्बर निकालते थे, मैं निश्चित, इसलिए निश्चिन्त था; मै जानता था कि गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है; फलतः, परीक्षा समुद्र-तट से लौटते वक्त, दूसरे तो रिक्त-हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया; घर में पिता, माता, पत्नी, परिजन, पुरजन सबके लिए आवश्यकतानुसार उसका उपयोग किया।

मेरे अविचल कण्ठ से यह सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गये, लोग विचलित हो उठे। पिताजी तो गर्व से गर्दन उठाये रहने लगे। पर ज्यों-ज्यों फल के दिन निकट होते आये, मेरी आत्मा की वल्लरी सूखती गयी। वह जगह मैंने नहीं रक्खी थी कि पिताजी एक साल के लिए माफ कर देते। घर छोडे वगैर निस्तार न देख पड़ा। एक दिन माताजी से मैंने कहा, "जगतपुर के जमीदारों ने बारात में चलने के लिए बुलाया है, और ऐसा कहा है, जैसे मेरे गये वगैर बारात की शोभा न बन पड़ती हो।" जमीदारों के आमन्त्रण से माताजी छलक उठी, पिताजी को पुकारकर कहा, "सुनते हो, तुम्हारे सपूत जमींदारों के यहाँ उठने-बैठने लगे है, बारात में चलने का न्योता है।" पिताजी प्रसन्नता को दबाकर बोले, "तो चला जाय; जो कहे, कपड़े बनवा दो और खर्चा दे दो।" एकान्त में पत्नीजी मिलीं, बड़ी तत्परता से बोली, "वहाँ नाच देखकर भूल न जाइएगा।" "राम भजो," मैंने कहा, "क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्प विषया मतिः।" "मैं इसका मतलब भी समझूँ?" वह एक कदम आगे बढ़कर बोली, मन में निश्चय कर कि तुलना मे मैंने उन्हें श्रेष्ठ बतलाया है। समझकर मैंने कहा, "कहाँ तुम्हारी बाँस-सी कोमल दुबली देह से सूरज का प्रकाश, कहाँ वह

जहर की भरी मोती रण्डी !" "चलो" कहकर वह गर्व-गुरु-गमन से काम को चल दीं।

समय पर कपड़े बने, और खर्चा भी मिला। पश्चात्, यथासमय, जगतपुर के जमींदारों की बारात के लिए रवाना होकर कुछ दूर से राह काटकर ऐन गाड़ी के वक्त मैं स्टेशन पहुँचा। वहाँ से समुराल का टिकट लिया। रास्ते-भर मे खासी मुहर्रमी सूरत बना ली। ससुरालवाले देखते ही दंग हो गये। ससुरजी, सासुजी और-और लोग घेरकर कुशल पूछने लगे। मैंने उखड़ी आवाज में कहा, "गाँव में एक खेत के मामले मे फौजदारी हो गयी है, दुश्मनों के कई घायल हुए हैं, इसलिए पिताजी की गिरफ्तारी हो गयी है गिरफ्तार होते वक्त उन्होंने कहा है, अपने ससुरजी से विवाह के करारवाले वाकी 300 रुपये लेकर, दूसरे दिन जिले में आकर जमानत से छुड़ा लेना।" ससुरजी सन्न हो गये। सासुजी रोने लगीं, और-और लोगों को काठ मार गया। ससुरजी के पास रुपये नहीं थे। पर सासुजी घवरायीं कि ऐसे मौके पर मदद न की जायगी, तो त्रिपाठीजी कैद से छुटकर अपने लड़के की दूसरी शादी कर लेंगे। इस विचार से नथ, करधनी, पायजेब आदि कुछ गहने रेहन कर 150 रु. मुझे देती हुई बोलीं, "बच्चा, इससे ज्यादा नहीं हो सका; हम तो तुम्हारे सदा के ऋणी हैं; फिर धीरे-धीरे पूरा कर देंगे, त्रिपाठी से हाथ जोड़कर हमारी प्रार्थना है।"

मैंने उन्हें सान्त्वना दी कि वाकी रुपये लेने मैं उनके घर कभी न आऊँगा। एक विपत्ति की बात थी, वह इतने से टल जायगी। सासुजी मारे आनन्द के रोने लगीं। मैंने बड़ी भक्ति से उनके चरण छुए, और यथासमय स्टेशन आकर कलकत्ते का टिकट कटाया।

यहाँ से मेरे नये जीवन की नींव पड़ी। अखबारों मे देखा, सुकुल प्रथम श्रेणी में पास हुआ है। चार साल बाद वह बी. ए. हुआ, एम. ए. हुआ, मैं मालूम करता रहा, अच्छी जगह पायी, अब परीक्षा समाप्त कर परीक्षक है; मैं ज्यों-का-त्यों; एक बार धोखा खाकर बराबर धोखा खाता रहा; एक परीक्षा की तैयारी न करके कभी पास न हो सका।— कितनी परीक्षाएँ दीं।

तब से यह आज सुकुल से मेरी मुलाकात है। एक बार सारा इतिहास मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा गया। अब वह पिताजी नहीं, माताजी नहीं, पत्नी नहीं, केवल मैं हूँ, और परीक्षा-भूमि, सामने प्रश्नों की अगणित तरंग-माला !

मैं विचार में था। जब आँख खुली, साकार सुघरता मेरे सामने थी, अविचल दृष्टि से मुझे देखती हुई। अंजलि बाँधकर नमस्कार किया, ललित अँगरेजी से संवर्द्धित करते हुए—"Good morning, poet of Vers Libre !" मैं उठा। नमस्कार कर मुकुल के नजदीकवाली कुर्सी पर बैठने के लिए बड़े अदब से हाथ बढ़ाकर बताया।

वह खड़ी थीं। लहराती हुई मन्द गति से चलीं। बैठकर मुझे देखकर मुस्कराती हुई बोलीं, "आप खूब लिखते हैं।"

प्यासा मृग-मरीचिका के सरोवर का व्यंग्य नहीं समझता। मुझे यह पहली

तारीफ मिली थी। इच्छा हुई, जाऊँ, महादेव बाबू को भी बुला लाऊँ, कहूँ कि अब अमृत निकलने लगा है, चुल्लू बाँधकर चलिए। लेकिन अभी उतने अमृत से मुझे ही अघाव न हुआ था। बैठा हुआ एकान्त भक्त की दृष्टि से देखता रहा।

रक्त अधरों के करारों से अमृत का निर्झर बहा, वह बोली, "सुकुल आपकी कविता नहीं समझते, मैं समझाती हूँ।"

सुकुल न रह सके। कहा, "ऐसा समझना वास्तव में कहीं नहीं देखा; असर भी क्या; चाहे कुछ न समझिए, पर सुनने से जी नहीं ऊबता। एम. ए. क्लास तक किसी प्रोफेसर के लेक्चर में यह असर न था।"

"हाँ-हाँ जनाब," देवीजी मेरुमूल सीधा करके बोली, "यह एम. ए. क्लास से आगे की पढ़ाई है, जब पास करके आये थे, हाथ-भर की चोटी थी, समझ में एक वैसी ही मेख।"

सुकुल की चोटी मेरी निगाह मे सुकुल से अधिक परिचित थी। पर उनके आने पर मैंने उन्हें ही देखा था। चोटी सही-सलामत है या नहीं, मालूम करने के लिए निगाह उठायी कि देवीजी बोली, "अब तो चाँद है। सुकुल को सुकुल बनाते, सच कहती हूँ, मुझे बड़ी मिहनत उठानी पड़ी है।"

उन्हें धन्यवाद दूँ, हिम्मत बाँध रहा था कि बोली, "मैं स्वयं सुकुल की सह-धर्मिणी नहीं।"

मेरा रंग उड़ गया।

मुझे देखकर, मेरे ज्ञान पर हँसकर जैसे बोली, "सुकुल स्वयं मेरे सहधर्मी है।"

मैं साहित्यिका को तअज्जुब की निगाह देखने लगा।

इतने पर उनकी कृपा की दृष्टि मुझ पर पड़ी। बोलीं, "मैं आपको भी सह-धर्मी बनाना चाहती हूँ।"

मैं चौंका; सोचा, 'क्या यह द्रौपदीवाला धर्म है ?'

देवीजी ने कलाईवाली घड़ी देखी और उठकर खड़ी हो गयीं। भौंहें चढ़ाकर बोलीं, "बहुत देर हो गयी, चलिए, आपको लेने आयी थी, टैक्सी खड़ी है।" फिर बढ़कर, मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बड़े ही मधुर स्वर से पूछा, "आप मुर्गी तो खाते हैं ?"

मैंने सुकुल को देखा। सुकुल सिर्फ मुस्कराये। समझकर मैंने कहा, "मेरा तो बहुत पहले से सिद्धान्त है।"

वह चलीं। मैं भी उसी तरह चद्दर ओढ़े सुकुल के पीछे चला।

रास्ते-भर तरह-तरह के विचार लड़ते रहे। समाज में इतनी आजादी नहीं। स्त्री के लिए तो बिलकुल नहीं। मुर्गी किसी तरह नहीं चल सकती। मैं खाता हूँ, छिपा-कर। क्या यह स्त्री···, पर सुकुलजी तो सुकुल है।

सुकुल का घर आ गया। एक छोटा-सा दुमंजिला मकान। इधर-उधर बंगालियों की बस्ती। जगह-जगह कूड़े के ढेर; ऊपर मछलियों के सेल्हर, बदबू आती हुई।

हम लोग उतरे। भीतर पैठते दाहने हाथ का एक छोटा-सा बैठका। एक डेढ़ साल के बच्चे को दासी खेलाती हुई। श्रीमतीजी को देखकर बच्चा मा-मा करता हुआ उतावला हो गया; दोनो हाथ फैलाकर मा के पास आने के लिए कूदकर दासी की गोद में लटक रहा। लेकर देवीजी प्यार करने लगी। सुकुल ने दासी को मकान खोलने के लिए कुंजी दी।

एक सहृदय बात कहना चाहिए, सोचकर मैंने कहा, "भूखा है, शायद दूध पीना चाहता है।"

देवीजी ने षोडशी के कटाक्ष से देखा। कहा, "दासी पिला देगी।"

मैंने पूछा, "क्या यह आपका बच्चा नही है?"

हँसकर बोलीं, "मेरा? है क्यों नहीं? पर दूध मेरे नही होता।"

मैंने निश्चय किया, शिक्षित महिला है, यौवन है, अभी मातृभाव नही आया, इसीलिए दूध नही होता। मन मे विधाता को धन्यवाद देता रहा। "चलिए," वह बोली, "ऊपर चलें, एकान्त मे बातें होंगी। सुकुल बाजार जायँगे मुर्गी लेने।"

बच्चे को फिर दासी के हवाले कर दिया। मैं उनके पीछे चला, यह सोचता हुआ कि एकान्त में सहधर्मी बनाने का प्रस्ताव न हो। चित्त को काबू मे न कर सका, वह पुलकित होता रहा। यह कुछ सजा हुआ शयन-कक्ष था। "बैठिए," कहकर वह स्टोव जलाने लगी। मैं आईने में उनकी पम्प करती तस्वीर देखता रहा।

चाय, पान और सिगरेट मेज पर लगाकर बैठी। प्लेट पकड़कर मेरा प्याला बढ़ाती हुई मधुर कण्ठ से बोली, "शौक कीजिए।"

विनम्र भाव से मैंने दूसरी ओरवाली बात पकड़ी, और आँखों में ही उन्हें धन्यवाद दिया।

निगाह नीची कर मुस्कराती हुई उन्होंने अपना प्याला होंठों से लगाया। आधी चाय चुक जाने पर पूछा, "आप मेरे सहधर्मी हैं तो?"

पेट में, उतनी ही चाय से समन्दर लहराने लगा। ऊपर तूफान। श्याम तट पर भावों के कितने सजे सुदृढ मकान उड़ गये। ऐसी खुशी हुई। कहा, "आप लेकिन सुकुल की···"

"बीबी है—? हाँ, हूँ।"

"फिर मैं···"

"कैसे बीबी बना सकता हूँ?"

ऐसा धर्म-संकट जीवन में कभी नही पड़ा। मेरा सारा समन्दर सूख गया, तूफान न जाने कहाँ उड़ गया, सिर्फ रेगिस्तान रह गया, जो इस ताप से और तपने लगा।

मुझे चुपचाप बैठा अनमेल दृष्टि से देखता हुआ देखकर वह बोलीं, "आप बुरा न मानें, मैंने देखा है, मर्दों मे एक पैदायशी नासमझी है; वह खासतौर से खुलती है जब औरतों से वे बातचीत करते हैं।"

मान लेने मे ही बचत मालूम दी। मैंने कहा, "जी हाँ, औरतों के सामने उनकी समझ काम नही करती।"

"हाँ," वह बोलीं, "सुकुल को आदमी बनाती-बनाती मैं हार गयी। 'बीबी' को ही लीजिए। बीबी तो मैं सुकुल की भी हो सकती हूँ; हूँ ही, आपकी भी हो सकती हूँ।"

मैं सूख तो गया, पर प्रसन्नता फिर आयी। मैंने बिना कुछ सोचे एक उद्रेक में कह दिया, "हाँ।" "आप नहीं समझे" वह बोली, "आप साहित्यिक है तो क्या, फिर भी सुकुल के दोस्त है। बीबी की बहुत व्यापकता है।"

"जरूर," मैंने कहा।

उन्होंने कान न दिया। कहती गयी—

"छोटी बहन, भतीजी, लड़की, भयहू (छोटे भाई की स्त्री) सबके लिए बीबी शब्द आता है। आपकी 'हाँ' किस अर्थ के लिए है ?"

मैंने डूबकर, कुछ कुल्ले पानी पीकर, जैसे थाह पायी। प्रसन्न होने की चेष्टा करते हुए, "बहन के अर्थ में।"

उन्होने कहा, "देखिए,—मर्द की बात एक होती है।"

इज्जत बचाने के लिए और जोर देकर मैंने कहा, "हाँ, मुकर जाऊँ, तो मर्द नहीं।"

लजाकर उन्होंने एक बार अपनी आँख बचायी। सँभलकर बोलीं, "हम बड़ी विपत्ति में है। साल-भर से छिपे फिरते है। मैं बचने के लिए सुकुल से उनके मित्रों का परिचय पूछती रही। सिर्फ आपका परिचय मुझे त्राण देनेवाला मालूम दिया। पर पता मालूम न था। साल-भर से लगा रहे हैं।"

मैंने चितवन देखी। आँखें सजल हो आयी। कहा, "मैं तैयार हूँ।"

वह उठ खड़ी हुई। सामने आ, हाथ पकड़कर कहा, "भाईजी, मेरी रक्षा कीजिए। सुकुल का घर छूटा हुआ है, जिस तरह हो, मुझे अपने कुल में मिलाकर, सुकुल से व्याह साबित कीजिए।"

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें; दो बूँद आँसू कपोलों से बहकर मेरी जाँघ पर टपके। मैं खड़ा हो गया, और अपनी चादर से उसके आँसू पोछते हुए कहा, "तुम मेरे चाचाजी की लड़की, मेरी छोटी बहन हुई। मेरे चाचा सस्त्रीक बंगाल मे आकर गुजरे हैं। उनके एक कन्या भी थी, देश से आयी थी।"

आनन्द से भरकर, वह मेरा हाथ लेकर खेलने लगी। इसी समय सुकुल आये। पूछा, "रामकहानी हो गयी ?"

मैंने कहा, "अभी नही, कहानी से पहले भूमिका समाप्त हुई है।"

"सुकुल," भरकर उसने कहा, "कोलम्बस को किनारा दिखा।"

सुकुल बड़े प्रसन्न पदक्षेप से मेरे पास आये। पूछा, "चाय कुछ बची है ?"

"सब की सब," मैंने कहा, "पर ठण्डी हो गयी होगी, गरम करा लो।" बीबी की तरफ मुड़कर पूछा, "लेकिन तुम्हारा नाम अभी नही मालूम कर पाया।"

"जहाँ से आयी हूँ," उसने कहा, "वहाँ की पुखराज हूँ, यहाँ की पुष्कर-कुमारी।"

"कुँवर," मैंने कहा, "जल्दी करो, तुम्हारी मुर्गी स्वादिष्ट होगी, पर कहानी और स्वाददार हो। दोनों के लिए उतावली है ?"

कुँवर चाय बनाने लगी। पम्प करते समय सिर की साड़ी सरक गयी। फिर नहीं सँभाला। सुकुल की आँखें लोभी भौंरे की तरह उसके मुँह से लगी रहीं।

मैंने वहीं स्नान किया। सुकुल की धोती पहनी! भोजन किया—बिलकुल मुसलमानी खाना। वैसी ही चपातियाँ, वैसा ही कोरमा। वही चटनी, वही मुरब्बा, वही मिठाई। खाते हुए पूछा, "कुँवर, हिन्दू भोजन भी पका लेती हो या नहीं?" उसने 'हाँ' कहकर सुकुल की तरफ इशारा किया कि इनसे सीखा है।

"किताब छोड़कर खाना पकाते बड़ी परेशानी होती होगी तुम्हें।" मैंने कहा।

"सुकुल के लिए मैं सबकुछ सह सकती हूँ।" उसने जवाब दिया।

भोजन समाप्त हुआ। हम लोग उसी कमरे में गये। सुकुल बच्चे को लिये हुए।

पान खाते-खाते मैंने कहा, "अब देर न करो कुँवर।"

कुँवर एक बार नीचे गयी। दासी से कुछ कहकर दुमंजिले का दरवाजा बन्द कर आयी, और अपनी कुर्सी पर बैठी।

मैंने कहा, "अब शुभस्य शीघ्रम् होना चाहिए।"

कुँवर बोली, "मेरी माँ हिन्दू है। लखनऊ के वाजपेयी खानेवाले घर की। मैं उन्हीं से हूँ।"

"तब तो तुम कुलीन हो"—मैंने कहा, "तुम्हारे पिता का नाम?"

"उसका नाम कौन ले," कुँवर बोली, "आपके चाचाजी मेरे पिता है।"

कुँवर भर गयी। रुककर सँभलने लगी। बोली, "वाजपेयीजी को एक ब्याह से सन्तोष नहीं हुआ। दूसरी शादी की। तब मैं पेट मे थी। बेहटा मेरा ननिहाल है। सिर्फ नानी थी। ईश्वर की इच्छा, उनका देहान्त हो गया तब मेरी मा ने ससुर को कई चिट्ठियाँ लिखवायीं; पर उन्होने खबर न ली। घर मे किसी तरह गुजर न हुई, तब, लोटा-थाली बेचकर, उस खर्च से मा लखनऊ गयीं। घर मे पैर रखते, ससुर और पति ने तेवर बदले। पति ने कहा, इसके हमल है, हमारा नहीं। ससुर ने कहा, बदचलन है, धरम बिगाडने आयी है, भली होती, तो चली न आती—वहीं के लोग परवरिश करते। पड़ोसियों की भी राय थी। सौत ने धरती उठा ली। एक रात को पति ने बाँह पकडकर निकाल दिया। मा रास्तो पर मारी-मारी फिरीं। सुबह जिस आदमी ने उनके आँसू देखे, वह मुसलमान था। उस वक्त मा के दिल में हिन्दू, धर्म और भगवान के लिए कितनी जगह थी, आप सोच सकते हैं। निस्सहाय, अन्तःसत्त्वा, अबला केवल आश्रय चाहती थी, सहानुभूतिपूर्ण मनुष्यतायुक्त; वह एक मुसलमान से प्राप्त हुआ। मुसलमान की बातों में विधर्मीपन न था। एक स्त्री के प्रति पुरुष का जैसा चाहिए, वैसा आश्वासन, विश्वास और पौरुष था। मा आकृष्ट हुईं। वह मा को ले चला। आगे वह, पीछे मा। मा फूल के कड़े-छड़े-धोती पहने हुए, मुसलमान के पीछे चलती साफ हिन्दू-महिला मालूम दे रही थी। ऐसे वक्त एक आर्यसमाजी की निगाह पड़ी। उसने पीछा किया। मुसलमान बढ़ता हुआ घर पहुँचा। पर उसे हिन्दू का पीछा करना मालूम हो गया था, इसलिए डरा। घर देखकर वह आर्यसमाजी पुलिस को खबर देने गया।

ईश्वर मुसलमान ने भी पेशबन्दी शुरू की। एक दूसरे मुसलमान दोस्त के ताँगे में परदा लगाकर मा को दूसरे मुसलमान के घर कर आया। पुलिस की तहकीकात जारी हुई, साथ-साथ मा का एक मुसलमान के घर से दूसरे मुसलमान के घर होना। अन्त में वह एक ऐसे घर पहुँची जो एक इन्सपेक्टर, पुलिस, का था। इन्सपेक्टर साहब छुट्टी लेकर उस वक्त रह रहे थे। नौकरी पर चलते समय वह मा को भी साथ लेते गये। अकेले थे। मा सुन्दरी थीं।"

इच्छा हुई इन्सपेक्टर साहब का नाम पूछूँ, पर सोचा, वाजपेयीजी के नाम के साथ बाद को मालूम कर लूँगा।

कुँवर कहती गयी—"इस तरह इन्सपेक्टर साहब ने एक अबला की रक्षा की। मै पैदा हुई। मेरे कई भाई-बहिन और हुए। मैं उर्दू पढ़ती थी; मुसलमान पिताजी का लखनऊ तबादला होने पर, अंग्रेजी पढ़ने लगी। नाइन्थ क्लास मे थी, मा से पिताजी की बातचीत हुई, मेरी शादी के बारे मे। मै कमरे के बाहर खड़ी थी। उन्हे मालूम न था। उस रोज मुझे कुछ आभास मिला। पहले मा को नाराज होने पर जिन शब्दों मे अभिहित करते थे, उनकी सचाई समझी। मेरी आँख खुली। बड़ी लज्जा लगी, हिन्दू मुसलमान इन दोनों शब्दो पर किसी की तरफदारी के लिए। एक रोज मा को रोकर मैंने पकड़ा। जो कुछ सुना और समझा था, कहा, और बाकी ब्योरा समझाने के लिए विनय की। एकान्त में मा ने अपना सारा हाल सुनाया और ईश्वर का स्मरण कर, उनकी इच्छा कहकर खामोश हो गयी। मुझे जातीय गर्व से घृणा हो गयी। मैंने कहा, मैं शादी नही करूँगी; जी-भर पढ़ना चाहती हूँ। बस, यही से मेरे विचार बदले। मैट्रीक्युलेशन पढकर मैं आई. टी. कालेज गयी, और दूसरे विषयों के साथ हिन्दी ली। एफ. ए. पास हो बी. ए. में गयी। आखिरी साल सुकुल को देखा।"

"सुकुल को देखा" कहने के साथ कुँवर का जैसे स्नेह का स्रोत फूट पड़ा। कुछ रस-पान कर मैंने कहा, "कुँवर, यहाँ अच्छी तरह वर्णन करो; हिन्दी के कहानी-लेखक और पाठक बहुत प्यासे हैं।"

कुँवर जमकर सीधी हुई। बोली, "सुकुल तब क्रिश्चियन कालेज मे प्रोफेसर थे। प्रिंसिपल को आश्वासन दिया था कि ईसाई-धर्म को वह संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते है, लेकिन बूढ़े पिताजी का लिहाज है, और वह दो-चार साल मे चलते हैं, बाद को सुकुल क्रिश्चियन के अलावा दूसरा अस्तित्व नही रखते। कुछ निबन्ध भी प्रमाण के तौर पर लिखे। दूरदर्शी प्रिंसिपल ने तब सिफारिश की, और इन्हें जगह मिली। मेरे मकान के सामने ठहरे थे। बड़ी सँभाल से हैट लगाते थे कि चोटी कही से न देख पड़े, पगड़ी के भीतर विभीषण के तिलक की तरह। कभी मिसेज सुकुल आती थी, कभी अकेले ठोकते खाते थे। मुझे इतना जानते थे कि इस मकान मे कोई कालेज जाती है। एक दिन की बात। मैं छत पर थी। शाम हो रही थी। सुकुल बराम्दे में बैठे थे। मौसम बरसात का। बादल मदन की वैजयन्ती बने हुए। ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़-पौधे लोट-पोट। क्या कहूँ, मैं भी ऐसी हवा से लहरायी। बहुत पहले, कुछ ईंटें बाहर देखने के लिए जमाकर रक्खी थी। उन पर खड़ी हो गयी। अवरोध के पार सिर उठाकर देखा। सुकुल बैठे थे। कई बार पहले

भी देख चुकी थी। सुकुल ने न देखा था। अब के निगाह एक हो ही गयी। सुकुल की जनरल की मूछें—बाघ का मुँह—कालिदास की आँखें! —माफ कीजियेगा, मैं बकरे को कालिदास कहती हूँ।—टकटकी बँध गयी। मुझे किसी ने जैसे गुदगुदा दिया। इतनी बिजली भर गयी कि मैंने फौरन सुकुल को फौजी सलामी दी। होश में आ, लजाकर बैठ गयी। फिर कई दिन आँखें नही मिलायी, छिप-छिपकर देखती रही। सुकुल दूसरो की नजर बचाते कितने बेचैन थे! मुझे लुत्फ आने लगा, शिकार की तडफड़ाहट से शिकारी को जो खुशी होती है। बराम्दे मे सुबह-शाम बैठना सुकुल का काम हो गया। कहीं न जाते थे। इधर-उधर देखकर निगाह उसी जगह जमा देते थे। जगह खाली देखकर आह भरते थे। मैं दीवार के छेद से देखती थी। एक रोज फिर उसी तरह दर्शन देने की इच्छा हुई। ईंटें बिखेर देती थी। इकट्ठी की। खडी हुई। सूरज मुँह के सामने था। सुकुल ने देखते ही हाथ जोडकर प्रणाम किया। मैं कागज का एक टुकड़ा ले गयी थी। उसकी गोली बनाकर उसे नीचे डाल दिया। उस पर सुकुल की जैसी निगाह थी, वैसी नादिरशाह की कोहनूर पर न रही होगी, न अंग्रेजो की अवध पर।"

मारे आकर्षण के मुझसे न रहा गया। पूछा, "क्या लिखा था?"

"कुछ नही," कुँवर बोली, "वह कोहनूर की ही तरह सफेद था। सुकुल ने उसे उठाकर बडे चाव से खोला। और, यद्यपि उसमे कुछ न लिखा था, फिर भी, कुछ लिखा होता, तो सुकुल को इतनी सरसता न मिली होती—उस शून्य पृष्ठ पर विश्व की समस्त प्रेमिकाओ की कविता लिखी थी। सुकुल उसे लेकर बराम्दे में आये, और मुझे दिखाकर हृदय से लगा लिया। मैं मुस्किरा कर विदा हुई। इस खाली के बाद भरी दागने लगी। रोज एक गोली चलाती थी, बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम आदि के दोहे और कवित्त लिख-लिखकर। अन्त में सुकुल का किला तोड़ लिया। एक दिन एक गोली मे दागकर कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी—रात-भर दरवाजा खुला रखना, गयी और अपने किले पर अधिकार कर समझा दिया कि इम्तहान के बाद स्थायी रूप से यहाँ आकर निवास करूँगी। सुकुल अपनी भूलों का बयान करते रहे—कब क्या करते क्या हो गया। पर मैंने कोई भूल की ही नही थी। मिसेज सुकुल से शादी करके सुकुल के पिताजी ने और सुकुल ने, मुमकिन है, भूल की हो। मैंने यह जरूर सोचा कि मेरे कारण सुकुल की मुसीबतें बढ़ सकती है, पर साथ ही यह खयाल आया कि कोई पहलू उठाइए, सामने मुसीबत है—अब कदम पीछे नही पड सकता। जहाँ सुकुल हर चाल पर चूकते थे, वहाँ मैंने पहले ही मात दी—इम्तहान मे बैठी, और सुकुल के घर आकर मालूम किया, पास हुई, और रायबहादुर बन्नूलाल-हिन्दी-मेडल पाया। और फिर डिगरी लेने नही गयी। इम्तहान के बाद, जब एक रात को हमेशा के लिए सुकुल के घर आकर बैठी, बड़ा तहलका मचा, कुछ ढूंढ-तलाश के बाद जब मैं नही मिली। निश्चय हुआ कि मेरी मर्जी से किसी ने मुझे भगाया। सुकुल पर शक हुआ। थाने मे रिपोर्ट हुई। सुकुल मुझे कहाँ रक्खें—घबराये। दीवार से बनी एक आलमारी थी। आलमारी के नीचे एक तहखाना छोटा-सा था। मैं अब जैसी हूँ, तब इससे और दुबली थी।—जगन्नाथजी मे, कुछ महीने हुए, कलियुग की मूर्ति देखी—कन्धे पर बीबी को

बैठाले मियाँ लड़के की उँगली पकड़े बाप को धतकार रहे हैं, मेरी इच्छा हुई, सुकुल कलियुग बनें। सुकुल को कई दफ़े कलियुग बना चुकी हूँ। धतकराने के लिए, कहती थी सामने समझो हिन्दूपनरूपी तुम्हारा बाप है। सुकुल धतकारते थे। गरज यह कि उस तहखाने मे मैं आसानी से आ सकती थी। सुकुल से मैंने कहा, ऊपर कुछ कपड़े डाल दो, साँस लेने की जगह मैं कर लूंगी। आलमारी के ऊपरवाले ताकों में चीजें पहले से रक्खी थी। बाहर से आलमारी बन्द कराके ताला लगवा देती थी। इस तरह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घण्टे दम साधने लगी। जब सुकुल कालेज जाते थे, तब बाहर से ताला बन्द कर लेते थे। जब लौटते थे, तब बाहर दरवाजा बन्द कर लेते थे। कोई पुकारता था, तो मैं तहखाने में जाती थी, आलमारी का ताला बन्द करके सुकुल बाहर निकलते थे। तीसरे दिन सही-सही पुलिस आ गयी। सुकुल उसी तरह बाहर निकले। प्रभातकाल था, बल्कि उषःकाल। दारोगा मुसल-मान। डटकर तलाशी लेने लगा। आलमारी के पास आकर खड़ा हुआ। मैं समझ गयी, यह साँस की आहट ले रहा है। मैं मुँह से साँस लेने लगी। फिर आलमारी नहीं खोलवायी, दराज से देख-दाखकर चला गया। सुकुल उसे विदा कर उसी तरह भीतर आये। मुझे निकाला। मैं खिलखिलाकर हँसी। फिर सुकुल से जल्द मकान बदलने के लिए कहा। तलाशी की खबर चारों तरफ फैली। सुकुल के गाँव भी पहुँची। सुकुल ने भी अब तक तलाशी का हाल लिखा, पर मकान बदलकर। यह मकान बड़ा था। बगल-बगल दो आँगन थे। मेरा खयाल रखकर लिया गया था। चिट्ठी पा सुकुल के भाई मिसेज सुकुल को लेकर आये। हम पहले से सतर्क थे। बड़े मकान मे सुकुल रहने लगे। मैं अपना गुप्त जीवन व्यतीत करती रही। मुझे कोई कष्ट न था; पर सुकुल की ड्यूटी बढ़ गयी। सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य, 3-4 महीने रहकर मिसेज सुकुल बीमार पड़ीं; और 7-8 दिन के बुखार में उनका इन्तकाल हो गया। सुकुल के भाई चले गये थे। इन्होने फिर किसी को नहीं बुलाया। किसी तरह मित्रों की मदद से उनका अन्तिम संस्कार कर दिया। सुकुल से पूछकर मैं तुम्हारा हाल मालूम कर चुकी थी; जानती थी, मुझे ही अपनी नाव खेनी है; पर तुम्हारा पता मालूम न कर सकी, इतनी ही चिन्ता रह-रहकर होती थी। मिसेज सुकुल के रहते मैंने मिस्टर सुकुल को तुम्हारे गाँव भेजा था। तुम्ही जैसे मेरे सहारा हो सकते थे। मिसेज सुकुल के रहने पर मुझे कोई अड़चन न थी, न अब, न रहने पर, कोई सुविधा है। यह बच्चा मिसेज सुकुल का है। बड़ी कठि-नाइयों से तुम्हारा पता लगा था। मिसेज सुकुल के गुजरने पर हम लोगों को विवश होकर लापता होना पड़ा। पास इतना धन था कि साल-डेढ़ साल का खर्च चल जाय। इतने दिनों बाद हमारी साधना सफल हुई।"

मैंने कुंवर को धन्यवाद दिया। कलकत्ते मे ही उसका व्याह कर दूंगा, यह आश्वासन देकर उससे बिदा ली।

सेठजी बैठे थे। एकान्त मे ले जाकर यह हाल उनसे कहा। वह सहमत हो गये। कहा, मगर मुंशीजी से न कहियेगा, उनके पेट में बात नही रहती।

शुभ मूहूर्त में विवाह की तैयारियाँ होने लगी। एक दिन आमन्त्रित हिन्दी-भाषी

विभिन्न प्रान्तों के साहित्यिकों की उपस्थिति में सुकुल के साथ श्रीपुष्करकुमारी का ब्याह कर दिया।

प्रीति-भोज में अनेक कनवजिए सम्मिलित थे। देश मे यह शुभ सन्देश सुकुल के पहुंचने से पहले पहुँचा। कुँवर अब भी है।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, सितम्बर, 1937। सुकुल की बीवी में संकलित]

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं. गजानन्द शास्त्री की धर्म-पत्नी है। श्रीमान् शास्त्रीजी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी-जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नही लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्रीजी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइन-बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणीजी उतनी ही उम्र मे गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चली, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड रही है, धर्म की रक्षा के लिए।

इससे सिद्ध है, धर्म बहुत ही व्यापक है, सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवालो का कहना है कि नश्वर ससार का कोई काम धर्म के दायरे से बाहर नही। सन्तान पैदा होने के पहले से मृत्यु के बाद—पिण्डदान तक जीवन के समस्त भविष्य, वर्तमान और भूत को व्याप्त कर धर्म-ही-धर्म है।

जितने देवता है, चूंकि देवता है, इसलिए धर्मात्मा है। मदन को भी देवता कहा है। यह जवानी के देवता है। जवानी जीवन-भर का शुभ मुहूर्त है, सबसे पुष्ट, कर्मठ और तेजस्वी देवता मदन, जो भस्म होकर नही मरे; लिहाजा यह काल और काल के देवता सबसे ज्यादा सम्मान्य, फलतः क्रियाएँ भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, धार्मिकता लिये हुए। मदन को कोई देवता न माने तो न माने, पर यह निश्चय है कि आज तक कोई देवता इन पर प्रभाव नही डाल सका। किसी धर्म, शास्त्र या अनुशासन को यह मानकर नही चले, बल्कि, धर्म, शास्त्र और अनुशासन के मानने-वालों ने ही इनकी अनुवर्तिता की है। यौवन को भी कोई कितना निंद्य कहे, चाहते सब है, वृद्ध सर्वस्व भी स्वाहा कर। चिह्न तक लोगो को प्रिय है—खिजाब की कितनी खपत है! धातु-पुष्टि की दवा सबसे ज्यादा बिकती है। साबुन, सेण्ट, पाउडर, क्रीम, हेजलीन, वेसलीन, तेल-फुलेल के लाखों कारखाने हैं और इस दरिद्र देश मे। जब न थे, तब रामजी और सीताजी उबटन लगाते थे। नाम और प्रसिद्धि कितनी है—संसार की सिनेमा-स्टारो को देख जाइए। किसी शहर में गिनिए—कितने सिनेमा-हाउस है। भीड भी कितनी—आवारागर्द मवेशी काइन्ज हाउस में इतने न मिलेगे। देखिए—हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध, क्रिस्तान,

सभी; साफा, टोपी, पगड़ी, कैप, हैट और पाग से लेकर नंगा सिर—घुटन्ना तक, अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, साम्राज्य-वादी, आतंकवादी, समाजवादी, काजी, सूफी से लेकर छायावादी तक; खड़े-वेड़े, सीधे-टेढ़े सब तरह के तिलक-त्रिपुण्ड; बुरकेवाली, घूँघटवाली, पूरे और आधे और चौथाई वालवाली, खुली और मुँदी चश्मेवाली आँखें तक देख रही हैं। अर्थात् संसार के जितने धर्मात्मा हैं, सभी यौवन से प्यार करते है। इसलिए उसके कार्य को भी धर्म कहना पड़ता है। किसी के न कहने—न मानने से वह अधर्म नही होता।

अस्तु, इस यौवन के धर्म की ओर शास्त्रिणीजी का धावा हुआ, जब वह पन्द्रह साल की थीं अविवाहिता। यह आवश्यक था, इसलिए पाप नहीं। मैं इसे आवश्यकतानुसार ही लिखूँगा। जो लोग विशेषरूप से समझना चाहते हों, वे जितने दिन तक पढ़ सकें, काम-विज्ञान का अध्ययन कर लें। इस शास्त्र पर जितनी पुस्तकें हैं, पूरे अध्ययन के लिए पूरा मनुष्य-जीवन थोडा है। हिन्दी में अनेक पुस्तकें इस पर प्रकाशित हैं, वल्कि प्रकाशन को सफल वनाने के लिए इस विषय की पुस्तके आधार मानी गयी हैं। इससे लोगों को मालूम होगा कि यह धर्म किस अवस्था से किस अवस्था तक किस-किस रूप में रहता है।

शास्त्रिणीजी के पिता जिला बनारस के रहनेवाले है, देहात के, पयासी, सरयूपारीण ब्राह्मण; मध्यमा तक संस्कृत पढ़े; घर के साधारण जमीदार, इसलिए आचार्य भी विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। गाँव मे एक वाग कलमी लँगड़े का है। हर साल भारत-सम्राट् को आम भेजने का इरादा करते है, जव से वायुयान-कम्पनी चली। पर नीचे से ऊपर को देखकर ही रह जाते है, साँस छोड़कर। जिले के अँगरेज हाकिमों को आम पहुँचाने की पितामह के समय से प्रथा है। यह भी सनातन-धर्मानुयायी हैं। नाम पं. रामखेलावन है।

रामखेलावनजी के जीवन में एक सुधार मिलता है। अपनी कन्या का, जिन्हें हम शास्त्रिणीजी लिखते है, नाम उन्होने सुपर्णा रक्खा है। गाँव की जीभ मे इसका यह रूप नही रह सका; प्रोग्रेसिव राइटर्स की साहित्यिकता की तरह 'पन्ना' बन गया है। इस सुधार के लिए हम पं. रामखेलावनजी को धन्यवाद देते हैं। पण्डितजी समय काटने के विचार से आप ही कन्या को शिक्षा देते थे, फलस्वरूप कन्या भी उनके साथ समय काटती गयी और पन्द्रह साल की अवस्था तक सारस्वत में हिलती रही। फिर भी गाँव की वधू-वनिताओं पर, उसकी विद्वत्ता का पूरा प्रभाव पड़ा। दूसरो पर प्रभाव डालने का उसका जमींदारी स्वभाव था, फिर संस्कृत पढी, लोग मानने लगे। गति में चापल्य उसकी प्रतिभा का सबसे बड़ा लक्षण था।

उन दिनो छायावाद का बोलवाला था, खासतौर से इलाहाबाद मे लड़के पन्त के नाम की माला जपते थे ध्यान लगाये। कितनी लड़ाइयाँ लडीं प्रसाद, पन्त और माखनलाल के विवेचन में। भगवतीचरण वायरन से आगे हैं, पीछे रामकुमार, कितनी ताकत से सामने आते हुए। महादेवी कितना खीचती है।

मोहन उसी गाँव का इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी. ए. (पहले साल) मे पढ़ता था। यह रंग उस पर भी चढ़ा और दूसरो से अधिक। उसे पन्त की प्रकृति

प्रिय थी, और इस प्रियता से जैसे पन्त में बदल जाना चाहता था। संकोच, लज्जा, मार्जित मधुर उच्चारण, निर्भीक नम्रता, शिष्ट आलाप, सजधज उसी तरह। रचनाओं से रच गया। साधना करते सधी रचना करने लगा। पर सम्मेलन शरीफ अब तक नहीं गया। पिता हाईकोर्ट मे क्लर्क थे। गर्मी की छुट्टियाँ में गाँव आया हुआ है।

सुपर्णा से परिचय है जैसे पर्ण और सुमन का। सुमन पर्ण के ऊपर है, सुपर्णा नहीं समझी। जमीदार की लड़की, जिस तरह वहाँ की समस्त डालो के ऊपर अपने को समझती थी, उसके लिए भी समझी। ज्यों-ज्यों समय की हवा से हिलती थी, सुमन की रेणु से रँग जाती थी; समझती थी, वह उसी का रंग है। मोहन शिष्ट था, पर अपना आसन न छोड़ता था।

सुपर्णा एक दिन बाग मे थी। मोहन लौटा हुआ घर आ रहा था। सुपर्णा रँग गयी। बुलाया। मोहन फिर भी घर की तरफ चला।

"मोहन ! ये आम बाबूजी दे गये हैं, ले जाओ। तकवाहा बाजार गया है।"

मोहन बाग की ओर चला। नजदीक गया तो सुपर्णा हँसने लगी, "कैसा घोका देकर बुलाया है ?—आम बाबूजी ने तुम्हारे यहाँ कभी और भी भिजवाये हैं ?" मोहन लजाकर हँसने लगा।

"लेकिन तुम्हारे लिए कुछ आम चुनकर मैंने रक्खे हैं। चलो।"

मोहन ने एक बार संयत दृष्टि से उसे देखा। सुपर्णा साथ लिये बीच बाग की तरफ चली, "मैंने तुम्हें आते देखा था, तुमसे मिलने को छिपकर चली आयी। तकवाहे को सौदा लेने बाजार (दूसरे गाँव) भेज दिया है। याद है मोहन ?"

"क्या ?"

"मेरी गुइँयों ने तुम्हारे साथ, खेल मे।"

"वह तो खेल था।"

"नही वह सही था। मैं अब भी तुम्हें वही समझती हूँ।"

"लेकिन तुम पयासी हो। शादी तुम्हारे पिता को मंजूर न होगी।"

"तो तुम मुझे कही ले चलो। मैं तुमसे कहने आयी हूँ। दूसरे से ब्याह करना मैं नही चाहती।"

मोहन की सुन्दरता गाँव की रहनेवाली सुपर्णा ने दूसरे युवक मे नही देखी। उसका आकर्षण उसकी मा को मालूम हो चुका था। उसका मोहन के घर जाना बन्द था। आज पूरी शक्ति लडाकर, मौका देखकर मोहन से मिलने आयी है। मोहन खिंचा। उसे यहाँ वह प्रेम न दिखा, वह जिसका भक्त था, कहा—

"लेकिन मैं कहाँ ले चलूँ ?"

"जहाँ रहते हो।"

"वहाँ जो पिताजी है।"

"तो और कही।"

"खायेंगे क्या ?"

खाना पड़ता है, यह सुपर्णा को याद न था। मोहन से लिपटी जा रही थी।

इसी समय तकवाहा बाजार से आ गया। देर का गया था। देखकर सचेत

करने के लिए आवाज दी। सुपर्णा घबरायी। मोहन खड़ा हो गया।

तकवाहा बाग आ सौदा देकर मोहन को जमीदार की ही दृष्टि से घूरता रहा। मतलब समझकर मोहन धीरे-धीरे बाग से बाहर निकला और घर की ओर चला।

तकवाहा धार्मिक था। जैसा देखा था, पं. रामखेलावनजी से व्याख्या समेत कहा। साथ ही इतना उपदेश भी दिया कि मालिक! पानी की भरी खाल है, कल क्या हो जाय! बिटिया रानी का जल्द ब्याह कर देना चाहिए।

पं. रामखेलावनजी भी धार्मिक थे। धर्म की सूक्ष्मतम दृष्टि से देखने लगे तो मालूम पड़ा कि सुपर्णा के गर्भ है, नौ-दस महीने में लड़का होगा। फिर? इस महीने लगन है—ब्याह हो जाना चाहिए।

जल्दी मे बनारस चले।

पं. गजानन्द शास्त्री बनारस के वैद्य हैं। वैदकी साधारण चलती है, बड़े दाँव-पेंच करते है तब। पर आशा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सदा बड़े-बड़े आदमियों की तारीफ करते है और ऐसे स्वर से, जैसे उन्ही मे से एक हों। वैदकी चले इस अभिप्राय से शाम को रामायण पढ़ते-पढ़वाते है तुलसी-कृत; अर्थ स्वयं कहते हैं। गोस्वामीजी के साहित्य का उनसे वड़ा जानकार—विशेषकर रामायण का, भारतवर्ष में नहीं, यह श्रद्धापूर्वक मानते है। सुननेवाले ज्यादातर विद्यार्थी हैं, जो भरसक गुरु के यहाँ भोजन करके विद्याध्ययन करने काशी आते है। कुछ साधारण जन है, जिन्हे असमय पर मुफ्त दवा की जरूरत पड़ती है। दो-चार ऐसे भी आदमी, जो काम तो साधारण करते हैं, पर असाधारण आदमियो में गप लड़ाने के आदी हैं। मजे की महफिल लगती है। कुछ महीने हुए, शास्त्रीजी की तीसरी पत्नी का असच्चिकित्सा के कारण देहान्त हो गया है। बड़े आदमी की तलाश में मिलनेवाले अपने मित्रों मे शास्त्रीजी बिना पत्नीवाली अड़चनों का बयान करते हैं, और उतनी बड़ी गृहस्थी आठाबाठा जाती है—इसके लिए विलाप। सुपात्र सरयूपारीण ब्राह्मण हैं; मामखोर सुकुल।

पं. रामखेलावनजी बनारस मे एक ऐसे मित्र के यहाँ आकर ठहरे, जो वैद्यजी के पूर्वोक्त प्रकार के मित्र हैं। रामखेलावनजी लड़की के ब्याह के लिए आये हैं, सुनकर मित्र ने उन्हें ऊपर ही लिया, और शास्त्रीजी की तारीफ करते हुए कहा, सुपात्र बनारस शहर मे न मिलेगा। शास्त्रीजी की तीसरी पत्नी अभी गुजरी है; फिर भी उम्र अभी अधिक नहीं, जवान है। शास्त्री, वैद्य, सुपात्र और उम्र भी अधिक नही—सुनकर पं. रामखेलावनजी ने मन-ही-मन बाबा विश्वनाथ को दण्डवत् की और बाबा विश्वनाथ ने हिन्दू-धर्म के लिए क्या-क्या किया है, इसका उन्हे स्मरण दिलाया—वह भक्तवत्सल आशुतोष हैं, यह यहीं से विदित हो रहा है—मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी पुरी में पहले से वर लिये बैठे है—आने के साथ मिला दिया। अब यह बन्धन न उखड़े, इसकी बाबा विश्वनाथ को याद दिलायी।

पं. रामखेलावनजी के मित्र पं. गजानन्द शास्त्री के यहाँ उन्हें लेकर चले। जमीदार पर एक धाक जमाने की सोची; कहा, "लेकिन बड़े आदमी हैं, कुछ लेन-

देनेवाली पहले से कह दीजिए, आखिर उनकी बराबरी के लिए कहना ही पड़ेगा कि जमीदार हैं।"

"जैसा आप कहे।"

"कुल मिलाकर तीन हजार तो दीजिए, नही तो अच्छा न लगेगा।"

"इतना तो बहुत है।"

"ढाई हजार ? इतने से कम में न होगा। यह दहेज की बात नही, बनाव की बात है।"

"अच्छा, इतना कर दिया जायगा। लेकिन विवाह इसी लगन मे हो जाना चाहिए।"

मित्र चौंका। सन्देह मिटाने के लिए कहा, "भई, इस साल तो नहीं हो सकता।"

पं. रामखेलावनजी घबराकर बोले, "आप जानते ही हैं ग्यारह साल के बाद लडकी जितना ही पिता के यहाँ रहती है, पिता पर पाप चढ़ता है। पन्द्रह साल की है। सुन्दर जोडी है। लडकी अपने घर जाय, चिन्ता कटे। जमाना दूसरा है।"

मित्र को आशा बँधी। सहानुभूतिपूर्वक बोले, "बड़ा जोर लगाना पड़ेगा, अगले साल हो तो बुरा तो नही ?"

पं. रामखेलावनजी चलते हुए रुककर बोले, "अब इतना सहारा दिया है, तो खेवा पार ही कर दीजिए। बडे आदमी ठहरे, कोई हमसे भी अच्छा तब तक आ जायगा।"

मित्र को मजबूती हुई। बोले, "उनकी स्त्री का देहान्त हुआ है, अभी साल भी पूरा नहीं हुआ। बरखी से पहले मंजूर न करेंगे। लेकिन एक उपाय है, अगर आप करें।"

"आप जो भी कहे, हम करने को तैयार हैं, भला हमें ऐसा दामाद कहाँ मिलेगा ?"

"बात यह कि कुल सराधें एक ही महीने में करवानी पडेंगी, और फिर ब्रह्म-भोज भी तो है, और बड़ा। कम-से-कम तीन हजार खर्च होंगे। फिर तत्काल विवाह। आप हजार रुपये भी दीजिए। पर उन्हें नही। अरे रे!—इसे वह अप-मान समझेंगे। हम दें। इससे आपकी इज्जत बढ़ेगी, और आखिर हमे बढ़कर उनसे कहना भी तो है कि बराबर की जगह है ? हजार जब उनके हाथ पर रक्खेंगे कि आपके ससुरजी ने बरखी के खर्च के लिए दिये हैं, तब यह दस हजार के इतना होगा, यही तो बात थी। वह भी समझेंगे।"

पं. रामखेलावनजी दिल से कसमसाये, पर चारा न था। उतरे गले से कहा, "अच्छी बात है।" मित्र ने कहा, "तो रुपये कब तक भेजियेगा ? अच्छा, अभी चलिए : देख तो लीजिए, विवाह की बातचीत न कीजियेगा, नही तो निकाल ही देंगे। समझिए—पत्नी मरी हैं।"

रामखेलावन दबे। धीरे-धीरे चलते गये। "लड़की कुछ पढ़ी भी है ?—पढ़ती थी—तीन साल हुए, जब मैं गया था, गवाही थी—मौका देखने के लिए ?" मित्र ने पूछा।

"लड़की तो सरस्वती है। आपने देखा ही है। संस्कृत पढी है।"

"ठीक है। देखिए, बाबा विश्वनाथ है।" मित्र की तरह पर उतरे गले से कहा।

रामखेलावनजी डरे कि बिगाड़ न दे। दिल से जानते थे, बदमाश है, उनकी तरफ से झूठ गवाही दे चुका है रुपये लेकर; लेकिन लाचार थे; कहा, "हम तो आप मे बाबा विश्वनाथ को ही देखते है। यह काम आपका बनाया बनेगा।"

मित्र हँसा। बोला, "कह तो चुके। गाढे में काम न दे, वह मित्र नही—दुश्मन है।" सामने देखकर, "वह शास्त्रीजी का ही मकान है, सामने।" था वह किराये का मकान। अच्छी तरह देखकर कहा, "है नही बैठक में; शायद पूजा मे है।"

दोनों बैठक मे गये। मित्र ने पं. रामखेलावनजी को आश्वासन देकर कहा, "आप बैठिए। मैं बुलाये लाता हूँ।"

पं. रामखेलावनजी एक कुर्सी पर बैठे। मित्रवर आवाज देते हुए जीने पर चढ़े।

जिस तरह मित्र ने यहाँ रोब गाँठा था, उसी तरह शास्त्रीजी पर गाँठना चाहा। वह देख चुका था, शास्त्री खिजाब लगाते है, अर्थ—विवाह के सिवा दूसरा नही। शास्त्रीजी बढ़-बढकर बातें करते है, यह मौका बढ़कर बातें करने का है। उसका मन्त्र है, काम निकल जाने पर बेटा बाप का नही होता। उसे काम निकालना है।

शास्त्रीजी ऊपर एकान्त में दवा कूट रहे थे। आवाज पहचानकर बुलाया। मित्र ने पहुँचने के साथ देखा—खिजाब ताजा है। प्रसन्न होकर बोला, "मेरी मानिए, तो वह ब्याह कराऊँ, जैसा कभी किया न हो, और वहू अप्सरा, संस्कृत पढी, रुपया भी दिलाऊँ।"

शास्त्रीजी पुलकित हो उठे। कहा, "आप हमे दूसरा समझते है?—इतनी मित्रता—रोज की उठक-बैठक, आप मित्र ही नही—हमारे सर्वस्व है। आपकी बात न मानेंगे तो क्या रास्ता-चलते की मानेंगे?—आप भी!"

"आपने अभी स्नान नही किया शायद? नहाकर चन्दन लगाकर अच्छे कपड़े पहनकर नीचे आइए। विवाह करनेवाले जमीदार साहब हैं। वही परिचय कराऊँगा। लेकिन अपनी तरफ से कुछ कहिएगा मत नही तो, बड़ा आदमी है भड़क जायगा। घर की शेखी में मत भूलियेगा। आप जैसे उसके नौकर हैं। हाँ, जन्म-पत्र अपना हर्गिज न दीजियेगा। उम्र का पता चला तो न करेगा। मैं सब ठीक कर दूंगा। चुपचाप बैठे रहियेगा। नौकर कहाँ है?"

"बाजार गया है।"

"आने पर मिठाई मँगवाइयेगा। हालाँकि खायेगा नही। मिठाई से इनकार करने पर नमस्कार करके सीधे ऊपर का रास्ता नापियेगा। मै भी यह कह दूंगा, शास्त्रीजी ने आधे घण्टे का समय दिया है।"

शास्त्री गजानन्दजी गद्गद हो गये। ऐसा सच्चा आदमी यह पहला मिला है, उनका दिल कहने लगा। मित्र नीचे उतरा और मित्र से गम्भीर होकर बोला, "पूजा मे हैं, मैं तो पहले ही समझ गया था। दस मिनट के बाद आँख खोली, जब

मैंने घण्टी टिनटिनायी। जब से स्त्री का देहान्त हुआ है, पूजा में ही तो रहते हैं। सिर हिलाकर कहा—चलो। देखिए, बाबा विश्वनाथ ही हैं। हे प्रभो! शरणागत-शरण! तुम्हीं हो—बाबा विश्वनाथ!" कहते हुए मित्र ने पलकें मूंद ली।

इसी समय पैरों की आहट मालूम दी। देखा, नौकर आ रहा था। डाँटकर कहा, "पंखा झल। शास्त्रीजी अभी आते है।"

नौकर पंखा झलने लगा। वैद्य का बैठका था ही। पं. रामखेलावनजी प्रभाव में आ गये। आधे घण्टे बाद ज़ीने में खड़ाऊँ की खटक सुन पडी। मित्र उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, उँगली के इशारे पं. रामखेलावनजी को खड़े हो जाने के लिए कहकर। मित्र की देखा-देखी पण्डितजी ने भी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ लिये। नौकर अचम्भे से देख रहा था। ऐसा पहले नहीं देखा था।

शास्त्रीजी के आने पर मित्र ने घुटने तक झुककर प्रणाम किया। पं. राम-खेलावनजी ने भी मित्र का अनुसरण किया। "बैठिए, गदाधरजी," कोमल सभ्य कण्ठ से कहकर गजानन्दजी अपनी कुर्सी पर बैठ गये। वैद्यजी की बढ़िया गद्दीदार कुर्सी बीच में थी। पं. रामखेलावनजी आश्चर्य और हर्ष से देख रहे थे। आश्चर्य इसलिए कि शास्त्रीजी बड़े आदमी तो हैं ही, उम्र भी अधिक नहीं, 25 से 30 कहने की हिम्मत नही पड़ती।

शास्त्रीजी ने नौकर को पान और मिठाई ले आने के लिए भेजा और स्वाभा-विक बनावटी विनम्रता के साथ मित्रवर गदाधर से आगन्तुक अपरिचित महाशय का परिचय पूछने लगे। पं. गदाधरजी बड़े उदात्त कण्ठ से पं. रामखेलावनजी की प्रशंसा कर चले, पर किस अभिप्राय से वह गये थे, यह न कहा। कहा, "महाराज! आप एक अत्यन्त आवश्यक गृहधर्म से मुक्त होना चाहते हैं।"

पलकें मूंदते हुए, भावावेश मे शास्त्रीजी ने कहा, "काशी तो मुक्ति के लिए प्रसिद्ध है।"

"हाँ, महाराज!" मित्र ने और आविष्ट होते हुए कहा, "वह छूट तो सबसे बड़ी मुक्ति है, पर यह साधारण मुक्ति ही है, जैसे बाबा विश्वनाथ के परमसिद्ध भक्त स्वीकारमात्र से इस भव-बन्धन से मुक्ति दे सकते हैं।" कहकर हाथ जोड़ दिये। पं. रामखेलावनजी ने भी साथ दिया।

हाँ, नही, कुछ न कहकर एकान्त धार्मिक दृष्टि को परम सिद्ध पं. गजानन्दजी शास्त्री पलकों के अन्दर करके बैठे रहे।

इसी समय नौकर पान और मिठाई ले आया। शास्त्रीजी ने खटक से आँखें खोलकर देखा, नौकर को शुद्ध जल ले आने के लिए कहकर बडी नम्रता से पं. रामखेलावनजी को जलपान करने के लिए पूछा। पं. रामखेलावनजी दोनो हाथ उठाकर जीभ काटकर सिर हिलाते हुए बोले, "नही महाराज, नहीं, यह तो अधर्म है। चाहिए तो हमे कि हम आपकी सेवा करें, बल्कि आपके सेवा सम्बन्ध मे सदा के लिए—"

"अहाहा! क्या कही!—क्या कही!" कहकर, पूरा दोना उठाकर एक रस-गुल्ला मुँह मे छोडते हुए मित्र ने कहा, "बाबा विश्वनाथजी के वर से काशी का एक-एक बालक अन्तर्यामी होता है, फिर उनकी सभा के परिषद शास्त्रीजी तो—"

शास्त्रीजी अभिन्न स्नेह की दृष्टि से प्रिय मित्र को देखते रहे। मित्र ने, स्वल्प-काल में रामभवन का प्रसिद्ध मिष्ठान्न उदरस्थ कर जलपान के पश्चात् मगही बीड़ों की एक नत्थी मुखव्यादान कर यथा-स्थान रक्खी। शास्त्रीजी विनयपूर्वक नमस्कार कर जीना तै करने को चले। उनके पीठ फेरने पर मित्र ने रामखेलावन-जी को पंजा दिखाकर हिलाते हुए आश्वासन दिया। शास्त्रीजी के अदृश्य होने पर इशारे से पं. रामखेलावनजी को साथ लेकर वासस्थल की ओर प्रस्थान किया।

रामखेलावनजी के मौन पर शास्त्रीजी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका था। कहा, "अब हमें इधर से जाने दीजिए; कल रुपये लेकर आयेंगे। लेकिन इसी महीने विवाह हो जायगा।"

"इसी महीने—इसी महीने," गम्भीर भाव से मित्र ने कहा, "जन्मपत्र लड़की का लेते आइयेगा। हाँ, एक बात और है। बाकी डेढ़ हजार में बारह सौ का जेवर होना चाहिए, नया; आइएगा हम खरीदवा देंगे," दल्लाली की सोचते हुए—कहा, "आपको ठग लेगा। आप इतना तो समझ गये होंगे कि इतने के बिना बनता नहीं, तीन सौ रुपये रह जायँगे। खिलाने-पिलाने और परजों को देने को बहुत है। बल्कि कुछ बच जायगा आपके पास। फिजूल खर्च हो यह मैं नही चाहता। इसीलिए, ठोस-ठोस कामवाला खर्च कहा। अच्छा, नमस्कार!"

शास्त्रीजी का व्याह हो गया। सुपर्णा पति के साथ है। शास्त्रीजी व्याह करते-करते कोमल हो गये थे। नवीना सुपर्णा को यथाभ्यास सब प्रकार प्रीत रखने लगे।

बाग से लौटने पर सुपर्णा के हृदय में मोहन के लिए क्रोध पैदा हुआ। घर-वालों ने सख्त निगरानी रखने के अलावा, डर के मारे उससे कुछ नही कहा। उसने भी विरोध किये बिना विवाह के बहाव में अपने को बहा दिया। मन में यह प्रति-हिंसा लिये हुए, कि मोहन इस बहते मे मिलेगा। और उसे हो सकेगा तो उचित शिक्षा देगी। शास्त्रीजी को एकान्त भक्त देखकर मन मे मुस्करायी।

सुपर्णा का जीवन शास्त्रीजी के लिए भी जीवन सिद्ध हुआ। शास्त्रीजी अपना कारोबार बढ़ाने लगे। सुपर्णा को वैदक की अनुवादित हिन्दी पुस्तकें देने लगे, नाड़ी-विचार चर्चा आदि करने लगे। उस आग में तृण की तरह जल-जलकर जो प्रकाश देखने लगे, वह मर्त्य मे उन्हें दुर्लभ मालूम दिया। एक दिन श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के नाम से स्त्रियों के लिए बिना फीसवाला रोग परीक्षणालय खोल दिया—इस विचार से कि दवा के दाम मिलेंगे, फिर प्रसिद्धि होने पर फीस भी मिलेगी।

लेकिन ध्यान मे सुपर्णा के पढ़ने का कारण कुछ और है। शास्त्रीजी अपनी मेज की सजावट तथा प्रतीक्षा करते रोगियो के समय काटने के विचार से 'तारा' के ग्राहक थे। एक दिन सुपर्णा 'तारा' के पन्ने उलटने लगी। मोहन की एक रचना छपी थी। यह उसकी पहली प्रकाशित कविता थी। विषय था 'व्यर्थ प्रणय'। बात बहुत कुछ मिलती थी। लेकिन कुछ निन्दा थी—जिस प्रेम से कवि स्वर्ग से गिरा जाता है—उसकी। काव्य की प्रेमिका का उसमें वही प्रेम दर्शाया गया था। सुपर्णा चौंकी फिर संयत हुई और नियमित रूप से 'तारा' पढ़ने लगी।

एक साल बीत गया। अब सुपर्णा हिन्दी में मजे में लिख लेती है। मोहन से उसका हाड़-हाड़ जल रहा था। एक दिन उसने पातिव्रत्य पर एक लेख लिखा। आजकल के छायावाद के सम्बन्ध मे भी पढ़ चुकी थी और बहुत कुछ अपने पति से सुन चुकी थी। काशी हिन्दी के सभी वादों की भूमि है। प्रसाद काशी के ही हैं। उनके युवक पाठक शिष्य अनेक शास्त्रियों को बना चुके हैं। पं. गजानन्द शास्त्री गंगा नहाते समय कई बार तर्क कर चुके है, उत्तर भी भिन्न मुनि के भिन्न मत की तरह अनेक मिल चुके हैं। एक दिन शास्त्रीजी के पूछने पर एक ने कहा—"छाया-वाद का अर्थ है शिष्टतावाद; छायावादी का अर्थ है सुन्दर साफ वस्त्र और शिष्ट भाषा धारण करनेवाला; जो छायावादी है, वह सुवेश और मधुरभाषी है; जो छायावादी नही है वह काशी के शास्त्रियों की तरह अँगोछा पहननेवाला है या नंगा है।" दूसरे दिन दो थे। नहा रहे थे। शास्त्रीजी भी नहा रहे थे। "छायावाद क्या है।"—शास्त्रीजी ने पूछा। उन्होने शास्त्रीजी को गगा मे गहरे ले जाकर डुबाना शुरू किया, जब कई कुल्ले पानी पी गये, तब छोड़ा; शिथिल होकर शास्त्रीजी किनारे आये, तब लडको ने कहा, "यही है छायावाद!" फलत: शास्त्रीजी छाया-वाद और छायावादी से मौलिक घृणा करने लगे थे, और जिज्ञासु षोडशी प्रिया को समझाते रहे कि छायावाद वह है, जिसमें कला के साथ व्यभिचार किया जाता है तरह-तरह से। आइडिया के रूप में, सुपर्णा-जैसी ओजस्विनी लेखिका के लिए इतना बहुत था। आदि से अन्त तक उसके लेख मे प्राचीन पतिव्रतधर्म और नवीन छायावादी व्यभिचार प्रचारक के कण्ठ से बोल रहा था। शास्त्रीजी ने कई बार पढा और पत्नी को सती समझकर मन-ही-मन प्रसन्न हुए। वह लेख सम्पादकजी के पास भेजा गया। सम्पादकजी लेखिका-मात्र को प्रोत्साहित करते हैं ताकि हिन्दी की मरुभूमि सरस होकर आबाद हो, इसलिए लेख या कविता के साथ चित्र भी छापते है। शास्त्रिणीजी को लिखा। प्रसिद्धि के विचार से शास्त्रीजी ने एक अच्छा-सा चित्र उतरवाकर भेज दिया। शास्त्रिणीजी का दिल बढ़ गया। साथ उपदेश देने-वाली प्रवृत्ति भी।

इसी समय देश मे आन्दोलन शुरू हुआ। पिकेटिङ्ग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई—पुरुषों का साथ देने के लिए भी। शास्त्रिणीजी की मारफत शास्त्रीजी का व्यवसाय अब तक भी न चमका था। शास्त्रीजी ने पिकेटिङ्ग मे जाने की आज्ञा दे दी। इसी समय महात्माजी बनारस होते हुए कही जा रहे थे, कुछ घण्टो के लिए उतरे। शास्त्रीजी की सलाह से एक जेवर बेचकर, शास्त्रिणीजी ने दो सौ रुपये की थैली उन्हें भेंट की। तन, मन और धन से देश के लिए हुई इस सेवा का साधारण जनता पर असाधारण प्रभाव पड़ा। सब धन्य-धन्य कहने लगे। शास्त्रिणीजी पूरी तत्परता से पिकेटिङ्ग करती रही। एक दिन पुलिस ने दूसरी स्त्रियों के साथ उन्हे भी लेकर एकान्त में, कुछ मील शहर से दूर, सन्ध्या समय, छोड दिया। वहाँ से उनका मायका नजदीक था। रास्ता जाना हुआ। लड़कपन में वहाँ तक वह खेलने जाती थी। पैदल मायके चली गयी। दूसरी देवियो से नहीं कहा, इसलिए कि ले जाना होगा और सबके लिए वहाँ सुविधा न होगी। प्रात:काल देवियो की गिनती में यह एक घटी, संवाद-पत्रों ने हल्ला मचाया। ये तीन दिन

वाद विश्राम लेकर मायके से लौटी, और शोक-सन्तप्त पतिदेव को और उच्छृङ्खल रूप से वड़वडाते हुए संवादपत्रों को शान्त किया—प्रतिवाद लिखा कि सम्पादकों को इस प्रकार अधीर नहीं होना चाहिए।

आन्दोलन के वाद इनकी प्रैक्टिस चमक गयी। वड़ी देवियाँ आने लगीं। वुलावा भी होने लगा। चिकित्सा के साथ लेख लिखना भी जारी रहा। यह विल्कुल समय के साथ थीं। एक वार लिखा—'देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुँचा है, उतना गुलामी से नही।' इनके विचारों का आदर नीम-राजनीतिज्ञों मे क्रमशः जोर पकड़ता गया। प्रोग्रेसिव राइटर्स ने भी वधाइयाँ दी और इनकी हिन्दी को आदर्श मानकर अपनी सभा मे सम्मिलित होने के लिए पूछा। अस्तु शास्त्रिणीजी दिन-पर-दिन उन्नति करती गयी। इस समय नया चुनाव शुरू हुआ। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को वोट देने के लिए आवाज उठायी। हर जिले से कांग्रेस उम्मीदवार खड़े हुए। देवियाँ भी। वे मर्दों के वरावर है। शास्त्रिणीजी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुई। अव उनके सम्मान की सीमा न रही। एम. एल. ए. हैं। 'कौशल' में उनके निवन्ध प्रकाशित होते थे। लखनऊ आने पर 'कौशल' के प्रधान सम्पादक एक दिन उनसे मिले और 'कौशल' कार्यालय पधारने के लिए प्रार्थना की। शास्त्रिणीजी ने गर्वित स्वीकारोक्ति दी।

'कौशल'-कार्यालय सजाया गया। शास्त्रिणीजी पधारी। मोहन एम. ए. होकर यहाँ सहकारी है, लेकिन लिखने मे हिन्दी में अकेला। शास्त्रिणीजी ने देखा। मोहन ने उठकर नमस्कार किया। 'आप यहाँ" शास्त्रिणीजी ने प्रश्न किया। "जी हाँ," मोहन ने नम्रता से उत्तर दिया, "यहाँ सहायक हूँ।" शास्त्रिणीजी उद्धत भाव से हँसी। उपदेश के स्वर में वोली, "आप गलत रास्ते पर थे!"

['माधुरी', मासिक, लखनऊ, जनवरी, 1938। **सुकुल की बीवी में संकलित**]

देवर का इन्द्रजाल

मेरे एक भाभी थी—सगी नही, ताऊ की वहू। उनसे मेरे प्रेम की वात का अन्दाजा आप लगा सकते है—जव मैं पाँच साल का था, तव वह अठारह साल की, गौने आयी हुई। तभी से उनका जो प्रभाव मुझ पर पड़ा···?

लेकिन, फिर भी, जिन्दगी के पहलू वदलते हैं, मिठाई के साथ कुछ खटाई भी चलती है। मीठी भाभी की एक खटाई की याद आयी। कहता हूँ:

घर में दूसरी औरत न थी। मैं ढाई साल का था, जव माँ मरी थीं। रोटी पकाने का सवाल वड़े भाई साहव की शादी से हल किया गया था। भाभी का आना और मेरा मदरसा जाना करीव-करीव साथ-ही-साथ हुआ। भाभी के दो चिरंजीव

हो चुकने तक यह क्रम जारी रहा--यानी उनकी मिठाई के साथ इस खटाई का प्रयोग न हुआ था, जैसे सुप्रसिद्ध गांधी-भक्त काका कालेलकर का ताडी-प्रयोग। यह जरूर है कि काका साहव जैसे महान व्यक्ति हैं, वैसे उनके ताडी-प्रयोग में कइयों को जान देनी पड़ी; पर मेरी भाभी की मिठाई की खटाई मे किसी को जान लेने-देने की जरूरत नही हुई।

मैं तेरहवें साल में था। तेरहवें साल तक की तालीम की तालिका की जरूरत न होगी। लेकिन, पृथ्वी सन्तरे की तरह गोल है, सूरज के चारों ओर घूमती है आदि अद्भुत वातों से भाभी पर मैंने अपना काफी प्रभाव डाल लिया था। इसी समय उन पर अधिक प्रभाव पड़ने की एक वटना और हुई। मेरे हाथ किसी तरह उन दिनों इन्द्रजाल की एक किताव लग गयी थी। उसमे मारन-मोहन, वशीकरण-उच्चाटन आदि के जन्त्र-मन्त्र-तन्त्र लिखे थे। भाभी उस किताव को जितने ताज्जुब से देखती थी, ताजमहल, दि ग्रेट इमामवाडा, म्यूजियम और चिड़ियाखाने के दोनों तरफ वरावर रेंगनेवाले साँप को भी उतने से नहीं। इसी समय, एक रोज, रात के नौ वजे, भाभी अकेली अपने सोनेवाले कमरे में थी। मंगल का दिन। मैं कमरे में ही था। सहसा मुझे इन्द्रजाल की एक वात याद आयी। मैंने तडाक से दरवाजा वन्द कर दिया, और चट से धोती उतारकर फेंक दी। भाभी घवरायी। मैंने कहा, "भाभी, मैं आज एक मन्त्र सिद्ध करूँगा।" भाभी हतप्रभ होकर, एकटक, मुझे देखने लगी। बात उनकी समझ मे तव आयी, जव मैंने जूता उठाया और नंगे-नंगे लगा छछूंदर के पीछे चक्कर काटने, क्योकि उलटे जूते से मारना था। छछूंदर-सिद्धि का प्रयोग, इन्द्रजाल में, ऐसे ही लिखा था।

वडे परिश्रम के वाद, उलटे जूते से, मैंने छछूंदर मारी और नंगे-ही-नंगे, एक हाँडी में भरकर वाहर ले जाकर एक जगह उसे गाडा। लौटकर धोती पहनी।

दूसरे ही दिन वात विजली की तरह घर-घर फैली। लोगों को, खास तौर से स्त्रियों को, पक्का विश्वास हो गया कि मै सिद्ध हूँ। भाभी अपनी सारी शक्ति खर्च करके मेरा प्रचार कर रही थी। भाई साहव ने भी सुना, लेकिन मेरे मारन-मोहन और वशीकरण-उच्चाटन मे सिद्ध होने के डर से मुझसे बोले नहीं। कुछ ही दिन के अन्दर चारो ओर से वुलावे आने लगे---तरह-तरह के रोग झाड़ देने के लिए। इन्द्रजाल मे लिखे अनुसार मैं रोगी का इलाज भी करने लगा और अपनी सिद्धि में मुझे भी शंका न रही, जव मेरे इलाज से लोग अच्छे होने लगे—यहाँ तक कि वुखार भी उतर जाने लगा।

पड़ोस मे एक सुकलाइन रहती थी। सुकलाइन शब्द मे जितना वुढापा है, उनमें उतनी ही जवानी थी। रिश्ते से वह मेरी वहिन लगती थी। दुस्साहिक कार्य दो-एक उन्होने किये थे, इसलिए भय कम था। भाभी भय की मूर्ति थी। दोनों मे मेरे सिद्ध होने और न होने का तर्क छिडा। भाभी इस पक्ष मे थी कि मैं सिद्ध हूँ, वहिन इस पक्ष मे कि सव ढोंग है।

इसी समय भाभी ने मुझे वुलाया। अपने तर्क की वात छिपाकर मुझसे कहा, "लोग कहते है, तुझे जन्त्र-मन्त्र कुछ नही आता, तू ढोंग करता है!"

मुझसे वात सही न गयी। मैंने अकड़कर कहा, "जिसको विश्वास न हो, आजमा

ले।"

भाभी ने कहा, "अच्छा, आज देखती हूँ तेरी करामात। तू जो कुछ करना चाहता हो, कर।"

मैंने कहा, "अच्छा, तो मैं वशीकरण करता हूँ।"

यह कहकर मैं बाहर निकल गया और कनेर के पेड़ से एक फूल तोड़ लाया। मुझे विश्वास था ही कि मैं सिद्ध हूँ, मेरा मन्त्र सच है। भाभी की तरफ देखकर कहा, "मैं मन्त्र पढकर यह फूल दूँगा। इसे लेना होगा। बस, इसके बाद मैं सिद्ध हूँ या नही, देख लेना।"

भाभी को विश्वास था ही। वह घबरायीं। उन्होने कहा, "नही, मुझे नही चाहिए। यही कहती है कि तुझे कुछ नही आता। इन्हे फूल दे।"

बहिनजी भीतर से तो हिल गयी, लेकिन फिर भी अपनी शेखी दिखलाते हुए मुझसे पूछा, "इस वशीकरण से क्या होगा?"

मैंने कहा, "मन्त्र के जोर से हमेशा मेरे पीछे लगे रहना होगा। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, पीछे-पीछे जाना होगा।"

बहिनजी हार गयी। उन्होंने भाभी से कहा, "भई, मै बहिन हूँ, मैं कैसे फूल लूँ! तुम भाभी हो, तुमको उतना दोष नहीं।"

भाभी ने सिर पर सवार होते हुए कहा, "तो फिर क्यों कहती थीं सिद्ध नहीं है? मैंने अपनी आँखो देखा है।"

['चकल्लस', साप्ताहिक, लखनऊ, भाभी-अंक (1938 ई. का उत्तरार्ध)। असंकलित]

जान की!

जिस रोज मिस मेयो कालिज-स्ट्रीट, कलकत्ता की सेकेंड-हैंड किताबों की दूकानो मे अनुवादित रूसी पुस्तकों की खपत देख रही थी, उस रोज उनकी आँख पर चढनेवाला पहला आदमी मैं था। इतने से निश्चय बँध जायगा कि मैं इस साहित्य का प्राचीन सहोदर हूँ। जब मैंने इस जमीन पर काम शुरू किया, यहाँ अकेले बाबू सम्पूर्णानन्दजी थे, जो समझ सकते थे, पर चूँकि मेरी कृति पर साहित्य का नकाब पडा रहता था, इसलिए उन्होंने इसे छुआ भी नही। अभी उस रोज फैसला हुआ कि मैं उनका समसामयिक हूँ। इधर, नौजवानो के साथ रहने के कारण, एक कदम और आगे बढ़ गया हूँ, यानी कम्यूनिस्ट हूँ। कांग्रेस सोशलिस्ट के नाम से हमे झेंप आती है। इस बार की बैठक से हमारे वन्द का निश्चय हो गया है कि यह लड़ाई जनता की लड़ाई है और फासिज्म के विरुद्ध विजय पाना हमारे और विश्व के

कल्याण के लिए जरूरी है। हमे हर हालत मे रूस का साथ देना है। भारत सरकार हमसे सहमत है, हमारे खिलाफ जब तक हम इस उसूल पर हैं, उसकी कोई कारंवाई न होगी। बम्बई हमारे प्रचार का प्रधान केन्द्र है। हमारे कई अखबार भी निकलने लगे है। हिन्दुस्तान मे हमने केन्द्र बनाये हैं। हर केन्द्र में हमारा एक आदमी रहेगा और उसकी परिधि में आनेवाले नगर और गांवों मे कम्यूनिज्म के सिद्धान्तो का प्रचार करेगा। मुझे दक्षिण युक्तप्रान्त के कुछ जिले मिले हैं।

इस समय मैं कर्वी मे हूँ। चित्रकूट के पास, शंकर के यहाँ। पहुँचे अभी चौबीस घण्टे नही हुए। गरमियों के दिन, सुबह के सात का समय। दोमंजिला मकान। मैं पच्छिमवाले बरामदे मे चटाई पर बैठा हूँ। यह मकान शंकर का निजी मकान नही, किराये का है; वह पास की मिल में साधारण अच्छी तनख्वाह पर फिटर का काम करता है। इसी जिले का रहनेवाला है। इस समय बाहर निकला हुआ है। उसकी आठ-नौ साल की बड़ी लड़की बैठी स्नेह से उमड़ती हुई कितनी प्रासंगिक-अप्रासगिक बातें छेड़ रही है। कुछ मे उसकी माँ का इशारा जान पड़ता है। मैं दूसरी तरफ की फुलवाड़ी के रंग-बिरगे फूल और हरियाली का फर्श देखता हुआ उत्तर दे रहा हूँ। चाय का गर्म होता पानी सनसना रहा है।

शंकर मेरा लँगोटिया यार है। एक ही जगह हम पैदा हुए, रहे। हमारी बीवियाँ शादी के बाद ससुराल के नाम से एक ही जगह आयीं और रहीं। जैसी मेरी और शकर की दोस्ती है, मुमकिन वैसी ही इन दोनों की रही हो। अब वह परदेशवाला सहवास नही रहा। पर मैं और शकर काफी मिलते-जुलते रहे। परदेश छोडने से पहले, तार के द्वारा मेरे साथ शंकर को भी मालूम हुआ था कि मेरी स्त्री का देहान्त हो गया है। बात यह है कि शंकर की बीवी के लिए मेरे सम्बन्ध में कुछ भी अज्ञात नही। मैं जहाँ तक हूँ, वह उसे और बढ़कर समझ सकती है।

शंकर चाय नही पीता; इसलिए उसकी बीवी को चाय बनाना नहीं आता। पिछली शाम को साबित हो चुका है। मैंने कह दिया है, पानी गर्म हो जाने पर, बटलोई, पत्ती, दूध, शक्कर मेरे सामने रख दें—पीने का गिलास भी, मैं चाय बना लूंगा।

चाय का हिन्दुस्तानी सेट मेरे सामने रख दिया गया। लड़की को पिलाने के इरादे से एक गिलास मैंने और माँगा और अपने लिए छानकर चाय डालने लगा।

इसी समय जीने पर किसी के चढ़ने की आहट मिली, मन्द-मन्द पदक्षेप। क्षण-भर बाद वह मूर्ति बरामदे से होती हुई उस कमरे की ओर चली जो रसोई से लगा था। मुझे जान पड़ा, एक युग बदल गया। ऐसी शान्त दृष्टि और मन्दगति मैंने नही देखी, जैसे इस स्त्री की विश्व की समस्त प्रकृति पर विजय हो, जैसे यह सबकुछ जानती है और बिना कहे बहुत कुछ कह रही है, और रूप ?—मेरे रोएँ खड़े हो गये, उसी वक्त मेरे मन मे आया, यह मेरे मन की मूर्ति है, कभी मेरे मन से बाहर नही निकली ! सँभलकर भी मैं न सँभल सका।

वह स्त्री शंकर की स्त्री से दो मिनट बातचीत करके उसकी लड़की की पढ़नेवाली किताब हाथ मे लिये बाहर निकली और वैसी ही शान्त चितवन से देखकर कहा, "माया, चलो।"

माया उठकर चुपचाप चल दी। वह जीने से उतरने को हुई। मैं उस स्त्री को देखता रहा। उसने भूलकर भी मुझे नहीं देखा फिर भी जैसे मेरा सबकुछ देख लिया हो। मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे मेरा कुल स्वत्व इसने खीच लिया। अब यह जवान नही, अधेड़ है; आधे बाल पक चुके हैं; चेहरे पर कुछ झुर्रियाँ भी पड़ रही हैं; पर कितनी दृढ़ता? उसमे ऐसी दृढ़ता नही थी सिर्फ चेहरा मिलता है। बीस साल हो गये। तब इसकी मुश्किल से बीस साल की उम्र थी लेकिन, वह मर चुकी है, और यह जिन्दा है।

मुझसे रहा नही गया। मैंने शंकर की स्त्री को बुलाया। वह मुस्कुराती हुई सामने आकर खड़ी हो गयी। समझ गयी कि इन्हें जंग लग गया।

मैंने पूछा, "तुम इसे पहचानती हो?"

"हाँ।"

"यह कौन है?"

"यहाँ की मिस्ट्रेस।"

"इतना तो मेरी समझ मे आ गया।"

"एक महिला के सम्बन्ध में अधिक जानकारी से आपको फायदा?"

"तुमने उसे तो देखा है?"

"हाँ, लेकिन, वह मर चुकी है और यह जिन्दा है। क्या अब भी आप समझते हैं यह आपके किसी निजी परिचय की हो सकती है?"

इसी समय शंकर आया। उसे देखते ही उद्वेल होकर मैंने पूछा, "क्यों भई, यह माया को जो मिस्ट्रेस पढ़ाती हैं, उन्हें जानते हो?"

शंकर ने मुँह बिगाड़ा, "पक्की छिनाल है। कानपुर के किसी गाँव की रहनेवाली है। कहते हैं पति बदमाश था, उसे सजा हो गयी; यह इधर-उधर फिरने लगी। किसी तरह यहाँ आयी, पैर जम गये। जानते तो हो इन लोगो को।"

[रचनाकाल : 1941 ई.। देवी मे संकलित]

दो दाने

तूफान और बाढ़ के दिन बीत चुके है। हरा-भरा बंगाल बाहर से वैसा ही है, मगर भीतर से जला हुआ। पूर्वी मोर्चे पर कड़ी चढ़ाई है। कितने ही एरोड्रोम अमरीकन वायुयानों से भर चुके हैं। पूरब की गश्त जोरों पर है। रात को ब्लैक-आउट। कलकत्ते मे हाथ नही सूझता। सनसनी का बाजार गर्म है। चावल और धान से व्यापारी मारवाड़ियों ने अपनी कोठियाँ भर ली है। अन्न इतना महँगा हो गया है कि मोल नही लिया जाता।

गाँव के बाजार-के-बाजार खाली हो गये है। न पैसा है, न अन्न। पहले लोग उपास करने लगे। दिन मे एक वक्त, फिर दो दिन मे एक वक्त, बाद में यह भी मोहाल हो गया। पेड़ों की कोपलें उबालकर खाने लगे। कुछ दिन मे ही हरा-भरा बंगाल ठूँठा हो गया। आदमी और ढोरों के पेट मे पेड़ों के पत्ते चले गये। भूख की ज्वाला बढती गयी। देहात मे भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौडे। कोई आधी दूर चलकर मरे, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया। धनिक-जन हथियार-बन्द सिपाहियों से अपने गोलों की रक्षा कराने लगे।

इसी समय कमला को सूझा, अपने परिवार को लेकर कलकत्ता चली जाय। कमला साधारण गृहस्थ की विधवा है। मौरूसी खेत भी कुछ बीघे हैं और साधारण गहने भी। हाथ मे कुछ ही रुपये बच रहे हैं। गाँव मे चौथाई लोगों को काल के गाल चले जाते और युवको के पैर लड़खडाते देखकर उसने मन-ही-मन तय किया, जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियो ने यौवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की है, वह भी करेगी; नही तो अन्न के अभाव से सबके साथ-साथ खुद अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी।

बडी दृढता से उसने छाती बाँधी। दोनों लड़कों से बड़ी, बेटी चम्पा को, जो ब्याहने लायक पन्द्रह साल की है, कलकत्ता के बाजार मे बैठा लेगी। कुछ सहज-ज्ञान से और कुछ पडोस की युवतियो की कहानियाँ सुनकर उसने इस पथ पर पैर जमाया। चम्पा को बड़े आदर से रखने लगी। और एक अच्छे दिन कलकत्ता के लिए रवाना हो गयी।

उसको किराये की कोठरी तलाश करने में जो दिक्कतें उठानी पडी, उनका हाल छोड़ देते है। वह एक ऐसी ही कथा है कि एक किरायेदार ने अपनी मदद का ज़रिया निकाला कि अपने दो कमरे उसके रहने के लिए छोड़ दिये, किराया बीस रुपये माहवार लेकर।

दस-बारह रोज कमला को जेवर बेचते और दलाल लगाते लग गये। दलाल लोग चम्पा को देख गये और उससे बातचीत भी कर गये। इस तरह का अनुभव चम्पा को पहले कभी न हुआ था। मारे डर के कलेजा धड़क रहा था, मगर माँ की बात का सहारा था। इस अरसे मे माँ ने बड़ी तालीम दी, बड़ा ढाँढस बँधाया, बड़ा दिल मजबूत किया।

बिहारी एक रोज शराब की दुकान पर पहुँचकर खड़ा हो गया।

झाबरमल को बकरों की सप्लाई में कई लाख रुपयो का मुनाफा हो चुका था। उनका सम्बन्ध गवर्नमेण्ट से नहीं, कण्ट्रैक्टर से था। बकरा सप्लायर झाबरमल सुहावने समय के साथ कदम बढाते हुए बोटी और शोरबे का स्वाद ले चुके थे। फलतः बोतलवासिनी से भी प्रेम था। संगत के गुण से दूसरे खरीद-फरोख्त की तरह बाजार की वेश्याएँ भी थी। वह अनुभवी बिहारी की आँख नही बचा सके। उनके बोतल लेकर निकलते ही बिहारी ने उँगलियो से अमरूद दिखाया। झाबरमल ने मतलब समझकर पूछा, "कहाँ?"

बिहारी ने जवाब दिया, "बाबू, गृहस्थ। बहुत हंगामा न चलेगा।"

झाँवरमल, "खाना-पीना ?"

बिहारी, "हाँ, मगर बहुत सँभलकर। माल नया है। कलकत्ते मे न मिलेगा।"

झावरमल की दोनों आँखों से कामुकता का दरिया उमड़ चला। पूछा, "कोई दोस्त अगर साथ हो ?"

बिहारी—"बाबू, हम इतना ही कहेंगे, फ्रेश माल है, अभी देहात से आया है। कलकत्ता शहर-भर में न मिलेगा।"

झावरमल ने जमकर पूछा, "लेकिन यह तो बताओ···"

बिहारी—"बाबू, पहले माल देख लीजिए। आँखे हिरन की, बाल घुटने तक, रंग गोरा, चौदह-पन्द्रह साल की उमर। पेट है, बाबू, पेट, नहीं तो खानदानी घर है।"

झावरमल को जैसे एक स्वास्थ्य मिला। पूछा, "पता क्या है ?"

बिहारी ने धीरे-से अपनी छाती ठोंककर कहा, "बाबू, हमी ले चलेंगे। खिदमत मे हमी रहेगे। नहीं तो ऐसा माल आप-जैसे बाबुओं से छूटकर गुण्डों के हाथ लगेगा।"

तभी झाबरमल के एक मित्र ने उसको पुकारा। झाबरमल ने अपने मित्र की ओर बढ़ते हुए कहा, "कल फिर इसी समय आओ।"

वही एक किनारे एक तरुण, जिसने फौज में अफसर की जगह स्वीकार की थी, चुपचाप खड़ा अधकटी बातें गौर से सुन रहा था। झावरमल के चले जाने के बाद उसने बिहारी को बुलाया और जेब से एक रुपया देकर सिगरेट-दियासलाई खरीद लाने के लिए कहा।

पास ही उसकी मोटर खड़ी थी। बिहारी के खरीद लाने पर उसने सिगरेट और दियासलाई ले ली और बाकी पैसे बिहारी को वापस कर दिये। फिर मोटर पर बैठते हुए बिहारी को भी बैठने के लिए कहा।

बिहारी भलेमानुषों की डाल का बन्दर, कभी इस डाल पर, कभी उस डाल पर। संकेत मिलते ही मोटर में एक बगल बैठ गया। बैठते ही देखा, पायदान के पास एक बोतल रखी है। अफसर की इच्छा थी कि बिहारी की कुल बातें सुने, मगर उनकी तड़क-भड़क से बिहारी घबराता था कि लगी रोटी छूट न जाय। नहीं तो अपना मतलब गाँठने का श्रीगणेश कर देता। सिर्फ हिम्मत बँधती थी, बोतल को देखकर। मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि यह फैशनेबुल बाबू रुपये के बाजार मे मारवाड़ियों की बराबरी न कर सकेंगे।

अफसर ने पूछा, "तुम उससे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

बिहारी ने मुस्तैदी से जवाब दिया, "रोटियों का सवाल था कि कोई रोजी लगा दें।"

तरुण अफसर अपने मन का भेद देना नही चाहता था। बातचीत का लुब्बोलबाब वह मजे में समझ चुका था, और अपनी तीखी साहित्यिकता के कारण मदद भी करना चाहता था, मगर बिहारी की हिम्मत ढीली रही।

अब तक मोटर अफसर के कमरे के नीचे वेलस्ली रोड पर आयी। वह उतरकर अपने कमरे चला और बिहारी को भी बुलाया। बिहारी उसके पीछे हो

लिया। दूसरी मंजिल के एक अच्छे कमरे में उसका वास था। कई और कमरे थे। ड्राइवर मोटर गराज मे ले गया। बैठकर सिगरेट सुलगाते हुए मुस्कराकर तरुण ने कहा, "काम पडे तो यहाँ आना। हमारी जगह देख चुके, अच्छा, अब जा सकते हो।"

दूमरे दिन बिहारी फिर अपने ठिकाने पर गया और झावरमल के लिए इन्तजार करने लगा। इसमे पहले वह कमला से बड़ी-बड़ी बातें हाँक चुका था। कमला दिल पर पत्थर रखकर सुन चुकी थी। चम्पा सतीत्व की बड़ी-बड़ी कहानियों और बडे-बड़े आदर्शों पर बडी-बडी आँखें फाडकर गौर कर चुकी थी।

"शैलाधिराज तनया नमयौ न तस्थौ" वाली दशा चम्पा की थी। जो कुछ भी वह कर रही थी, प्रकृति के इगित से, जैसे उसका अपना कोई वस नही है। रोज सैकडो आदमियों के मरने और भीख माँगते फिरने की खबरें सुनती थी और कुछ देखती भी थी। परिम्थिति को दूर तक समझने की ताकत न थी, न परिस्थिति के खिलाफ कदम उठाने की हिम्मत। दबे हृदय से उभरती आशा की किरण पकड़े हुए कमला ने सम्मति दी और चम्पा ने, माँ जैसा कहेंगी, वैसा होगा, कहा।

बीस रुपये पर तय हुआ। यह सब मालूम कर बिहारी गया था।

नियत समय पर झावरमल आये। पहले की तरह शराब की दुकान से एक अद्धा खरीदा। बिहारी को पहले ही देख लिया था कि अपनी जगह पर खड़ा दीन भाव से ताड रहा है। खरीदकर चलती हुई टैक्सी बुलायी और बिहारी के साथ बैठ गया। एक साथी और था जो रास्ते के निकास पर खड़ा था, उसको भी बिठा लिया।

अफसर ने अपने ड्राइवर और नौकर को पहचनवा दिया था और गाडी से आकर दुकान के कुछ फासले पर गाड़ी के साथ छोड़ गया था। आज्ञा दी थी कि बिहारी की आँख बचाकर गाड़ी लेकर उसका पीछा करे, अगर गली मे जाये तो एक आदमी साथ हो ले, जिस मकान मे जैसे जाये उसका पूरा पता जल्द दे।

झावरमल के चलने के साथ कुछ फासले से अफसरवाली गाडी भी पीछे लगी। झावरमल की गाडी सीधी चलती गयी और नहर के पार नारिकेल डाँगा की एक मामूली गली में घुसी। पीछेवाली मोटर भी लगी रही। टैक्सी के रुकने पर पीछेवाली मोटर कुछ पहले ही रुक गयी। रात आठ का समय। बिहारी के साथ सेठजी किराया चुकाकर एक गली के भीतर घुसे। दूसरी मोटर के एक आदमी ने पीछा किया। मकान के दरवाजे पर सेठजी को खड़ा करके बिहारी भीतर गया। कुछ देर बाद सामनेवाली कोठरी मे सेठजी को ले गया और उनके मित्र के साथ बैठाया। इधर का आदमी लौटा और सीधे अफसर को चलकर खबर दी।

जिस वक्त सेठजी भीतर बैठे थे, कमरा खाली था। फिर धीमी बत्ती अपने मन से जल रही थी। कमला का हाल बयान के परे था। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था। दुख के आँसू उमड़कर सारा घर डूबा

देना चाहते थे। बच्चे सहम न जायँ, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दोनों तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँध रही थी। काँपते हाथों भी बेटी को एक साफ साड़ी पहनाकर सजाया। बाल शाम को सँवार दिये थे। कुमारी की माँग में सेंदूर न था। आँख में जो ज्वाला थी, उसको समझदार ही समझता।

बिहारी रुपये के लिए अड़ा था। कमला चम्पा को सजाकर धीरे-धीरे ले आयी। कमरे के पास आते ही बिहारी ने रोका और चम्पा की बाँह पकड़कर सेठजी के पास ले गया। धीमे प्रकाश में सेठजी ने जो सौन्दर्य देखा, उससे अनुभवी व्यवसायी की आँखों में अँधेरा नहीं छाया। उसने और अच्छी तरह देखा। चम्पा प्रथा कुछ न जानती थी। आज उसकी विवाह की जैसी पहली रात है, दो प्रिय हैं। हृदय में कम्प है, लेकिन पुलक नहीं, आत्मा में कर्तव्यनिष्ठा है, लेकिन स्त्री-भाववाला सम्प्रदान नहीं।

बिहारी ने कहा, "बाबू यही है, गृहस्थ। और तो सब कहा जा चुका है। अगर रहना चाहें तो···आपको तो मालूम है।" चम्पा को बाँह पकड़कर एक बगल बैठा दिया। वह कुमारी की तरह सिर उठाये बैठी रही।

सेठजी ने दस-दस के दो नोट निकालकर चम्पा को दिये। चम्पा ले नहीं रही थी, बिहारी के डाँटने से ले लिया। बिहारी ने हाथ फैलाकर कहा, "हमको दे दो।"

सेठजी ने बात काटकर पूछा, "तुम्हारा कितना होता है?"

बिहारी ने दोनों हाथ की उँगलियाँ और अँगूठे उठाकर दिखाये। सेठ की धनाढ्यता के पूरे चाँद को देखकर उसकी वाणी का सागर भी बिना उमड़े नहीं रहा—मुँह से भी आवाज निकली, "दस रुपये।"

कमला से न रहा गया। मर्यादा का बाँध टूट गया, कण्ठ-प्रवाह से निकला, "झूठ!"

सेठजी ने मुस्कराकर अपनी मातृभाषा में गाली देते हुए कहा, "खब्बीस, साले? आधे-आधे का साझा है? हमको तो चवन्नी भी नहीं मिलती।"

बिहारी ने कहा, "इसका आधा, बाबू!"

सेठजी ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर अपनी तरफ से उसको दिया और पूछा, "और किसको-किसको ले आये हो?"

खुश होकर बिहारी ने खीस निपोड़ी और सिर हिलाया। कहा, "कोई नहीं, बाबू। आप पहले आदमी हैं।"

नासमझ चम्पा कुमारी की तरह मुस्करायी।

बिहारी ने कहा, "ये रुपये अपनी माँ को दे दो।"

चम्पा उठकर चली। उसको तालीम मिल चुकी थी, वह माँ की और बिहारी की आज्ञा मानकर चलेगी। उसकी चाल में, सेठजी ने देखा, कोई बाजारू गति नहीं। चलकर उसने माँ को दोनों नोट दिये। लेकर माँ ने धीरे से मुँह चूम लिया और आँसू पीकर सिर हिलाते हुए ढाढ़स बँधाया, "घबराना नहीं।"

सेठजी उठकर खड़े हो गये। बिहारी से पूछा, "तुम साले, भले बदन में दाद

की तरह लगनेवाले हो, इससे कौन-सा रिश्ता रखते हो ?"

विहारी ने कहा, "अन्नदा है हमारी !"

सेठजी ने कहा, ' यह कहो कि वहन है छोटी ।"

विहारी कुछ शर्माया, कुछ कच्चा पड़ा, सिगारी प्रभाव के कारण, मगर रुपये के अदव में दवकर कहा, "हाँ, वहन है, वावूजी ।"

सेठजी ने कहा, "तो अव तुम जाओ। तुम्हारा काम हो गया।"

विहारी ने जवाव दिया, "हम भाई भी हैं, इस घर के दरवान भी है, पान-सिगरेट, खाना-पीना, कुछ मँगाना चाहें इसके लिए नौकर भी है, आपके जाने के वाद हम जायँगे।"

"अच्छा," सेठजी ने उठते ही कहा, "हमको मिर्जापुर (कलकत्ता) में काम है। हम चलते हैं।" वंगला में समझाकर कहा, "हम पहले हैं तो दूसरे की आशा नहीं रखते। इतना समझने के लिए काफी है।"

रुपये देकर दरवाजे के पास चम्पा खड़ी थी। सेठजी ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

चम्पा ने वंगाली मधुर स्वर से यथोच्चारण कहा, "चम्पा !"

सेठजी ने वंगला में समझाया, "हमारी जगह दूसरा नही ले सकता, यह आदमी नौकर रहेगा।"

कहकर आगे वढ़े।

विहारी की समझ में नही आया। आगे वढ़कर पूछा, "क्या वावू, नापसन्द है ?"

मधुर मगर तीखा एक तमाचा विहारी के गाल पर पड़ा।

तिलमिलाकर उसने जव आँख खोली, तव खम्भे की विजली के प्रकाश में तरुण अफसर को खड़ा देखा। पीछे से सेठजी की आवाज आयी, "अव सवेरा हो गया, सवेरा।"

साहित्यिक अफसर ने समझा, हमारी तारीफ की है।

सेठजी का मतलव था, हम रुपये दे चुके हैं, सारी रात पार हो चुकी है। कल इसका राज़ लेंगे, जव यह यहाँ आया है। सेठजी जिस अफसर को पकड़े घूमते थे, वह इस अफसर के मातहत थे, इसकी दो-एक ढीली कार्रवाइयाँ उसको दिखा चुके थे। ये छाँह को पकड़ नहीं पाये, पकड़ने के इरादे से वहाँ तक आये हैं।

···उनके भी आदमी हैं। ये राज़ रखते और लेते हैं।

विहारी को दूसरी चकाचौंध लगी, जव परिचित वावूजी को सामने देखा, "आप हैं ?" सम्भ्रम से कहा।

अफसर पूरे वावू की पोशाक में थे। पूछा, "क्या हो रहा था ?"

विहारी वात टाल गया। चले गये सेठजी की तरफ उँगली उठाकर कहा, "यह हमारा साला चला गया।"

अफसर पूरी तरह नहीं समझे। विहारी रास्ते तक दौड़ गया, देखने के लिए कि सेठजी हैं या चले गये। सेठजी उसी तरह की तंग गली में घुसे, जिसका

विहारी को पता न लगा।

उसको हिम्मत हुई। वावू साहव से उसने कहा, "आइए, हम आपकी भी मेहमानदारी करें। पेट, पेट, पेट। इतना काफी है, वावू साहव।"

चम्पा के कमरे का दिया जल रहा था। खातिरदारी का वदला चुकाने के लिए वह वावू साहव को सेठजी की जगह ले गया, और वैठाया।

दूसरे कमरे मे कमला के पास जाकर सास से वातचीत करनी शुरू की इसलिए कि दूसरे कमरे मे भनक न जाय। समझाया—"यहाँ किसी का विश्वास न करो, अपना काम देखो, एक वावूजी आये हैं, वड़े आदमी है, इनसे भी रुपये मिल सकते हैं, अव दुख के दिन दूर हुए।"

सेठजी के रुपये देकर जले जाने का घर-भर पर प्रभाव था। वे ये नही समझे दूसरे वावू आये हैं।

विहारी कमला और चम्पा को लेकर फिर दरवाजे चला। दोनों ने सोचा, वही वावू हैं।

विहारी चम्पा को लेकर कमरे के अन्दर गया। प्रकाश में चम्पा ने दूसरी सूरत देखी तो दिल मे मुस्करा पड़ी। वावू साहव उसको अभ्यर्थना समझे और चम्पा को गणिका।

विहारी ने चम्पा की तरफ उँगली उठाकर चले गये सेठजी की तरफ इशारा करके समझाया, उनकी हैं। फिर दो दफे दस-दस की उँगलियाँ उठायी और चम्पा की तरफ मोड़कर हटा दी। फिर समझाया, अभी या कुछ देर वाद वह आदमी आ सकता है। और एक उँगली उठाकर चम्पा की वाँह मे गड़ा दी।

वावूजी ने पूछा, "यह कौन आदमी है?"

विहारी ने कवूतर उड़ाया। कहा, "वाजार है, कौन जानता है कि कौन, कौन है!" भीतर से डर रहा था कि सेठ फिर न आ जाय।

तरुण साहित्यिक की रूखी करुणा चम्पा की समझ मे न आयी।

अफसर ने अंग्रेजी गले मे रूखी साहित्यिकता का स्तर भरकर दबंग से कहा, "यह आदमी अन्नचोर है। दूसरे का गला नापता फिरता है, इसके साथ वंगाली गृहस्थ वहू-वेटियों का मिलना कितना भयानक है, यह समझदार ही समझते है। हम किसी पेशे के खिलाफ नही, मगर हमारा एक उद्देश्य है। अगर तुम हमारी हो आओ तो हम रास्ता निकाल सकते हैं।"

निष्काम इस साहित्यिक देश-प्रेम के अन्दर से वासना की घोर वदवू निकल रही थी। चम्पा इतना ही समझी। चम्पा की माँ मारे घवराहट के काँपने लगी। उसकी समझ मे नही आया कि ये क्या कह रहे है। विहारी ने सोचा, वावू शराव के नशे मे है। जोर की हँसी आयी; दौड़कर वाहर निकल गया और कमला की वाँह पकड़कर हिलाते हुए शराव चढ़ाने की मुद्रा दिखाते और समझाते हुए कहा कि वावू मदहोश हैं।

वज्र-गम्भीर वंगला मे वावू साहव ने कहा, "यह जो आदमी आया था, यह वदमाश है। इसने सैकड़ों की रोटियाँ मारी है। इसके-जैसे आदमियो के कारण देश में अकाल है, इसको पकड़ना होगा, इसका नाम वताओ।"

बिहारी ने तपाक से कहा, "बाबू श्यामलाल।"

तरुण साहित्यिक अफसर आग्रह भरी दृष्टि से चम्पा को देखकर उठे। बाबू श्यामलाल मुश्किल से खत्म हुए ब्लैक-आउट को उसके जीवन मे फिर न लगा दें, इस डर से उठकर चले और कहा, "हमारे आदमी हो, फिर समझोगे कि हमसे तुम्हारा उपकार है या ऐसे गर्दन-मरोड हत्यारे से। तुम्हारी समझ का पत्थर उलट जायेगा तब समझ मे आयेगा। हम फिर तुम लोगो से समझेंगे।"

कहकर विलायती और साहित्यिक चाल से बाबूजी बाहर निकले और अपना रास्ता लिया।

चले जाने पर कुछ दूर तक बिहारी पीछे लग गया। उन्होने बिहारी को अपने घर बुलाया।

कमला ने चम्पा को बुलाकर पूछा, "इन दोनो मे कौन अच्छा है ?"

चम्पा ने कहा, "पहला।"

[रचनाकाल : 1946 ई.। 'नयी कहानियाँ', मासिक, दिल्ली, दिसम्बर, 1961, मे प्रकाशित। असंकलित]

विद्या

विद्यासुन्दर संस्कृत की ऊँची कोटि की रचना है। सुन्दर कवि का नाम है, विद्या एक राजा की लडकी का। बंगाल मे विद्यासुन्दर की कहानी, टप्पा वगैरह बहुत मशहूर है। कहा है कि विद्यासुन्दर पर 'चौरपंचाशिका' के नाम से श्रेष्ठकवि वररुचि ने मेघदूत की तरह की रचना की है। महाकवि वररुचि की रचना कविकुल-गुरु कालिदास के मेघदूत से नीची कोटि की है, ऐसा कहते झेंप आती है।

अद्यापि तां कनकंचम्पकदामगौरीम्,
फुल्लारविन्दनयनां तनु-रोम-राजिम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलितालसाङ्गीम्,
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि॥

[अब तक उस सोने के चम्पे के हार की तरह गोरी, खिले कमल जैसी आँखों-वाली, मुलायम रोओं से सजी, सोकर उठी हुई, मदन से विह्वलित अलस अंग-वाली, प्रमाद निचोड़ती हुई जैसी, विद्या, की याद करता हूँ।]

श्यामनाथ लताकुंज के भीतर पड़ी बेंच पर पड़ रहा था। सामने गुलाब और सीजन फ्लावर्ज के बीसियो बेड्ज थे। चारो तरफ दूब-जमे पार पर यही सुहावना दृश्य था। बीच मे प्राय: डेढ सौ हाथ चौडा और दो सौ हाथ लम्बा, पानी से लबालब भरा तालाब था। खासी अच्छी बडी रोहुएँ, झुण्ड-के-झुण्ड, सूर्यास्त से कुछ पहिले,

खाना खाने के बाद, विहार कर रही थी। दो तरफ से मोटर आने-जानेवाला पक्का रास्ता था। एक तरफ निकास की ड्योढी थी जहाँ सिविल सर्जन रहते थे। भारी गेट से हाथी आते-जाते थे। नारियल, आम वगैरह पक्की सड़कों के किनारे-किनारे लगे हुए थे। पक्के घाट के दोनों ओर पान्थ-निवास [पान्थ-निवास उस पेड को कहते हैं जो केला जैसा होता है, जिसके डण्ठल से, सांग मारने पर, गिलास, लोटा-दो लोटा शीतल जल, पीने लायक अति-सुस्वादु, निकलता है।] की झाड़ें थी। इसी का एक गिलास पानी और दो समोसे, एक सन्देस और एक मोतीचूर लिये एक परिचारिका कुंज की दूसरी तरफ की बेंच के सामने पडी टेबिल के पास गयी और ट्रे रख दिया। एम. ए. अंग्रेजी साहित्य की विद्यार्थिनी विद्या मिल्टन लिये Of man's first disobedience की पूरी-पूरी हकीकत की छानबीन करती भाव में डूबी थी। जलपान आया देखकर उठकर बैठ गयी। इधर श्यामनाथ—

त्वद्वापीपु पयस्त्वदीयमुकुरे ज्योतिस्त्वदीयांगणे
व्योम्नि व्योम त्वदीयवर्त्मनि धरात्वत्तालवृन्तेऽनिल:

[तुम्हारी वापी मे पय, तुम्हारे आइने मे ज्योति, तुम्हारे आँगन पर के आकाश में आकाश, तुम्हारी राह पर धरा, तुम्हारे ताल के पंखे में अनिल जाय।] का पाठ कर रहा था। जब मधुर आवाज आती सुनायी दी —श्याम, कुछ जलपान कर लो। श्याम उठकर विद्या की तरफ गया। 'चौरपंचाशिका' एक हाथ में दबी हुई थी। एक समोसा उठाकर खाया, फिर गिलास भर रखा रोज उठाकर पीने लगा। विद्या ने नाश्ता करके पान्थ-निवास का पानी पिया। नाश्ता करते-करते कहा—Shyam, you did not take a little of it even ? [तुमने जरा भी नही लिया ?]

श्याम—किंचित्पूर्वं गृहीतं मया, विद्ये, तदेतदत्यधिकं भवति। [कुछ पहले मैं ले चुका हूँ, विद्या, यह ज्यादा होगा।]

विद्या ने कहा—I offered Sanskrit upto B A. standard, but because of love, may be other unknown reason, I pick up English for M. A. and Doctorate. Perhaps I cannot satisfy you in Sanskrit conversation if you equally do not lack English to manage. [बी. ए. तक मेरी संस्कृत ली हुई थी, परन्तु प्रेम के कारण हो या दूसरे न-जाने किसी मतलब से मैंने एम. ए. के लिए इंगलिश चुनी, और आगे डाक्टरेट तक लेने का विचार है। शायद बातचीत मे संस्कृत बोलती हुई तुमको मैं खुश न कर सकूंगी अगर वैसे ही तुमको अंग्रेजी के निबाह में दिक्कत नही है।]

श्याम—सत्यमायात्यन्तराय:। जानाम्यहं, कथ्यते च, परन्तु स्वरैर्नोच्यते। [सच है कि रुकावट पड़ती है। जानता हूँ और कहा भी जाता है, परन्तु शब्दो से पूरा न उतारा जा सकेगा।]

विद्या—It is very sweet and full of fascinations, if you be charmed sooner or later to master the language. [यह बड़ी मधुर और खुशनुमाइयो से भरी जबान है, अगर देर-सबेर अधिकारी बनाने के लिए यह तुमको खीच न ले।]

श्याम—कालिदासादधिकोऽधिष्ठिनोऽस्ति कोऽपि न मया ज्ञातं। स्थिते सत्यस्मिन्। अधिकरिष्यति कोप्यन्यो नाहमनुभवामि। [कालिदास से बड़ा लब्धकीर्तिवाला कोई है, मुझको नही मालूम; ऐसे के रहते कोई दूसरा अधिकार जमा लेगा ऐसा मुझको अनुभव नही होता।]

But what may be the language between if I like to stay perpetually with you in matrimonial knot ? Do you admit that Tulsidas in Hindi is in the van of world-poets and his Ramcharitmanasa is the best product ? [अगर हमेशा के लिए वैवाहिक-ग्रन्थिमे बँधकर तुम्हारे साथ मुझको रहना हुआ तो वातचीत की समझौतेवाली कौन-सी भाषा होगी ? क्या तुम जानते हो कि हिन्दी के तुलसीदास ससार के कवियो के अग्रगण्य हैं और उनका रामचरितमानस सर्वोत्तम कृति है ?]—विद्या ने पढ़ाई के नशे से भरी वडी-वड़ी आँखें श्याम की आँखों पर रखते हुए कहा।

श्याम ने कहा—संस्कृतं, विशुद्धीकृतास्ति भाषा। आंग्लभाषामपि वदन्ति वैदेशिकाः वहुभाषा-मिश्रण-संजाता भवति। वयं संस्कृतोपचारिणो हिन्दी समभावेन वदामः ? यदि न वाधते, उच्यते तदा। [संस्कृत। यह सँवारी हुई भाषा है। आंग्ल भाषा के लिए भी विदेशियों का कहना है कि कई भाषाओं के मेल से तैयार हुई है। हम संस्कृत को काम में लानेवाले समभाव से हिन्दी वोलते हैं, अगर रुकावट न हो तो, कहो।]

विद्या ने कहा—हाँ, हम वोल सकते है मगर हमको विलायत जाना होगा। मामा कहती थी, रीत-रस्म, पहिनावा-उढ़ावा तौर जुदागाना रक्खेगा तो भाषा का हाथ और कहाँ तक फैलेगा कि हम निभ जायँगे—ये पुराने पचड़े हमारे वाधक न होगे ?

श्याम—हाँ, ऐसी ही वात समझनी चाहिए जैसे मेरा नाम है श्याम और रंग है पीला। परन्तु कहा है—श्यामा, तप्तकाञ्चन-गौरांगी; पुनः, तन्वी श्यामा शिखरिदशना···।

"वाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या" जैसे विद्या के प्रासाद-शिखर पर विशाल मूनलाइट जला दी गयी। कुंज पहले से और सुनसान हो गयी। मछलियाँ, लइया वगैरह दिये खाने को खाकर पानी के अन्दर चली गयीं। कुंज के पास की सनलाइट की वत्ती, जलानेवाले ने, स्टूल रखकर, चढ़कर, जला दी। तालाव के इधर-उधर की वत्तियाँ भी रोशन कर दी गयी। सन्ध्या के प्राक्काल का दूसरा ही समा वँध गया। परिचारिका ट्रे लेकर चली गयी। विशाल मन्दिर से आरती होने के साथ वजते घडी-घण्टे की आवाज आने लगी। इसके वन्द होने पर मधुर तालस्वर से शहनाई वजने लगी। विद्या ने ललित अंजलि वाँधकर अपने इष्टदेव को नमस्कार किया। श्याम ने विद्या का अनुकरण करते हुए साथी का सच्चा उद्देश्य समझाया, गोकि भीतर से श्याम ब्रह्मवादी था, कलकत्ते के ठाकुर परिवार से उसका रिश्ता पहुँचता था। वगल मे वैठे हुए श्याम ने कहा—पश्य, विद्ये, यदा पार्थक्यं वर्तते, अस्माकं अनुधावनीयं भवतु न वाऽस्माकं गुरुजनैनीनुकार्यो दृश्यते कदाचिद्वाहवन्धः। [देखो विद्या ! जव फर्क मौजूद है, हम दोनो के वीच वह मान्य हो या

न हो (जैसे रोमियो जूलियट में) हमारे गुरुजनों द्वारा कदाचित् ऐसा विवाहबन्ध वरता नही जाता।]

विद्या—You mean, this greatness in riches and order more will not side with, in, but subside because of this great valolur of match's scholarship, as the bride is layman, not leman at all. [क्या तुम्हारा मतलब है धन और मान की यह ऊँचाई ज्यादा साथ पूरा न करेगी बल्कि वर की विद्वत्ता की विशाल कृति मे डूबी जायगी, जैसे दूल्हन कोई मजदूरन हो; कोई परीजाद कतई नही।]

'सत्यमुक्तवती' [सच कहा] श्याम ने कहा, 'कालिदासे सर्वमेव दर्शनीयम्।' [कालिदास मे यह सब देखने को मिलता है।]

आकाश मे तारे नजदीकवाले उगते चले आ रहे हैं। चाँद का हिसाब मून-लाइट और सनलाइट से पूरा हुआ दिखता है। जैसे मारे खुशी के बीसियों चेहरों से जमीन पर उतर आया है। हवा सबके हृदयो को हृदय से लगाती हुई संगीत की ताल पर जैसे बहती चली जाती है। सन्तरी एक ड्योढ़ी से दूसरी ड्योढ़ी के सन्तरी को आवाज से पुकारकर फर्माइश की चीज भेजने के लिए कहता है जो उस ड्योढ़ी के पास के मालखाने से उपलब्ध है। रात के भोजन-पान के काम करनेवाले नौकर पक्के घाटपर बार-बार आते-जाते हुए रौनक बढ़ा रहे हैं। एक तरफ से चित्रशाला की वीणा की आवाज गूंज जाती है। सामने दूर की गारद के बरामदे पर पाँच-सात कसरती सिपाही लँगोटे बाँधकर कसरत कर रहे हैं।

विद्या ने कहा—If not Miltonic combustion, I do not dare keep Kalidas in front of the world-poets. Sorry that you slipped from Shakespearean style of idiomatic English. [अगर मिल्टनवाली आग नही, मेरी हिम्मत नही कि कालिदास को संसारके कवियों में सिरा रक्खूं। अफसोस है कि शेक्सपियर की बामुहाविरा अंग्रेजी स्टाइल से तुम फिसल गये।]

श्याम ने कहा—नास्माकं प्रतिरोधो वर्तते परन्तु हेयास्ते जनाः, मन्ये, सौष्ठवं नानुकुर्वन्ति, तस्मादपसरन्ति च। न पाशविकविकारेऽस्मि दानवः, परन्त्वनुगमनादा-गच्छामि, स्वकीयः पन्था हि प्रशस्ततरः। [हमारा विरोध नही, परन्तु हम उनको हेय समझते हैं जो सौष्ठव का अनुकरण छोड देते है और उससे हट जाते है। मैं पाशविक विकार-ग्रस्त दानव नही परन्तु अनुगमन करता हुआ, अपना ही रास्ता अधिक चौड़ा है, यह समझा।]

I follow your stately dictation, and as you are not in dark so also if not at finger's ends Sanskrit is not Latin to me, though I determine to select either Latin or Greek after complete quest for knowledge in English: so better if equally without bathing into the Ganges of English literature you keep reverence over your betters in other sections. [तुम्हारे ऊँचे निर्देशन को मैं मानती हूँ और जैसे तुम अँधेरे मे नही वैसे ही अगर संस्कृत मेरी उँगलियो के पोरों में नहीं गिनी, मेरे लिए विजातीय दुरूह भाषा (Latin) नही, जब भी मै समझती

हूँ; अंग्रेजी के ज्ञान की तलाश पूरी करने के वाद मै पढने के लिए लेटिन या ग्रीक चुनूंगी। इसलिए भला है अगर वरावरी के समझौते के साथ अग्रेजी की गंगा नहाये विना तुम दूसरी शाखाओ के वड़ों पर सम्मान रक्खो।]

'नास्माकं जाड्यमत्र' [इस विषय मे हमारी जडता नही] श्याम ने कहा, 'सौष्ठवात् कथितं विना नान्यद्गृह्णामि।' [जवकि 'सौष्ठव से' कह चुका हूँ, 'और कुछ ग्रहण करने को मैं तैयार नही।']

विद्या ने कहा—"I admit you are true to your waters." [मानती हूँ कि तुम अपने मनोभाव के सच्चे हो।] आँखें झुक गयी।

मोटर वढ़ती हुई सड़क के पास आकर लगी जो श्याम के सवसे नजदीक थी। श्याम ने कहा—विद्ये ! गच्छामि।

विद्या उठकर खड़ी हो गयी। श्याम नमस्कार करके मोटर की तरफ वढ़ा। श्याम को लेकर मोटर धीरे-धीरे विद्या की नजर से ओझल हो गयी।

['सरस्वती', मासिक, प्रयाग, सितम्वर, 1958। असंकलित]

परिशिष्ट
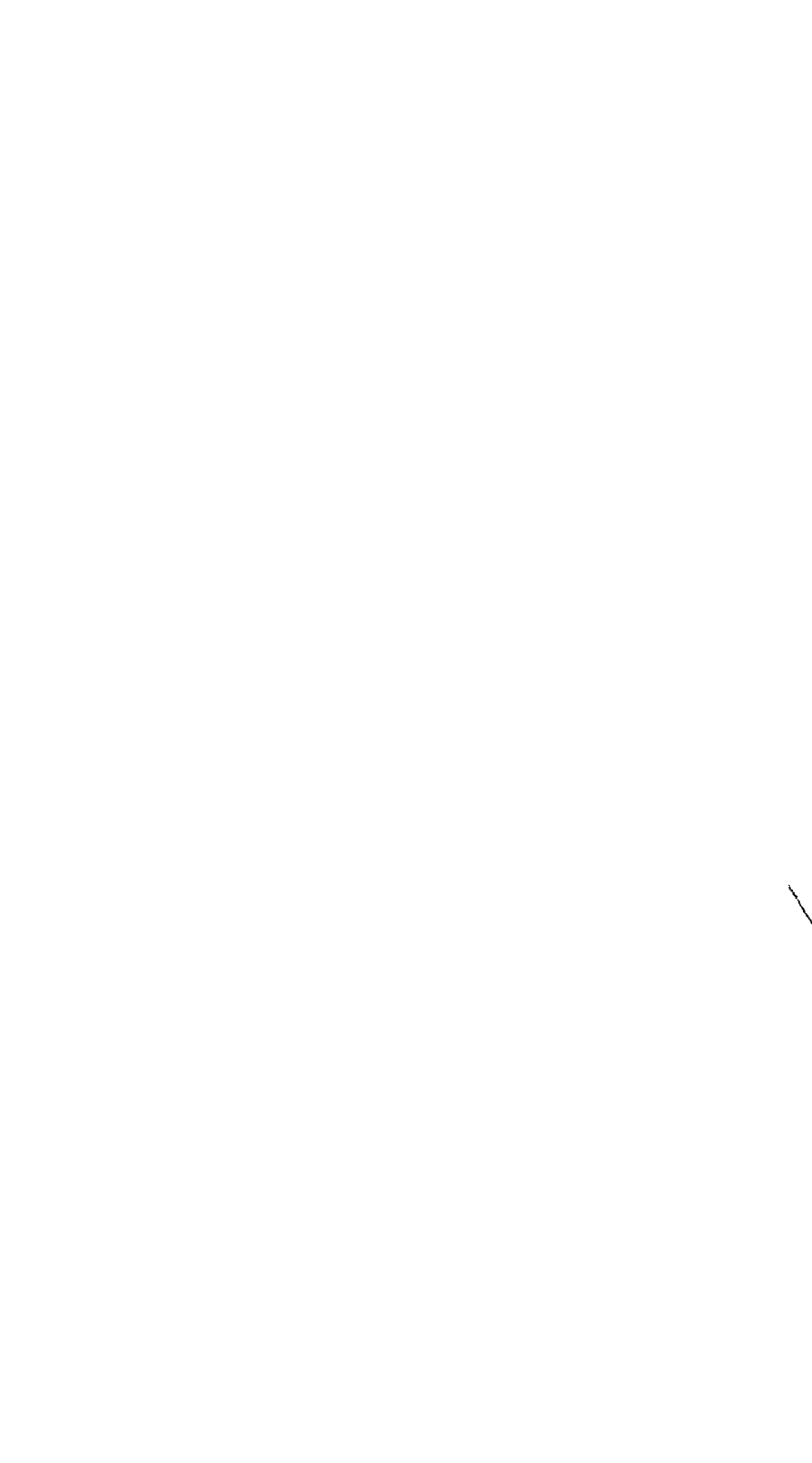
1. 'लिली' का समर्पण

प्रियश्री
श्री दुलारेलालजी के
दक्षिण यशोवर्धन
साहित्य-कर को
'लिली'

—'निराला'

लखनऊ
1.9 1933

2. 'लिली' की भूमिका

भूमिका

यह कथानक-साहित्य मे मेरा पहला प्रयास है। मुझसे पहलेवाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नही समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता, और पतन के भय से इतना न घबराता। अत: अब मेरा विश्वास केवल 'लिली' पर है, जो यथा-स्वभाव अधखिली रहकर अधिक सुगन्ध देती है।

सविनय
—'निराला'

3. 'सखी' का समर्पण

प्रिय मास्टर कन्हैयालाल
के परिणय में
चारुशीला श्रीमती प्रतिभा देवी
को
सस्नेह "सखी"

लखनऊ
9.10.35

शुभचिन्तक
—"निराला"

4. 'सखी' की भूमिका

निवेदन

'सखी' मेरी छोटी कहानियों का दूसरा संग्रह है। ग्रह-दोष से बरी कोई जीवन नहीं, यह विचार कहानियों के लिए मुझे शंकित करता है; पर जीवन का जैसा साहस भी इनमें है—मुझे विश्वास है। जिन साहित्यिकों तथा पाठकों ने प्रथम प्रयास पर मुझे प्रोत्साहित किया था, उनका मैं कृतज्ञ हूँ। जिन्हें अच्छा नहीं लगा, मैं दुखी हूँ कि उनका मनोरंजन मुझसे न हुआ;—उनसे मेरी प्रार्थना है, कुछ देर के लिए अपने श्रेष्ठत्व को भूलकर वे कहानियों से सहयोग करें—इन्हें सहृदयता देते विमुख न पायँगे। रही भाषा, भाव, कला और चित्रण की बात, इनके सम्बन्ध में विशेष लिखना व्यर्थ है, समझदार को इस पुस्तक में इशारे से ज्यादा गुंजाइश है।

कुछ कथाएँ ऐसी हैं, जो मेरे जीवन की घटनाओं में से हैं। यदि इन्हें कथा-साहित्य में स्थान देते हुए साहित्यिक अनुदार न होंगे, तो मैं यह श्रम सार्थक हुआ समझूँगा। त्रुटियों के लिए सांजलि क्षमा-प्रार्थी हूँ, जबकि बनी भी बिगड़ जाती है।

लखनऊ
विजया दशमी, 1992

—निराला

5. 'चतुरी चमार' की भूमिका

आवेदन

'चतुरी चमार' नाम का कहानी-संग्रह पाठकों के सामने है। पहली कहानी 'चतुरी चमार' की हिन्दी-साहित्य मे काफी चर्चा हो चुकी है। आलोचक अनेकानेक निबन्धों में इसकी प्रशंसा कर चुके हैं। सग्रहकार अपने संग्रहो मे इसको स्थान दे चुके हैं। पाठक पढ़ने पर इनके तथा अन्य कहानियों के मूल का हिसाब स्वयं लगा लेगे। मैंने स्थायी साहित्य के सर्जन के विचार से ये कहानियाँ लिखी हैं। पढ़ने पर पाठकों का श्रम सार्थक होगा, मुझको विश्वास है। भाषा, भाव और विषय के विवेचन में कहानियों के साथ उनका मन पुष्ट होगा। कला अपने आप उनको ऊँचा उठायेगी और मनोरंजन करेगी। उनका श्रम साहित्य-ज्ञानार्जन से सार्थक होगा।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

6. 'सुकुल की बीवी' की भूमिका

निवेदन

'सुकुल की बीवी' मेरी कहानियों का तीसरा संग्रह है। इसमें तीन कहानियाँ इधर की और अन्तिम 'क्या देखा' मेरी पहली कहानी है जैसा इसकी पादटीका में सूचित है। यह अन्तिम कहानी 'मतवाला' में 1923 ई. में निकली थी। कुछ परिवर्तन मैंने कर दिया है, पर हृदय-गत भाव वही है। लोगों को एक निर्णय और निश्चय की सुविधा होगी। यह कहानी पहले उत्तम पुरुष से चली है बाद को तृतीय पुरुष में बदल गयी है; यह जितना दोष है, उतना ही गुण। मेरा विचार है, कहानियों से पाठक-पाठिकाओं का मनोरंजन होगा। कथा, साहित्य और कला की प्यास कुछ बुझेगी। इति।

लखनऊ
10.2.41

'निराला'

7. 'देवी' का समर्पण

प्रियश्री महादेवी वर्मा को

8. 'देवी' की भूमिका

भूमिका

देवी संग्रह प्रस्तुत है आशा है पाठक पढकर प्रसन्न होगे। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए इसकी भाषा क्या काम करती है पढने पर समझ में आ जाता है। लिखते जो श्रम किया गया है उसका पारितोपिक उपेक्षित भाषा-साहित्य के लोग नही वितरित कर सके। अव जव देशी भाषा-साहित्य की माँग वढ़ी है, आशा है अधिकारि-वर्ग स्कूल में प्रवेश देने का प्रयत्न करेगे।

काशी
12.8.48

निराला